नय-दर्पण

भाग १-२

लेखक
श्री जिनेन्द्र वर्णी, क्षुल्लक

एकमात्र विक्रेता
रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
प० चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

श्री क्षुल्लक जितेन्द्रकुमारजी

(ग्रंथ लेखक)

भूमिका

समस्त भेदभाव मे रहित तथा पक्षपात मे शून्य, साम्यदृष्टि वीतराग गुरुओ का उपदेश यद्यपि सब जन-कल्याण के अर्थ होता है, परन्तु अरे रे ! दुष्ट पक्षपात व साम्प्रदायिकता ! तेरे गाढ आवरण को छेद कर वह कैसे पार हो। मोह कहो या कहो मिथ्यात्व, एकान्त कहो या कहो अज्ञान, भ्रम कहो या कहो पक्षपात, ये सब साम्प्रदायिकता के एकार्थवाची नाम है । इसके गहन पटल द्वारा आच्छादित व्यक्ति का त्रिलोकदर्शी अन्तसूर्य कसे प्रकाशित हो ? इसकी बू से वासित व्यक्ति के नथनो मे अध्यात्म सुगन्धिका प्रवेश कैसे हो ? इसके रगीन चश्मे को चढा कर तत्व का वास्तविक उज्ज्वलरूप कैसे प्रतीति गोचर हो । इस पर भी ख्याति लाभ का प्रबल आकर्षण, लोक प्रशसा का मीठा विष, तनिक मात्र क्षयोपशम हो जाने पर विद्वत्ता का अहकार, तथा भाषण कला का झूठा गर्व । एक करेला दूसरे नीम चढा । एक तरफ वीतरागियो कि धीमी धीमी मधुर पुकार और दूसरी ओर साम्प्रदायिकता व लोकेषणा की भयकर गर्जनाये, कैसे सुनाई दे ।

वीतराग व साम्य दृष्टि हुए बिना विश्व का सुन्दर व्यापक रूप कोई कैसे देख सकता है, जिसको देख कर व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। उपरोक्त झूठे गर्व के कारण व्यक्ति समझ बठता है कि मै जो जानता हूँ बस वही ठीक, इसके अतिरिक्त दूसरे सभो की बात नि स्सार है। और केवल उसकी बाह्य प्रभावना को देखकर जगत भी खिच जाता है उसकी तरफ। वह समझ बैठता है-ओह ! मै बहुत बडा हो गया। मेरे उपदेश में १०,००० श्रोता आते है । कुए का मेढक बेचारा इससे अधिक सोच भी क्या सकता है, मानो १०,००० या २०,००० व्यक्तियो मे ही समस्त विश्व सीमित है । जगत बेचारा क्या जाने तत्व को, केवल प्रभावनावश उसकी आवाज में ही अपनी आवाज मिलाकर बोलने लगता है, कि वास्तव मे यही सत्य है, मानो उसको ईश्वरीय अधिकार प्राप्त हुआ हो सच्चे व झूठ का सर्टीफिकेट देने का।

अरे भोले व्यक्तियो ! यदि सच्चे व झूठे की परख करने की सामर्थ्य तुम्हारे मे होती तो संसार की इस गहरी दलदल मे फंसे हुए क्यों छटपटाते होते ? चार्वाक, नैयायिक, वैशेषिक, साख्य, योग, कर्ममीमासा, दैवीमीमासा, ज्ञान मीमासा, बौद्ध व जैन आदि अनेकों सम्प्रदाय है। अन्य सम्प्रदायो की तो बात ही नही, क्योकि उन्हे तो एकान्तवादी की उपाधि ही प्रदान कर दी गई है, पर आश्चर्य तो जैन सम्प्रदाय के उन वर्तमान पडित व साधु त्यागी वर्ग पर आता है जो कि अपने को अनेकान्तवादी कहते हुए भी साक्षात पक्षपात की खाई मे पडे हुए दूसरो को प्रकाश दिखाने चले है, और स्वय अन्धकार मे रहते हुए जिन्हे यह भी पता नही कि जिस बात को तुम अनेकान्त के नाम से प्रचार करने चले हो, वही तो एकान्त है। क्योकि यदि ऐसा न होता तो दूसरो की दृष्टि का निराकरण करने की क्या आवश्यकता थी ।

अनेको विचारक हुए और होगे । यह कोई आवश्यक नही कि जितना कुछ उपदेश प्राप्त हो चुका है, बस उतना ही है। प्रकाश भी अनन्त है और विश्व भी, वृद्धिये भी अनन्त है और अनुभव भी । फिर कैसे इसे शास्त्रो के पन्नो मे सीमित करके रखा जा सकता है, जो कि इन पत्रो को उलट-पुलट कर किसी बात की सत्यता की साक्षी लेनी पडे । अरे प्रभो ! यदि तू इस गम्भीर रहस्य को समझना चाहता है तो अनेकान्त व स्याद्वाद की शरण मे आ, जहा आकर कि तुझे जगत में किसी भी लौकिक या पारलौकिक व्यक्ति की वात गलत प्रतीत होगी ही नही । जहा आकर कि बजाय दूसरे का निषेध करने के तू अपनी बुद्धि को दूसरो की दृष्टि के अनुसार वना कर उसके अभिप्राय को समझने का अभ्यास कर सकेगा । तव तेरे हृदय मे द्वेष के स्थान पर प्रेम, कटुता के स्थान पर माधुर्य, और सकुचित हृदय के स्थान पर व्यापक प्रकाश प्रगट होगा। जगत मे जो कुछ भी, जिस किसी भी, व्यक्ति या सम्प्रदाय द्वारा कहा जा चुका है, कहा जा रहा है या आगे कहा जायेगा, वह सव किसी न किसी अपेक्षा सत्य की सीमा को

उल्लघन नही कर सकता, और फिर विचारक ज्ञानियो की तो बात ही क्या ? क्योकि वे निष्प्रयोजन व निरथक बात कहते ही नही ।

यदि वास्तव मे कल्याण की इच्छा है, यदि वास्तव में अनेकान्त का रूप देखना चाहता है, यदि वीतरागियो के अभिप्राय को समझना चाहता है तो पक्षपात व लोकेषणा की खाई से बाहर निकल और देख विश्व कितना बडा है । दूसरे का निषेध करने की बजाय अपनी एकान्त बुद्धि का निषेध कर । और इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ आद्योपान्त पढ इस 'नय दर्पण' शास्त्र को, एक बार नही कई बार । इसमें अनेको मूलधारणाओ व अभिप्रायो का परिचय 'नय' के नाम से दिया गया है । उनके अतिरिक्त भी अनन्तो धारणाये व अभिप्राय सम्भव है । उन सबके झगडे को दूर करके उनमें परस्पर मैत्री उत्पन्न करना ही इसका फल है ।

जिन वीतरागी गुरुओ के परम प्रसाद से यह अमूल्य निधि मुझे प्राप्त हुई है, मै उनके चरणाम्बुजो की गन्ध का लोलुप हो उन्ही मे लीन हो जाना चाहता हूँ । सेठ श्री राजकुमारसिहजी ने जिन उत्तम भावनाओ से इस ग्रन्थ को अर्थ योग दिया है वह उनको कल्याण दायक हो । ब्र० श्री बाबूलालजी को इसके प्रकाशन में अनथक परिश्रम करना पडा है, प्रभु उनको इसका यथार्थ फल प्रदान करे । इसके अतिरिक्त भी जिन जिन महानुभाव ने इसमे सहयोग दिया है वे सब श्रेयससिद्धिपूर्वक निःश्रेयस लाभ प्राप्त करें ।

स्याद्वाद जैसे गम्भीर व जटिल न्याय का प्ररूपण करना मुझ जैसे बुद्धिहीन बालक के लिये ऐसा ही है जैसा कि मेढक द्वारा भगवान का गुणानुवाद किया जाना । फिर चहु ओर प्रसारित एकान्त की अटूट झम्पो से पीडित हृदय के रुदन में से यह जो कुछ स्वत प्रगट हो गया है वह सब गुरुओ का प्रताप है । इस ग्रन्थ को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने के लिये हर बातकी पुष्टि मे आगम के अनेको प्रमाण उद्धृत किये गए है । फिर भी त्रुटियें होनी अवश्यभावी है, जिनके लिये विद्वज्जन मुझे क्षमा करें और उनको यथायोग्य सुधार करके मुझे कृतार्थ करे ।

लेखक

आभार

प्रस्तुत ग्रन्थ न्याय शास्त्रो के गहन मंथन से प्राप्त नवनीत का
प्रतिनिधित्व करने का व्यर्थ ही गर्व कर रहा है, क्योकि इस के
लेखक ने कभी न्याय पढा और न कभी उसकी सूक्ष्मताओ का
परिचय प्राप्त किया है। फिर भी उसने इतना वड़ा दु:साहस
किसके वल पर और क्यो कर किया इसका उत्तर वह
इसके अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता, कि अजमेर व
इन्दौर की भव्य मण्डलियो की प्रेरणा के फल
स्वरूप ही इसका निर्माण हो गया है, जिसमे
अपने कर्तृत्व का अभिमान करना ऐसा ही
है, मानों चोटी पहाड को उठाकर ला
रही हो। इसके कर्तृत्व का वास्त-
विक श्रेय तो गुरुदेव श्री शुभ-
चन्द्राचार्य को ही है, जिन
के द्वारा प्रदत्त प्रकाश मे
कि उन शब्द वर्ण-
णाओ का सग्रह
हुआ है।

फिर भी प वंशीधरजी सिद्धात शास्त्री इन्दौर का
लेखक हृदय से आभारी है कि उन्होने
अपना अमूल्य समय देकर इस ग्रन्थ
का शोधन करने मे उसकी सहा-
यता की है और इस ग्रथ को
कदाचित ग्रन्थ कहलाने का
अधिकारी वनाया है।

स्व श्रीमती सौ प्रेमकुमारीजी कासलीवाल

श्री सौ प्रेमकुमारीदेवी का

संक्षिप्त परिचय

श्री सौ प्रेमकुमारी देवी श्री० दानवीर रायबहादुर जैनरल तीर्थभक्तशिरोमणि श्रीमत सेठ राजकुमार सिंह जी एम ए एल एल बी इन्दौर की धर्मपत्नी और अनेक पद विभूषित रावराजा जैन दिवाकर स्व श्रीमंत सेठ हुक्मचन्द जी साहब की पुत्रवधू थी।

आपका जन्म श्रीमान् सेठ फूलचन्द जी सिवनी (मालवा) निवासी के यहां हुआ था। श्री हुक्मचन्द जी पाटनी, बी ए एल एल बी, भू पू सेल्समैन दी राजकुमार मिल्स इन्दौर की आप बहन थी।

विक्रम स १९८४ में जब आपका विवाह हुआ था, उस समय आपकी उम्र १७ वर्ष की और श्री० भैयासाहब राजकुमार सिंह जी की उम्र १८ वर्ष की थी।

सौ प्रेमकुमारीजी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा उत्तीर्णकर साहित्यरत्न तक अध्ययन किया था तथा सर्वार्थसिद्धि आदि उच्च धर्म ग्रंथो का ज्ञान प्राप्त किया था।

आप अत्यन्त विनम्र, सेवाभावी और धार्मिक महिला थी। श्रीमती श्री सौ सेठानी साहब कञ्चनबाई जी (धर्म पत्नी श्रीमंत सर सेठ हुक्मचद जी साहब) के प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक एवं साह स्थिक कार्य में सदा साथ रहा करती थी। श्री सौ० दा नी कचन-बाई दि० जैन श्राविकाश्रम, श्री सौ दा नी कचनबाई प्रसूति-

गृह एव विधवा सहायता फड आदि पारमार्थिक सस्थाओ के सचालन मे श्री पूज्य मा साहव को सहयोग देती रहती थी । आप प्रतिदिन जिनेन्द्र पूजन, सामायिक और स्वाध्याय किया करती थी तथा घर मे सभी पर आपकी धार्मिकता और प्रेमपूर्ण व्यवहार का प्रभाव था । आप इन्दौर की महिला मंडल आदि सस्थाओ की कोषाध्यक्षा व मत्रिणी आदि का कार्यभार सभालकर महिला समाज की सेवा मे सलग्न रहती थी । आपके सं० १९८७ मे प्रथम पुत्ररत्न श्री राजा वहादुर सिंह जी का जन्म हुआ । पश्चात् श्री महाराजा वहादुरसिहजी, श्री जम्बूकुमार सिह जी, श्री विपुललता वाई, चि० चन्द्रकुमारजी और चि० यशकुमार जी हुए । तृतीय पुत्र श्री वीरेन्द्रकुमार सिह जी का ७ वर्ष की उम्र मे स्वर्गवास हो गया । श्री राजावहादुर सिह जी, श्री महाराजा वहादुर सिह जी और जम्बू कुमार सिह जी का शुभ विवाह सपन्न हो चुका है । आप तीनो ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपने फर्म के कामों को सभाल रहे है और समाज सेवा मे सदा आगे रहते है । चि० विपुललतावाई का विवाह श्रीमान सेठ भँवरलाल जी साहव सेठी (श्री सेठ विनोदीराम जी वालचद जी) के सुपौत्र और श्रीमान् कैलाशचन्द्र जी के सुपुत्र कुँवर नलिनचन्द्र जी के साथ हुआ है ।

आपके वैभवसपन्न विशाल परिवार मे श्रीमत भैया साहव राजकुमार सिह जी एम ए एल एल वी की वहन और आपकी ननन्द श्रीमती सौ० रत्नप्रभा देवी (धर्म पत्नी, श्रीमान् वा भू रा व सेठ लालचन्द जी सेठी, उज्जैन) श्रीमती सौ. चन्द्रप्रभा देवी (ध प श्रीमान् सेठ रतनलाल मोदी, इन्दौर) श्रीमती सौ स्नेहराजावाई (ध प श्रीमान् राजमल जी सेठी इन्दौर) का आपको पूर्ण स्नेह एव सहयोग प्राप्त था ।

श्रीमत भैया साहव राजकुमार सिंह जी के ज्येष्ठ भ्राता दा वी, रा व, रा भू, रावराजा, लेफ्टिनेंट कर्नल, श्रीमत सेठ

हीरालाल जी सा० काशलीवाल (श्री तिलोकचद जी कल्याणमल जी) एव लघुभ्राता श्रीमान् सेठ देवकुमारसिह जी काशलीवाल एम ए (श्री ओंकार जी कस्तूरचद जी) तथा बहनोई श्रीमान् सर सेठ भागचदजी सोनी, अजमेर आदि समाजमान्य एव प्रसिद्ध महानुभाव है।

स १९५६ मे श्री० प्रेमकुमारी जी को अकस्मात शरीर में सामने की ओर गठान उठी थी जिसका आपरेशन बबई में हो गया था। उस समय से डाक्टरो को केंसर का सदेह हो गया था। श्रीमती सौ प्रेमकुमारी जी, यह मालूम होते ही अपना पूरा समय धर्माराधन में देने लगी थी। स० १९५८ की फर्वरी में जब चि० विद्युल्लताबाई के विवाह का मडप मुहूत था, फिर दूसरीबार। आपके गठान उठी और उसी दिन आपको बबई जाना पडा। अपनी सुपुत्री के २०-२-१९५८ के विवाह के पश्चात ३ मार्च १९५८ को भैया साहब राजकुमार सिह जी ने आपको अपनी ततीय पुत्रवधू सौ० उर्मिला देवी (सुपुत्री श्री० सेठ गणपतराय जी सेठी, लाडनू) के साथ अमेरिका के लिए बबई प्रस्थान किया। लन्दन में जहा आपके तृतीय सुपुत्र श्री जम्बूकुमारसिह जी अध्ययन कर रहे थे, दो दिन ठहर कर वहा से अमेरिका पहुँच कर ९ मार्च १९५८ को न्यूयार्क के बडे हास्पिटल में भर्ती करा दिया। वहा आपकी जाच होकर आपरेशन करा दिया गया।

कुछ दिन बाद डाक्टर से ज्ञात हुआ कि आराम नही होकर केंसर का असर लीवर में पहुच गया है। रोग को असाध्य जानकर भैया साहब ने भारत लौटना निश्चित कर लिया था, पर सौ प्रेमकुमारीजी का स्वास्थ्य ज्यादा बिगड जाने से हवाई जहाज का रिजर्वेशन केंसिल कराना पडा। भैया साहब ने अपनी विदुषी धर्मन धर्मपत्नी को धर्म में पूरा सावधान किया और आखिर ३० अप्रेल १९५८ की रात्रि को ११॥ बजे श्री १००८ चन्द्रप्रभ भगवान (आपके इन्द्र भवन में स्थित जिन चैत्यालय की मूल नायक प्रतिमा)

का स्मरण करते हुए शांतचित्त से आपका स्वर्गवास हो गया। अमरिका में ही १ मई को आपके शरीर का दाह संस्कार कर दिया गया। केवल ४२ वर्ष की उम्र में ३० वर्ष तक साथ रहने वाली अपनी परमप्रिय सहधर्मिणी पत्नी के इस वियोग से भैया साहब राजकुमारसिंहजी को व समस्त परिवार को महान दुःख होना स्वाभाविक था। संसार में अधिक से अधिक जो उपचार हो सकता था, तत्परतापूर्वक करने में कोई बाकी नहीं रखा और बम्बई में व विदेश में एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ा और अपना कर्त्तव्य निभाया परन्तु भवितव्य दुर्निवार है। दाम्पत्य जीवन और पति-पत्नी के प्रेम का यह अनुकरणीय उदाहरण है जिसके परिणामस्वरूप भैया साहब ने उस समय अपनी ४८ वर्ष की उम्र होने पर भी दूसरे विवाह का विचार तक नहीं किया।

श्री दि. जैन महिला समाज इन्दौर की ओर से श्री सौ. प्रेमकुमारी के स्वर्गवास पर शोक सभा हुई थी तथा बाहर से सैकड़ों स्थानों पर शोक सभा एवं शोक संवेदना सूचक तार व पत्रों द्वारा शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की गई थी। आपकी तेरहवी के उठावने के निमित्त से कोई जाति भोज नहीं किया गया था।

आपके नाम से कई वर्षों से श्री शांतिनाथ दि. जैन जिनालय, सर हुकमचंद मार्ग, इन्दौर मे सौ. प्रेमकुमारी दि. जैन ज्ञानवर्द्धिनी पाठशाला स्थापित है।

श्री पूज्य क्षुल्लक जिनेन्द्रकुमारजी ने इन्दौर में पधारकर इन्द्रभवन मे नयों के विषय में बोधपूर्ण प्रवचन देकर उन्हे लिपिबद्ध कर दिया था। श्रीमंत सेठ राजकुमारजी साहब ने उस रचना को प्रस्तुत ग्रंथ 'नयदर्पण' के दो भागों मे अपनी स्वर्गस्थ धर्मपत्नी की स्मृति मे प्रकाशित करा दिया है और उसे श्री स. हु. दि. जैन पारमार्थिक संस्थाएं इन्दौर को भेट कर दिया है जिसकी आय से आगे प्रकाशन होता रहेगा।

विषय-सूची

नय दर्पण

मगलाचरण

खण्ड ज्ञान के पक्षपात तज, एक अनेक लखा प्रत्यक्ष ।
तज कठोरता ज्ञान सरलता, अनेकान्त की व्यापकता लख ।।
अन्तर तम हर अन्तर बल से, ज्ञान कला विकसी जगमग ।
चन्द्र पार्श्व अरु बाहूबलि को, नित मस्तक हो नत शत-शत ।।

१

पक्षपात व एकान्त

दिनांक २२-२३।६।६०
प्रवचन न १

१ पक्षपात का विष   २ वचनों में अन्तरंग भावों की झलक
३ पक्षपात का कारण   ४ कुछ और भी है   ५ वैज्ञानिक मन
६ आगम में सब कुछ नही   ७ कोई भी मत सर्वथा झूठ नही
८ अनेकान्त वाद का जन्म ।

अद्वितीय अन्तर प्रकाश से सकल विश्व का एक क्षण में अवलोकन
१ पक्षपात कर लेने के कारण समस्त पक्षो से अतीत , हे परम गुरु!
का विष मेरे भी हृदय के पक्षपातो को विनष्ट कीजिए, जिन पक्ष-
पातो के कारण कि मेरा हृदय इतना कडा बना हुआ है कि मुझे आज
किसी की बात सुनने तक की भी सामर्थ्य नही है, जिसके कारण कि मैं
हित के आश्रय पर भी अपना अहित ही कर बैठता हूँ । इन पक्षपातो
के कारण मैने अपना ज्ञान इतना जटिल बना लिया है तथा इसे इतना
सीमित व सकुचित कर लिया है, कि इसमें किसी भी नई बात को,

भले ही वह मेरे हित की क्यो न हो, प्रवेश पाने तक को भी अवकाश नही रहा है। मेरी धारणा से विलक्षण या विपरीत कोई एक शब्द मात्र भी आज मुझ मे क्षोभ उत्पन्न कर देता है और मै अन्दर ही अन्दर जलता या कुढ़ता हुआ व्याकुल हो उठता हूँ। इन पक्षपातो ने आज मेरे अन्दर से कोई भी नई वात सुनने व सीखने की जिज्ञासा तक को धो डाला है, और मै चला जा रहा हूँ अहकार के घोड़े पर सवार हुआ किस दिशा मे, यह स्वय मै नही जानता, सभवत· ऐसे अधकार की ओर जहा मुझे मेरी धारणा के अतिरिक्त कुछ दिखाई न दे। हे नाथ! अद्वितीय तेज का उपासक वन कर भी मै प्रकाश की वजाये अन्धकार-मे ही खोया जा रहा हूँ। मेरी रक्षा करे। मेरे हृदय मे भी प्रकाश जागृत करे। मेरी सकुचित दृष्टि को हर कर इसको व्यापकता प्रदान करे। इसकी जटिलता को खोकर इसमे सरलता का वीजारोपण करे। मै वड़ा वृक्ष वना रहने की वजाय अव एक छोटा-सा पौधा वन जाना चाहता हूँ, जो कि वड़ी से वडी आधी से भी टूटने न पाये, वल्कि तनिक सी हवा आने पर भी झुक जाये। छोटे व्यक्ति को छोटा ही वने रहना योग्य है। अभिमान व अहंकार के वल पर मै झूठ मूठ अपने को वड़ा समझने लगा और झुकना भूल गया। नाथ! मुझको अव झुकना सिखा दीजिए। किसी की भी वात सुनकर मेरे अन्दर क्षोभ उत्पन्न होने की वजाय उसके समझने के प्रति झुकाव होना चाहिये।

अरे रे! देखो इस पक्षपात का विषैला फल, जिसने सुनने तक की सहिष्णुता भी आज मुझ मे नही छोड़ी है, अपने हित को जानने की पात्रता कहा से आये, जव किसी की वात सुनूगा ही नही तो जानूगा कैसे, और बिना जाने मेरे जीवन का कल्याण व उत्थान होगा कैसे? कदाचित किसी की वात को सुनकर या पढ़कर या स्वयु अपनी विचारणा के वल पर जानकर, मेरे अन्दर जो यह धारणा उत्पन्न हो गई है, कि मै सव कुछ सीख गया हूँ, इसके अतिरिक्त सीखने को अव कुछ शेषनही रहा है, वह कितनी विषैली है, इसको आज तक मै जान न सका। खेद

तो इस बात का है कि आपकी शरण में आकर भी मैं अपनी उस भूल को पकड न सका। मने आपकी कल्याणकारी वाणी को अनेको ज्ञानी जनो के मुख से सुना, परन्तु सुनने व सीखने के लिये नही, बल्कि उपदेष्टा को सुनाने व सिखाने के लिये, उसके दोष निकालकर उसे परास्त करने व नीचा दिखाने के लिये। जो बात स्वय मेरे कल्याण के लिये मुझे बताई जाती है, उसी में म कुछ विराध की झलक देखने लगा, वाद वितडा व शास्त्रार्थ करने लगा, और आश्चय यह है कि इस वितडा का नाम मैंने रखा धम चर्चा, और इस प्रकार सदा हित में से अहित, अमृत में से विष, साम्यता में से पक्ष-पोषण, विरागता में से द्वेष, शाति में से व्याकुलता ही पढता आया हूँ। धिक्कार हो इस मेरे पक्षपात को। प्रभु ! इस दुष्ट से मेरी रक्षा करें।

अहितकारी लौकिक बातो में, प्रतिदिन के व्यापारो में तो कभी म इस प्रकार की भूल नहीं करता। वहा तो इस प्रकार की असहिष्णुता की झाकी मुझ में प्रगट नही हो पाती। वहा तो मैं बजाय अपना व्यापार दूसरो को सिखाने के सदा दूसरे का व्यापार सीखने व जानने का प्रयत्न करता रहता हूँ, अपनी बात को गुप्त रखकर दूसरे की बात को जिस किस प्रकार भी जानने की इच्छा करता रहता हूँ, पर यहा कल्याण माग में तो उल्टा ही क्रम हो गया है। यहा तो मैं दूसरे की बात सुनने व सीखने की बजाय अपनी ही बात दूसरो को सुनाने व सिखाने का प्रयत्न किया करता हूँ। वहा तो कमाई को स्वय ही भोगता था, किसी की नजर लगने तक से उसकी रक्षा किया करता था, परन्तु यहा अपनी जानी हुई बात को बिना प्रयोजन के भी म सबको देना चाहता हूँ। लेने वाले की इच्छा हो या न हो, उस पर लाद देना चाहता हूँ। यह बात यदि कल्याण भावना से की होती तब तो अच्छा ही था, परन्तु ऊपर से कल्याण भावना में रगा वह मेरा परिश्रम अतरग में देखने पर कुछ उल्टा-सा ही दीख पडता है। वहा दूसरे के कल्याण की भावना कहा है। वहा तो है केवल मेरा अहकार व अभिमान, विद्वता का

प्रदर्शन तथा अधिक से अधिक अपने हामियों व अनुयायियों की संख्या मे वृद्धि करने की भावना । वहां पड़े है लोकेषणा व स्वार्थ, और इस प्रकार कल्याण मे से निकली भी वह बात मेरे व सुनने वाले दोनो के लिये अकल्याणकारी हो जाती है ।

२. वचनो मे अतरग भावो की झलक

मेरे लिये तो अकल्याणकारी है इसलिये, कि मै उसमें अपनी लोकेषणा व स्वार्थ का ही प्रदर्शन करता हूँ । उसमे भले कल्याण हो पर वह मै देखने का प्रयत्न ही कब करता हूँ । मुझे तो उसमे दिखाई देती है कोरी विद्वता व मेरे पक्ष का पोषण । अभिमान के दर्शन करते रहने पर सरलता कैसे आ सकती है । और दूसरे के लिये अकल्याणकारी हो जाती है इसलिये, कि अभिमान मे रगी हुई उस बात मे सुनने वाले बेचारे को अभिमान के अतिरिक्त दिखाई हो क्या देगा ? शब्द तो जड़ है । वास्तव में उसका रहस्य तो उस भावना मे छिपा पड़ा है, जिसके आधार पर कि वह निकल रहा है । शब्द मुख से कभी अकेला नही निकला करता, बल्कि अपने साथ कुछ और वस्तु को लेकर ही वह प्रगट होता है । वह वस्तु अदृष्ट व अव्यक्त भले हो पर उसे सुनने वाला महसूस अवश्य कर लेता है । जैसे कि—मैं क्रोध या द्वेष को हृदय मे रखकर यदि आपको यह शब्द कहू कि, "वीतराग की शरण मे आकर भी तू यह शास्त्रार्थ करता है, वाद-विवाद करता है । तुझे लज्जा नही आती ।" और यही वाक्य आपके हित को व साम्यता को हृदय में धर कर यदि कहू कि "भो भव्य! वीतराग की शरण मे आकर भी तू यह शास्त्रार्थ या वाद-विवाद करता है, क्या लज्जा नही आती," तो आप स्पष्ट रूप से इस एक ही वाक्य मे से दो अर्थो का ग्रहण किये बिना नही रहेगे । यद्यपि लेखनी मे उस भाव का प्रदर्शन किया जाना अशक्य है, पर अनुमान किया जा सकता है। दोनों भावो को धारण करने के कारण मेरी मुखाकृति व शब्दो के साथ-साथ सुनाई देने वाली व दीखने वाली कर्कशता व सौम्यता क्या इस एक ही वाक्य के अर्थ का प्रभाव आप पर जुदा-जुदा न डालेगी?

पहिला वाक्य सुनकर आपको क्रोध तथा दूसरा वाक्य सुनकर कुछ पश्चाताप ही होगा ।

बस सिद्धान्त निकल गया । क्रोध से निकले शब्द का अर्थ है क्रोध और साम्यता से निकले शब्द का अथ है साम्यता । अन्तरग के जिस अभिप्राय में से शब्द उत्पन्न होता है उसका अथ व प्रभाव भी वही होता है, भले ही उस शब्द का अथ कुछ भी हो । ककश भी वचन हितकारी, व मीठे भी वचन अहितकारी होते देखे जाते ह । उसका कारण केवल वक्ता के अन्दर में बैठा अपना परिणाम ही है । इसीलिए जिस बात को मैं धम चर्चा कहता आया हू वह वास्तव मे अभिमान चर्चा बनती रही है । और इस प्रकार धम के नाम पर म सदा अपने व दूसरे के जीवन मे विप घोलता चला आ रहा हू । मजे की बात यह है कि बात करता हू कल्याण की । नाथ ! कल्याण पक्षपात मे नही सरलता में से निकलेगा । दूसरे को समझाने मे नही स्वय समझने से निकलेगा । अभिमान से नही साम्यता मे निकलेगा । यदि वास्तव मे कल्याण की भावना रखी होती तो चर्चा या समझने समझान का ढग ही बदल जाता । मेरी बात साम्यता मे से निकल रही है, या अगने की बात म साम्यता से सुन रहा हू या अभिमान से, यह बात किसी अन्य से पूछकर निर्णय करने की आवश्यकता नही, हृदय स्वय इस बात का साक्षी है । इतना ही सकेत करना यहा पर्याप्त है कि यह बात कल्याणाथ व हिताथ है, अहकार पोषणाथ नही । अत भो चेतन! समस्त अन्तरग के पक्षपातो व पुरानी धारणाओ को दबाकर अब इस अमृत रस का पान करने का प्रयत्न कर । दूसरे को समझाने का भाव दबाकर स्वय समझने का प्रयत्न कर । अपने हित की भावना जागृत करके उसे सुन व समझ । भले ही तू ऐसा मानता हो कि म तो वह बात अच्छी तरह समझता हू । भले ही तेरे साथ विद्वत्ता की उपाधि लगी हो, पर वास्तव में उस बात का रहस्याथ आज तक तू सीख नही पाया । यदि सीख पाता तो अन्तरग से निकली यह शब्दो की खेंचातानी शेप न रह पाती । पक्षपात का स्थान सरलता ने ले लिया होता ।

इस पक्षपात की उत्पत्ति के कई कारण है। उनको भी जान लेना यहा आवश्यक है, क्योंकि इनको जाने बिना मैं सावधानी किस दिशा में वर्तूंगा, और सावधानी वर्ते विना पक्षपात को दूर भी कैसे कर सकूगा। केवल शब्दों में ही बात कर रहा हूं कि "पक्षपात बुरा है। इसे दूर हो जाना चाहिये।" और ऐसा ही आगे करता रहूँगा। न अब तक अपनी भूल को स्वीकार करके उसे दूर करने पर प्रयत्न किया है और न ही करूंगा। पक्षपात दूर कैसे होगा ? भूल को जीवन मे खोजे विना केवल वात करने से भूल दूर न होगी। भूल दूर करने के लिये प्रयास करना होगा, बल लगाना होगा। पर प्रयत्न प्रारम्भ करने से पहले भी उस भूल को जानना आवश्यक है। अत अब सुन, गुरुदेव तुझे वह भूल बता रहे है, जिसके बल पर कि यह पक्षपात जन्मा तथा पुष्ट हुआ है।

२. पक्षपात का कारण

पहिला कारण है किसी बात को पूरा न सुनना तथा अधूरा ही सुनकर तृप्त हो जाना। जैसे कोई एक ज्ञानी जिसके हृदय मे अनेको बाते कहने के लिए पड़ी है, कुछ बात कह रहा है। मैंने उसे आज सुना। पर कल मैं सुनने न जा सका। कल आपने सुना हम दोनो को ही वे बातें अच्छी लगी, और समझ बैठे कि जीवन की भलाई का सर्वस्व हमने सीख लिया, अर्थात् इतना ही कुछ पर्याप्त है, इससे अधिक वह वक्ता और कहेगा ही क्या। एक अहकार व अभिमान उत्पन्न हो गया कि मैंने एक नई बात सीखी है, जो अन्य साधारण व्यक्ति नही जानते। मैं उस बात का उनमे प्रचार करने लगा। नई बात सुनकर उनके अन्दर से स्वाभाविक प्रशंसा के भाव निकल पड़े, जिसने मेरी लोकेषण को उत्तेजित कर दिया, अभिमान को और बल दिया, ज्ञान मे करडाई आ गई। किसी के सामने झुकना मैं भूल गया, अर्थात् किसी अन्य की बात समझने की पहिली भावना विलुप्त हो गई, क्योंकि अपनी धारणा के आधार पर आज मैं सब कुछ मानो जान चुका हूँ, या यूं कहिये कि सर्वज्ञ बन चुका हूँ—विना इस बात को विचारे

कि यह विप मेरे जीवन को किस बुरी तरह हनन कर रहा है । मै और आप दोनो ही समान रुप से मात्र अपनी-अपनी धारणाओ को, ही सच्ची समझकर दूसरे की धारणाओ पर आक्षेप करके उन्हे झूठी ठहराने का प्रयास कर रहे है । दोनो के ही प्रशसकों की सख्या बरावर बढती जा रही है । हम दोनो ही एक दिन उस अदृष्ट शक्ति द्वारा खेंच लिए जाते है, जिसकी गोद में जाकर सब विश्राम पाते हैं । अर्थात् मृत्यु के अन्न वन जाते हैं । परन्तु हमारे उस पक्ष का प्रचार सदा के लिए उन अनुयाइयो के हाथ में वाद-विवाद व शास्त्राथ का एक शस्त्र वनकर रह जाता है, जिसके द्वारा परस्पर मे लडते रहने में ही वे वेचारे धर्म की कल्पना करके, स्वय अपने जीवन म आग लगाते रहते ह । ओह ! कितनी दयनीय है उनकी दशा । प्रभू के अतिरिक्त कौन उनकी रक्षा करने में समर्थ है ?

पक्षपात की उत्पत्ति का दूसरा कारण यह है कि अपनी बुद्धि से कदाचित कोई नई बात जान लेने पर अहकार वश वही पहिली प्रक्रिया चल निकले, या म तो स्वय अहकार के वश में न पड़ू पर मेरी उस वात को सुनकर मेरे अनुयाई अहकार के शिकार हो जायें । मै अन्य वातें जानने की साधना करता रहू पर इसी जीवनकाल में उसे पूरी न कर सकू, और अधूरी साधना रहते-रहते ही मृत्यु के द्वारा पुकार लिया जाऊँ । तात्पय यह है कि पक्षपात का मूल कारण है अधूरी वात का जानना ।

४ कुछ और भी है

पक्षपात शोधन के दो ही उपाय हो सकते है । या तो पूरी की पूरी वात जानली जाये, और या अधूरी वात के साथ साथ यह अवधारण कर लिया जाये की जो कुछ म जान पाया हू, वह पूरी वात का अनन्तवा अश भी नही है । इसके अतिरिक्त भी वहुत कुछ जानने को अभी शेप है । सो पहिला उपाय तो वतमान मे लगे हाथो होना कुछ असम्भव सा प्रतीत होता है, भले ही आगे

जाकर सभव हो, और तव तो शोधन का कोई प्रश्न ही नही रहेगा। परन्तु वर्तमान मे दूसरा उपाय ही विशेप प्रयोजनीय सभव है। तेरी वहियो मे अव तक केवल उन्ही वातो के खतियान तो होये हुए है जो कि तू जानता है, पर उन वातो का खतियान वहा नही है जो कि तू नही जानता। और हो भी कैसे, जो वात जानी ही नही उसका खतियान कर ही कैसे सकता है? अत. भाई! सव खातों के अतिरिक्त वहा एक खाता और भी डाल ले। उसका शीर्पक होगा "कुछ और भी है।" इतना ही यदि कर पाया तो तेरी प्रवृत्ति मे वहुत वडा अन्तर पड़ जायगा। क्योकि खाली पडे उस खाते के अन्तर्गत तू वरावर इन्द्राज करने का प्रयत्न करता रहेगा, जो कि तेरे अन्दर नई नई वाते जानने व खोजने की जिज्ञासा उत्पन्न कर देगा। वस अव तू दूसरे की वात का निपेध करने की वजाय उसे समझ कर यथायोग्य रूप से फिट विठाने का प्रयत्न किया करेगा, और इस प्रकार उस खाते मे नित नये नये इन्द्राज होते रहेगे, अर्थात् तेरे ज्ञान मे वृद्धि होती रहेगी। पक्षपात वृद्धि के मार्ग मे सव से वड़ी अड़चन है। और उपरोक्त जिज्ञासा वृद्धि के मार्ग की सव से वडी सहायक।

५ वैज्ञानिक वन

प्रभो! लौकिक व अलौकिक किसी भी वात को पक्षपाती व साम्प्रदायिक वनकर जाना नही जा सकता, क्योकि ऐसी दृष्टि मे सकीर्णता वास करती है। मेरी ही वात सच्ची है अन्य सव की 'झूठी' ऐसा सा अभिप्राय अन्दर मे छिपा वैठा रहता है, जो अन्य की वात सुनने तक की आज्ञा नही देता। एक वैज्ञानिक की भाति स्वतंत्र व्यापक व जिज्ञासु दृष्टि रखने से ही नई नई वाते जानी जा सकनी सभव है। देख! एक वैज्ञानिक की जिज्ञासा, क्या कभी उसे भी किसी साहित्य का निषेध करता हुआ सुना है तूने? यह पुस्तक तो मै नही पढूगा, या इस व्यक्ति की वात तो मै न सुनूगा, क्योकि यह मेरे गुरु की लिखी हुई नही है या यह वात मेरी धारणा के अनुकूल नही है, क्या ऐसा विचार कभी वैज्ञानिक को

आता ह, और क्या ऐसी सकीणता मे से कभी भी आज के विज्ञान की उन्नति दृष्टिगत हो सकती थी ? आज के विज्ञान का मम उदारता है। प्रत्येक वैज्ञानिक कुछ नई बात की खोज करने के लिये तत् सबधी सारा साहित्य जो भी उसे उपलब्ध होता है पढता है, चाहे वह किसी भी देश व व्यक्ति का क्यो न हो । हरेक विद्वान से तत्सबधी चर्चा करके उसके विचारो में से कोई तथ्य निकालने का प्रयास करता है, उसका निराकरण करने का नही । अपनी बुद्धिपर जोर देकर उसके अभिप्राय को समझने का प्रयत्न करता है । "यह बेचारा क्या जाने, क्योकि इसने मेरे गुरु से शिक्षा पाई ही नही, इसलिये इसकी बात सुनना बेकार है," ऐसा विचार स्वप्न में भी उसको नही आता । पर तू तो तनिक अपनी धारणाओ को पढ कर देख कि क्या तेरी दृष्टि भी वैसी ही है या उससे विपरीत ?

यदि अब तक नही तो अब ऐसी दृष्टि का निर्माण कर, तभी सवज्ञता का उपासक कहा जा सकेगा, और कुछ सीख कर अपने जीवन में कोई नई बात या अविष्कार कर सकेगा, अ यथा नही । जिस प्रयोजन को लेकर तू गुरुदेव की शरण में आया है, वह प्रयोजन स्वत एक विज्ञान है । अन्तर केवल इतना है कि आज का दीखने वाला विज्ञान भौतिक है और यह आध्यात्मिक । वह दृष्ट है और यह अदृष्ट । उसके अनुसधान इन जड पदार्थो पर होते ह और इसका अनुसधान जीवन पर । उसकी खोज बाहर में की जाती है और इसकी खोज अन्दर में । उसकी प्रयोगशालाओ में लोहे व बिजली के यत्र रखे है, और इसकी प्रयोगशाला में विचारणाओ व वेदना के यत्र रखे ह । इसलिये स्वतत्र दृष्टि से सुन, सरलता से सुन, सरलता स विचार कर, और तथ्य खोजने का प्रयत्न कर । शब्द में अटकने की बजाय शब्द के सकेत पर दृष्टि ले जाने का प्रयत्न कर । वहा विदन पडा है । शब्द बेचारे में उतनी सामर्थ्य कहा कि उसका पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व कर सके ।

तो पता चलेगा कि कितनी विपत्तिया इस साहित्य के ऊपर आज तक आ चुकी है। यही सौभाग्य समझिये कि यह कुछ बचा खुचा भाग किसी प्रकार अवशेष रह पाया है। तात्पर्य यह कि उस लिपिबद्ध का वह भाग साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला मे स्वाहा हो चुका है। आपके शास्त्रो को जला जलाकर हमाम गर्म किये गये है। कैसे कह सकते हो कि इस आगम से बाहर कोई बात आपके हृदय या मेरे हृदय मे नही आ सकती है। भाई! अब कदाग्रह को छोड़ जीवन मे कुछ करने की भावना उत्पन्न कर"।

उपरोक्त सर्व कथनपर से ऐसा अभिप्राय ग्रहण न कर लेना कि मैं आगम का निषेध कर रहा हूं। यह बात तो तीन काल मे भी होनी सभव नही है। आगम का ही उपकार है, जो मैं यह स्वतन्त्र दृष्टि की बात कहने का साहस कर रहा हूँ। क्योकि जो सिद्धान्त यहा पढाया जाना अभीष्ट है वह स्वय स्वतन्त्रता के पोषणार्थ, कदाग्रह के निराकरणार्थ व विचारज्ञ बनने की प्रेरणार्थ ही है। किसी भी बात का निर्णय करने के लिये आगम ही अल्पज्ञो का मुख्य आधार है। इसके बिना हमारे लिये सर्वत्र अधकार है। परन्तु कहने का तात्पर्य तो यह है कि कदाचित् कोई बात ऐसी अपने विचार में स्वयं आ जाये या किसी से सुनने मे आ जाये जिसका जिक्र आगम मे न मिले, तो उस को निरर्थक समझकर छोड नही देना चाहिये, बल्कि युक्ति व अनुभव से उसका भी निर्णय करने का प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रकार बराबर आध्यात्मिक विज्ञान के साहित्य को वृद्धि दान देते रहना चाहिये। हां! अनुभव किये बिना केवल कल्पना के आधार पर कुछ कहना व लिखना योग्य नही, क्योकि उससे कदाचित् भव्य प्राणियो का अहित हो सकता है।

और ऐसी दृष्टि उत्पन्न हो जाने पर लोक मे प्रचलित कोई भी

७ कोई भी मत सवथा झूठा नही

वात सनथा मिथ्या नही लगेगी । आगम मे ३६३ एकान्त मतो या मान्यताओ का कथन आता है, जिनको हम मिथ्या मत कहते है। पर एक वैज्ञानिक की दृष्टि मे कोई भी मत सवथा मिथ्या नही होता। सवत्र ही कुछ न कुछ सत्य अवश्य है क्योकि मूख से मूख व्यक्ति भी वे सिर पैर की कोई वात कहना सुनाई नही देता है । जो कोई भी व्यक्ति कुछ कहता है, वह कुछ अपना अभिप्राय रखकर ही कहता है । यदि उसके अभिप्राय को पढने का प्रयत्न किया जाये, अथवा शब्दो में न अटककर उसके वाच्य मकल पर जा कर स्पर्श किया जाये, तो उसकी बात में छिपी सत्यता स्पष्ट प्रकाशित हो जाती है ।

कोई भी शब्द सवथा झूठा होना सभव ही नही है । जितने भी शब्द है उनके वाच्याथ इस लोक में मौजूद अवश्य है । और इस प्रकार ऐसे दृष्टात जो कि सवथा झूठ की सिद्धि के अर्थ दिये जाते है, जैसे कि 'गधे का सीग व आकाश पुष्प', वे भी सवथा झूठ हो ऐसा नही है । क्योकि भले ही प्राकृतिक सयोग को प्राप्त ऐसा कोई पदाथ झूठ हो, पर पृथक पृथक उन पदार्थों की सत्ता लोक में है । और इस प्रकार किसी अपेक्षा से गधे का सीग कह देना भी सत्य हो जायेगा, जैसा कि मेरे स्वामित्व में पडा यह पैन 'मेरा पैन' ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकार यदि गधे को सजाने के लिये उसके सिर पर कृत्रिम रूप सीग रख दिये जायें,जैसे कि आपने कही प्रदशनियो में या अयत्र मनुष्य के मुह वाला सप देखा है । वह केवल कृत्रिम लाग होती है, प्राकृतिक सत्य नही । कृत्रिम रूपेण वह अवश्य सत्य है । तो गधे के सीग भी कहने में कोई विरोध न होगा, यदि ऐसा शब्द सुनकर दृष्टि उसी विशेष गधे पर जाये, अन्य पर न जाये तो और सयोग को कृत्रिम ही समझा जाये प्राकृतिक नही तो । बुद्धि का प्रयोग करें तो शब्दो परसे वक्ता के तात्पय को समझा जा सकता है, परन्तु यदि शब्द में ही

अटका जाय तो गधे का सीग न तीन काल मे कभी हुआ है और न कभी हो सकेगा। विरोध को दृष्टि मे रखकर सहज प्रयोजन कभी पढा नही जा सकता, जैसा कि दृष्टान्त पर से जाना जा सकता है। सरलता पूर्वक यथायोग्य सभावना का विचार करने पर ही वह पढ़ा जाना सभव है। लौकिक मार्ग मे प्रयुक्त वाक्यो पर से तो वह हम ठीक ठीक अभिप्राय को ही पकड़ते है, अपनी ओर से उसमे खेचा तानी करने का प्रयोग नही करते। 'मेरा पैन' कहने पर ठीक ठीक ही अभिप्राय समझ जाते है, पर यहा इस अलौकिक मार्ग मे प्रयुक्त वाक्यो मे खेचातानी अवश्य होने लगती है। इसका कारण दृष्टि मे पड़े पक्षपात के अतिरिक्त अन्य कुछ नही।

यदि पक्षपात न रहे तो ३६३ के ३६३ मतो में किसी न किसी अपेक्षा सत्य दीखने लगे। उनके उपदेष्टा मूर्ख न थे। बुद्धिमान व तार्किक थे। कपोलकल्पित व सर्वथा अयुक्त बात को स्वीकार भी कौन करता है? और बे सिर पैर की बात का विचार आता भी किसे है? कुछ बात प्रतीति मे प्रत्यक्ष होने पर ही किसी को कुछ बताया जा सकना सभव है। बस तो अनेको विचारज्ञों ने अपनी विचारणाओ के आधार पर वस्तु मे सेकोई तथ्य निकाला और उस ही का उपदेश दिया। वह तथ्य वस्तु मे अवश्य है, तभी तो निकल पाया, नही तो निकलता कैसे? इसलिये जो जो भी बात वे कह रहे है वे सब सत्य है। फिर भी उन्हे मिथ्या कहा गया? उसका कारण केवल यही है कि उनका वह सत्य अधूरा है। अपने सत्य की स्थापना के साथ साथ वह अन्य के सत्य को स्वीकार नही करते, बल्कि उसका निषेध करते हैं। इस पर से उनका पक्षपात प्रदर्शित होता है। बस इस पक्षपात के कारण उन सब को मिथ्या कहा गया है।यदि उन सब का परस्पर सम्मेल-बैठाकर यथा योग्य रीति से उनको स्वीकार किया जावे तो वे सब सत्य है। जैसे कि ३६३मतो को मिथ्या बताकर स्वयं गोम्मटसार मे आचार्य देव कह रहे हैं।

यावतो वचनपथा तावतश्चैव भवन्ति नयवादा ।
यावतो नयवादास्तावतस्चैव भवन्ति पर समया ।।८९४।।
पर समयाना वचन मिथ्या खलु भवन्ति सवथा वचनात्
जैनाना पुनवचन सम्यक् खलु कथचिद्वचनात् ।।८९५।।

अथ —पर समयी जिस वचन को कह रहे है तिस ही को सवथा एकान्तपने करि कहें है। तिसके प्रतिपक्षी को नाही कहे है। पर वस्तु है सो तिस रूप भी है और तिस के प्रतिपक्षी स्वरूप भी है। तातै तिनि का वचन असत्य है। जिस वचन को जैनी (अनकान्त-वादी) कह है, तिसको कोई एक प्रकार करि कहै ह सर्वथा नियम नाही कहे हैं। वस्तु भी तिस रूप कोई एक प्रकार करि ही है। तातै जनीनि के वचन सत्य ह।

सत्यता को असत्य बताने का प्रयोजन नही है वल्कि दूसरे मत का निषेध करने का जो कदाग्रह वत रहा है उसे असत्य वताया जा रहा है। उस मत का निषेध नही, कदाग्रह का निषेव है।

अव तुझे यह देखना है कि कही मेरे अ दर तो इस प्रकार का कोई कदाग्रह नही पडा है। मो शब्दो पर से निर्धारित नही किया जा सकता। शब्दों में पूछने पर तो म अनेकान्तवादी हूँ ही। अनेकान्तवादियो का शिष्य जो हूँ। जैन मत अनेकान्त मत है और मै भी जैनी हूँ। इसलिये मेरी तो सव वातें सत्य ही ह। ऊपर नियम जो वना दिया गया है कि जैनियो की वात सच्ची और अन्य की वात झूठी। प्रभो ! ऐसा अथ करने का प्रयत्न न कर। यहा सम्प्रदायिकता को अवकाश नही। जैन सम्प्रदाय जैन मत नही है अनेकान्तिक धारणाओ का नाम जन मत है। मत अनेकान्त अवश्य है, पर मै अनेकान्तिक हूँ या नही, विचार तो इस वात का करना है। वास्तव में अनेकान्तिक नही हू। क्योकि यदि हुआ होता तो किसी का भी निषेध न करता, सव को यथायोग्य रूप से

स्वीकार कर लेता । अन्धों की भाति हां मे हा मिलाने को नही कहा जा रहा है, बल्कि बुद्धि पूर्वक उन मतों मे पड़ी सत्यता की खोज करने को कहा जा रहा है । और इसी प्रकार ३६३ ही नही, असख्याते मत या सत्य के रूप हो सकते है । जितने भी वचन पथ है सब मे कुछ न कुछ सत्य है । यदि खोजे तो अवश्य मिलेगा और यदि पहिले ही निषेध कर दे तो क्या मिलेगा । और उस निषेध किये गये एक सत्य के अभाव मे तेरी अधूरी मान्यता भले ही वह जैन आगम के आधार पर हो, सत्य कैसे हो सकेगी । ३६३ मतो का एक गुलदस्ता बनाये तभी सत्य के दर्शन हो सकते है । यदि इनमे से एक भी फूल निकालकर अलग कर देतो ३६२ मतो से निश्चित ही गुलदस्ता शोभा को प्राप्त न हो सकेगा। अर्थात् एक मत का भी निषेध करके यदि असंख्यते मतो को स्वीकार करे तो एकान्त कहलायेगा, अनेकान्त नही । जैन होकर भी यदि मै किसी का निषेध करता हूं और उसे समझने का प्रयत्न नही करता तो मैं वास्तविक जैन या अनेकान्ती नही हूँ । मुझे एकांती या कदाग्रही ही क्यों न कहा जाय ?

अनेकान्त वाद का जन्म

इस प्रकार के एकान्त कदाग्रह के फल स्वरूप हम सदा से परस्पर मे लड़ते-झगड़ते चले आ रहे है । आज तक हमने यथार्थ दृष्टि से न जागृत की और न अपने हित को खोज सके । वीतरागमार्ग मे से भी द्वेष का पोषण करते रहे । जब वीर प्रभुजन-सम्पर्क मे आये और उन्होंने लोगों मे फैले इस दुष्ट कदाग्रह का साक्षात किया तो मानो उनका हृदय रो उठा । अरे भव्य जीवों ! लौकिक दिशा में तो सर्वदा अपना अहित ही करते हो, पर इस अलौकिक दिशा मे भी आकर उसका ही प्रयोग ? सम्भलो, जिस प्रकार सरलतापूर्वक लौकिक व्यापारों मे बोली गई भाषा के अर्थ यथायोग्य रूप से स्वतः लगा लेते हो, उसी प्रकार यहां क्यों नही लगाते । यहां ज्ञान मे कर-डाई करके यह कदाग्रह व पक्षपात किसके लिये करते हो । याद रखो यह स्वयं आपका ही घात कर रहा है, दूसरों का नही ।

लौकिक विपय तो दृष्ट है, इसलिये उनके सबध म तो तू सहज ठीक-ठीक अभिप्राय को ग्रहण कर लेता है। उलटी भापा का भी सीधा अथ लगा लेता है। पर यह अध्यात्म विपय अदृष्ट है। और इसी कारण यथा योग्य रीति से सहज इसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझना, तुझे अवश्य कठिन ही नही, असम्भवसा प्रतीत हो रहा है। अत हम तुझको एक कुजी प्रदान करें, जिसको लगाकर तू इस माग की गूढ से गूढ व रहस्यमयी बातो का सरलता से अथ लगाने में सफल हो जायेगा। और यदि कुछ दिनो तक इस कुजी का प्रयोग करके अथ लगाने का अभ्यास करता रहा, तो एक दिन स्वय अभ्यस्त हो जायेगा। और तब तुझे बिना इस कुजी के प्रयोग के ही सहज ही रहस्यमयी व जटिल दीखने वाली बातो का ठीक-ठीक अथ स्वत समझ में आने लगेगा। उस कुजी का नाम ही है अनेकान्तवाद, साम्यवाद या स्याद्वाद।

२

शब्द व ज्ञान सम्बन्ध

दिनाक २९-९-६०

प्रवचन न २

१. पढने का प्रयोजन, शांति २ प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान, ३. प्रतिबिम्ब व चित्रण, ४ शब्द की असर्थता, ५ वस्तु को खडित करके प्रतिपादन की पद्धति ।

१. पढने का प्रयोजन शाति

सम्पूर्ण पक्षो से अतीत हे सरलता के प्रतीक ! पक्षो की आग मे जलते हुए इस तृण पर अव दया कीजिये इसको भी सरलता प्रदान कीजिये । सरलता आ सकनी कैसे संभव है, इसके लिये मुझे यह विचारना है कि पक्षपात की यह दाह कहां बैठी हुई है ? उत्तर स्पष्ट है, कि ज्ञान मे, जैसे कि पहिले वता दिया गया है, पक्षपात का कारण अधूरी वात का जानना है । अधूरी वात जानने से अच्छा तो विल्कुल न जानना ही है । क्योकि विल्कुल न जानने वाले जल्दी पढ़ जाते है, परन्तु अधूरा जानने वाले वजाय पढने के विरोध उत्पन्न करके अपना व दूसरे का अहित कर बैठते है । स्कूल मे पढ़ने वाला एक वालक क्योकि कुछ नही

जानता, इसलिये सरलता में अपने गुरु की बताई हर बात को स्वीकार करता हुआ एक दिन गुरु से भी अधिक पढ जाता है। भले जब गुरु में उन्हीं बातो के सम्बध में तर्क करने लगे जो कि पहिले सरल वृत्ति में ग्रहण कर ली गई थी, पर पढते समय उसने तर्क बिल्कुल नही की थी। यदि ऐसा करता तो बिल्कुल पढ न सकता था। अत भो भव्य ! यदि तर्क ही करना अभीष्ट है हो तो इसे उस समय के लिये रख छोड जबकि तू सम्पूर्ण बात पढ चुकेगा, जब कि तेरा ज्ञान अधूरा न रह जायेगा। और यदि ऐसा कदाचित हो पाया तो, अन्तरंग में साम्यता जागृत हो जाने के कारण तुझे तर्क करना रुचेगा ही नही। भले कोई गलत कह रहा हो। पर तू चुप ही रहेगा। यही है सरलता व साम्यता की पहिचान। यह अलौकिक कल्याण का मार्ग है, शान्ति का मार्ग है। किसी भी मूल्य पर अपनी शान्ति को घातने का प्रयत्न न कर। हर प्रकार इसकी रक्षा करता चल। जो कुछ भी सीख, निज शान्ति के अर्थ सीख। यदि ऐसा अभिप्राय रखकर सीखने का प्रयत्न करेगा, तो अवश्यमेव तेरे मार्ग में आने वाली पक्षपात की बाधा दूर हो जायगी और सरल वृत्ति प्रगट हो जायेगी। आगम का एक-एक शब्द शांति की सिद्धि के अर्थ ही है। तेरे ज्ञान को जटिल बनाने के लिये नही, सरलता उत्पन्न करने के लिये है।

२ प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान

हा, तो किसी नवीन वस्तु को पूरी की पूरी पढने के उपाय तीन हो हो सकते है या तो वह वस्तु साक्षात रूप से देख व सूंघ व चख ली जाय, या उस वस्तु का कोई चित्र देख लिया जाय, और या उस वस्तु से किंचित मेल खाती कुछ अन्य-अन्य वस्तुओं के आधार पर अपने अनुमान को खेंचकर, असली वस्तु के अनुरूप कुछ रूप रेखायें ज्ञान पट पर उत्पन्न करली जाये। जैसे कि स्कूल में बच्चे को पढाने के लिए, या उसको वही वस्तु दिखाई जाती है या उसका चित्र या उसके अनुरूप अन्य कोई वस्तु 'क से कबूतर' कहा और साथ में कबूतर का चित्र

दिखाया, जिससे कि बालक स्पष्ट समझ सके कि कबूतर शब्द किस वस्तु की ओर सकेत कर रहा है। पर यह उसी समय संभव है जब कि उसने वह पक्षी पहिले देखा हो, भले उसका नाम सभवत वह जान न पाया हो। अब चित्र देखकर वह यह समझ गया कि इसको कबूतर शब्द से बोलकर बताया जाता है। और इसी प्रकार यदि चित्र देखकर भी उसका सशय दूर न हो, अर्थात् वह पदार्थ यदि उसने पहिले देखा न हो, तो गुरु उसे वह पदार्थ ही सामने दिखा देता है या यदि वह पदार्थ दिखाया जाना संभव न हो तो, उसके अनुरूप कोई अन्य पदार्थ दिखाकर उसे सन्तुष्ट कर देता है। जैसे सिंह को बताने के लये बिल्ली को दिखाकर वह इतना बता देता है, कि भाई ! इसी शकल व बनावट का वह जानवर गधे जितना बडा होता है। अर्थात् एक वस्तु को बताने के लिये दो दृष्टान्त देकर अनुमान के पट पर लगभग वस्तु के अनुरूप चित्र खींचने का प्रयत्न करता है। तात्पर्य यह है कि तीन प्रकार से उसे उस वस्तु का परिचय दिया जा सकता है। पहिले तो वस्तु दिखाकर, दूसरे वस्तु का चित्र दिखाकर, तीसरे अन्य-अन्य वस्तुओ के आधार पर अनुमान मे परोक्ष चित्रण या उस वस्तु के अनुरूप कुछ रेखायें खेंचकर।

ऊपर के दो उपाय तो तभी संभव हो सकते है जबकि वह पदार्थ सहज दृष्ट हो, पर यदि पदार्थ अदृष्ट व अनुपलब्ध हो तब तो तीसरे मार्ग के अतिरिक्त और कोई आश्रय नही है। जैसे कि मे अमेरिका गया और कोई एक नवीन फल खाकर देखा। यहा लौटकर यदि मैं उस फल से आपका परिचय कराना चाहू तो यह तीसरा मार्ग ही अपनाना होगा। पहले दो मार्ग नही अपनाये जा सकते, क्योंकि वह फल न भारत मे उपलब्ध होता है और न ही आपने पहिले उसे कभी देखा है। केवल फल का नाम लेने से आप कुछ न समझ सकेंगे। अब मेरे पास एक ही मार्ग रह गया कि में दृष्टातरूप मे कुछ ऐसे फलो को छाटकर सामने लाऊ, जो कि उसके रूप रग गन्ध व स्वाद का किंचित

प्रतिनिधित्व कर सकते हो । यह सारी बाते किसी एक ही दृष्टात में उपलब्ध हो सके यह असभव है, क्योकि एक ही स्थान पर तो यह सारी बातें उसी फल में पाई जा सकती है, अयत्र नही । इसीलिये उसका पूरा पूरा प्रतिनिधित्व करने वाला कोई एक ही दृष्टान्त तो दिया ही नही जा सकता । हा अनेको दृष्टान्तो का सम्मेल करके उसे कदाचित बताया जाना सभव है । म उसे इस रूप में बता सकता हू, वह पपीते जितना बडा होता है, उसका वजन आध सेर से तीन पाव तक होता है, वह पपीते की ही भाति ऊपर से साफ होता है, अनानास की भाति फुनसियो वाला नही होता, वह सेब की भाति कठिन होता है, पपीते की भाति नरम नही, उसका रग भी ऊपर से सेब की भाति लाल होता है पर चीरने पर अन्दर से वह पीला निकलता है—जैसे कि आम, उसमें बीज खरबूजे जैसे होते है, सरधे की भाति कुछ कुछ गध होती है, और स्वाद अगूर व नीबू मिलाकर जैसा हो जाये लगभग वैसा होता है । इस प्रकार उसके रूप रग गध स्वाद व बीज आदि बतलाने के लिये मने पृथक पृथक दृष्टान्त देकर, आपके अनुमान में लगभग उस फल के अनुरूप चित्र बनाने का प्रयत्न किया ।

यह ठीक है कि तत सबधी स्पष्ट व विशद ज्ञान तो तभी हो सकना सभव है जबकि उसका आप प्रत्यक्ष करलें, पर फिर भी उसे बताने के लिये उपरोक्त दृष्टान्तो व शब्दो पर से आपके अनुमान ने खेंचकर कोई धु धली सी रूपरेखा यें आपके हृदय पट पर अवश्य बना दी है, जो भले ही पूणरूपेण उस फल के अनुरुप न हो परन्तु लगभग उसके अनुरूप अवश्य ह । यदि फलो का एक ढेर आपके सामने कदाचित लाया जाय तो आप उन रूपरेखाओ के आधार पर तुरन्त यह पहिचान लेंगे कि यही वह फल है जिसके सबध मे उस दिन बताया गया था । इसलिये भले स्पष्ट न सही पर यह धु धली सी सशय के साथ बतने वाली रूपरेखायें भी उस फल सबधी प्रत्यक्ष ज्ञानवत ही है । इसे परोक्ष ज्ञान कहते ह । यह यद्यपि प्रत्यक्षवत विशद नही होता

परन्तु प्रत्यक्ष के अनुरुप अवश्य होता है, और इसलिये परोक्ष ज्ञान सर्वथा झूठा हो ऐसा नही है। यह भी सच्चा व ठीक ही है।

जिस पदार्थ के सबध मे यह अध्यात्म विज्ञान हमे कुछ बताता है वह पदार्थ साधारणत दृष्ट नही है, और इसीलिये उपरोक्त मार्ग ही पकड़ना पड़ेगा। अर्थात् पहले कुछ शब्दो व दृष्टान्तो के आधार पर उसका परोक्ष अनुमान कराया जाना ही सभव हो सकेगा। यह परोक्ष ज्ञान इतना ही कार्य कारी है कि कदाचित उस पदार्थ के सामने आने पर नि सदेह उसे पहिचान जाये, कि यही वह पदार्थ है जिसका परोक्ष-ज्ञान कराया गया था, इससे अधिक कुछ नही। विना प्रत्यक्ष किये तो परोक्ष ज्ञान सदा सशय के साथ ही वर्ता करता है, इसी लिये अध्यात्म ज्ञान अनुभवप्रधान वताया गया है। फिर भी परोक्ष ज्ञान प्रथम भूमिका मे अत्यन्त हितकारी व सच्चा है। शाब्दिक स्थूल सशय वहा नही रहता, केवल रसास्वादन सबधी ही रहता है, जिसका उपाय अनुभव के अतिरिक्त और कुछ नही। और अनुभव ऐसी चीज है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना कर तो सकता है पर दूसरे को दे व दिखा नही सकता। यही वडी कठिनाई है।

३. प्रतिविम्व व चित्रण

अब यह विचारना है कि परोक्ष ज्ञान कैसा होना चाहिये। ज्ञान का काम वस्तु को जानना है। वस्तु जैसी है वैसी की वैसी जानने को ज्ञान कहेगे या कुछ हीनाधिक या अन्य प्रकार जानने को ? सो यह कहने की आवश्यकता नही कि वस्तु जैसी है वैसी ही जानने को ज्ञान कह सकेगे। जामफल के ज्ञान को हम सेव का ज्ञान कैसे कह सकते है ? भले ही दृष्टात रूप से सेव को वताने के लिये उसको दर्शाया जाना अभीष्ट हो। दृष्टात पर से दृष्टात को पकडे तभी वह परोक्ष ज्ञान सच्चे की कोटी को स्पर्श कर सकता है, दृष्टान्त या शब्द मे अटके तव नही।

देखो मै यह घड़ी आपको दिखाकर पूछता हूँ कि भाई ! तुमने इसे जाना ? वताओ तो इसका रग कैसा है ? और आप कहे कि हरा,

तो बताइये आपने क्या जाना ? यह तो आपके नेत्र मे विकार है, आप को पीला भी हरा दिखाई देता है और या आपने इसे देखा ही नही, केवल कल्पना से अधो की भाति यू ही बता रहे हो। ज्ञान तो इसे पीला ही देख सकता था अन्य रूप वह देख सके ऐसा सभवही नही है। बस इसी प्रकार वस्तु को देखे बिना जो कोई भी बात उसके सबध में कहना परोक्ष ज्ञान नही कहलाता । वह तो प्रत्यक्षवत् होता है । किसी वस्तु का चित्रण सामने दीवार पर खेचने के दो उपाय है । या तो दीवार पर वस्तु के सामने एक दपण लटका दें या उस वस्तु के रूप की ड्राइग या पेटिग वहा कर दें । तीसरा तो कोई उपाय नही । दपण में तो सहज ही उस वस्तु का चित्रण आ जाता है, पर ड्राइग करने के लिये तो बहुत देर लगेगी । एक एक लकीर खेंचखेंचकर उसे बताना होगा दपण का चित्रण प्रतिबिब कहलाता है पर ड्राइग को प्रतिबिब नही कह सकते, इसे चित्र ही कहेंगे । प्रतिबिब से हीनाधिक होना असभव है पर चित्र में यदि म चाहूँ तो हीनाधिकता कर सकता हू । पर यदि ऐसा कर दू तो क्या चित्र सच्चा कहलायेगा ? नही । देखो यह पुस्तक है । दपण के सामने ले जाता हूँ । देखिये सामने दर्पण में । क्या एक भी अक्षर वहा प्रतिबिंब म कम या अधिक हो पाया है ? नही । जैसा कुछ यहा लिखा है वसा व उतना ही वहा आया है । यदि म इस पुस्तक के इस पृष्ठ का चित्रण खीचने लगू तो सभव है कि गलती से कोई एक शब्द उसमें कम लिख पाऊँ , परन्तु यदि ऐसा हो गया तो क्या उस चित्रण को इस पृष्ठ के अनुरूप कहा जा सकेगा ? नही ।

प्रतिबिम्ब व चित्रण दोनो में महान अन्तर है । प्रतिबिम्ब सच्चा ही होता है पर चित्रण झूठा व कल्पित भी हो सकता है । प्रतिबिम्ब सहज होता है और चित्रण कृत्रिम होता है । प्रतिबिम्ब पडने में देर नही लगती पर चित्रण बनाने में देर लगती है । प्रतिबिम्ब म कोई रेखा पहले आये और कोई पीछे, ऐसा क्रम नही होता पर चित्रण क्रम के बिना बनाया ही नही जा सकता । उसमें तो अनेकों रेखाय

पहिले पीछे बनाई जानी ही सभव है । पहिले ही क्षण मे सारी रेखाये बनाई जा सके यह सभव नही है । प्रतिबिम्ब मे हिनाधिकता होनी सभव नही है पर चित्रण मे की जानी सभव है । इसलिये प्रतिबिम्ब सदा सच्चा होता है पर चित्रण झूठा व सच्चा दोनो प्रकार का ।

देखिये यहा रत्न व विष्टा दो पदार्थ रखे हो, तो क्या दर्पण इस प्रकार का विवेक करेगा कि रत्न को तो अपने अन्दर ले लू और विष्टा को छोड दू ? प्रतिबिम्ब मे तो दोनो ही युगपत आ जायेगे । वहा अच्छे बुरे का विवेक नही । परन्तु चित्रण मे मेरी कल्पना कार्य करती है इसलिये अरुचिकर होने के कारण यदि मै विष्टा को चित्रित न करके केवल रत्न को चित्रित करू, तो क्या मेरा वह चित्रण प्रतिबिम्ब के अनुरूप हो सकेगा ? नही । और इसलिये वह चित्रण सच्चा नही कहा जायेगा । जब एक वस्तु का चित्रण ही खेचना है तो अच्छे बुरे का प्रश्न क्यो ? चित्रण को प्रतिबिम्ब के अनुसार बनाने का प्रयत्न करे तभी वह सच्चा हो सकेगा ।

ज्ञान वास्तव मे एक दर्पणवत है । जो वस्तु इसके प्रत्यक्ष होती है उसका तो तदनुरूप प्रतिबिम्ब इसमे अवश्य पडता ही है, भले ही वह वस्तु अच्छी हो या बुरी । अच्छी को प्रतिबिम्ब रूप से ग्रहण करना और बुरी को छोड देना ज्ञान का काम नही । मास व फल दोनो को ही यह तो प्रतिबिम्बके रूप मे ग्रहण कर लेगा। ज्ञान छोड़ना नही जानता। आगमोक्त हेयोपादेय का विवेक ज्ञान के प्रतिबिम्ब सबधी नही है । बल्कि चारित्र सबधी है । बिना जाने तो हेय व उपादेय का भेद भी कैसे हो सकेगा । ज्ञान का काम तो सहज प्रतिबिम्बो को ग्रहण करने का है छोडने का नही । प्रत्यक्ष विषयो के सबध मे तो यह नियम स्वत प्राकृतिकरूप से पल ही रहा है । यहा तो अप्रत्यक्ष विषय के सबध मे कुछ जानना अभीष्ट है । इस विषय का प्रतिबिम्ब तो पड नही सकता । भले ही आगे जाकर ज्ञान मे वह शक्ति जागृत हो जाये कि इस पदार्थ का भी सहज प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सके, पर आज तो उसमे वह

शक्ति नही है। यहा तो न० २ वाला अर्थात चित्रण खेचने का उपाय ही अपनाना होगा। इसलिये इस चित्रण को परोक्षरूप से ऐसा ही बनाने का प्रयत्न करें कि मानो यह प्रतिविम्ब ही हो, और जैसा कि पहले बता दिया जा चुका है, ऐसा होना तभी सभव है जब कि जैसे जैसे और जिस जिस प्रकार भी वस्तु दिखाई दे, उसको उस प्रकार ही चित्र में अवकाश दे दिया जाये, एक रेखा मात्र भी छूटने न पाये, भले ही वह तेरी रुचि के अनुकूल हो या प्रतिकूल। रुचि और वस्तु है और ज्ञान और रुचि चारित्र का अग है और ज्ञान ज्ञान का। यहा ज्ञान की बात चलती है, चारित्र की नही, इसलिये इस प्रकरण में हितअहित या अच्छे बुरे का प्रश्न नहा आना चाहिये। यहा तो केवल तीन बातें सामने ह पदाथ, ज्ञानपट व चित्रकार अनुमान।

४ शब्द की असमथता

वतमान अवस्था में दर्पण म प्रतिविम्ववत अध्यात्म के प्रत्यक्ष ज्ञान की तो आप से बात करना ही निरथक है, क्योकि वह साधन अभी आपके पास नही है, भले ही आगे जाकर हो जाये। अब तो प्रश्न यह है कि इस अदृष्ट विषय को आपके ज्ञान पट पर चित्रित कैसे किया जाये। यह तो पहिले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि चित्रित वही कर सकेगा जिसने कि किसी भी रूप मे धुधला मात्र सा भी उसका प्रत्यक्ष किया हो। केवल सुने हुए शब्दो को दुहराने से से ऐसा होना सभव नहा। खैर यहा तो प्रश्न है कि चित्रण कैसे किया जावे ?

इस नाटक के प्रमुख पात्र तीन ह—वस्तु, वक्ता व श्रोता। वक्ता वस्तु को जानता है और श्रोता जानने की जिज्ञासा रखता ह। वक्ता उस अध्यात्म विषय से भलीभाति परिचित है। वह अदृष्ट वस्तु उसके हृदय में प्रत्यक्ष है। श्रोता को उसका परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा है। आपके हृदय मे उस वस्तु को म कसे पहुचाऊ ? ऊपर के दृष्टान्त में तो लेखनी, पदाथ व चित्र के बीच का माध्यम थी। लेखनी द्वारा

पदार्थ का चित्रण कागज पर किया जा सकता है पर हृदय पट पर नहीं । यहा मेरे और आपके वचन ही एक माध्यम है, वही एक वस्तु सेतु (पुल) है जिसके द्वारा कि मेरे हृदय का चित्र आपके हृदय तक पहुच सके । समस्या वडी कठिन है । विपय अदृष्ट व अनुपम है और माध्यम है वचन जो यह काम करने का पर्याप्त साधन नहीं है । क्योकि उसकी शक्ति सीमित है । इसलिये कि एक तो वह वस्तु का प्रत्यक्ष कराने मे असमर्थ है, और दूसरे इसलिये कि वह एकदम वस्तु की व्याख्या कर सके इतनी भी सामर्थ्य उसमे नही । वस्तु के टुकडे करके उन टुकड़ो की आगे पीछे के क्रम से वह किंचित व्याख्या करने का प्रयासमात्र कर सकता है, बस इतनी सी सामर्थ्य उसमे है ।

इसके अतिरिक्त एक और भी कठिनाई यहां सामने आ रही है । वह यह कि वचन दो प्रकार के होते हैं । एक ज्ञाता के मुख से निकलने वाले, दूसरे इस आगम के पत्रो पर लिखे हुए । मुख से निकलने वाले, वचनो मे तो फिर भी कुछ अन्तरग के भावो की झलक दिखाई दे जाती है, कुछ वक्ता की मुखाकृति पर आने वाले हाव भाव के द्वारा, कुछ हाथो व शरीर के सकेतो के द्वारा और कुछ वचन के साथ आने वाली कर्कशता व मृदुता आदि के द्वारा परन्तु यहा लिखे वचनो मे तो उसका भी अभाव है । अत शास्त्रो के शब्दो को पढकर भावो का पढा जाना अत्यन्त कठिन है, और भावो से शून्य अर्थ या चित्रण लेखक के ज्ञान के अनुरूप न होने के कारण सच्चा नही कहा जा सकता ।

एक और भी समस्या है । वह यह कि एक ही शब्द भिन्न-भिन्न स्थलो पर भिन्न-भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता है । जैसे 'दूध गर्म है' इस वाक्य मे गर्म शब्द का अर्थ स्पर्शन इन्द्रिय सबधी गर्मी है. परन्तु 'आप तो बहुत गर्म हैं' इसमे गर्म शब्द का अर्थ क्रोधी हो जाता है । यदि यहा भी पहिले जैसा ही अर्थ लगा दू तो क्या वह ठीक होगा ? पहिली गर्मी को दूर करने का उपाय उसे पानी मे रखना है, पर दूसरी गर्मी को दूर करने का उपाय शान्ति धारण करना है । यदि यहा भी पानी का

प्रयोग करे और लगे आप पर पानी के कलशे उन्धाते तो क्या आपकी गर्मी दूर हो पायेगी ? तीसरे प्रकार से 'आपका शरीर आज कुछ गर्म है' इस वाक्य मे पडे गर्म शब्द का अर्थ ज्वर रोग है, जो न पानी मे रखने से दूर हो सकता है और न शान्ति धारण करने से, बल्कि योग्य औषधि का सेवन करना ही इसका उपचार है। लौकिक व विषयो मे यद्यपि यथास्थान उस शब्द का आप ठीक ठीक ही अर्थ समझ जाते है, पर यहा लिखे शब्द जिस अदृष्ट पदार्थ की ओर सकेत कर रहे है उसका परिचय न होने के कारण, भिन्न भिन्न स्थलो में यथा योग्य अर्थ लगाने मे बडी कठिनाई पडती है, जब तक कि बुद्धि का प्रयोग करके उसका अभ्यास न कर लिया जावे। एक ही शब्द आपके लौकिक प्रयोग मे कुछ और अर्थ का प्रतिपादन करता है, डाक्टरी की भाषा में किसी और अर्थ का, अर्थ शास्त्र की परिभाषा में किसी और अर्थ का और अध्यात्म शास्त्र की परिभाषा में किसी और अर्थ का। अत शब्दो के यथा योग्य अर्थों से भी परिचय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

५ वस्तु को खडित करके प्रतिपादन करने की पद्धति

वचन की असमर्थता को देखते हुए हमें यह बात खोजनी है, कि इसे माध्यम बनाकर किस प्रकार वक्ता अपने अभिप्राय को श्रोता पर प्रगट कर सकता है, और श्रोता किस प्रकार उसको समझ सकता है। दो प्रकार मे यह काम किया जा सकता है, या तो वक्ता अपने हृदय को चीरकर आपको वह विषय दिखादे और या शब्दो के द्वारा प्रतिपादन करके, आप के अनुमान को कुछ खच कर, उसके निकट पहुचा दे। पहिला उपाय तो कल्पना मात्र है। दूसरा उपाय ही प्रयोजनीय है। इसके लिये एक दृष्टान्त देता हू।

एक कपडे का मील जो इन्दौर में लगा है बम्बई ले जाना अभीष्ट है। क्या कोई हनुमान ऐसा है जो पर्वत तक इस सारे को एक दम उठाकर चलता चलाता मील बम्बई में रख आये ? नही ऐसा तो होना

कल्पना मात्र है, सभव नही है। हा, इसको एक प्रकार अवश्य बम्बई उठाकर ले जाया जा सकता है। इसको पहिले खोलकर इसके टुकड़े टुकडे कर लीजिये, ऐसे टुकडे जो कि पृथक पृथक आसानीसे हाथ या क्रेन द्वारा उठाकर गाड़ी मे लादे जा सके। और इस प्रकार कई गाडियो मे आगे पीछे लादकर, पहिले पीछे उन गाडियों द्वारा बम्बई ले जाकर उसी प्रकार उतार लिए जाये। सारे टुकडे या खड इकट्ठे हो जाने पर पुन उनको पूर्ववत यथा स्थान जोड दे। बस मील उठकर चला गया।

यहां यह बात विचारणीय है कि गाडी मे लदान करने के लिये क्या यह नियम है कि पहिले अमुक ही खड लादा जाय, या गाडियो को बम्बई भेजने के लिये क्या यह नियम है कि अमुक ही गाड़ी पहिले भेजी जाय ? नही, अपनी आवश्यकता के अनुसार कोई भी खड कभी भी लाद दो। नियम कोई नही लगाया जा सकता। हा, बम्बई पहुचने के पश्चात् उन्हे यथास्थान ही जडना होगा, नही तो मशीन काम न करेगी। यदि थोडा सा भाग मात्र ही पहुँच जाने पर मैं आप से कहूँ कि जितना भाग आया है उतना तो फिट करके चालू कार दीजिए, क्यो व्यर्थ हर्ज करते हो, तो क्या यह सभव हो सकेगा ? नही, पूरा का पूरा मील जब तक फिट न हो जाये तब तक उससे काम नही लिया जा सकता। यदि एक गरारी की भी कमी रही तो सारी मशीन बेकार है।

बस इसी प्रकार वक्ता को अपने हृदय कोष मे पडा वह अदृष्ट पदार्थ, श्रोता के हृदय देश तक पहुचाने के लिये, उस पदार्थ को ज्ञान मे ही खडित करके टुकड़े टुकडे कर देना पड़ेगा। फिर एक एक खड को वचन सेतु के द्वारा श्रोता के कर्ण प्रदेश तक पहुंचाना पडेगा। यदि यहा श्रोता वक्ता को सहयोग न दे, अर्थात् कर्ण प्रदेश को प्राप्त उस शब्द के भावार्थ को न समझे और उसे समझ कर हृदय कोष तक न ले जाये, तो वक्ता का सारा प्रयास

विफल गया समझो। पक्षपात के सद्भाव मे तो ऐसा किया जाना श्रोता के द्वारा सभव ही नही है, क्योकि उस स्थिति में तो वह केवल निषेध करना ही सीखा है ग्रहण करना नही। परन्तु यदि पक्षपात न भी हो तब भी यदि प्रमाद वश उपरोक्त सहयोग न दे तो काम चलने वाला नही है। वक्ता के वचन का कार्य आपके कर्ण प्रदेश पर जाकर समाप्त हो जाता है। इससे आगे वक्ता का कर्त्तव्य शेष नही रह जाता बल्कि श्रोता का कर्त्तव्य रह जाता है। इसी प्रकार बारी बारी आगे पीछे अपने अन्दर के उन सब खडो को श्रोता के हृदय पट तक पहुँचाना पडेगा। जब सारे खड श्रोता के हृदय देश में उतर जाय तब श्रोता को कहा जायेगा कि भाई! अब इन सब को यथास्थान जड दे, और फिर देख उस पूरे के पूरे पदार्थ को एक दम। बस यह है उस पदार्थ का चित्रण जो मेरे अन्दर पडा है।

उपरोक्त दृष्टातवत् यहा भी यह नियम नही है कि मै अमुक ही अग या खड की बात पहिले कहूँ और अमुक की पीछे। मेरी, अपनी इच्छा से मै श्रोता के जीवन या अभिप्राय को पढ कर उसमें दिखने वाली कमियो की पूर्ति के अर्थ, जिस किसी भी खड या अग को पहिले या पीछे कह सकता हूँ। इस कथन का क्रम मेरी इच्छा पर है, नियमित नही। नियमित यह अवश्य है कि मै क्रम से, जिस प्रकार भी, पृथक पृथक वे सम्पूर्ण अग, आपके अनुमान तक पहुँचा दू। और आपका भी यह कर्त्तव्य अवश्य है, कि जब तक सम्पूर्ण अग सुनकर निर्णय न कर लिया जाये उस समय तक, धैर्य पूर्वक सुनते चले जायें, बिना इस बात की उतावल किये, कि मै वह अग अभी तक क्यो नही कह पाया, जो कि पहले से आपकी धारणा में पडा हुआ है। कथन क्रम में यथा-समय वह अग भी अवश्य कहा जायगा ऐसा विश्वास रखिए, और क्षोभ उत्पन्न न होने दीजिये। बजाय मेरे ज्ञान की कमी को देखने

के अपने ज्ञान की कमी को दूर करते जाइये, अर्थात् उस कुछ और भी वाले खाते मे मेरी सारी बाते जमा करते जाइये। और अन्त मे जाकर उस अपने वाली बात को भी इन्ही मे मिलाकर इन सब को एक ढाचे मे जोड दीजिये। यह प्रयास स्वय आपको करना होगा। मै तो केवल सकेत दे सकता हूँ।

मै भी अल्पज्ञ हू। हो सकता है कि मै उस अग की बात न बता पाऊँ जो कि आपकी धारणा मे पडा हुआ है। अत प्रार्थना है कि जिस प्रकार मै अपनी धारणा मे पडी सर्व बाते आपको बता रहा हूँ, उनको सुनने व समझने के पश्चात्, आप अपने वाली बात भी मुझको समझा दे, ताकि मै भी अपने 'कुछ और भी' वाले खाते मे उसका इद्राज कर सकू। परन्तु बीच मे मेरी बातो का क्रम काट कर उसे बताने का प्रयत्न न करे। प्रतीक्षा करे, सभवत. वह बात मेरे क्रम मे आ ही जाये।

इस सर्व कथन पर से एक सिद्धान्त निकाल कर नीचे लिख देता हूँ—

१. वक्ता के ज्ञान मे पडा अखड पदार्थ
२ उस पदार्थ को खडित करना
३. प्रत्येक खड को तदनुरूप वचनो के रूप मे परिवर्तित करके श्रोता के कान तक पहुँचा देना।

ये तीन बाते तो वक्ता के लिये है। अब तीन बाते श्रोता के लिये सुनिये जिनका क्रम ऊपर वाले क्रम से उलटा है.—

१ वचनो को सुन कर उनको तदनुरूप भावो मे परिवर्तित करना।
२ उन सर्व खडो को पृथक पृथक हृदय कोष मे धारण करना।
३ उन खडों को एक ढाचे के रूप मे जोड़कर उसे अखड रूप मे परिवर्तित कर देना और इस प्रकार आपके अन्दर खिचा चित्रण मेरे ज्ञान मे पड़े प्रति बिम्ब के अनुरूप हो जायेगा। जो कि आगे जाकर कदाचित प्रतिबिम्ब का रूप धारण कर पाये।

३

वस्तु व ज्ञान सम्बन्ध

दिनाक २४-९-६०
प्रवचन न ३

१ अल्पज्ञता की बाधकता पक्षपात व एकात, २ वस्तु अनेकागी है, ३ विश्लेषण द्वारा परोक्ष ज्ञान, ४ परोक्ष ज्ञान का ज्ञान पना, ५ कुछ शब्दो के लक्षण ।

१ अल्पज्ञता की बाधकता पक्ष पात व एकात

जीवन नाम है ज्ञान का क्योकि मै ज्ञान के प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नही हूँ । यह बाहर में दिखने वाला रूप तो वास्तव में मेरा नही है । म तो अन्तर मे प्रकाशमान चतन्य तत्व हूँ । इसलिये जीवन के भार का कारण वास्तव में ज्ञान का भार ही है । ज्ञान का भार क्या है ? ज्ञान का भार है ज्ञान में पडी अस्वाभाविक खेंचातानी जिसे पक्षपात या एकात कहते हैं । इस खेंचातानी का कारण क्या है ? इसका कारण है वतमान अल्पज्ञता या ज्ञान हीनता । क्योकि यह पक्षपात उन्ही विषयो के

सम्बन्ध मे देखने को मिलता है, जिनका आज तक स्पर्श हो नही पाया है। लौकिक प्रत्यक्ष विषयो के सम्बन्ध मे किसी के अन्दर भी कोई पक्षपात देखने मे नही आता। उन विषयो के सम्बन्ध मे मे तो मै जो कुछ भी, जिस किसी भी अभिप्राय से कहू, तो आप सब क्या एक बालक भी, वह कुछ ही उस ही अभिप्राय से कहा गया समझ लेता है, विरोध नही करता। उनके सम्बन्ध मे तो मै आपके लक्ष्य को जिस ओर भी खेचना चाहूँ सहज खिचा जाता है पर अदृष्ट विषयो के सम्बन्ध मे ऐसा नही हो रहा है। वहा अवश्य कुछ खेंचा-तानी प्रारम्भ हो जाती है।

जैसे कि 'अग्नि' शब्द कहने पर आप सब अग्नि को यथा स्थित रूप मे जान जाते है, एक शब्द का सकेत ही आपके लक्ष्य को यथा-स्थान पहुचा देने के लिये पर्याप्त है; पर 'आत्मा' शब्द कहने पर आप बजाये आत्मा नाम का पदार्थ पढने के आत्मा नाम का शब्द पढने मे, तथा इस सम्बन्धी उन बातो को पढने मे अटक जाते है, जो कि आपने आज तक उसके सम्बन्ध मे पढ कर या सुनकर सीखी है। और क्योकि वे अधूरी है इसलिये आप तत्सम्बन्धी उन बातो को सुनकर तो प्रसन्न होते है जो कि आप जानते है, पर कोई उसके सबध की नई बात या आपकी धारणा से विरोधी या विपरीत बात आपको क्षोभ उत्पन्न कराये बिना नही रहती। कारण है आपकी अल्पज्ञता। क्योकि यद्यपि आत्मा नाम पदार्थ मे वह विरोधी बात भी पडी है, पर उसे स्वीकारे कैसे, जबकि आज तक आपने वह पढी ही नही। वह तो आपको ऐसी ही प्रतीत होने लगती है मानो यह बात आपकी धारणा का निराकरण करने के लिये ही मैं कह रहा हूँ। यदि कदाचित आत्मा पदार्थ का भी अग्निवत साक्षात्कार कर लिया होता तो ऐसा होने न पाता, और क्योकि यह पक्षपात जीवन मे कुछ क्षोभसा उत्पन्न करता है इसलिये यह जीवन का भार है अज्ञान है। इसे दूर करना ही प्रयोजनीय है।

पहिली जानी हुई बात के अतिरिक्त अन्य बात-जानने के निषेध की जो यह भावना अन्दर मे देखी जाती है, इसका नाम ही ज्ञान

की कठोरता व एकात है। इसको दूर करके अग्नि के ज्ञानवत जो कोई भी बात सरल रीति से जैसी है वैसी स्वीकार करने की भावना का नाम ही ज्ञान की सरलता है। वही अनेकात है। सो कसे, वह स्पष्ट किया जायेगा। अग्नि उष्ण है यह तो आप सब स्वीकार करते ही ह, पर अग्नि शीतल है यह कैसे स्वीकार करेंगे? फिर भी म जब ऐसा समझाता हूँ कि देखो आपका हाथ जल जाये ता आप उसका उपचार कैसे करते ह? अग्नि पर सेक कर। भले ही उस समय कुछ जलन सी प्रतीत हो पर आगे जाकर उसकी जलन बजाय बढने के शान्त हो जाती है, और आपके हाथ में उस स्थान पर आवला पडने नही पाता। बस दाह को शान्त करने की यह शक्ति अग्नि म है, इसी को अग्नि की शीतलता समझो, जलवत शीतल कहने का अभिप्राय नही है। तब आप सरलता से उसे स्वीकार कर लेत हो, क्योकि यह बात आप प्रत्यक्ष देख रहे ह। इसी प्रकार हिम में जलाने की शक्ति है जो सर्दी के दिनो में कोमल कोमल पौधो को जलते हुए देखकर प्रतीति में आती है। सो भी आप यथायोग्य रूप में अवश्य स्वीकार कर लेते ह। और इसी प्रकार प्रत्येक दृष्ट पदार्थ के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी बातो को आप यथायोग्य रूप में सहज स्वीकार कर लेते ह। पर आत्मा पदार्थ के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी बातें आपके गले उतरनी कठिन पडती है। उसी के फल स्वरूप आज बडे बडे विद्वान भी परस्पर में एक दूसरे पर आक्षेप कर करके उनका विरोध करने में ही अपना समय व जीवन बर्बाद कर रहे है। दैनिक व साप्ताहिक पत्र उनके आन्तरिक द्वन्द का युद्धक्षेत्र बनकर रह गये ह। एक केवल उपादान उपादान की रट लगा रहा है। और दूसरा केवल निमित्त भाया या निमित्तो की। एक ज्ञान मात्र की महिमा का बखान करके केवल जानने जानने की बात पर जोर लगा रहा है, और दूसरा केवल व्रतादि बाह्य चारित्र रखने की बात पर। इतना करने में भी कोई हर्ज न हुआ होता यदि यह ही बातें एक दूसरे का निषेध करती हुई प्रगट न हुई होती। परन्तु यहां तो अपने मत

के पोषण के साथ साथ अन्य विरोधी मत का बडा तीव्र व कटु निषेध दृष्टिगत होता है। फल निकला द्वेष व कटुता। यही तो है जीवन का भारा प्रभो! यहा लड़ने की क्या बात है? यदि शब्द की बजाय वस्तु को पढे तो दोनो बाते वहा पड़ी हैं। भले विरोधी सी लगती हो पर उनका वहा किसी न किसी रूप मे सद्भाव है अवश्य। कितना अच्छा होता कि उन सब बातों का सहज स्वीकार करके दोनो विरोधी बातो को अपने वक्तव्य मे यथास्थान अवकाश दिया होता और इस वर्तमान की निषेध करने की बात को दबा देता। ऐसा करता तो स्वयं तेरे लिये तेरी विद्वत्ता सार्थक हो गई होती। पर यह सब उस समय तक होना कठिन है, जब तक कि आत्मा का साक्षात न कर लिया जाये, या जब तक कि तत्सम्बन्धी सर्व बातों का चित्रण आपके हृदय पट पर परोक्ष रूप से न आ जाये। अतः यह विरोध ही बता रहा है कि ज्ञान अधूरा है। भले ही आप दोनो बातों को शब्दों मे स्वीकार करते हो परन्तु उन दोनों मे एक को अधिक खेच कर बताने के तथा दूसरी को दबाने के प्रयत्न की भावना, ज्ञान की कठोरता को दर्शा रही है। ज्ञान की सरलता मे तो ऐसा नही होना चाहिये। क्योकि जैसा कल बताया गया था ज्ञान का काम तो जानना है। उसके लिये कोई अच्छा बुरा नही होता, हेय उपादेय नही होता, ग्राह्य व त्याज्य नही होता जैसा कि अग्नि की उष्णता व शीतलता दोनो हो यथायोग्य रूप से ज्ञान के लिये ग्राह्य है, वैसे ही आत्मा का ज्ञान शरीरीपना व भौतिक शरीरीपना, आत्मा का वीतराग भाव व क्रोध दोनो ही यथायोग्य रीति से ज्ञान के लिये ग्राह्य है। भले ही चारित्र सम्बन्धी विचार करने मे इनमे से कोई ग्राह्य व कोई त्याज्य हो जाये, परन्तु ज्ञान मे तो ऐसा नही होता, क्योकि ज्ञान तो दर्पण है। जो भी जैसी और कैसी भी, तथा जिस रूप मे भी वस्तु सामने पड़ी है, वह ही और वैसे ही तथा उस रूप मे ही उस वस्तु का प्रतिबिम्ब उसमे तो सहज पड़ जाना चाहिये। यदि आप उसे रोकने का प्रयत्न करते है तो इसका अर्थ यह हुआ, कि आप अपने ज्ञान को

सहज दपण रूप से देखने का प्रयास नही करते, बल्कि इसे ब्लेक बोड के रूप में प्रयोग कर रहे है, जिस पर आप जिस बात का चाहे चित्रण करें और जिस बात का चाहें न करें, जिसे चाहें बना ले जिसे चाहे मिटा द। यह तो कृत्रिम है। स्वाभाविक ज्ञान की स्वच्छता मे तो ऐसा होना असम्भव है। अत वहा विरोध व खेचातानी को अवकाश नही। वहा स्वीकार पटा है। बस यही है ज्ञान की सरलता।

यह याद रखना कि यह सारा लम्बा प्रकरण केवल एक ज्ञान मात्र को दृष्टि में रखकर कहा जा रहा है, चारित्र को नही। इसलिये इस प्रकरण मे यथायोग्य रीति से स्वीकृति को ही अवकाश है, निषेध को नही, इसका यह भी तात्पर्य नही कि अनहोनी बे सिर पैर की बात को स्वीकार करने को कहा जा रहा हो, क्योकि जिसके हृदय में पक्षपात नही और जिसने ज्ञान को सरल बना कर कहना प्रारम्भ किया हो, ऐसा कोई भी व्यक्ति बे सिर पैर की बात भला कहने ही क्यो लगा। हा शास्त्राथ व विरोधी सभाषणो तथा वाद विवाद के कुतर्को में अवश्य ऐसा होना सभव है। पर यहा तो वसा वातावरण नही है और न ही होने देना चाहिये यहा एक प्रश्न हो सकना सभव है कि आगम म तो ज्ञान को हेयोपादेय के निणय करने वाला बताया गया है, और यहा उसको हेयोपादेय के विवेक रहित बताया जा रहा है। सो ठीक है भाई तू भी ठीक ही कहता है। आगम की बात सत्य है और यहा वाली बात भी सत्य है, यही तो बुद्धि का अभ्यास करना अभीष्ट है। इस प्रकार की विरोधी बाते सवत्र कथन क्रम में आयेगी। उसका यथायोग्य अर्थ समझने का अभ्यास कर, निषेध व विरोध उत्पन्न करने का नही। देख मै समझाता हूँ। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, इसका चारित्र भी ज्ञान-स्वरूप है और श्रद्धा भी ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान के अतिरिक्त चारित्र और श्रद्धा कोई भिन्न वस्तु नही है, सब एक-मेक है। चेतन

के सब गुण चेतन है। ज्ञान का ही नाम उस समय चारित्र हो जाता है जबकि इसमे हेय को त्याग कर उपादेय मात्र को ग्रहण करने का प्रयत्न व झुकाव जागृत हो गया हो। इसी प्रकार ज्ञान का ही नाम श्रद्धा व रुचि हो जाता है जब कि इसमे "तू ऐसा ही किसी प्रकार कर, यही जीवन का सार है, और सब तो निरर्थक है। अरे तू जानने के पश्चात् भी क्यो इसको प्राप्त करने का उद्यम नही करता इत्यादि" इस प्रकार के भाव जाग्रत होते हुए प्रतिबिम्बित से हो गये हो। और ज्ञान का नाम ही ज्ञान है, जब कि यह सहज दर्पणवत् सब कुछ जो भी सामने आये उसी को निगल कर अपने अन्दर धरने के लिये तत्पर हो रहा है, चाहे वह विष्टा हो या अमृत। बता दोनो बातो मे अब विरोध कहा रहा। इसी प्रकार सर्वत्र बुद्धि का प्रयोग करके यथायोग्य रीति से अर्थ लगाने का अभ्यास करना चाहिये, तभी आगम की गहनता को स्पर्श कर सकेगा अन्यथा नही। इसी का नाम है स्याद्वाद या दो विरोधीवत दीखने वाली बातो का समन्वय या अनेकान्त।

२. वस्तु अनेकाङ्गी है

भाई वस्तु मे एक दो दस पाच ही नही अनेकों अर्थात् अनन्तों भाव पड़े है। उसमे से अनेको बाते परस्पर विरोधी भी है। यद्यपि साधारणत विचारने पर यह बात गले उतरती नही कि दो विरोधी बातें एक ही स्थान पर या एक ही वस्तु मे रह सकतीं हो, पर वास्तव मे है ऐसा ही। वस्तु पढे तो पता चल जाये जैसे की पूर्व कथित दृष्टात मे बताया जा चुका है कि अग्नि मे उष्णता व शीतलता, हिम मे शीतलता व दाहकता, दोनो यथायोग्य रूप से एक स्थान पर पड़े है। एक ही स्थान पर रहते हुए भी उनमे कोई झगडा होने नही पाता, क्योंकि वह ऐसे विरोधी नही है। जैसे कि आप समझ रहे हैं। वह विरोध विचारणा द्वारा ही पकड़ा जाने योग्य है, स्पष्ट दीखने योग्य नही। जिस प्रकार की स्पर्शनेन्द्रिय सबंधी

उष्णत्व वहा है उसी प्रकार की शीतलत्व यदि म कहूँ तो अवश्य ही विरोध ठीक होगा, पर उष्णत्व किसी और प्रकार की और शीतलत्व किसी और प्रकार कहूँ तो विरोध का काम नही, जैमा कि पहिले आप स्वीकार कर चुके है। बस इसी प्रकार सवत्र समझना। प्रत्येक वस्तु में परस्पर विरोधी अग वास करते ह, पर वे विरोधी अग शब्दो में ही विरोधीवत् भासते ह, वस्तु मे नही। क्यो कि वहा वे विरोध एक ही प्रकार के नही ह बल्कि भिन्न प्रकार के है। एक ही वस्तु एक रोग की औषधि होने से अमृत कही जा सकती है, और किसी अय रोग के लिये हानिकारक होने से विष कही जा सकती है। इसी प्रकार सर्वत्र यथायोग्य रीति से जानना योग्य है, बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता है, तक की नही क्योकि वस्तु का स्वभाव तक से दूर है। उमे तो जैसा है वैसा पढने का सहज प्रयत्न होना चाहिये उसी में ज्ञान की साथकता है।

वस्तु में अनेक अग देखने को मिलते हैं। कुछ तो ऐसे है जो सदा विद्यमान रहते ह, जैसे भले ही आम कच्चा हो कि पक्का या सडा हुआ, उसमें कोई न कोई रग कोई न कोई गध कोई न कोई स्वाद अवश्यमेव रहता ही है। अर्थात कोई न कोई सामा य नेत्र इद्रिय का विषय, कोई न कोई सामा य नासिका इद्रिय का विषय, कोई न कोई सामा य रसना इन्द्रिय का विषय रहता ही है। वस्तु के इस त्रिकाली अग को तो गुण शन्द द्वारा सूचित किया जाता है। प्रत्येक गुण के अन्तगत भी अनेको अग देखने में आते ह जा काल क्रम मे बराबर बदलते रहते ह। जैमे कि कच्ची अवस्था म आम का स्वाद खट्टा था, पकी अवस्था में मीठा और सडी अवस्था मे कुछ और सा ही हो जाता है। यद्यपि तीनो ही अवस्थाओ मे सामा य जिव्हा इन्द्रिय का विषयभृत रस नाम का गुण वहा है, पर प्रत्येक अवस्था में वह भिन्न-भिन्न रूप से प्रतीति में आता है। रस गुण के परिवतनशील इन खट्टे मीठे आदि अगो का नाम पर्याय है। गुणो

के पृथक कर लेने पर वस्तु कुछ नही रहती 'जैसे कि रंग, गध व स्वाद निकाल लेने पर आम नाम का कोई पदार्थ नही रहता, या उष्णता प्रकाशत्व आदि भाव निकाल लेने पर अग्नि नाम का कोई पदार्थ नही रहता। इसलिये अनेक गुणों का समुदाय रूप ही वस्तु सिद्ध होती है। इसी प्रकार पर्यायों के पृथक कर लेने पर गुण कुछ नही रहता। जैसे कि खट्टा, मीठा, चरपरा आदि सर्व भाव निकाल लेने पर जिव्हा का सामान्य विषय या रस नाम का गुण किसे कहेंगे। इसलिये पर्यायो के समूह को गुण कह सकते हैं। अनेक पर्यायो के क्रमवर्ती (आगे पीछे प्रतीति मे आने वाले) समुदाय का नाम एक गुण है। और अनेक गुणो के अक्रमवर्ती (एक ही समय प्रतीति मे आने वाले रूप, रस, गध, वर्ण) वत समुदाय का नाम वस्तु है। अत. वस्तु अनेक गुणो व पर्यायो के समुदाय के अतिरिक्त और कुछ नही।

इन गुणो व पर्यायो के कारण वस्तु मे अनेको विरोधी बाते भी देखने मे आती हैं। जैसे कि एक कुत्ता बदल कर मनुष्य बन गया। कुत्ते की अवस्था मे तो उसकी कल्पनाये या संकल्प विकल्प कुत्ते की जाति के ही थे मनुष्य की जाति के नही। वहा तो वह किसी को काटने या भो भो करने का या दुम हिलाने का विकल्प करता था। पर मनुष्य होने पर उस प्रकार के विकल्प नही करता, यहां धन कमाने का विकल्प करता है जो कुत्ते के रूप मे नही करता था। इस प्रकार ज्ञान के अन्तर्गत होने वाली कल्पनाये बदल गई है। पर फिर भी कुत्ते और मनुष्य की उन सब कल्पनाओ मे ओत-प्रोत ज्ञान का समानजातीयपना ज्यो का त्यो है। इसी प्रकार पहिले तो आकार चौपाया था और अब दो पाया है, पर आकार सामान्यपने की जाति ज्यो की त्यो रही, वह तो बदलकर ज्ञान जाति रूप हो नही गई। इस प्रकार सर्व गुण ही मानो बदल गये, और इन ज्ञान व आकार आदि सर्वगुणो की समुदायभूत वह वस्तु भी बदल कर कुत्ते से मनुष्य

बन बैठी, पर बदल जाने पर भी जीव सामान्य की जातीयता तो ज्यो की त्यो ही रही, वह तो बदलकर जड रूप हुई नही इस प्रकार सब गुणो व अखड वस्तु में परिवर्तन आ जाने पर भी गुणो व वस्तु को उस उस जाति का ज्यो का त्यो बने रहना तो गुण व वस्तु की नित्यता है, और उन उन की अवस्थाओ का बदलते रहना उन ही गुणो व वस्तु की अनित्यता है। इस प्रकार एक ही वस्तु नित्यरूप से भी देखी जा सकती है। और अनित्यरूप से भी। समान जातीयपने की अपेक्षा नित्य रूप से, और अवस्था मे फेरफार हो जाने की अपेक्षा अनित्य रूप से।

वस्तु के इस अनेकागीपने को ही अनेकान्त कहते है। क्योकि जैसे कि पहिले बताया जा चुका है, एक ही शब्द भिन्न भिन्न स्थलो पर भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ करता है। इसका कारण है यह कि कथनीय भाव तो अधिक है और शब्द थोडे। इसलिये जब तक एक ही शब्द को अनेको भावो का वाचक भिन्न-भिन्न स्थलो पर न बनाया जाय, व्यवहार नही चल सकता। यहा 'अन्त' शब्द का अर्थ 'समाप्ति' नही है बल्कि वस्तु के अग या वस्तु के धर्म या वस्तु के स्वभाव (गुण-पर्यायादि) है। अत वस्तु को अनेकान्त, अनेकाग, अनेक धर्मात्मक, अनेक स्वभावी, अनेक गुणात्मक, गुण पिड आदि नामो से पुकारा जाता है। शब्द का अर्थ एक बार निर्णय हो जाने पर आगे-आगे इस प्रकरण में वह शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ समझना। शब्द सबधी शका न करना क्योकि शब्दो का पक्ष नही है। आप जो भी चाहे नाम रख सकते है, उस उस भाव को दर्शाने के लिये।

३ विश्लेषण द्वारा परोक्ष ज्ञान

जैसा कि कल बताया गया था, वस्तु को पढने या पढाने का क्रम वस्तु को खडित करके ही होना सम्भव है। यहा वस्तु को खडित करने से तात्पर्य कुल्हाडी लेकर उसे चीरना नही है। बल्कि ज्ञान में ही उसका विश्लेषण करना है, उसका analysis करना है। वस्तु को पढने का यही वैज्ञानिक ढग

है। इसी के द्वारा आज का विज्ञान बहुत-सी कृत्रिम वस्तुए बनाने मे सफल हो सका है। वे वस्तुएं बिल्कुल प्राकृतिक जैसी ही होती हैं। इन्हे सिन्थैटिक (Synthetic) पदार्थ कहते है। आज तो ऐसे पदार्थो का बहुत प्रयोग हो रहा है। बनावटी सुगधिये जिन्हे एसैन्स (Essence) कहते हैं इसी विश्लेपण की उपज हैं। यद्यपि प्राकृतिक पदार्थो मे से निकाली नही जाती पर प्राकृतिक जैसी ही होती है जैसे कि गुलाब की सुगध (Assense) गुलाब मे से निकाली नही जाती। ऐसा करने से वह बहुत महगी पड़ेगी। वह तो कुछ बेकार-सी वस्तुओं, धास, फूस आदि मे से निकाली जाती है। उपाय उसी विश्लेपण से निकला है। गुलाब का विश्लेपण करके उसमे पडे कुछ मूल तत्व (Elements) खोज निकाले। यद्यपि इन मूल तत्वो का मिश्रित रूप मे एक स्थान पर मिलना तो गुलाब मे ही सभव है, पर पृथक्-पृथक् रूप मे यह तत्व किन्ही अन्य पदार्थो मे भी अर्थात् घास व किन्ही झाडियो की जडो मे भी पाये जाते है। उनको वहा-वहा से विज्ञान ने खोज निकाला। पृथक्-पृथक् वह-वह तत्व वहा-वहा से निकालकर पृथक्-पृथक् शीशियों मे भर लिये गये। अब इनको यथायोग्य हीनाधिक मात्रा मे परस्पर मिलाने से गुलाब की, खस खस की, केले की इत्यादि अनेको सुगन्धियो की उपलब्धि होनी सभव है, जो बिल्कुल प्राकृतिकवत ही होती है। अन्तर केवल इतना है, कि प्राकृतिक उन पदार्थो मे तो वे तत्व प्रकृति ने सम्मिश्रण किये है, पर यहा वही प्रक्रिया मानव द्वारा की गई है, और इसीलिये उसे बनावटी (Synthetic) कहते है। पृथक्-पृथक् उन तत्वों मे कोई भी गंध प्रतीति मे नही आती पर मिश्रित हो जाने पर स्वत गुलाब आदि की गंध प्रगट हो जाती है। इसे ही वस्तु का विश्लेषण करना कहते हैं। ज्ञान मे अद्वितीय शक्ति है। यह किसी वस्तु को बिना छिन्न-भिन्न किये भी उसके टुकडे कर सकता है, अर्थात् उसका विश्लेषण कर सकता है। जैसे कि डाक्टर लोग बताया करते हैं, कि संतरे मे इतने अंश तो पौष्टिक

विटेमिन पडे ह जो स्वास्थ्य को लाभदायक ह, इतने अश इसमे तेजाव या (Acid) है जो पाचक है, इतने अश इसमे अन्य अन्य तत्व भी ह, जो सभवत स्वास्थ्य को हानिकारक पडें। ताजी अवस्था में इसके गुण उपरोक्त प्रकार दृष्ट होते है। पर यदि यही सड जायें तो वही गुण कुछ बदल जाते ह। उनमें मादक शक्ति प्रगट हो जाती है। कच्ची हालत मे वही गुण किसी और रूप मे उपयुक्त होते है।

इसी प्रकार अग्नि का भी विश्लेषण किया जाता है। वह उष्ण होती है, दाहक होती है और पाचक होती है, वह प्रकाशक होती है, ऊर्ध्वगामी होती है। ईंधन में रहने पर उसमे वह ऊर्ध्वगामी व प्रकाशपना स्पष्ट दिखाई देता है, पर आरो (गोयें) में रहने पर वह दृष्ट नही हो पाता, राख मेद बी हालत मे उसकी उष्णत्व आदि शक्तिय भी दृष्ट नही हो पाती, तथा अनको अन्य रीतिया मे इसका विश्लेषण करके इसे खडित किया जा सकता है, यद्यपि ऐसा करने से अग्नि खडित नही होती।

प्रश्न होता है कि वस्तु का इस प्रकार विश्लेषण करने से भले ही डाक्टरो को या वैज्ञानिको को अपनी खोज मे सहायता मिलती हो, पर हमारे लिये यहा ऐसा करने से क्या लाभ, यहा तो ज्ञान की बात चलती है। वस्तु देखी या बताई और जान ली, अधिक टटे में पडने की क्या आवश्यकता। ठीक है भाई विश्लेषण करन की कोई आवश्यकता नही हुई होती यदि सारी वस्तुयें तुम्हें प्रत्यक्ष हो सकी होती। अदृष्ट वस्तु को दृष्टवत् तेरे ज्ञान पट पर चित्रित करने के लिये वस्तु का विश्लेषण करना अत्यन्त उपयोगी है। बिना विश्लेषण किए वस्तु को वाच्य नही बनाया जा सकता। जो वस्तुए आपने साक्षात देखी हुई ह उनके सबध में तो केवल एक शब्द का सकेत ही पर्याप्त हो जाता है, आपके लक्ष्य को उस ओर खचने में। परन्तु जिस पदार्थ का

साक्षात् नही हो पाया उसके लिये भी क्या एक ही शब्द कहना पर्याप्त हो सकेगा ? जैसे अग्नि तो आपकी जानी देखी वस्तु है, अत. इसको बताने के लिये तो 'अग्नि' यह एक शब्द ही पर्याप्त है, परन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है उस अमेरिका के फल के संबंध मे भी यदि मै एक शब्द का संकेत आपको दूं तो क्या पर्याप्त होगा ? भले ही उसके लिये पर्याप्त हो जाए जिसने कि उसे देखा और चखा है, पर आपके लिये तो ऐसा न हो सकेगा । तो आपको उसका परिचय कैसे कराये, जबकि वह फल मेरे पास नही । विश्लेषण के अतिरिक्त और मार्ग ही क्या है? विश्लेषण द्वारा उसे खडित करके अनेको अंगों मे विभाजित किया गया । बड़ापना व छोटापना, कठोरपना व नरमपना, रंग व रूप, सुगन्ध व दुर्गन्ध, स्वाद, बीज, शकल सूरत, स्वास्थ्य को लाभदायक हानिकारक इत्यादि । इन तथा अन्य भी अनेकों अंगो मे विभाजित करके एक-एक अग सबंधी वह दृष्टात सामने लाये गये जो आपके जाने देखे है, तथा जो लगभग उन-उन अगों का कुछ प्रतिनिधित्व कर सकते है । उन-उन दृष्टातों पर से पृथक्-पृथक् उन-उन अंगो को आपके ज्ञान मे उतारा गया । फिर आपको इन सब अंगों को ज्ञान मे ही एकत्रित करने के लिये कहा गया । बस उस फल का धुधला सा आकार या रूप रेखा आपके हृदय पट पर अंकित हो गई, जो यद्यपि अत्यन्त स्पष्ट तो नही पर इतनी स्पष्ट अवश्य है, कि वह फल कदाचित जीवन में देखने का अवसर मिले तो तुरन्त उसे पहिचान जाओ कि यही वह फल है ।

४. परोक्ष ज्ञान का ज्ञानपना

इस पर से जाना जा सकता है कि आपके ज्ञान पट पर खिची यह रूप रेखाये उस फल के अनुरूप ही है । यदि ऐसा न हुआ होता अर्थात् यह किसी अन्य पदार्थ सतरे आदि के अनुरूप हुई होती तो, आप कभी भी उस फल को पहिचान न सके होते । यद्यपि आपका यह ज्ञान उस फल के प्रतिबिम्बरूप नही है पर चित्रणरूप अवश्य है । प्रतिबिम्ब और चित्रण में यद्यपि विशदता व स्पष्टता की अपेक्षा महान अन्तर

है पर आकार सामान्य की अपेक्षा कोई अन्तर नही इसलिये दोनो ही सच्चे है। यहा ज्ञान दो प्रकार का सिद्ध हो गया—एक प्रतिबिम्बरूप और एक चित्रणरूप। प्रतिबिम्बरूप तो पदार्थ के प्रत्यक्ष द्वारा ही होना सभव है, इसीलिये उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है। परन्तु क्योकि उपरोक्त प्रकार चित्रित ज्ञान शब्दो आदि के आधार पर से, अन्य पदार्थ को समझाने के अनुमान के आधार पर उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसे परोक्ष ज्ञान कहते है।

वस्तु का विश्लेषण करके बताये व जाने बिना परोक्ष ज्ञान होना असम्भव है। क्योकि जो पदार्थ गुरुओ को आगम में बताना अभीष्ट है वह प्रत्यक्ष नही है, अत विश्लेषण करके वचनो द्वारा ही बताने वाले मार्ग का आश्रय लेना पडा। यदि प्रत्यक्ष दिखाया जा सका होता तो इस मार्ग को अपनाने की कोई आवश्यकता न थी। इसलिये आगम ज्ञान को परोक्ष ज्ञान कहा जाता है।

प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान मे महान् अतर है। प्रत्यक्ष ज्ञान मे स्वाभाविक ग्रहण होता है और परोक्ष ज्ञान मे कृत्रिम। स्वाभाविक ग्रहण में गलती होनी असम्भव है पर कृत्रिम ग्रहण में उसकी बहुत सम्भावना है। इसलिये परोक्ष ज्ञान के सबध म बहुत सावधानी बतने की आवश्यकता है। कदाचित ऐसा हो जाया करता है कि वस्तु का परोक्ष ज्ञान भी हो नही पाता और व्यक्ति मिथ्या अभिमान कर बैठता है कि मुझे वह ज्ञान है। दूसरे के लिये तो नही, पर अपने लिये अवश्य वह अहकार घातक हो जाता है। इसलिये स्वहितार्थ इस परोक्ष ज्ञान के सबध में कुछ और बातें भी विचारणीय व धारणीय है।

सब प्रमुख बात इसके सबध में यह है कि ज्ञान चाहे प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, उसी समय ज्ञान नाम पा सकता है जब कि वह वस्तु की किंचित अनुरूपता को प्राप्त हो चुका हो। सो इन दोनो ज्ञानो में

प्रत्यक्ष ज्ञान तो सहज ही वस्तु के अनुरूप हो जाता है, क्योकि वह तो वस्तु का प्रतिविम्व ही है, और प्रतिविम्व सर्वथा अनुरूप होता ही है ' पर परोक्ष ज्ञान मे वस्तु के अनुरूप होने मे कुछ वाधाये है, वही य जाननी अभीष्ट है ।

भले ही विश्लेपण द्वारा अपने प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ वस्तु को खडित कर लिया गया हो पर वास्तव मे वस्तु खडित नही है । जैसे कि यदि उष्णता को पृथक् निकाल लिया जाय तो न तो उष्णता नाम की कोई वस्तु रह पायेगी और न अग्नि ही अपना सत्व सुरक्षित रख सकेगी । गुण व पर्याप द्रव्य के अग है, इनको द्रव्य से पृथक् नही किया जा सकता । वस्तु सर्व अगों का समुदायरूप ही है । और इस-लिये तदनुसार ज्ञान भी उन अगो का समुदायरूप ही होना चाहिये । जैसे वस्तु उन सवका अखड एक पिन्ड है, उसी प्रकार ज्ञान मे ग्रहण किये गये सर्व पृथक् पृथक् भावों या अगो का एक पिन्डरूप अखड ज्ञान हुए विना केवल उन अगो का पृथक् पृथक् ज्ञान, ज्ञान नाम पा नही सकता । क्योकि उस प्रकार की पृथक् पृथक् कोई वस्तु लोक मे जव है ही नही तो उस ज्ञान को किसके अनुरूप कहोगे । वास्तव मे ऐसा पृथक् पृथक् अगो के ज्ञान का आधार केवल शव्द है, वस्तु नही । इस प्रकार के खडित या शाव्दिक ज्ञान को परोक्ष ज्ञान नही कहते, वह तो वास्तव मे मिथ्या ज्ञान है, अज्ञान है, अन्धकार मे लिखे कुछ शव्द मात्र है । ऐसा ज्ञान जीवन मे सरलता न ला सकेगा, और वस्तु रहस्य से सर्वथा शून्य यह ज्ञान केवल अहकार व अभिमान का पोषण करता हुआ इसमे वही पक्षपात का विप घोल देगा । अत भाई ! यदि परोक्ष ज्ञान ही करना है तो कुछ अपनी वुद्धि पर जोर डाल कर उसे एक अद्वैत व अखड रूप देने का प्रयत्न करे । इस परोक्ष ज्ञान के मार्ग मे यह सर्वथा प्रमुख वात है, इसके अभाव मे सव कुछ खर, विषाणवत् है । इसी वात का स्पष्टीकरण कल किया जायेगा ।

आज के प्रकरण मे कुछ शव्दों के लक्षण करने मे आये उनको

५ कुछ शब्दो के लक्षण

यहा दोहरा देना योग्य है ताकि वह स्मृति से उतरने न पाये ।

१ अपनी धारणा के अनुकूल ही बात को सुनने व कहने की, तथा उससे विपरीत अन्य बात को सुनने व कहने का निषेध करने की भावना से निकलने वाली ज्ञान की खचा-तानी का नाम, एकान्त या पक्षपात है ।

२ अनेक धर्मात्मक वस्तु के अगभूत गुणो व पर्यायो के एक अखड समुदायरूप वस्तु को, अनेकान्त या अनेकधर्मात्मक कहते है ।

३ अनेकान्त वस्तु के अनुरूप ही अनेक अगो के एक अखड ज्ञान के चित्रण को, अनेकान्त ज्ञान कहते है ।

४ अनेकान्त के आधार पर वस्तु का विश्लेषण करके उसके अगो को पृथक पृथक कथन करने की पद्धति को अनेकान्त वाद या स्याद्वाद कहते हैं ।

५ दृष्ट वस्तु का साक्षात्कार होने पर जो प्रतिबिम्ब रूप से ज्ञान में उस अनेकान्त वस्तु का अखड ग्रहण होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं ।

६ वक्ता अपने ज्ञान के आधार पर जो दृष्टान्तो आदि के द्वारा निरूपण करके, श्रोता के ज्ञान पट पर उस अनेकान्त वस्तु का एक अखड चित्रण बना पाता है, उसका नाम परोक्ष ज्ञान है ।

७ अनेकान्त वस्तु के पृथक् पृथक् अगो का केवल शाब्दिक ग्रहण अज्ञान या मिथ्या ज्ञान है (परोक्ष ज्ञान नही)

८ अनेकान्त वस्तु के सर्व अगो का वस्तु के अनुरूप एव अखड चित्रण ही ज्ञान नाम पाता है ।

९ वस्तु के त्रिकाली अगो का नाम गुण है ।

१०. प्रत्येक गुण के क्षणवर्ती परिवर्तनशील अंगो का नाम पर्याय है ।

११. अनेक पर्यायों का समूह गुण है और अनेक गुणों का समूह वस्तु है ।

४

प्रमाण व नय

दिनाक २५-९-६०
प्रवचन न ४

१ अभ्यास करने की प्रेरणा, २ प्रखण्डित ज्ञान का अर्थ ।

जीवन की मलिनता ज्ञान की मलिनता से है और ज्ञान की मलिनता खेचातानी या एकान्त रूप है । अनेकान्त रूप गुरुदेव की शरण में आकर, इनकी सरलता को पढ कर, जीवन के इस मैल को यदि धोने का प्रयास करू तो क्या सभव न हो सकेगा ? अवश्य हो सकेगा ।

१ अभ्यास करने की प्रेरणा

अभ्यास में बडी शक्ति है । शरीर का मैल छुडाने को साबुन का प्रयोग होता है और ज्ञान का मल उडाने को अभ्यास का । इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नही । सामने आई हुई कोई भी बात किस प्रकार यथा स्थान फिट बिठाई जाय, यह कार्य अभ्यस्त व्यक्ति ही कर सकता है, सर्व साधारण जन नही और इसीलिये उसे ज्ञानी कहा जाता है । हर व्यक्ति ज्ञानी हो सकता है, शक्ति उसके पास है, यदि प्रयोग करे तो ।

गुरुदेव आपको अज्ञानी या मिथ्या दृष्टि कह रहे हैं— इसलिये नही कि आपको चिढ़ाना अभीष्ट है वल्कि इसलिये कि भूल दर्शाकर आपको ज्ञानी वनाना अभीष्ट है। भूल स्वीकार किये विना भूल दूर होती नही। यदि यह शब्द सुनकर चिढ़ सी उत्पन्न होती है तो भाई ! ले हम सब तुझको आज से ज्ञानी व सम्यग्दृष्टि कहने लगेंगे। हमारा क्या जायेगा, विगड़ेगा तो तेरा ही। तेरा ही अहंकार पुष्ट हो जायेगा, जिसके कारण तू अपना वह मैल धोने का प्रयास न करेगा। जैसा कि आज तक करता आया है। शाब्दिक ज्ञान के अभिमान के आधार पर तू अपने को ज्ञानी मानता हुआ दूसरे को ही समझाने का प्रयत्न करता रहेगा, पर स्वयं समझने का प्रयत्न न कर सकेगा। वता क्या लाभ होगा ? भाई ? इस झूठे अहकार से तो सभव है ही नही, धैर्य छोड वैठने से भी मन शोधन संभव नही है। धैर्य पूर्वक वालकवत चलना सीखने मे दत्तचित्त होकर प्रयास व अभ्यास कर।

आज का वुद्धिपूर्वक प्रारंभ किया गया अभ्यास एक दिन अभ्यस्त हो जाने पर अवुद्धिपूर्वक की कोटि को प्रवेश कर जाएगा। विल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार कि वालक चलना सीखते हुए पहिले तो एक एक पग सोच विचार कर उठाता व रखता है, गिरता भी है, पर अभ्यस्त हो जाने पर वह विना विचार किये दौड़ने लगता है, और गिरता भी नही है, प्रत्येक पग आप ही आप ठीक उठने लगता है। उसी प्रकार यदि आज से वुद्धिपूर्वक आगम वाक्य का अर्थ ठीक वैठाने का अभ्यास प्रारभ करेगा तो हर वात पर विचार करना पड़ेगा, कही कही भूलेगा भी, पर-अभ्यस्त हो जाने पर सहज ही प्रत्येक वात का अर्थ तू ठीक वैठाने मे समर्थ हो जाएगा ! तव विशेष विचार करने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

वस जव तक वह अभ्यास होता नही तव तक ही तू अज्ञानी कहा जा रहा है, अभ्यास हो जाने के पश्चात् ज्ञानी वन जावेगा। अतः

वतमान के अभिमान को दूर करके अपने जीवन की कमी को देख, शाब्दिक ज्ञान पर सतोष मत कर, इसका कोई मूल्य नही। भले ही तेरी धारणा इतनी प्रबल हो कि सारा आगम तुझे याद हो, पर उस सारे आगम ज्ञान का मूल्य एक कौडी भी नही है। सो ही बात आज दर्शाई जायेगी, जरा ध्यानपूर्वक सुन। धय व शाति से विचार, चिढने का प्रसग मत आने दे, तेरे अपने कल्याण के लिये ही सब कुछ बताया जा रहा है। निज कल्याण को दृष्टि मे रख कर, सुने तो अवश्य ज्ञानी हो जायेगा। परन्तु यदि पूववत् अब भी उसी शाब्दिक ज्ञान पर इतराता रहा तो भाई! मर्जी है तेरी। करेगा तो वही जो तुझे अच्छा लगता है, म तो केवल सकेत दे सकता हूँ। कुछ दृष्टात बताकर तेरे अदर म उस अभ्यास करने का उपाय जागत करने का कोई मार्ग तुझे दर्शा सकता हू, पर अपना अभ्यास तुझे दे नही सकता। अत प्रभो! आ, तुझे वह अभ्यास करने का क्रम दर्शाये। उसे ही अनेकात-वाद या नयवाद के नाम से पुकारा जाता है।

२ अखडित व खडित ज्ञान का अथ

कल के प्रकरण मे खडित व अखडित ज्ञान के प्रति सकेत दिया गया था जो अब तक केवल शाब्दिक रूप धारण किए बैठा है, स्पष्ट नही हो पाया है। अत प्रश्न है कि ज्ञान के अखडितपने से क्या तात्पय? उसी को आज एक दृष्टात द्वारा स्पष्ट करता हूँ। सुनो।

कल दो बातें बताई थी कि एक ज्ञान होता है प्रतिबिम्ब रूप और एक होता है चित्रणरूप। दोनो ही सत्य हो सकते ह यदि वे ज्ञेय वस्तु के अनुरूप हो। इन दोनो में प्रतिबिम्ब तो नियम से अनुरूप ही होता है अत वह तो झूठा या मिथ्या हो ही नही सकता, पर चित्रित ज्ञान मिथ्या व सम्यक् दोनो प्रकार का हो सकता है क्योकि यह प्रत्यक्ष नही परोक्ष है, दृष्ट विषय सबधी नही अदृष्ट विषय सबधी है। इसका आधार वस्तु नही शब्द है जो वक्ता के मुख मे निकलकर आपके कण

प्रदेशो तक पहुच रहे है, या जो आप आगम मे पढ कर नेत्र द्वारा ग्रहण कर रहे हैं । वक्ता के तो शब्द सत्य हैं क्योंकि वे तो उस अन्तरंग मे पडे चित्रण को खडित करके निकल रहे है, पर आप मे वही शब्द सत्यता का रूप उस समय तक धारण नही कर सकते, जब तक कि आपके हृदय पट पर भी इन शब्दो के भावों को एकत्रित करके, वही चित्रण अकित न हो जाए ।

दृष्टात रूप से टेलीविजन सैट (Television Set) ले लीजिए । एक चित्र आज एक स्थान से बे तार के तार (Wire less) द्वारा दूसरे स्थान पर भेज दिया जाता है । अमेरिका मे बोलने वाले वक्ता के वचन सुनने के साथ साथ आज आप उनका चित्र भी अपने घर बैठे हुए ही अपने टेलीविजन सैट की स्क्रीन पर देख सकते हो । किस प्रकार चित्र वहा से यहां आना संभव हो सका ? यह बात तो आप जानते है, कि यह कार्य बिजली के माध्यम द्वारा किया जाता है । पर बिजली तो धारा रूप है, एक समय मे सारी की सारी प्रगट हो सके ऐसी नही है, वह तो बहने वाली है, पर चित्र तो धारा रूप नही है, वह तो सारा का सारा एक दम ही देखा जाता है । वचन तो धारा रूप होते है, एक के पीछे एक आते है, पर चित्र तो इस प्रकार नही होता कि उसका एक अंग अर्थात् सिर पहले दिखाई दे, नाक उसके पीछे पाव अन्त मे । वह तो सारा का सारा एक ही समय दृष्ट होता है । अत. वचनो को बिजली की धारा रूप से परिवर्तित किया जाना भले संभव हो सके, पर चित्र को धारा बनाना कैसे संभव है, और उसको धारा बनाये बिना बिजली रूप से परिवर्तन कैसे संभव है । सो भाई ! ठीक है, चित्र वास्तव मे स्वयं धारा रूप नही है अर्थात् आगे पीछे देखा जाने योग्य भी नही, वह तो अक्रम रूप से एक दम ही देखा जाता है, पर विज्ञान ने उसे धारा का रूप दे दिया है ।

टेलीविजन के सिद्धात मे जो प्रक्रिया चलती है वही यहां ज्ञान पट पर चलनी चाहिये । टेलीविजन मे पहले कैमरे मे ग्रहण किये गये

अखडित चित्र को खडित करके धारा का रूप दिया जाता है । फिर बिजली के रूप में परिवर्तित किया जाता है, और वह बिजली की धारा आपकी तरफ फेंक दी जाती है। स्टेशन का काम समाप्त हो गया। आपके घर पर रखा टेलीविजन सैट उस बिजली की धारा को ग्रहण करता है। धारारूप बिजली को चित्र में परिवर्तित करता है, और फिर स्क्रीन पर उस धारा को एक अखडित रूप देकर एक अक्रम वास्तविक चित्र बना देता है, जो बिल्कुल उस मूल चित्र के अनुरूप होता है, जिसके आधार पर कि वह बिजली की धारा बनाई गई थी। यदि उसके अनुरूप न हो तो इस चित्र को सच्चा नही कहा जा सकता । भौतिक विज्ञान मे तो कभी भी ऐसी भूल नही हो पाती कि धारा पर से बनाया गया वह चित्र मूल चित्र के अनुरूप न हो सके, पर चेतन विज्ञान में भूल हो जाती है क्योकि यहा बुद्धि का प्रयोग है। यहा ज्ञान के साथ साथ व्यक्ति की अपनी रुचि व विश्वास भी काम कर रहे ह।

प्रश्न है कि चित्र को धारा और धारा से पुन अखड चित्र बना देने की वह प्रक्रिया क्या है ? सो यदि यहा कोई इस बेतार के विज्ञान (Wireless scince) से परिचित व्यक्ति बैठा हो तो तुरन्त मेरा आशय समझ जायेगा, पर आप सब तो उसे न समझ सकेंगे, इसलिये इसी दृष्टात को और सरल बना कर आपके सामने लाता हूँ। याद रहे कि दृष्टात किसी अभिप्राय को समझाने के लिये दिया जाता है, दृष्टात पढने के लिये नही। अत दृष्टात में समझाये गये चित्र की धारा व धारा पर से चित्र निर्माण के क्रम से आप उसी प्रकृत को पढने का प्रयत्न करना, कि खडित या धारारूप ज्ञान और अखडित चित्ररूप ज्ञान किसे कहते ह, इन दोनो मे क्या अन्तर है तथा बिना चित्ररूप ज्ञान के वह शाब्दिक धारारूप ज्ञान क्यो झूठा व निरर्थक बताया जाता है।

देखिए यह एक चन्द्रमा का चित्र मने ब्लैक बोर्ड पर खेंचा। आप सब देख रहे ह इसे । अब मै कहता हूँ कि इसे धारा रूप चित्र बनाइये,

ऐसा कि ज्यो का त्यो इस सूक्ष्म छिद्र के द्वार से यह इस डव्बे मे प्रवेश पा सके। आप विचारते होगे कि क्या यह भी सम्भव है कि लम्बाई चौड़ाई व मोटाई को रखने वाला यह चित्र, इस छिद्र मे प्रवेश पा जाये। कुछ अनहोनी सी वात दीखती है, पर वास्तव मे ऐसा नही है। आओ हम इसे इस छिद्र के मार्ग से ज्यों का त्यो इस डव्बे मे प्रवेश करके दिखायें।

यदि इस चित्र को व्लेक वोर्ड की वजाय एक लम्वे धागे पर उतार दिया जाये और वह धागा धीरे धीरे इस छिद्र के मार्ग से डव्वे मे डाल दिया जाये तो क्या चित्र ज्यो का त्यो डव्वे मे न पहुच जायेगा ? पर यह वात भी कुछ अटपटी सी लगती है। धागे पर चित्र को कैसे उतारे ? सो भाई! वैज्ञानिक की भाति विचार करे तो सव कुछ सम्भव हो सकता है। देखो मैं वताता हूँ इसका उपाय और कितना सरल है। यहा इस लम्वे धागे को इस गत्ते के छोटे से टुकड़े पर ऊपर से नीचे तक लपेट दीजिए, इस प्रकार कि प्रत्येक धागे का लपेट एक दूसरे से सट कर रहे, जैसे कि हुक्के पर धागे लपेटे जाते हैं। इस प्रकार करने से धारा रूप यह लम्वा धागा एक कागज या वोर्डवत् चौडा ताना वन गया अव यह वोर्ड पर के चन्द्रमा का चित्र इस ताने पर स्याही से वना दीजिए। क्या वनाना संभव नही है ? नही, यह तो सम्भव है।

जिसप्रकार कागज पर चित्र ड्राइग करते हैं यहां भी कर सकते है। अच्छा देखो यह चित्र धागे के इस ताने पर वन गया। अव लीजिए इस धागे का एक सिरा पकड़ कर खेचना प्रारभ कीजिए, और इस छिद्र के मार्ग से यह धागा इस डव्वे मे प्रवेश करा दीजिए। धीरे धीरे गत्ते के टुकड़े पर से धागा उधडता या खुलता जायेगा और डव्वे में जाकर इकट्ठा हो जायगा। क्या चित्र डव्वे मे नही पहुच गया है ? अवश्य पहुच गया है।

अव यह विचारना है कि क्या धागे का यह ढेर जो डव्वे मे यो ही पड़ा हुआ है कोई चित्र के रूप मे दिखाई देता है ? नही यदि ऐसा कोई

लम्बा चित्रित धागा आपके सामने लाऊ और आपसे पछू कि इस धागे पर आपको क्या दिखाई देता है तो क्या कहेंगे ? केवल कुछ कुछ अन्तराल पर पडे स्याही के काले दाग, और कुछ भी नही । मैं कहता हूँ इस पर चन्द्रमा का चित्र खिचा है पर क्या आप देख सकेंगे ? देख तो सकेंगे पर धागे की इस हालत में नही । यदि पुन आप इस धागे को उतने ही बडे किसी गत्ते पर पूववत सटा सटा कर लपेट दे, तो क्या ये धागे पर के काले काले दाग एक दूसरे के निकट सम्पक में यथा स्थान आकर चन्द्रमा का चित्र न बन बैठेंगे ? अवश्य बन बठेंगे । यदि आप लपेटें तो भी और एक बालक लपेटे तो भी । परन्तु ध्यान रहे कि गत्ते का वह टुकडा जिस पर कि आप इसे लपेटने बैठे ह बिलकुल उतना ही बडा व उतना ही मोटा हो जितना कि पहिला था । यदि एक बाल का फक रह जायेगा तो ये काले दाग यथास्थान एक दूसरे की निकटता को प्राप्त न हो सकेंगे, बल्कि कुछ कुछ सटक जायेंगे, और धागे के इस ताने पर कुछ बिखरी हुई काली काली बून्दे सी ही दीख पावेंगी, चन्द्रमा नही । यदि धागे का ठीकबठीक ताना उपरोक्त प्रकार तन पाये तो उस पर प्रगट होने वाला वह चन्द्रमा का चित्र बिल्कुल वैसा ही होगा या उनसे कुछ भिन्न रूप का ! उतना ही बडा होगा या छोटा बडा ? स्पष्ट है कि वैसा ही व उतना ही बडा होगा । और इस प्रकार एक अखडित चित्र को धारा का रूप देकर उस पुन अखडित चित्र बना दिया गया ।

उपरोक्त प्रकरण मे दो बात प्रमुख ह , जिनके सबध मे विचार करना है—एक है धागे पर का चित्रण जिसे म आगे आगे 'धारारूप चित्रण' इस शब्द द्वारा कहूगा, दूसरा है धागे का ताना करने के पश्चात प्रगटा चित्रण जिसे म 'अखडित चित्रण' इस शब्द से कहूगा । धारारूप चित्रण मे देखने पर आगे पीछे पडे काले धब्बो के अतिरिक्त कुछ दिखाई नही देता । अखडित चित्रण मे वही काले धब्बे एक चित्र का सुन्दर रूप धारण कर लेते ह । काले धब्बो को देखने पर आप कुछ

नही जान पाते पर अखडित चित्रण देखने पर चन्द्रमा आपको प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बवत् दीखने लगता है। धारारूप चित्रण के उन धब्बे में चन्द्रमा है अवश्य पर केवल उसके लिये जो कि उसे अखडित चित्रण का रूप दे पाया है, सर्व साधारण के लिये उसमे चन्द्रमा है ही नही, क्योकि उसे वहा उस की प्रतीति होती ही नही। इसलिये उसके लिये उन धब्बो का कोई मूल्य नही, पर अखडित चित्रण बनाने वाले के लिये बहुत मूल्य रखते है।

इसी पर से सिद्धांत निकालना है। वक्ता के धारा प्रवाही वचन, वास्तव मे उसके हृदय पट पर खिचे हुए वस्तु के प्रतिबिम्ब या चित्रण का खडित रूप है। या यो कहिये कि उसके हृदय पट पर खिचा चित्रण अखडित चित्रण है जो वस्तु के अनुरूप है, और उसके वचन उसी वस्तु का धारा रूप चित्रण है। यह वचनो मे निबद्ध धारा रूप चित्रण आप कर्ण इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करते है। इसमे आपको केवल आगे पीछे सुने जाने वाले कुछ शब्दो मात्र की ही प्रतीति हो पाती है। जो केवल उस धारा-रूप चित्रण पर के धब्बोवत् है। यदि इस धारा को तानारूप तान कर आप इसको अखडित चित्रण मे परिवर्तित कर सके, तो वे शब्द रूप धब्बे आपके लिये भी वस्तुभूत बन जायेगे, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि वक्ता के लिये है। इसके द्वारा आपके हृदय पट पर बनाया गया अखडित चित्रण बिल्कुल वक्ता के चित्रण के अनुरूप ही होगा। अखडित चित्रण मे परिवर्तित होने से पहिले शब्द रूप धब्बो का आपके लिये कोई मूल्य नही, इसलिये वे वक्ता के लिये सारात्मक होते हुए भी आपके लिये नि सार है।

इस अखडित चित्रण रूप ज्ञान को ही आगम मे प्रमाण शब्द का वाच्य बनाया गया है, और क्योकि इसमे कोई सशय या विपरीतपना या 'क्या कुछ है या नही' इस प्रकार के अनध्यवसायपने का अभाव रहता है, इसलिये इसी अखडित चित्रणरूप प्रमाण ज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान

कहा जाता है। अखडित चित्रण बन जाने के पश्चात् धारा रूप चित्रण वाले ज्ञान में पढे हुए पृथक पृथक भाव जो धारा प्रवाही वचनो पर से ग्रहण करने में आये हैं, नये ज्ञान कहलाता है। प्रमाण ज्ञान अनेकान्त वस्तु के अनुरूप अखड चित्रण होने के कारण अनेकान्त है, और नये ज्ञान उस अनेकान्त वस्तु के पृथक पथक अगो के खडित चित्रण रूप होने के कारण एकागी या एकान्त है।

५

सम्भक् व मिथ्या ज्ञान

दिनाक २७-६-६०
प्रवचन न ५

१ नय प्रयोग का प्रयोजन, २. सेशयादि व उसका कारण अखड चिन्तण का अभाव, ३ सम्यक व मिथ्या ज्ञान के लक्षण ४. आगम ज्ञान में नम्यक् व मिथ्यापना, ५ प्रत्यक्ष ज्ञान में सम्यक् व मिथ्यापना, ६ सम्यग्ज्ञान में अनुभव का स्थान, ७. काल्पनिक चिन्तण सम्यज्ञान नही, ८ आगम की सत्यार्थता, ज्ञानी के सान्निध्य का सम्यग्ज्ञान प्राप्ति मे स्थान, १०. वस्तु पढने का उपाय, ११. कुछ लक्षण।

१. नय प्रयोग का प्रयोजन,

हृदय की सरलता का आधार ज्ञान की सरलता है अर्थात् यथा योग्य रीति से वस्तु के प्रत्येक अंगों का तथा उनमे दिखने वाले विरोधो का सहज स्वीकार ही ज्ञान की सरलता है । उसी प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ अथवा वाद विवाद रूप कटुता व ज्ञान की खेचातानी रूप एकान्त

को शमन करने के अर्थ, उस अनेकान्त सिद्धात का जन्म हुआ है, और यहा भी यह नय विवरण इसी लिये चल रहा है ।

प्रमाण, नय, एकान्त व अनेकान्त यह चार बातें मुख्यत इस प्रकरण मे जानने योग्य ह। यह चारो सम्यक् ही होते हो ऐसा नही है । यह चारो के चारो मिथ्या भी होते है । सम्यक् प्रमाण, मिथ्या प्रमाण, सम्यक्नय, मिथ्यानय, सम्यगनेकान्त, मिथ्या अनेकान्त, सम्यगेकान्त, मिथ्या एकान्त इस प्रकार इन चारो के आठ रूप हो जाते है, तथा इसी प्रकार वस्तु के प्रत्येक अग के, अपेक्षावश दो विरोधी भेद उत्पन्न हो जाया करते ह । इन विरोधो को दूर करने के अर्थ ही इस अनेकान्त वाद या नय वाद का प्रयोग करने में आता है । इसे ही स्याद्वाद कहते ह । किसी अपेक्षा से वस्तु का वह अग ठीक भासता है और किसी अन्य अपेक्षा से वह ठीक नही भासता । प्रत्येक वस्तु के विरोधो को खोला जाना तो यहा असम्भव है । उसके लिये तो बुद्धि ही एक मात्र साधन है । यहा तो बुद्धि को इस प्रकार के विरोधो का ठीक ठीक अर्थ बैठाने का अभ्यास कराना अभीष्ट है । एक पथ और दो काज । सम्यक मिथ्या, प्रमाण व नय भी जाने जायें और ठीक ठीक अर्थ बैठाने का अभ्यास भी प्रारभ हो जाये इसलिये यहा यह बात स्पष्ट करने मे आयेगी कि अपेक्षाये किस प्रकार लागू की जाती है, और उन्हें लागू करके अर्थ कसे निकाला जाता है ।

सशयादि व उसका कारण अखड चिन्तन का अभाव

कल वाले प्रकरण में इन चारो के लक्षण बता दिये गये है, आज यह बताया जाता है कि चारो ही मिथ्या व सम्यक् क्यो हो जाते ह । यहा यह बात समझ लेनी चाहिये कि सम्यक् ज्ञान उसे कहते ह जो प्रति बिम्बवत् वा प्रत्यक्षवत अत्यन्त स्पष्ट हो, जिसमें कोई सशय न हो अर्थात 'ऐसे है कि ऐसे ह' ऐसा भाव प्रतीती मे न आता हो । जिसमें विपर्यता न हो अर्थात् बिल्कुल उल्टा प्रतिभास न होता हो । और जिसमें अनध्यवसाय न हो अर्थात् 'क्या कुछ है' क्या प्रतीती में

आता नही। अन्धकार मे हाथ मारनेवत् या अन्धों के तीर चलानेवत् कुछ कर भले रहा हूं पर कुछ पता चलता नही कि क्या कर रहा हूं। जो शब्द सुने व पढ़े बस उनको दोहरा मात्र रहा हूं, उनके भावो का मुझे कुछ पता नही।" इस प्रकार का भाव जहा न पाया जाये। इन तीनो बातो से रहित स्पष्ट, नि.सशय, दृढ व प्रत्यक्ष वत् दीखने वाले वस्तु के चित्रण को सम्यक्ज्ञान कहते है। तथा इन तीनो बातो सहित ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते है।

अब विचार करना यह है कि यह तीनों बाते कहां और क्यों उत्पन्न होती है। जैसे कि कल वाले दृष्टात पर से स्पष्ट करने मे आया था, जहा अखडित चित्रण का ज्ञान नही होता वहां ही वास्तव मे उसके धारा रूप चित्रण का ज्ञान भी नही हो सकता। क्योकि देखने पर वह धारा रूप चित्रण केवल धागे पर आगे पीछे पडे कुछ काले धब्बों के अतिरिक्त कुछ भी न भासेगा और इसलिये भले ही मेरे कहने पर आप यह स्वीकार कर ले कि ठीक है, इस धागे पर चन्द्रमा का चित्र है, पर वास्तव मे यह बात आपके हृदय पर पर स्पष्ट नही हो पायेगी। यह केवल शाब्दिक स्वीकार होगा, हार्दिक नही। हार्दिक स्वीकार तो तभी हो सकता है जब कि आप अपने ज्ञान पट पर अनुमान के आधार पर उस धागे को कदाचित तान कर उस पर पड़े उन धब्बों को एक अखड चन्द्रमा के चित्र रूप से देख पाये। इसलिये स्पष्ट है कि अखडित चित्रण के अभाव मे उस चित्रण के वे धारा रूप खंड आपके हृदय में यह तीनों बाते अवश्य उत्पन्न कर देंगे। या तो आप विचारने लगेगे कि न मालूम इस धागे पर यह काले दाग डाल कर क्यों इसे गन्दा कर दिया गया और यही आपका अनध्यवसाय कहलायेगा। या आप विचारेगे कि इस पर चन्द्रमा का चित्र बताया जा रहा है परन्तु है या नही कौन जाने—और यही आपका संशय कहलाये। या आप विचारेगे कि अरे मुझे धोका देने के लिये ही, मेरी परीक्षा लेने के लिये ही या मेरी हंसी उडाने के लिये ही यह मुझ को इस धागे पर चन्द्रमा के चित्र का

सद्भाव कह रहे ह, पर वास्तव में वहा वह है ही नही, वहा तो केवल कुछ धब्बे मात्र है—बस यही आपका विपर्यय भाव होगा । इसमे सिद्ध हुआ कि अवश्यमेव अखडित चित्रण की अनुपस्थिति में ज्ञान में तीनो बातें होती ह ।

एक दूसरे दृष्टात पर से भी इस बात को पुष्ट करता हूँ देखिये यह महल है । ईंट पत्थरो व लकडी के दरवाजे आदि अनेको अगो को जोडकर बनाया गया है । जब इसको बनाने के लिये ईंट पत्थरो व इन दरवाजा आदि का ढेर बाहर लगा हुआ था, तब उन ईंट पत्थरो में यह महल था या नही ? कहना होगा कि था भी और नही भी । क्योकि उस व्यक्ति को तो वह स्पष्ट दिखाई देता था जिसके हृदय में कि इस महल का नक्शा मौजूद था, पर उस व्यक्ति को वह प्रतीति में नही आता था जिसके हृदय में इसका नकशा नही था इसलिये अखडित चित्रण रूप नकशा हृदय पट में रहने पर यह कहा जाना कि इन ईंटो में महल छिपा है—यह बात सम्यक व स्पष्ट है, सशय विपर्यय अनध्यवसाय रहित है । पर अखडित चित्रण से शून्य हृदय के लिये—यह कहना कि इसमें महल छिपा है, केवल शब्द मात्र है, सुनी सुनाई बात है, प्रलापमात्र है, वाक् गौरव के अतिरिक्त कुछ नही क्योकि वहा यह बात बिल्कुल अधकार म पडी है, अस्पष्ट है, सशयादि सहित है, नि सार व अकार्यकारी है । क्योकि ऐसा व्यक्ति उनके रहते हुए भी महल का उपभोग नहीं कर सकता, उसे बरसात में भीगना ही पडेगा, और दर्वाजे आदि भी धीरे धीरे बरसात धूप आदि के द्वारा गलकर बेकार हो जायेंगे ।

३ सम्यक व मिथ्या ज्ञान व लक्षण,

इसी प्रकार आगम के अन्दर पडे शब्दो का ढेर अध्यात्म विज्ञान रूप महल के अग अवश्य है, परन्तु केवल उसके लिये, जिसके हृदय पट पर कि विज्ञान का अखडित चित्रण विद्यमान है । इससे शून्य हृदय के

लिये तो वह अध्यात्म विज्ञानरूप न होकर केवल शब्द मात्र है। इसलिये पहिले व्यक्ति के लिये, यह आगम ज्ञान साररूप है और दूसरो के लिये नि सार। पहिले के लिये प्रमाण है और दूसरो के लिये प्रमाण भास या अप्रमाण। पहिले के लिये अगो का यथास्थान जड़ित समुदाय रूप है, और दूसरो के लिये पृथक पृथक पड़े तथा भाव शून्य शब्दों का ढेर मात्र। इसलिये यही आगम पहिले व्यक्ति के लिये सशयादि रहित है और दूसरो के लिये संशयादि सहित। भले ही ११ अग पढ ले, धारणा इतनी प्रबल कर ले कि सारा आगम कंठ मे पडा हो पर वह सब उपरोक्त रीति से अखडित चित्रण रूप प्रमाण से निरपेक्ष रहने के कारण सशयादि रहित नही हो सकेगा। बस सार निकल आया कि वस्तु के अखडित अनेकागी चित्रण का हृदय पट पर सद्भाव रहने पर तो प्रमाणनय आदि चारो सम्यक् है, और उसके अभाव मे चारो मिथ्या।

४ आगम ज्ञान मे सम्यक व मिथ्यापना

यही वह सार है जिसको पढना है। अहकार व मिथ्या अभिमान अपने लिये ही घातक है। अत भाई अब इस अभिमान को छोड कि मुझे आगम ज्ञान है। और इसे सम्क्ज्ञान कहा गया है, अत. मै सम्यग्ज्ञानी हूँ। अपने अन्दर झुककर उस अखड चित्रण की खोज कर। यदि वह वहा नही है तो अवश्य ही तत्संबधी सशय, विपर्य्यय या अनध्यवसाय मौजूद है और इसलिये वह तेरा आगम ज्ञान सम्यग्ज्ञान नही-है, मिथ्या ज्ञान है। झुंझलाने की बात नही। सुधार करके उन्नति करने की बात है।

और देखिये यही से अनेकान्त उदय होकर अपना परिचय दे रहा है, एक वस्तु मे दो अगो का प्रदर्शन कर रहा है। आगम सर्वथा सम्यग्ज्ञान नही, यही आगम या जिन वाणी सम्यक् भी है और मिथ्या भी। अरे अरे! जिन वाणी को यहा मिथ्या कहा जा रहा है। भाई! झुझलाने की बात नही। यह तेरी झुझलाहट ही वास्तव मे खेचातानी रूप एकात है। यथा योग्य रीति से अर्थ लगाने का अभ्यास यहा से ही

प्रारभ कर। इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार समझ कि किसी व्यक्ति के लिये यह सम्यक् है और किसी के लिये मिथ्या। जिन गुरुओ से यह आया है उनके लिये तो सम्यक् ही है या जिन्होंने इसे पढ कर गुरुओ के ज्ञान के अनुरूप ही अध्यात्म का कोई अखडित यथार्थ चित्रण हृदय पट पर बना लिया है, उनके लिये भी यह सम्यक् है। परन्तु उनके लिये जो कि उस चित्रण से शून्य ह, यह मिथ्या है। इसी प्रकार एक ही बात भिन्न भिन्न अपेक्षाओ व आश्रयो से विरोध को प्राप्त हो जायेगी, इसी का नाम अनेकात है।

५ प्रत्यक्ष ज्ञान में सम्यक व मिथ्यापना

यहा इस स्थल पर एक दूसरे प्रश्न का भी स्पष्टीकरण कर देना चाहिये। वह यह कि परसो के प्रकरण मे म यह बता चुका हूँ कि वस्तु को प्रत्यक्ष देखने पर जो प्रतिबिम्ब रूप ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है वह तो सदा ठीक ही होता है, अर्थात् सम्यक् ही होता है, उसमें तो हीनाधिकता या विपरीतता या सशयादि उत्पन्न होने सभव ही नही ह। और परोक्ष ज्ञान रूप जो चित्रण है, वह ठीक भी हो सकता है और गलत भी। सो यह दूसरी परोक्ष ज्ञान सबधी बात तो आगम से मेल खाती है पर पहली बात आगम से विरोध को प्राप्त हो जाती है। क्योकि यहा जिस प्रत्यक्ष ज्ञान को दृष्टि में रखकर बात की जा रही है वह इद्रिय प्रत्यक्ष के सबध की है। इसे आगम में मतिज्ञान कहा गया है। और उसे वहा सम्यक् और मिथ्या दोनो प्रकार का बताया है। जबकि उसे मै सम्यक् ही होने का निश्चय कर रहा हूँ। दूसरे परमार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान में भी भले ही मन पर्याय व केवलज्ञान के साथ तो यह नियम लागू हो जाता हो, पर अवधिज्ञान के साथ यह नियम लाग नही हो सकता, क्योकि उसको भी दोनो प्रकार का बताया गया है।

प्रश्न बहुत सुन्दर है और प्रकरणवश इसका स्पष्टीकरण यहा किया भी जाना चाहिये। सो भाई! ठीक ही कहता है। ऊपर से देखने

पर तो विरोध स्पष्ट है ही । इस से इन्कार नहीं किया जा सकता । पर यहा वुद्धि पर जोर देकर विचारने का प्रयत्न करे तो वह विरोध विरोध नही रह पायेगा । आगम वाली वात भी ठीक ही दिखाई देगी, और मेरी वात भी । वस यही तो है अनेकान्त सिद्धात की महिमा । पर वुद्धि लगाये विना इसका स्पर्श कठिन है । प्रकरणवश आगे आगे भी इसी प्रकार के अनेको प्रश्न आयेगे और वहा उन पर अनेकान्त का प्रयोग करके दिखाया जायेगा, या यो कहिये कि भिन्न भिन्न अपेक्षाये लगा लगाकर विरोधो को दूर करके दिखाया जायेगा । इस पर से ही अपेक्षा के प्रयोग करने का उपाय ग्रहण कर लेना, क्योकि पृथक से कोई अध्याय केवल अपेक्षा लागू करने के विषय मे सभवत् आने न पाये । अपेक्षा लागू करने को दृष्टान्त चाहिये, जिन पर कि वह लागू करके दिखाई जाये । यहां वह दृष्टात सहज उपलब्ध हो रहे है । अपेक्षा लागू करने के सवध मे कोई सैद्धांतिक नियम नही है, वुद्धि की स्पष्टता ही मात्र एक साधन है । भिन्न भिन्न स्थलो पर भिन्न भिन्न रूप से उनको लागू किया जाता है । यद्यपि आगे आने वाले नयो के विषय पर से उसका किंचित अनुमान लगाया जा सकता है, पर वास्तविक उपाय तो निज का अभ्यास ही है । अत जिस प्रकार पहिले प्रश्न मे आगम ज्ञान को मिथ्या व सम्यक् दोनो प्रकार का सिद्ध कर दिया गया यहां भी प्रत्यक्ष ज्ञानो मे सर्वथा सम्यक्पना किसी अपेक्षा सिद्ध किया जा सकता है । दृष्टात पर से अपने ज्ञान को मांजने का अभ्यास कर , ताकि स्वतत्र रीति से स्वत: वह इस प्रकार के प्रश्नो का हल कर सके । तेरा अपना अभ्यास तेरे काम आयेगा । हर समय ज्ञानियो का सम्पर्क वने रहना वहुत कठिन है । और फिर उनसे कराया गया स्पष्टीकरण केवल एक विषय के संवंध मे ही हो सकेगा, सर्व विपयों के सवध मे कैसे होगा । तेरी ज्ञान की सरलता तो जव है जव कि सर्व विपयो सवंधी स्पष्टीकरण हो जाए, मूल व प्रयोजन—भूत विषय सवधी संशयादि न रहे । और यह काम केवल अपने ज्ञान के अभ्यास से ही होना संभव है ।

देख प्रश्न का स्पष्टीकरण करके दिखलाता हूँ। यह बात याद रखने की है कि किसी भी शब्द या वाक्य का अर्थ लगाने से पहिले यह देख लेना आवश्यक है कि वहा प्रकरण क्या चल रहा है। प्रकरण के भेद से एक ही शब्द या वाक्य के अथ व भाव में अन्तर पड जाया करता है। म ज्ञान की प्रत्यक्षता का आधार सब साधारण विषय ले रहा हूँ और आगम मे केवल अध्यात्म विषय के आधार पर कथन किया गया है। मेरे प्रकरण में सम्यक् व मिथ्यापने का माप दड विस्तृत है और वहा सकुचित। यहा तो जिस किस विषय सबधी भी सशयादि का अभाव होने पर उस विषय सबधी सम्यक् ज्ञान होना बताया जा रहा है और वहा केवल आत्मा के विषय में सशयादि दूर हो जाने को सम्यग्ज्ञान कहा जा रहा है। देख प्रकरण के भेद से कितना बडा अन्तर पड गया।

एक व्यक्ति सप को सप रूप देखता है और दूसरा व्यक्ति उसे रस्सी समझता है। दोनो में किसका ज्ञान सम्यक् हुआ ? स्पष्ट है कि पहिले का, परन्तु यहा सम्यक् पना आत्मविज्ञान के प्रति सकेत नही कर रहा है, पर केवल सप ज्ञान के प्रति सकेत कर रहा है। जब कि आगम में यहा तक कह दिया है कि सम्यग्ज्ञानी तो सप को रस्सी देखे तो भी उसका ज्ञान सम्यक् और मिथ्या ज्ञानी सपको सर्प देखे तो भी उसका ज्ञान मिथ्या है। यह बात कैसे स्वीकारी जा सकती है ? क्या साधारणत देखने पर इसे पक्षपात या साप्रदायिकता न कहेंगे ? परन्तु प्रकरण पर से अथ लगाने पर इसमें पक्षपात की बू न आयेगी ? आगम में सम्यक् ज्ञान का माप दड है केवल आत्म विज्ञान, और इसीलिये आत्म विज्ञान शून्य सब व्यक्ति आत्म विज्ञान की अपेक्षा मिथ्या ज्ञानी ह, भले ही अन्य विषयो सबधी उनका ज्ञान सम्यक् हो। पर सम्यक्पने के माप दड को विस्तृत करके यदि सब विषयक विज्ञान कर दिया जाये तो हर व्यक्ति को किन्ही एक दो, दस, पचास विषयो सबधी सम्यक् ज्ञान है, उन विषयो की अपेक्षा वह सम्यग्ज्ञानी है, उसके अतिरिक्त अन्य विषयो की अपेक्षा मिथ्या ज्ञानी है।

इस प्रकार सर्व विपयो के विज्ञाता सर्वत्र देव को छोड़कर हर व्यक्ति किसी अपेक्षा से सम्यग्ज्ञानी है और किसी विषय की अपेक्षा मिथ्याज्ञानी । जैसे कि डाक्टरी विज्ञान की अपेक्षा डाक्टर लोग, मशीन विज्ञान की अपेक्षा एन्जियर लोग, अणु विज्ञान की अपेक्षा अमेरिका व रूस के वैज्ञानिक विशेप ही सम्यग्ज्ञानी कहे जा सकते है, वीतरागी गुरु नही । और आत्मविज्ञान की अपेक्षा वीतरागी गुरु वा अन्य अल्प भूमिका मे स्थित कोई भी अनुभवी व्यक्ति ही सम्यग्ज्ञानी कहा जा सकता है, ऊपरवाले डाक्टर आदि नही, क्योकि वे उस विपय को जानते नही । इसी प्रकार सर्वत्र लागू करना । अव वताओ कि मेरी वात व आपकी वात मे विरोध कहा रहा ? उस उसविपय का इन्द्रिय प्रत्यक्ष करके उस उस विपय सवंधी यथार्थ प्रतिविम्व को ज्ञान मे लेने पर क्या उस उस विषय संवधी सशय विपर्य्यय व अनध्यव साय रहना सभव है ? क्या वह वह विषय उसके ज्ञान मे अत्यन्त स्पष्ट नही हो जाता ? क्या उस उस विषय का प्रत्यक्ष करने के लिये आत्मा का प्रत्यक्ष करना भी आवश्यक है, और यदि नही तो क्यों वह उस उस विपय सवधी सम्यग्ज्ञानी न कहलायेगा उसमे उस विपय संवधी सम्यग्ज्ञान का लक्षण (संशय विपर्यय अनध्यवास रहितता) घटित होती है ? परन्तु जव तक आत्मा सवंधी प्रत्यक्ष नही हो जाता या आत्मा सवंधी परोक्ष अखड चित्रण का भाव क्यो कि उसके हृदय पट पर अकित नही हो जाता, तव तक भले सर्व लौकिक विपयो का साक्षात कर पाया हो तथा सर्व आगम को धारणा व स्मृति में वैठा लिया हो, वह आत्मा विज्ञान की अपेक्षा तो मिथ्या ज्ञानी ही रहेगा, क्योकि आत्म विज्ञान के सवध मे मिथ्या ज्ञान के लक्षण, सशयादि का सद्भाव वहा घटित होता है ।

सम्यग्ज्ञान में अनुभव का स्थान

सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान को और अधिक स्पष्ट करने के लिये पुन. और दृष्टान्त देता हूँ । देखो आज तो अणु का युग चल रहा है । रूस व अमेरिका अणु विज्ञान मे वरावर प्रगति करते जा रहे है । पर भारत-वर्ष आज तक उस विषय को स्पष्ट स्पर्श करने में असफल रहा है । क्या उसने अणु सम्वन्धी

साहित्य या आगम नही पढा ? डाक्टर भावे जो आज भारतीय अणु विज्ञान शाला के अध्यक्ष ह वडे विद्वान व्यक्ति है । अणु सबधी कोई बात नही जो उन्होने न पढी हो, तथा जो तक व युक्ति की कसौटी पर कसकर उन्होने धारणा में न बैठा रखी हो । फिर भी सफलता क्यो नही ? कारण एक ही है कि यह सारा ज्ञान वास्तव मे शाब्दिक ज्ञान है, यह सारा निणय शाब्दिक निणय है, पर अणु विज्ञान का कोई स्पष्ट अखड चित्रण हृदय पट पर अभी अंकित नही हो सका है । उसे अंकित करने का तो प्रयास किया जा रहा है । इसी का नाम तो खोज (Research) है । यदि वह चित्रण अंकित हो गया होता तो खोज की क्या आवश्यकता रहती । वास्तव मे अणु सिद्धान्त का शाब्दिक परिचय पा लेने पर भी उसके चित्रण या अनुभव या दशन के अभाव के कारण , उनके हृदय में तत-सम्बधी सशयादि बराबर बैठे हुए हैं, जिनको दूर करने के लिय कि वह अनुसधान कर रहे ह पर सफल हो नही पाते । इसलिये उनके इस अणु सबधी ज्ञान को सम्यक कहोगे या मिथ्या ? स्पष्ट है कि उनका वह अणु ज्ञान सम्यक् नही, मिथ्या है । आत्म विज्ञान की अपेक्षा नही, अणुविज्ञान की अपेक्षा । इसलिये सिद्धान्त अचल रहा कि अखड चित्ररूप ज्ञान या अनुभव के अभाव में उस विषय के अगो का खडित शाब्दिक ज्ञान मिथ्या ज्ञान है । रूस व अमेरिका के पास भी शाब्दिक ज्ञान उतना ही तथा वह ही है, पर उसके वैज्ञानिको के हृदय पट पर तत्सबधी एक स्पष्ट चित्रण यानी अखड चित्रण अंकित है । अर्थात् उन्हें तत्सबधी अनुभव है । इसी से अणु ज्ञान की अपेक्षा उनका ज्ञान सम्यक् है ।

इसी प्रकार हम देखते है कि एक इजीनियर जिसने १६ साल शिक्षण में खोये, वह एक मशीन को ठीक करने में कदाचित फेल हो जाता है, पर एक अनुभवी मिस्त्री जिसको पढाई से नाम कुछ नही आता, उसे तुरन्त ही ठीक कर देता है । कारण ? उसका

ज्ञान अनुभवात्मक है, और इंजीनियर का शब्दात्मक। मिस्त्री भले किसी को पढा न सके परन्तु उस मशीन सबंधी उसका ज्ञान स्पष्ट है, और इंजीनियर अनेकों को शाब्दिक ज्ञान पढा दे पर मशीन सबधी उसका ज्ञान अस्पष्ट व मिथ्या है।

अब तक के प्रकरण पर से सम्यक् व मिथ्या ज्ञान के निम्न लक्षण निकल पाये हैं।

१. किसी विषय सबधी एक अखड चित्रण का हृदय पट पर अकित होना या उस सबंधी अनुभव होना सम्यक् ज्ञान है।

२. ऐसे अखड चित्रण या अनुभव के अभाव मे सर्व शाब्दिक आगम ज्ञान भी मिथ्या ज्ञान है।

काल्पनिक चित्रण सम्यग्ज्ञान नही

इन लक्षणों मे अभी और विशदता लानी अभीष्ट है। केवल शाब्दिक ज्ञान ही मिथ्या हो ऐसा नही है, कदाचित उन शब्दो के भावों का ग्रहण भी मिथ्या ज्ञान हो सकता है। वह कब सो ही आगे बताता हूँ। देखिये वही ईट पत्थरो वाला दृष्टान्त ले लीजिये। मै यदि उन ईट पत्थरों से एक महल तो बनाकर खड़ा कर लू, पर बिना सोचे-विचारे जो कोई वस्तु उसमे जहां कही भी फिट कर दू। अर्थात् यह दर्वाजा तो वहां छत मे खोल दू जहा पंखा लगा है और पंखा यहां खड़ा कर दू जहां मै बैठा हूँ। खिड़की वहां लगा दूं जहा इस आतिश-खाने पर या शैल्फ पर कुछ चित्र आपने सजाकर रखे है, वह रोशनदान वहां पृथ्वी मे गाड़ दू जहां वह पायेदान पड़ा है, इन तस्वीरों को फर्श पर बखेर दू और यह सोफा सेट दीवार पर टांग दू, तो बताइये मेरा यह मूर्खो का सा कार्य क्या मेरे किसी भी काम आ सकेगा? क्या ऐसे बनाये गये महल का मै किसी प्रकार भी उपभोग कर सकूगा और क्या वह

महल संज्ञा को प्राप्त भी हो सकेगा ? भले ही दूर से देखने पर वह महल ही भासता हो, क्योंकि दीवारें तो ठीक ही खड़ी हुई दीखेंगी, पर पास आने पर क्या आपकी हंसी रुक सकेगी ? और इस प्रकार ईंटों, दरवाजों व फर्नीचर आदि को जोड़कर एक अखंड रूप दे देने पर भी ईंट पत्थर आदि एक महल का काम न दे सकेंगे, और इसलिये उनका मूल्य अब भी ईंट पत्थरों से अधिक कुछ न हो सकेगा । सम्भवत उससे भी कुछ कम हो जाये । क्योंकि चिनने से पहिले तो वे सब बेचे भी जा सकते थे, पर अब तो वे बेचे भी नहीं जा सकते । यदि इस महल को तोड़कर भी उनको बेचने का प्रयास किया जाये तो कोई इनके कितने टके देगा, क्योंकि अब वह सब पुराने हो चुके हैं ।

बस इसी प्रकार यदि उस पूर्वोक्त शाब्दिक धारारूप चितवन को अर्थात् आगम ज्ञान के अंगों को परस्पर जोड़कर भी यदि मैं एक अखंड रूप प्रदान कर दूं, परन्तु उनको यथा स्थान फिट न बैठाकर बिना विचारे उनका जो सो भी अर्थ ग्रहण कर लूं तो क्या मेरे वह कुछ काम आ सकेगा ? जो अंग जहां लागू होता हो, जिस अंग का जिस अपेक्षा से जो अर्थ होता है वह न करके जहां कहीं भी उसे लागू कर दूं तो बताइये उन आगम ज्ञान के अंगों का क्या मूल्य रहा । सम्भवत जुड़ने से पहिले तो कुछ काम आ भी जाते, क्योंकि वहां तक तो उनका अर्थ समझने व फिट बैठाने की जिज्ञासा थी जो कि किन्हीं ज्ञानियों के सम्पर्क में आकर कदाचित् पूरी की जा सकती थी पर अब तो एक अभिमान जागृत हो चुका है, जिसने कि उस जिज्ञासा का भी गला घोट दिया है । बताओ ऐसी हालत में उनका क्या मूल्य ? क्या यह सब ज्ञान बेकार नहीं है ? ऐसा करने पर भले ही साधारणतया उसमें सत्यादि की प्रतीति न होने पावे क्योंकि उनका ऊपरी ढांचा कुछ जुड़ा हुआ सा दिखाई देता है, पर अन्तरंग में झकझोर के सत्यादि अब भी अवश्य पढ़े जा सकते हैं । इस रूप में कि ' अरे ! भले बहुत आगम पढ़ लिया हो और तर्क आदि

भी करने सीख लिये हो, भले ही अनेकों को आगम पढ़ा दिया हो और पढा रहा हो, भले ही लोग मेरी विद्वता की प्रशंसा करते हो, भले ही मैंने बड़े-बड़े शास्त्रार्थो मे विजय प्राप्त की हो, पर जीवन मे से तो वह रस आने पाया नही जिसके प्रति कि यहां सकेत किया गया है।" और इसलिये इन सशयादि के सद्भाव मे इस कारण प्रकार का निर्णय किया गया भी आगम ज्ञान मिथ्या ज्ञान है।

८. आगम ज्ञान की सत्यार्थता

अब प्रश्न होता है, फिर कैसे किया जाये। आगम ही आज के अध्यात्म ज्ञान का प्रमुख आधार है और इस ही बेकार सिद्ध कर दिया गया, तो क्या अब जीवन विकास का कोई उपाय नही? नही ऐसा नही है भाई! आगम तीसरी चक्षु है। यह बिल्कुल बेकार हो ऐसा नही है। वर्तमान काल में इसकी उपलब्धि होना हमारा बड़ा भारी सौभाग्य है। रुढि मात्र से इसको न पढ़कर यदि बुद्धि पर जोर दे देकर पढे, यदि उतावल न करे, शास्त्र पूरा करने की बजाये इसके एक एक शब्द पर एक एक वाक्य पर सूक्ष्म व गहन विचार करे, उसके संकेतो को अपने जीवन में खोजे, अन्दर मे खोजे, बाहरमे खोजे, और उस समय तक चैन न पावे जब तक कि उस वाक्य का वाक्यार्थ तुझे मिल नहीं जाता। और इस प्रकार धीरे धीरे करके अनेको वाक्यार्थो का परिचय मिल जाने पर उनके दृष्टसयोगादिक व अदृष्ट प्रभाव आदिक को यथा योग्य पढने का प्रयत्न करते हुए, उनका परस्पर यथा योग्य रीति से सम्मेलन बैठाये, तो अवश्यमेव आगम के उपकार का भान हुए बिना न रहे, अर्थात् उस आत्मविज्ञान की प्राप्ति किये बिना तू न रहे। ऊपर वाले प्रकरणो मे वास्तव मे आगम का निषेध नहीं किया है, आगम का दोष नही बताया है, आगम को मिथ्या नही कहा है, आगम पढने वाले का दोष बताया है, और उसी के ज्ञान को मिथ्या कहा है। आगम तो सर्वदा ग्राह्य ही है, वह तो अपने अन्दर

पूर्णत : निर्दोष ही है, वह तो अपने प्रतिपादित विषयो की अपेक्षा सम्यक् ही है। अत भाई ! अब उसके वाक्यो का ठीक ठीक अर्थ बैठाने का अभ्यास कर।

यद्यपि यह कार्य बडा कठिन है और समस्या बडी जटिल है पर सम्भव है असभव नही। सौभाग्यवश यदि किसी ज्ञानी अर्थात् आगम रहस्य के ज्ञाता अर्थात आत्मानुभवी का सयोग प्राप्त हो जाये, तो कुछ सुविधा हो सकती है, क्योकि भिन्न भिन्न अवसरो पर उपजने वाली गुत्थियो व शकाओ का समाधान व सम्मेलन बैठाकर किस प्रकार विरोधो को दूर करना है और अर्थ फिट बठाना है यह उसके पास मे रहकर ही पढा जा सकता है। इसकी कोई ट्रेनिंग नही होती। देख लौकिक व्यापारो में भी सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् इससे पहिले कि वह उस व्यापार को प्रारम्भ करे छात्र को किसी अभ्यस्त व्यक्ति के सम्पर्क में कुछ दिन के लिये रहना पडता है। पुस्तको मे पढा जा सकता है पर कढा नहीं जा सकता। कढा जाने का एक मात्र उपाय ज्ञानीजनो का सत्सग ही है। इसी से एल एल बी या वकालात पढ लेने के पश्चात् उस छात्र को कम से कम ६ महीने किसी वकील के साथ रहकर वकालात मे किस प्रकार उस सिद्धान्त को लागू किया जाता है, यह बात पढनी पडती है। इस प्रकार ६ महीने के अभ्यास बिना उसे वकालात का लाइसेंस नही दिया जाता। इसी प्रकार डाक्टरी पढने के पश्चात् कुछ समय के लिये किसी होशियार डाक्टर के पास, और इजीनियरिंग पढ जाने के पश्चात कुछ समय के लिये किसी बडे कारखाने में रहकर काम सीखना पडता है जो अत्यन्त आवश्यक है। उस कढाई के बिना किताबी पढाई बेकार है। इसी प्रकार यद्यपि आगम ज्ञान महान उपकारी है पर उसे पढने के पश्चात् उसमें कढने के लिये कुछ समय तो

ज्ञानी के सानिध्य का सम्यग्ज्ञान प्राप्ति में स्थान

किसी ज्ञानी का सम्पर्क अत्यन्त आवश्यक है , जिसके विना उसका अर्थ ठीक समझना वहुत कठिन है और इसलिये उसके विना वह ज्ञान वेकारवत है ।

दृष्टान्त मे तो गृहस्थ संववी तथा अर्थोपार्जन संवधी लालच रहने के कारण इतना समय किसी के पास रहना भी गवारा कर लेता है । पर यहा तो कुछ भी लालच नही है, सो क्यों किसीके पास रहकर समय गवाया जाये, ऐसी धारणा पडी है, फिर तू ही वता कि कैसे इसका अर्थ समझने का उपाय तू सीख सकेगा । भाई ! लौकिक व्यापारोक्त यह भी तो एक व्यापार है यदि जीवन मे इसकी कोई आवश्यकता है, तो अवश्य ही समय किस जिस प्रकार भी निकालना ही पडेगा, और यदि इसकी कोई आवश्यकता ही नही तो अर्थ समझ कर भी क्या करेगा । फिर भी सव यहा एकत्रित हुए हो और मुझसे पूछते हो तो अपनी योग्यतानुसार कुछ वताने का प्रयत्न करूंगा ही । पर इतना वता देना चाहता हूँ कि वह मेरा वताया हुआ भी तो पूर्ववत् शाव्दिक ज्ञान का ही अग मात्र वनकर रह जायगा । उसका भी रहस्यार्थ कैसे समझा जा सकेगा जव तक कि उस पढ़े हुए का प्रयोग कर करके अर्थ निकालने का स्वय प्रयास न करेगा, और अर्थ न निकलने पर किसी से पूछेगा नही ।

१० वस्तु के पढने का उपाय

ले वताता हूँ , समझ । आगम शव्दो का अर्थ तुझे वस्तु मे जाकर यह वात पहिले ही हृदय मे दृढ़ वैठा ले । शव्द याद करने के प्रति जो महिमा तुझे आज वर्तती है उसे धो डाल और वस्तु को पढने का यत्न कर । वस्तु को पढने के लिये पहिले यह क्रम है, कि वस्तु को खडित करके देख । फिर उसके प्रत्येक खड का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर और उसके भाव को

हृदय पट पर अंकित कर। ऐसा कर चुकने पर उन खडित भावो को पुन ज्ञान में अखड रूप प्रदान कर, और देख क्या वैसा ही रूप बन पाया है जैसा कि मूलभूत वस्तु का उसे खडित करने से पहिले था ? यदि नही तो उन खडो को पुन देख कि कौनसा खड ठीक स्थान पर बैठने नही पाया है। उसे यथास्थान पर बैठा कर फिर दोबारा इन सारे खडो को एक अखडित रूप देकर देख और यह प्रक्रिया बराबर उस समय तक करता रह, जब तक कि वस्तु का वही रूप न बन जाये जो कि ,इसका था।

जैसे कि एक मशीन को पढने के लिये आवश्यक है कि पहिले इसे खोलकर इसके पुर्जे पुर्जे कर दे। फिर इन पुर्जों को यथास्थान जोडने का प्रयत्न करते हुए इन्हें एक अखड रूप दे, और देख मशीन काम करने लगी या नही। यदि नही तो पुन परीक्षा कर, गरारियो को इधर से उधर पलट पलटा कर लगाकर देख, और उस समय तक बराबर ऐसा करता रह जब तक कि मशीन काम न करने लगे। यद्यपि पहिली बार ऐसा करने में तुझे बहुत परिश्रम करना पडेगा, बुद्धि पर भी बहुत जोर देना पडेगा पर आगे को यह काम तेरे लिये बच्चा का खेल हो जायगा। स्वत एक भी कोई पुर्जा टट जाय या बिगड जाय तो आख मीच कर ठीक कर देगा। इसी प्रकार वस्तु का विश्लेषण करके जोडने में एक बार तो बुद्धि पर बहुत जोर देना पडेगा ही।

देख अब वस्तु का विश्लेषण करता हूँ। उस अखडित रूप को खडित करके उसे एक धारा के रूप में परिवर्तित करता हूँ। पहिले बताया जा चुका है कि अनेक आगे पीछे होने वाली अपनी पर्यायों का पिड तो एक गुण है और एक ही समय में साथ साथ रहने वाले ऐसे अनेको पृथक पृथक गुणो का पिड वस्तु है। गुण एक साथ रहते हैं और पर्याय आगे पीछे। ये गुण और पर्याय ही वस्तु के अग है।

यह सिद्धान्त वस्तु के विश्लेपण का मूल आधार है। नीचे के चित्रण पर से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

५	१०	१५	२०	२५	३०
४	९	१४	१९	२४	२९
३	८	७	१३	२४	२९
२	७	१२	१७	२२	२७
१	६	११	१६	२१	२६
क	ख	ग	घ	च	छ

(एक साथ रहने वाले, अन्वयी, सहवर्ती, या अक्रमवती गुण)

तिर्यकप्रचय

कल्पना करो कि उपरोक्त चित्र मे एक वस्तु प्रदर्शित की गई है, जिसमे क, ख, ग, घ, च, छ, यह ६ गुण है, जो एक ही समय वस्तु मे पाये जाते है, आगे पीछे नही। इसीलिये इन्हे अक्रमवती या सहवर्ती अग कहते है इनके साथ साथ रहने मे कोई विरोध नही इसलिये इनको अन्वयी कहते है। क्योकि यह इस चित्र मे पट लाइन पर अर्थात् (Horizental Axis) पर दिखाये गये है इसलिये इनको आगम मे तिर्यग्प्रचय कहा जाता है। एक के ऊपर एक चिनी गई १, २, ३ आदि उस गुण की पर्याय है। क्योकि यह क्रम से आगे पीछे होती है इसीलिये इन्हे क्रमवर्ती अंग कहते है। क्योकि एक पर्याय के रहते उसी गुण की दूसरी पर्याय नही होती। दो पर्यायो के साथ साथ होने मे विरोध है इसलिये इन्हे व्यतिरेकी कहते है। क्योकि ऊपर खडी लाइन (Vartecal Axis) पर दिखाई गई है इसलिये इनको ऊर्ध्वप्रचय कहते है।

यहा दृष्टात मे प्रत्येक गुण की पाच पांच पर्यायो को ग्रहण किया है ; न. एक से पाच तक कि पर्याये 'क' नाम गुण की है न. ६ से १०

तक 'ख' नाम गुण की है न ११ से १५ तक 'ग' तक नाम गुण की है न १६ से २० तक 'घ' नाम गुण की है न २१ से २५ तक 'च' नाम गुण की है और और न २६ से ३० तक 'छ' नाम गुण की है। इस प्रकार वस्तु की कुल पर्यायें ५–६ ३० तीस हो जाती है ।जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि पर्यायो से रहित गुण कुछ नही और गुणो से रहित वस्तु कुछ नही इन ३० पर्यायो का समूह ही वस्तु है। वस्तु को ३० भागो में खण्डित करना ही वस्तु का विश्लेपण करना है।

अब यह देखना है कि इस वस्तु का कथन क्या इस प्रकार करने मे कोई भी शब्द समर्थ है कि एक ही शब्द ३० की ३० इन ६ जाति की पृथक पृथक पर्यायो का निरुपण कर सके ? नही भी और है भी। नये श्रोता के लिये तो नही, पर परिचित श्रोता के लिये उस वस्तु का नाम मात्र कहना ही सब ३० की ३० पर्यायो से समवेत वस्तु का ठीक ठीक प्रतिनिधित्व करने को पर्याप्त है। जिस प्रकार कि 'अग्नि' ऐसा एक ही शब्द आपके लिये अग्नि की सम्पूर्ण शक्तियो (Qualification) से युक्त अग्नि नाम के पदार्थ का प्रतिनिधित्व करने को पर्याप्त है। कारण कि अग्नि का चित्रण आपके हृदय पट पर स्पष्ट है । परन्तु 'आत्मा' का स्पष्ट चित्रण आपके हृदय पट पर नही है। तब कैसे 'आत्मा' नाम का एक शब्द पूर्ण रुपेण आपके लिये आत्मा पदार्थ का प्रतिनिधित्व कर सकेगा ? और यदि पहिले सुने हुए और सीखे हुए 'आत्मा' नाम शब्द के चित्रण के आधार पर अब भी आप उसका नाम मात्र सुनकर तृप्त हो जायें, तो भी आपके हृदय पट पर उसका स्पष्ट चित्रण तो बन पायेगा। उसके लिये तो मुझे आपको इस आत्मा नाम पदार्थ का पृथक पृथक विस्तृत निरुपण करना पडेगा, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि उस अमेरिका के फल का प्रतिपादन करने के लिये करना पडा था। और यह काम एक शब्द के द्वारा होना असंभव है। एक एक पर्याय का पृथक पृथक विस्तृत निरुपण करने के लिये लम्बे लम्बे कथन क्रम की आवश्यकता पडेगी। पृथक पृथक अनेक दृष्टान्तो द्वारा उसका भाव चित्रित करने की आवश्यकता पडेगी। और इसलिये सम्भवत महीनो तक मै इन सारी ३० की ३० पर्यायो का प्रतिपादन समाप्त कर पाऊँ।

विचारना तो यह है कि इन पर्यायो का पृथक पृथक प्रतिपादन क्या इन खडित पर्यायो को दर्शाने के लिये कर रहा हूँ। या अखडित वस्तु का परिचय दिलाने के लिये ? मेरा यह प्रयास तो अखडित वस्तु को दर्शाने के लिये है। पर यदि आप उन-उन एक-एक पृथक-पृथक पर्यायो को तो समझे पर उनको परस्पर मे यथा स्थान जड कर अपने ज्ञान मे उन सब का एक अद्वैत या ,खडित चित्रण न बना सके, तो क्या आप इनको ३० पृथक-पृथक पदार्थ ही न समझ बैठेगे। ऐसा ही होगा और ऐसा ही हो रहा है ।

कथन क्रम मे तो पहिले न. १ फिर न. २, फिर नं. ३ और इसी प्रकार नम्बर वार ३० की व्याख्या की जायेगी, अर्थात् कथन क्रम मे इस वस्तु का चित्रण निम्न प्रकार का हो जायगा ।

चित्र न २

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०		

और इसलिये जब आप न ८ की बाते सुनते हुए होगे तो पहिले सुनी हुई नं एक की बात भुला चुके होगे, और जब न १७ की बात सुनते होगे तो न ८ की बात को भुला चुके होगे। इस प्रकार सुनने से तो पदार्थ का चित्र बनाया जाना सभव नही है, क्योकि इस प्रकार तो सर्व अग पृथक -पृथक भी आपके हृदय कोष मे प्रवेश न पा सकेगे, यदि यह ३० के ३० आपके स्मृति पट पर उतरते भी चले जाये तो भी यह वहा मात्र पृथक-पृथक स्वतत्र वस्तुओ का रूप धारण करके चित्रित होने का प्रयन्न करने लगेगे ।

अर्थात् नं १ का नाता नं. ८ से कुछ न हो सकेगा और न ८ का न. १७ से कुछ न हो सकेगा और यदि ऐसा भी हो पाया तो क्या

३० की ३० को धारण करके भी आपने कुछ धारण किया कहा जायगा ? नही—क्योकि इस प्रकार की पृथक पथक स्वतत्र पदार्थो की सत्ता लोक म है ही नही। न १७ का पृथक पदार्थ लोक मे आपको कहा देखने को मिलेगा ? और इसलिये यह ३० पृथक पृथक चित्रण वस्तु के अनुसार न हो सकेंगे।

बस यही वह भूल है जिसे मुख्यत दूर करना है। आपने इन ३० की बात पहिले भी पढी या सुनी अवश्य है, पर उनका भाव अब तक भी कोई अखडित रूप मे धारण नही हो पाया है। तभी तो आप चारित्र की बात को पृथक् स्वतत्र वस्तु और ज्ञान को पृथक् स्वतत्र वस्तु समझकर प्रश्न करने लगते हो। जैसा कि परसो के प्रकरण म प्रश्न उपस्थित हुआ था कि ज्ञान का काय हेय व उपादेय के विवेक सहित सब कुछ सहज ग्रहण करना है या इनके विवेक से रहित ? और तब मने उत्तर दिया था कि दोनो पथक-पृथक दो पर्यायो की अपेक्षा सत्य है। चारित्र की अपेक्षा पहिली बात और ज्ञान की अपेक्षा दूसरी। परन्तु सतुष्ट न होकर आप फिर पूछ बठे थे कि आगम में तो इस प्रकार हेयोपादेय का विवेक करने वाला ज्ञान को ही बताया है। बस यही तो है वह पथकता जिसके प्रति म सकेत कर रहा हूँ, और इसी का स्पष्टीकरण उस रोज इस ढग से किया था कि भाई ! ज्ञान व चारित्र भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र वस्तुए थोडे ही है कि जब चारित्र होगा तो ज्ञान न होगा और जब ज्ञान होगा तो चारित्र न हो सकेगा। वह तो सवत्र ज्ञान रस वाला ही प्रमुखत है। उसका चारित्र भी तो ज्ञानात्मक है और ज्ञान भी चारित्रात्मक है। दोनो एक अखड रस रूप है। चारित्र की ओर झुके हुए अर्थात जीवन में हेय का त्याग व उपादेय का ग्रहण करके जीवन को ढालने का प्रयत्न करने, अथवा चरण करने के प्रति झुके हुए ज्ञान का नाम ही चारित्र है और इस-लिये हेयोपादेय का विवेक रखने वाला ज्ञान को कहना कौन झूठ है। भेद करके कथन करने में तो चारित्र का काम कहेंगे और अखड

अभेद रूप देखने पर सब एक ज्ञान का ही काम है या आत्मा का ही काम है।

इसी प्रकार जब सात तत्वो की बात चलती है तो तू इन्हे कहा खोजने का प्रयास करता है; जीव को त्रसस्थावर भेदो मे अजीव को पुद्गल आदि पाच द्रव्यों मे, आस्रव को नाव के छिद्र मे, वन्ध को किसी काल्पनिक फूक सरीखी आत्मा के प्रदेशो मे संवर को नाव छिद्र रोकने में, निर्जरा को पाल मे दवाये गये कच्चे आम मे, और मोक्ष को लोक शिखर पर किसी पत्थर की शिला मे। अर्थात् इन सातों वातो को दार्ष्टान्ति मे खोजने की वजाये दृष्टातो मे खोजने लगता है। कभी अपने जीवन की एकता मे इन सातो का अखड रूप खोजने का प्रयत्न किया है ? नही, तो भला फिर सात के सात तत्व याद करके भी तूने क्या याद किया ? सारी उम्र चर्चा मे कि विता दी पर सीखा क्या ? इसे आगम का रहस्यार्थ नही कहते। इसे ही तो मै शाब्दिक ज्ञान के नाम से कह रहा हूँ।

इन सातो का अखड चित्रण जो कि आगम को जनाना अभीष्ट है वह तो ऐसा है, कि मै एक 'जीव' या चेतन हूँ। यह शरीर रूप 'अजीव' मेरे जीवन का कलंक है। इसके आधार पर जो भी मन वचन काम की क्रिया नित्य करता हूँ वह मेरे जीवन का अपराध ही 'आस्रव' है। पुन: पुनः वह अपराध करके वरावर उनका पोषण करता आ रहा हूँ और, इस प्रकार जीवन मे एक प्रवल सस्कार उत्पन्न कर लिया है, जो कि पुन. पुन वह--वह अपराध करने के लिये मुझे प्रेरित करता है—उसी का नाम 'वन्ध' है। मन को कावू मे करके उसकी चचलता को रोककर उसे शान्ति मे स्थिर करने का प्रयास करे तो वचन व शरीर की क्रियाये स्वत कावू मे आ जाये, यही 'सवर' है। धीरे धीरे अभ्यास करते करते, अधिकाधिक वल के साथ वड़ी से वडी प्रतिकूलता मे भी मन की स्थिरता को वनाये

रखने की शक्ति उत्पन्न हो जायगी, और इस प्रकार वे सस्कार खड खड हो जायेंगे यही निजरा है। और सस्कारो व अपराधो से शून्य पूण शात जीवन ही मोक्ष है। यह है सात तत्वो का अखड ग्रहण ! एक मे सात और सात में एक दिखाई दे। उसे अखड ज्ञान कहते है, ऐसा अभिप्राय है। इस प्रकार के अखड ज्ञान के अभाव मे उन सातो का पृथक् ग्रहण मिथ्या ग्रहण है। क्योकि जीवन से पथक आस्रव आदि की सत्ता ही लोक में नही है।

यह है वह ३० अगो की पृथकता। वास्तव में चारित्र नाम का पृथक कोई पदाथ नही और चारित्र से शून्य ज्ञान नाम का कोई पदाथ नही। पर फिर भी जब चारित्र वाले अग को समझाया जायेगा तो ज्ञान वाले अग की बात आने न पायेगी। और जब ज्ञान को समझाया जायगा तो चारित्र के अग की बात आने न पायेगी। इसलिये दोनो पृथक-पृथक् स्वतत्र पदाथ भासने लगेंगे। भले ही शब्दो में आप स्वीकार करते रहें कि नही दोना पृथक-पृथक नही एक है, पर यथा स्थान उनको पूण चोकोर चित्रण में जडे बिना आपके ज्ञान पट पर उनका पृथक्-पृथक् ही अकित होना अनिवाय है। इसे मिथ्या एकात कहते हैं, क्योकि वह अपना चित्रण किसी भी सत्तात्मक वस्तु के अनुरूप नही है। आप कहें कि आगम में द्रव्य गुण, पर्याय तीनो को सत स्वीकार किया है। सो भाई ! इनको पृथक-पृथकास्वतत्र सत् स्वीकार किया है या एक ही पदाथ में जुटे हुए एक रस रूप 'अगो' के रूप में सत् स्वीकार किया है? यह बात ही तेरे जानने की है। परतु, शब्दों में उनका एक रस रूप प्रतिपादन करना असभव है। एक बार आप समझकर इन ३० के ३० अगो का यथा स्थान घटाकर यदि एक अखड चित्रण बना पाये, तो म आगे पीछे भी अर्थात घटमा रूप में भी या आनपूर्वी रूप में यदि कदाचित उनकी व्याख्या करू, तो आप तुरत सब कुछ जान जायेंगे परतु ऐसा किये बिना नही। इसलिये कतव्य तो यह है कि पहिले सम्यक प्रकार १ से ३० तक की व्याख्या का गुरु इन सब अगो के पृथक पृथक भावो के चित्रण का

ग्रहण करे धैर्य रखे, ३० के ३० भावो को ग्रहण करके भी अहकार न करे, सतुप्ट न हो। अव इनको यथा स्थान जड़ कर इन सव को रसात्मक अखड रूप प्रदान करे विल्कुल इस प्रकार कि जिस प्रकार चित्र न १ मे है अर्थात् चित्र न २ को चित्र नं. १ मे परिवर्तित करे।

क्योकि आगम मे या किसी भी उपदेप्टा के वचनो मे ऐसा होना संभव नही, कि जिस क्रम मे न. १ से न ३० तक आपने उन सर्व अंगो का निर्णय किया है उसी क्रम मे वे प्रगट हो। कहा तो सव आगे पीछे कोई भी कही, कटमा रूप से प्रकट हो जायेगे। और यदि उपरोक्त प्रकार दोनो स्पष्ट चित्रण आपके हृदय मे न होगे, तो अवश्यमेव उन वक्तव्यो या लेखों मे दीखने वाले विरोधो मे तथा उन पहिले व पीछे वाले अँगो मे परस्पर सम्मेलन वैठने पायेगा। इसी से कुछ विरोध सा भासने लगेगा। और आप कहने लगेगे कि पहिले तो कुछ कहा और अव कुछ कह रहे हो, कुछ समझ मे नही आता। जैसे कि जव यह वात सुनोगे कि 'चारित्र' ही धर्म है' तो कह वैठोगे कि फिर 'श्रद्धा धर्म का मूल है' यह क्यो कहते हो ? और जव सुनोगे कि ज्ञानधारा मे स्थिति पाना ही मुक्ति का कारण है तव कहने लगोगे कि फिर तो यह संभव व व्रतादि धारण निरर्थक ही रहा—इत्यादि, और यही आज हो रहे है। अत उपरोक्त प्रकार निर्णय करके दोनो चित्रण वनाने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार अभ्यास कर करके जव तक इस कोटी मे नही पहुँच जाते कि किसी भी गुण या पर्याय की वात सुनने या पढने पर यथा स्थान दृप्टि पहुँच जाये, उस समय तक हृदय पट पर वह चित्रण हुआ नही कहा जा सकता। यहा तो इससे भी ऊपर जाना है। क्योकि ऐसा तो कदाचित शाब्दिक चित्रण के द्वारा भी होना संभव है कि सुने या पढ़े शब्दो का अर्थ यथा स्थान कर सम्मेलन वैठा दिया जाये, परन्तु वास्तविक चित्रण तो उसे कहते है कि ऐसा प्रतीति

म आने लगे कि यह है वह आत्मा नाम का पदार्थ, यहा रखा हुआ, मेरे हृदय पट पर--विल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार अग्नि नाम पदार्थ के चित्रण की प्रतीति होती है। परन्तु आत्म नाम के अदृष्ट पदार्थ का इस प्रकार का चित्रण तो आगे जाकर उस ही समय होना सभव है, जब कि उसकी शान्ति का रसास्वादन हो जाये, और वह शब्दो म समझाया जाना असभव है। वह तो जीवन के ढलाव से उत्पन्न हो सकता है, और कदाचित जीवन पर से ही पढा भी जा सकता है। अन्तिम लक्ष्य तो वह है। इसलिये शाब्दिक उपरोक्त अभ्यास पर भी सतोष पा लेना योग्य नही, पर आगे बढते रहना ही योग्य है, कि अनुसधान द्वारा उसका प्रत्यक्ष साक्षात न कर ले।

पर प्रत्यक्ष करने मे पहिले इस परोक्ष चित्रण की अवश्य आवश्यकता पडेगी। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि वैज्ञानिक माग में प्रायोगिक (Practical) अनुसधान से पहिले सद्धान्तिक शिक्षण की आवश्यकता पडती है। इसके बिना प्रयोग (Experi ments) ही किये नही जा सकते, आविष्कार कैसे बन। और क्योकि यह परोक्ष चित्रण प्रत्यक्ष चित्रण के अनुरूप ही होगा, इसलिये इसे भी कदाचित व कथचित सम्यक् प्रमाण कह देते ह। वास्तव में तो सम्यक प्रमाण वह प्रत्यक्ष चित्रण ही है। अत आगम रूप भी प्रमाण उसी के लिये ह जिसने प्रत्यक्ष चित्रण की प्राप्ति के प्रति अग्रसर, फिर उसे खोज निकाला है। फिर भी उपाय ता यही है। बिना शाब्दिक आगम का आश्रय लिये अनुसधान करना असभव है। अत वतमान स्थिति म वस्तु का उपरोक्त प्रकार विश्लेषण करके अगो को यथा स्थान बैठाने का अभ्यास करना ही तेरे आपके लिये काय कारी है। धैय पूवक अभ्यास करें।

बडा उलझा हुआ कथन किया है जिसम अनेको प्रमुख प्रमुख शब्दो के लक्षण बनाने में आये ह। ताकि आगे आगे

११. कुछ लक्षण

के प्रकरणो मे उन उन शब्दो का प्रयोग होने पर आप उस उस शब्द का वही वही अर्थ समझे जो कि मुझे अभिप्रेत है, वह अर्थ न समझे जो कि पहिले से कदाचित आप जानते है। तभी मेरे वक्तव्य को आप समझने मे सफल हो सकेगे। अत: यहा उन सर्व शब्दो के लक्षण एक स्थान पर सग्रहीत करने योग्य है।

१. गुण—वस्तु के त्रिकाली अग को गुण कहते है।

२. पर्याय—गुण के क्षणवर्ती परिवर्तनशील अग को पर्याय कहते है।

३. वस्तु—गुण व पर्यायों के एक अखड त्रिकाली ध्रुव पिड का नाम वस्तु है। अनेको अगो का पिड होने के कारण वस्तु अनेकान्त है।

४. अनेकान्त (१) अनेक अंगो का पिड होना ही वस्तु का अनेकांग या अनेकान्तपना है।

(२) इस अनेकान्त वस्तु के अनुरूप ज्ञान मे प्रतिविम्ब या हृदय पट पर खिचा अखंड चित्रण का सद्भाव, ज्ञानकार अनेकान्त-पना है।

५. एकान्त (१) इन अनेको मे से कोई भी एक दो आदि अधूरे अंग, वस्तु का एकान्तपना है।

(२) इन अधूरे अगो का यथा स्थान ज्ञान के चित्रण मे ग्रहण, ज्ञान का एकान्तपना है।

६. प्रमाण (१) वस्तु के अनेक अगो का, एक साथ हृदय पट पर वस्तु के अनुरूप, एक रसात्मक (Burned) अखण्ड चित्रण की प्रत्यक्ष प्रतीति ही, प्रमाण ज्ञान है।

(२) इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आधार पर निकले शब्द व आगम भी प्रमाण है ।

(३) प्रमाण ज्ञान की विषयभूत वह अखण्ड वस्तु भी प्रमाण है ।

७ नय — (१) उस प्रमाण रूप चित्रण की प्रतीति में से कोई एक अग का पृथक विचार, नय ज्ञान है ।

(२) उस नय ज्ञान के आधार पर बोला या लिखा गया शब्द, नय शब्द या नय वचन है ।

(३) नय ज्ञान का विषयभूत वस्तु का वह अग भी, वस्तु की नय है ।

८ प्रत्यक्षज्ञान — वस्तु के अनुरूप ज्ञान पट पर पडा सहज प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष ज्ञान है ।

९ परोक्ष ज्ञान — शब्दो व भावो के अनुमान के आधार पर ज्ञान पट पर खेंचा गया वस्तु अनुरूप कृत्रिम अखड चित्रण, परोक्ष ज्ञान है ।

इन नौ लक्षणा में पहिले तीन लक्षण केवल वस्तु के सबध में ही लागू होते है । अगले दो लक्षण वस्तु व ज्ञान दोनो के सबध में लागू होते है । अगले दो लक्षण ज्ञान व शब्द व वस्तु तीना के सबध म लागू होते है । यहा न ४ से न ९ तक के ६ लक्षण जो ज्ञान में लागू होते है उनमें सम्यक् व मिथ्यापना दर्शा देना अभीष्ट है । यही बात इस अध्याय में बताई गई है । फिर एक बार दोहरा देता हूँ । हृदय पट पर वस्तु के अनुरूप अखड चित्रण रूप प्रमाण ज्ञान या अनुभव के सद्भाव में

साथ साथ वर्तने वाले, सब लक्षण सम्यक् है और उसके अभाव मे मिथ्या। इसी को प्रमाण की सापेक्षता कहते है । इसी प्रमाण की सापेक्षता के आधार पर नीचे इन छहों के लक्षण करने मे आते है । जिसको मै अखड चित्रण कहता चला आया हू उसी को आगम मे अनुभव नाम से कहा है । अत. नीचे उसी अर्थ मे अनुभव शब्द का प्रयोग करूंगा ।

इस पर से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अनुभव ज्ञानी ही यथार्थत: नयो का प्रयोग कर सकता है, शब्दागम ज्ञानी नही । और इसलिये जो शब्दागम भी भली भाति जानते नही उनके द्वारा तो "निश्चयनय व व्यवहारनय" इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग तो आज हो रहा है वह सार्थक कैसे हो सकता है ? वह तो केवल प्रलाप मात्र है । वह बेचारे नय का नाम तो लेते है पर नय को जानते नही ।

अनेकान्त

१. वस्तु के अनुरूप हृदय पट पर खिचे अखड चित्रण रूप प्रमाण को या अनुभव ज्ञान को सम्यकअनेकान्त कहते है ।
२. वस्तु के सपूर्ण विरोधी अगों का अखड ग्रहण सम्यक् अनेकान्त है ।

एकान्त

१. उपरोक्त प्रमाण ज्ञान या अनुभव के सापेक्ष वस्तु के एक दो आदि अधूरे अगो का विकल्प ज्ञान सम्यक् एकात है ।
२. परस्पर मे यथा स्थान समेल बैठाते हुए पृथक पृथक अंगो की मित्रता का ज्ञान सम्यगेकान्त है ।

प्रमाण:

१. वस्तु के अनुरूप ही अनेकान्त वस्तु का हृदय पट पर अखड चित्रण या अनुभव सम्यक् प्रमाण है ।

२ उपरोक्त सम्यक् प्रमाण के आधार पर बोला या लिखा गया उपदेश आगम भी सम्यक् प्रमाण है।

मिथ्या लक्षण

१ उस अखड चित्रण रूप प्रमाण स निरपेक्ष अर्थात् अनुभव शून्य वस्तु के सपूण अगो का शाब्दिक ग्रहण मिथ्या अनेकात है।

२ वस्तु के सपूण अगो का पृथक पृथक ग्रहण मिथ्या अनेकान्त है।

१ उपरोक्त प्रमाण या अनुभव से निरपेक्ष वस्तु के एक दो आदि अगो का अधूरा शाब्दिक ग्रहण मिथ्या एकान्त है।

२ परस्पर मे यथास्थान सम्मेल से रहित पथक पृथक बिखरे हुए अगो का परस्पर विरोधी खडित ग्रहण मिथ्या एकान्त है।

१ वस्तु के अनुरुप चित्रण या अनुभव के अभाव में केवल शब्दो के आधार पर का कल्पित ग्रहण मिथ्या प्रमाण है।

२ उपरोक्त मिथ्या प्रमाण के आधार पर दिया गया उपदेश व लिखा गया शास्त्र भी मिथ्या प्रमाण है।

३ सम्यग्ज्ञान अनेकोअगो के युगपत ग्रहण स्वरूप होने के कारण सम्यक अनेकान्त है।

नय

१ प्रमाण ज्ञान या अनुभव ज्ञान के सदभाव में तत्सापेक्ष खडित ज्ञान या अगा का पथक पृथक विकल्प सम्यक्नयज्ञान है।

२ उपरोक्त सम्यक्नय ज्ञान के आधार पर बोला या लिखा गया वचन व वाक्य व्यक्तव्य भी सम्यक्नय है।

३ पृथक पृथक अगो का सापेक्ष रूप ज्ञान होने के कारण यह सम्यगेकान्त है।

प्रत्यक्ष

१. अध्यात्म विज्ञान के प्रकरण में निज चैतन्य तत्वसंबंधी प्रत्यक्ष, अर्थात् शांति रस के अनुभव हो जाने पर, होने वाला कोई भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान, या अवधि मनः पर्यय आदि प्रत्यक्ष ज्ञान, सम्यक् प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

परोक्षज्ञान या ज्ञान

१. उपरोक्त आत्मानुभव के रहते जिस किसी भी विषय का प्रमाण ज्ञान सम्यक्-ज्ञान है।

मिथ्या लक्षण:

३. मिथ्या प्रमाण अनेको अशो के पृथक पृथक रूप से खंडित ग्रहंण होने के कारण मिथ्या अनेकान्त है।

१. प्रमाण ज्ञान या अनुभव ज्ञान से शून्य उससे निरपेक्ष पृथक पृथक अगो का ज्ञान मिथ्यानय ज्ञान है।

२. उपरोक्त मिथ्या नय ज्ञान के आधार पर बोले गए या लिख गए शब्द भी मिथ्या नय वाक्य है।

३. पृथक पृथक अगो का स्वतत्र रूप खडित ग्रहण होने के कारण यह मिथ्या एकात है।

१. भले, ही अन्य पदायो का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाने पर अध्यात्म प्रकरण मे आत्म शांति के अनुभव रहित वर्तनेवाला इन्द्रिय प्रत्यक्ष व अवधि प्रत्यक्ष मिथ्या प्रत्यक्ष ज्ञान है।

२. उपरोक्त आत्मानुभव के अभाव मे अन्य विषयो का स्पप्ट प्रमाण, ज्ञान रूप चित्रण भी मिथ्या ज्ञान है।

६

द्रव्य सामान्य

१. नयों को जानने का प्रयोजन, २. द्रव्य व उसके अंगो का परिचय, ३. पर्याय, ४. वस्तु के स्वचतुष्टय, ५. सामान्य व विशेष ६. साराश ७. द्रव्य के अगो सम्बन्धी समन्वय

१ नयो को जानने का प्रयोजन विना प्रयोजन के कोई काय करना पुरुषार्थ को व्यथ खोना है, सो बुद्धिमानो का काय नही। इसीलिये वतमान का यह नयका प्रकरण सीखने व सिखलाने के इस काय का भी प्रयोजन बराबर दृष्टि म बैठाये रखना चाहिये। इसका प्रयोजन व्यथ सीखना अथवा विद्वान बनकर दूसरे को समझाने की भावना को उत्तेजित करना नही है, बल्कि ज्ञान में मग्नता उत्पन्न करके इसमें पडे एकान्त या खेचातनी का अभाव करके इसकी सरसता का रस पान करने मात्र के अतिरिक्त अय कुछ नही है।

दृष्ट पदार्थो मे तो वह खेचातानी उत्पन्न होना सभव नही, क्योकि वहा तो वस्तु के सम्पूर्ण अंगो का यथा स्थान चित्रण रूप प्रमाण व अनुभव ज्ञान मौजूद है, जैसे कि अग्नि के सम्वन्ध मे मे आपसे चाहे कुछ भी कहू आप उसे सहज स्वीकार कर लेते है अग्नि को उष्ण कहू तब भी स्वीकार कर लेते है और उसे कथचित् शीतल कहूं तब भी स्वीकार कर लेते है। इसे उपयोगी कहू तब भी स्वीकार कर लेते है और इसे भयानक कहू तो भी स्वीकार कर लेते है। वहा तो इसे उपयोगी सुनकर स्वत. आपकी दृष्टि भोजन पकाने व पढने आदि कार्यों मे नित्य सहायक बनने रूप से इसके अनेक उपयोगी अगों पर, पड़ जाती है। और भयानक सुनकर स्वतः इसके उस प्रचण्ड रुद्र रूप पर पड जाती है, जिसमे कि बडे बड़े नगर तक क्षणभर मे भस्म होकर राख के ढेर बन गये है। वहां तो आपको संशय व शका नही होती कि "वाहजी ! आप इसे भयानक कैसे कहते है। इस प्रश्न को स्पष्ट करने के लिए आपको किसी भी चर्चा की आवश्यकता नही पड़ती। हाथ पर रखे आमले वत् मानो वे सारी बाते आपके हृदय की बाते ही हों। कारण यही है कि अग्नि का अनेकागी पूर्ण चित्रण आपके हृदय पट पर स्पष्ट है। आग के सम्पूर्ण अग आपको यथा स्थान जडे हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। जिस भी अग की बात आई और आपने उसे यथा स्थान फिर बैठा ली। इसी को मै ज्ञान की सरलता कहता हू ।

परन्तु यह बात अदृष्ट जो यह अध्यात्म विषय इसके संबध मे देखने मे नही आती। इस विषय की अनेको उलटी सीधी बाते सामने आने पर आपको विरोध भासने लगता है। अपनी रुचि की बातको आप सरलतासे स्वीकार कर लेते है, परन्तु उससे विपरीत बात आपके चित्त मे एक बौखलाहट सी उत्पन्न कर देती है । जैसे कि जब मै यह कहू कि भगवान वीर पूर्णरूपेण धर्म की मूर्ति है। तब तो आप प्रसन्नता व सरलता पूर्वक स्वीकार कर लेते है, पर जब यह

कहू कि भगवान वीर तो यहा बडे पापी दिखाई दे रहे है, तो आप एकदम चौंक उठते है। इसका कारण क्या ? केवल यही कि उनके अखिल जीवन का या उनके सम्पूर्ण अगो का चित्रण या प्रमाण ज्ञान आपको नही है। केवल सुनी सुनाई कुछ बातें आपकी भक्ति में पडी है। इन सबको यथा स्थान जडे बिना वे सब भी वास्तव में आपके लिये उपयोगी नहीं है। अत जो कोई भी जाने स्पष्ट चित्रण सहित जानें, यही इस नयके प्रकरणको जानने का प्रयोजन है ।

इस प्रयोजनकी सिद्धि के अर्थ वस्तु तथा उसके ध्रुव व क्षणिक सम्पूर्ण अगो का यथा योग्य सामान्य परिचय होना अत्यन्त आवश्यक है। उसके अभाव में नयो का कथन आगे चल न सकेगा। क्योकि नयो को उन अगो पर ही तो लागू करके प्रयोगमें लाना है। खाली नयो के नाम व लक्षण जानने से तो उपरोक्त प्रयोजन की सिद्धि हो नही सकती। यद्यपि द्रव्यो के अगो का कथन करना यहा अभीष्ट नही है,

२ द्रव्य व उसके अगो का परिचय

क्योकि वह एक स्वतंत्र विषय है, और नय समझने के लिये आप सब को यह विषय तो आता ही होगा, यह बात अनुक्त रूप से स्वीकृत (Understood) है। परन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में ऐसा नहीं है, सम्भवत आप में से कुछ तो उस विषय में अभ्यस्त हो पर कुछ उसमे अनभिज्ञ ही हो। अत योग्य तो यह था कि पहिले उस विषय का पूर्ण परिचय प्राप्त करके यहा आते, परन्तु अब यदि आही गये हो और इतने दिन से सुन रहे हो तो आप को निराश करना योग्य नही, इसलिए यद्यपि इस प्रकरण में उस विषय का विस्तृत व पूरा परिचय तो दिया न जा सकेगा, क्योकि उसका वर्णन ही सम्भवत महीनो में पूरा हो पावे, और तब यह मूल विषय पीछे रह जायेगा। अत प्रयोजन वश यहा उस विषय का सक्षिप्त परिचय दे देना ही पर्याप्त समझता हू। परिचित व्यक्तियो

को उससे वह ताजा हो जायेगा, और अपरिचित व्यक्तियों को कुछ धुन्धला सा अनुमान हो जायेगा, जो कि अगले प्रकरणों के लिये उनके हृदय मे भूमिका की स्थापना कर देगा, और वह उन प्रकरणों को सरलता से पकडने के योग्य हो जायेंगे ।

इस विषय सम्बन्धी कुछ मुख्य सिद्धान्त ही नीचे निर्धारित किये जाते है । यद्यपि पहिले भी उनके सबंध मे सकेत आ चुके है पर यहा एक ही स्थल पर सब को संगृहीत करना तथा उन्हे और अधिक विशदता प्रदान करना अभीष्ट है । कल वाले दृष्टात में भी यद्यपि उन अगो का सकेत किया गया, और उन्हे ३० पृथक पृथक कोष्टको मे स्थापित करके एक सम्पूर्ण वस्तु का परिचय दिलाने का प्रयत्न किया गया पर वास्तव मे वे ३० अग वस्तु मे इस प्रकार कोष्टकों में पड़े हुये नही है । भले समझाने के लिये यहां यह कोष्टक बना दिय गये हो, पर वहां तो वे एक रस रूप होकर पड़े है । सो कैसे वही यहां स्पष्ट किया जायेगा ।

वस्तु अनेक गुणो व पर्यायों का पिड है, पर गुण व पर्याय उसके अग है । उन अंगो से रहित वस्तु कुछ भी नही । जैसे कि आम अपने किसी विशेष रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श के अतिरिक्त कुछ नही । इन्हें पृथक कर लिया जाय तो आम नाम का कोई पदार्थ रहता नही । परन्तु इन्हे पृथक किया जाना सम्भव नही । क्यों कि यहाँ पिण्ड या समूह से तात्पर्य यह नहीं है कि जैसे बोरी मे अनाज भरा है वैसे वस्तु नाम की बोरी मे कोई गुण व पर्याय भरी है, और इस प्रकार बोरी रूप वस्तु अलग हो और गुण पर्याय अलग । या ऐसे भी नही है जैसे कि अनेक लकडियो को बाध कर एक गट्ठा बना लिया गया हो, जिस मे बोरी रूप गट्ठे की पृथकता तो यद्यपि नही रह पाई है, परन्तु इन अंगों रूप लकडियों की पृथकता दृष्ट होती है, जिनको कभी भी बखेरा जा सकता है या बाधा जा सकता

है। या वृक्ष में लगे टहनी फूलो पत्ता वत भी वह समूह नही है क्योकि यहा यद्यपि वह समूह किसी के द्वारा बाध कर बनाया तो नही गया है, पर बखेरा अवश्य जा सकता है तथा उन डाली पत्तो आदि की पृथकता भी दृष्ट है। यहा तो समूह से तात्पर्य एक रस रूप होकर रहना है, जो समूह न बनाया जा सके और न विगाडा जा सके। जैसे कि आम में रहने वाले उसके गुण न उसमें भरे जा सकने है और न निकाले जा सकते हैं। तथा जिन गणो को कल्पना द्वारा पृथक कर लेने पर आम नाम की कोई बोरी रूप वस्तु शेष रह जाये ऐसा भी नही है। इस प्रकार वस्तु अनेक गुण व पर्यायो का एक रस रूप पिण्ड है।

२ गुण वस्तु के सामान्य अग का नाम है जो वस्तु में सवदा पाया जाता है। भले ही उमकी अवस्था बदल जाये पर वह अपनी जाति सामान्य या अमुक इन्द्रिय का विषय सामान्य बदल कर दूसरी इन्द्रिय का विषय बन बठे ऐसा कभी नही हो सकता जैसे कि आम का हरा पना बदल कर भले पीला हो जाये पर नेत्र इन्द्रिय का विषय सामान्य रग पना हर हालत में उसमें विद्यमान रहता है। अत भले ही लौकिक व्यवहार में हम हरे पीले आदि को रग गुण समझते हो पर वह गुण नही, वह तो बदलने वाला अग है। रग नाम का गुण तो इन हरे पीले पने में, एक नेत्र इन्द्रिय के विषय सामान्य रूप से रहने वाला स्थायी अग है, जो हरे पने में भी है और पीले पने में भी वास्तव में जो भी अग दृष्ट होता है वह पर्याय ही होती है।

गुण व वस्तु कभी अनुभव में नहीं ली जा सकती, पर बुद्धि के द्वारा पकडी जा सकती है, अनुभव में तो वस्तु के अनेक गुणों की उस समय की पर्याय ही आया करती है। और इसी लिये उस समय सम्पूर्ण वस्तु उन पर्यायो के समह रूप ही भासती है। पर्यायो को ही व्यवहार में गुण रूप स्वीकार करके उसे उन गुणो के समुदाय रूप वह

दिया जाता है। उन पर्यायो के अनुभव के अतिरिक्त वस्तु का पृथक अनुभव नहीं हुआ करता। जैसे कि हरे पने व खट्टे पने आदि के अनुभव के अतिरिक्त आम का पृथक अनुभव नही। और इस प्रकार सामान्यत कहे जाने वाले हरे, पीले आदि गुण नहीं--रंग गुण की पर्याय हे। खट्टा मीठा आदि रस गुण नही रस गुण पर्याय है। अतः गुण वह जो सामान्य रूप से वस्तु मे सर्वदा पाया जावे। सर्वदा शब्द काल सूचक है अर्थात् भूत, भविष्यत व वर्तमान तीनो कालों में पाया जाये। जिसकी वस्तु मे न कभी नवीन उत्पत्ति हुई हो और न कभी विनाश हो सकता हो। इसीलिये वस्तु का त्रिकाली या ध्रुव अग स्वीकारा गया है। इसलिये वस्तु मे जितने गुण है उतने ही सदा वने रहते है। ऐसा नही होता कि आज उसमे ३ गुण है और कल को चार हो जाये और परसो को दो ही रह जाये। क्योकि गुणो के निकले विना उनकी संख्या मे हानि, और गुणो के प्रवेश विना उनकी सख्या मे वृद्धि होनी असंभव है।

गुण वस्तु मे सर्वत्र व्याप कर रहते है। सर्वत्र शब्द क्षेत्र सूचक है अर्थात् वस्तु के एक एक कण मे प्रत्येक गुण मानो ओतप्रोत होकर समाया रहता है। ऐसा नही होता कि एक कोने मे तो रस नाम का गुण वैठा हो और दूसरे कोने मे रंग नाम का गुण। वस्तु को तोड़ कर उसका छोटे से छोटा हिस्सा भी यदि पृथक निकाल कर देखे तो वहा सारे ही वस्तु के गुण दिखाई देगे। अर्थात जहां जहा वस्तु है वहा वहा उसका प्रत्येक गुण है। जहां जहा एक गुण है वहा वहा दूसरे आदि अनेक गुण है। जैसे आम मे जहां रग है वहा ही कोई न कोई स्वाद भी है, और वहां ही कोई न कोई गन्ध भी है इत्यादि। इनको सकोड़ कर सकुचित किया जाना भी सभव नही है।

४ यहां तक तो वस्तु को गुणो के समुदाय रूप से देखा और अव इसे पर्यायों के समुदायरूप से देखो। यदि केवल गुण ही गुण हुये

होते तो वस्तु सरल (Simple) रहती और इसे समझने में भी कठिनता न पडती। न पर्यायो ने इसे जटिल (Complex) बना दिया है, इसलिए समझने में भी दिक्कत पडती है, क्योंकि पर्याय बदलने वाले अगो का नाम है, जिसके कारण कि वस्तु प्रतिक्षण कुछ बदलती सी प्रतीत होती है। यद्यपि थोडे–समय-तक तो उसमे परिवर्तन देखते रहते हुए भी हम उसमें 'वही पने' की प्रतीति को खोते नही, पर अधिक समय गुजर जाने पर तथा उसका परिवर्तन बहुत स्थूल हो जाने पर हम उसमें से 'वही पने' की प्रतीति को भूल जाते है, और उसे कोई नई वस्तु समझने लगते है। जैसे कि अपने पुत्र को बच्चे से युवा होते तक तो आप 'यह वही मेरा पुत्र है' इस प्रकार की बात बराबर याद रखते हो, परन्तु मृत्यु के पश्चात वही प्राणी जब अन्यत्र जन्म लेकर आपके सामने आता है तो आप उसे वही न समझ कर कोई नया ही व्यक्ति समझने लगते हो। बस यही वह उलझन है जिसे दूर करना अभिष्ट है। अवस्था बदल जाने से यद्यपि वस्तु का अनुभवनीय दृष्ट रूप बदल तो जाता है पर वास्तव में वस्तु वही की वही रहती है, दूसरी नही बन जाती। जैसे कि विष्टा बदल कर अन्न बन उठी, तो भी वस्तु अर्थात वे परमाणु जिन पर कि यह दोनो अवस्थाये नृत्य कर रही है, वही के वही रहे।

५ क्योंकि गुणो के पिण्ड का नाम ही वस्तु है, गुणो से पृथक यह कोई स्वतत्र पदार्थ नही इसलिए वस्तु की पर्यायो के परिवर्तन का आधार भी गुणो का परिवर्तन है। उन सब का सामूहिक एक परिवर्तन ही वस्तु का परिवर्तन है, उन सब की सामूहिक एक पर्याय ही वस्तु की पर्याय है। जैसे कि रग का काला हो जाना, गध का दुर्गंधित हो जाना रस का कषायला हो जाना, और स्पर्श का पिलपिला हो जाना ही आम का सड जाना है इन से अतिरिक्त और कुछ नही पर्याय बदलने पर वास्तव मे गुण ही बदला हुआ प्रतीत होता है। और सब गुणो के बदलने पर वस्तु ही बदली हुई प्रतीत होता है। परन्तु

वदलना दो प्रकार से हो सकता है। रस वदल कर रंग वन जाये यह भी वदलना है और खाट्टा रस वदल कर मीठा रस वन जाये यह भी वदलना है। वस यहा वदलने का अर्थ पहली जाति का वदलना नही है वल्कि दूसरी जाति का है। जहां कि अनुभव रूप स्वाद वदल जाने पर भी रस पना नही वदलता। इसे कहते है वदलते हुये भी नही वदलना, नित्य में अनित्यता और फिर विरोध नही। अपार है इस अनेकान्त की महिमा।

यह वदलना ऐसा भी न समझना कि गुण या वस्तु नाम का कोई पदार्थ तो नीचे निश्चल पड़ा रहे, और पर्याय उसके ऊपर ही ऊपर वदला करे, जैसे कि चक्की का निचला पाट तो निश्चल रहे और उसके उपर उपरला पाट वरावर घूमा करे, वरावर घूमते रहते भी निचले पाट मे वह कोई फेर फार न कर सके। सो भाई! ऐसा नही है। वस्तु, गुण व पर्याय भले ही पृथक पृथक शब्दों के द्वारा कहे जा रहे हो, पर वास्तक मे सत्ताभूत पृथक पृथक पदार्थ नही है, जो एक तो वदल जाये और एक जूका तूं वना रहे। वास्तव मे यह तीन है ही नही, यह एक ही है फिर भी उसकी शक्तियो का विश्लेषण करने के लिए, इसे तीन भागो मे वाट लिया गया है। यह विभाजन काल्पनिक है, वास्तविक या वस्तु भूत नही। और इस लिये पर्याय वदलने पर कथचित गुण व वस्तु ही वदल जाती है। वस्तु व गुण का न वदलना तो केवल उसमे वही जाति व व्यक्तिपने की प्रतीति है। रस वदल कर भी रस जाति रूप ही रहा, और वस्तु वदल कर वही परमाणु ही रहा दूसरा परमाणु नही वन गया। ऐसी ध्रुवता समझना पर कथन मे भेद आये विना न रहेगा। आप सर्वत्र उपरोक्त प्रकार उस मे एक रस रूप अर्थ ही ग्रहण करते रहना।

६. उपरोक्त वक्तव्य पर से यह जाना गया कि पर्याय गुण के ही परिवर्तन शील अंग का नाम है, जो प्रत्येक क्षण वदलता रहता

है। इस लिये वस्तु में इसकी स्थिति सर्वत्र तो मिल सकती है पर सर्वदा नही। यही गुण व पर्याय में अन्तर है वह तो वस्तु में सर्वत्र व सर्वदा पाया जाता है, और यह सर्वत्र रहते हुये भी सर्वदा नही रहती। सर्वत्र तो इसलिए रहती है कि यह गुण का विशेष अग है, और अपने अपने गुण में व्याप कर रहती है। और क्योकि गुण सर्वत्र व्याप कर रहता है, इसलिये यह भी सर्वत्र व्याप कर रहती है, जैसे कि आम के गंध की सुगधित पर्याय सारे आम में व्याप्त होकर रहती है। पर सर्वदा नही रहती, बदल जाती है, बदल कर जो भी प्रकट होती है वह भी सर्वत्र ही रहती है पर सर्वदा नही। एक समय में एक गुण की एक ही पर्याय रह सकती है दो नही। जैसे जब रस खट्टा है तो मीठा पना वहा नही रह सकता।

७ उपरोक्त सब वक्तव्य पर से भली भाति समझा जा सकता है कि यदि वस्तु को अनुभव करने जायें तो उस समय उसमें उतनी ही पर्याय दिखाई देंगी जितने कि गुण। या कल वाले शिक्षण में पढें तो यो कहिये कि त्रिकाली वस्तु के कुल ३० अगो में से केवल ६ अग ही साक्षात दृष्ट हो सकेंगे। ३० के ३० अग हर समय वस्तु में नही रहते। जब 'क' में न १ वाला अग दृष्ट होगा तो उसके साथ रहने वाले 'ख' आदि गुणो के न ६ ११, १६, २१, २६, यह अग ही दृष्ट हो सकेंगे। अर्थात् एक लाइन में दिखाये गये, छ अग ही एक समय में दृष्ट हो सकेंगे। अगले समय में २, १२, १७, आदि दृष्ट हो सकेंगे उपर नीचे वाले कोई भी अग वस्तु में साथ एक नही देखे जा सकते ह। परन्तु ज्ञान की विचित्रता है कि उसमें यह ३० के ३० अग एक साथ देखे जा सकते हैं। वस्तु और ज्ञान के अनुभव में यह अन्तर ही वास्तव में वादविवाद या दृष्टियो की विभिन्नता का कारण बन जाता है। देखो यदि आप अपने जीवन पर दृष्टि डाल कर देखें तो आपको बाहर में अपने को देखने पर तो वर्तमान की यह प्रौढ अवस्था ही दिखाई देती है और इस सबधी ही अनेको बातें।

पर यदि ज्ञान मे उतर कर इसे ही देखें तो वहां तो वचपन रूप भूत-काल की पर्याय, वर्तमान काल की पर्याय, और अनुमान के आधार पर आगे आप क्या करेंगे इस सम्बन्धी रूप रेखाओ के रूप से पड़ी, भविष्यत काल सम्बन्धी कुछ पर्यायें भी दिखाई देती है। 'इसी के आधार पर आप आज भी यह कह उठते है' "अरे मेरे वचपन के यह दिन कितने प्यारे हैं। क्या ही अच्छा हो कि यह जिस प्रकार ज्ञान मे बैठे उसी प्रकार वाहर मे प्रगट हो जाये।" और यह भी कदाचित कह बैठते है कि "तुम्हे विश्वास आये या न आये पर मै तो अभी निकट भविष्य मे अमुक अमुक व्यापार करके क्रोडपति बन जाने वाला हू। इसमे सशय को अवकाश नही। वस जानो कि मैं आज क्रोडपति ही हूँ। और इसी ज्ञान के निश्चय पर आप, लोगो का रुपया भी कर्ज ले लेकर व्यापार मे लगा देते हैं वस इसी प्रकार सर्वत्र जानना। अर्थात् ज्ञान वस्तु से कुछ अधिक है क्योकि ज्ञान मे तो एक पर्याय जान लेने के पश्चात उसका चित्र वहां टिक जाता है, वहां से मिटने नही पाता, पर वस्तु मे से वह पर्याय मिट जाती है।

८ इसलिए वस्तु को चार प्रकार से समझा जा सकता है—१. त्रिकाली एक अखड वस्तु के रूप मे २. समयवर्ती अखड पिण्ड रूप वस्तु के रूप मे ३. किसी त्रिकाली सम्पूर्ण अखड गुण के रूप मे और ४. उस गुण की समय वर्ती एक पर्याय के रूप मे कल वाले ३० अंगो के चित्रण मे ३० के ३० अंगो को एक साथ देखे तो त्रिकाली वस्तु के दर्शन कहे जाते है, नं. १, ६, ११, १६, २१, २६, वाली पड़ी हुई पक्ति को देखे तो एक समय वर्ती एक अखड वस्तु के दर्शन कहे जाते है। न. १ से न. ५ तक की खड़ी पंक्ति को देखे तो त्रिकाली सम्पूर्ण एक 'क' गुण के दर्शन कहे जाते है। और किसी एक कोष्टक को देखे तो किसी भी गुण की एक पर्याय का दर्शन कहा जाता है। प्रमाण ज्ञान त्रिकाली पूर्ण वस्तु के दर्शन का नाम है। क्योकि हाथी के पाव मे सव का पाव, जहा त्रिकाली वस्तु हो वहा

एक समय की तो होगी ही, पर केवल एक समय की वस्तु मे त्रिकाली कैसे समायेगी। 'इस त्रिकाली दर्शन अभाव के मे ही वक्ता की वात कदाचित समझ मे नही आती, और झुझलाहट सी उत्पन्न होने लगती है, जैसे कि महावीर प्रभु को पापी सुन कर आप में हुई थी।

प्रभो! महावीर प्रभु का त्रिकाली चित्रण दृष्टि में रखकर उनके सब अगो में से जरा भील की पर्याय वाला अग तो उठाकर देखें। क्या वह पापी नही है ? क्या पापी रूप से दीखने वाला वह व्यक्ति कोई और है ? भले उस समय उसका नाम कुछ और हो, पर व्यक्ति तो वही है। फिर यह झुझलाहट क्यो ? मने झूठ क्या कहा ? आप भी तो स्वय अनेको बार ऐसा कहते ह। क्या भूल गये ? याद करो वह दिन जब आप मुझे दीवार पर खिच उस भील के चित्र को दर्शाते हुये कह रह थे, कि यह महावीर स्वामी का जीव था। वर्तमान काल सम्बन्धी भाषा का प्रयोग किया था। भूतकाल सम्बन्धी प्रयोग तो तब करते जो चित्र सामने न होता। बस उसी प्रकार भले दीवार पर खिचा चित्र न ही पर हृदय पट पर खिचा वह चित्र अब भी मर सामने प्रत्यक्ष है, जिसके आधार पर कि म उन्हें 'पापी ह' ऐसा कह रहा हू 'पापीथे' ऐसा नही कह रहा हू। इसी प्रकार सवत्र जानना।

द्रव्य व उसके अगो का सामान्य परिचय द देने क पश्चात ३ पर्याय उनकी कुछ विशेषताओ को भी जान लेना योग्य है। गण व पर्यायो का एक अखड पिण्ड द्रव्य है ऐसा बता दिया गया। अत यह कहा जा सकता है कि ये गुण व पर्याय इस द्रव्य के अग या विशेष है, तथा द्रव्य स्वय अगी है। यद्यपि पहिल पर्याय शब्द का प्रयोग परिवर्तन शील अग के लिये किया गया है, परन्तु वास्तव मे इस शब्द का अर्थ है वस्तु के विशेष, वे भले गुण रूप हो कि परिवर्तन शील पर्याय रूप। वे विशेष ही दो प्रकार के होते ह—अक्रम वर्ती या

सहवर्ती तथा क्रम वर्ती। जो सदा पाये जाये उन्हे अक्रम वर्ती या सह-वर्ती कहते है और जो आगे पीछे पाये जाये उन्हे क्रमवर्ती कहते है। इस प्रकार गुण तो अक्रम वर्ती विशेप है और पर्याय क्रमवर्ती विशेप है। ये दोनो ही सामान्यत पर्याय शब्द के वाच्य है, परन्तु समझने व समझाने मे भ्रम न पडे इसलिये अक्रमवर्ती पर्याय के लिये 'गुण' शब्द और क्रमवर्ती पर्याय के लिये 'पर्याय' शब्द निश्चित कर दिये गये है ।

क्रमवर्ती या परिवर्तन शील पर्याय भी दो प्रकार की होती है-द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय या व्यञ्जन पर्याय व अर्थपर्याय दोनो शुद्ध व अशुद्ध के भेद से दो दो प्रकार की हो जाती है । उन्ही का क्रम से कथन किया जायेगा ।

यहा द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय का विशेष स्पष्टीकरण करना इप्ट है । द्रव्य के मुख्यत दो लक्षण करने मे आते है "गुणो के समुदाय को द्रव्य या वस्तु कहते है" ऐसा एक लक्षण तो प्रकृत कथन मे समझाया ही जा चुका है । परन्तु इसके अतिरिक्त द्रव्य का एक दूसरा लक्षण भी प्रसिद्ध है। "गुणो के आश्रय या आधार को द्रव्य कहते है । अर्थात् जिस मे गुण प्रतिप्ठत होते है या रहते है वह द्रव्य है । पहिला लक्षण अभेद दृष्टि से किया गया है और दूसरा भेद दृष्टि से । इसलिए पहिले लक्षण मे गुणो के समुदाय से पृथक किसी अन्य स्वतन्त्र द्र य की प्रतीति नही होती । परन्तु दूसरे लक्षण मे ऐसी सी प्रतीति होती है मानो द्रव्य जुदा है और गुण जुदा । द्रव्य भाजन है और गुण उस भाजन म रखे जाने योग्य कोई पदार्थ । अत. स्पष्ट है कि द्रव्य प्रदेशात्मक होना चाहिये, अर्थात कुछ लम्बाई चौड़ाई व मोटाई को धारण करने वाला होना चाहिये, नही तो वह भाजन के रूप मे कल्पित नही किया जा सकता । ऐसे प्रदेशात्मक द्रव्य मे गुण सर्वत्र व्याप कर रहते है । इस पर से केवल यह वात दर्शाने का

प्रयत्न किया गया है कि द्रव्य क्षेत्र या प्रदेश प्रमुख होता है और गुण भाग प्रमुख। जैसे 'आम' कहने पर उस आकृति विशेष का फल लक्ष्य में आता है, और 'मीठा' कहने पर उस के स्वाद का भाव दृष्टि में आता है।

उपरोक्त कथन पर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि द्रव्य प्रदेशात्मक स्वीकार किया गया है, जब कि गुण भावात्मक। इसलिये द्रव्य व गुण की पर्याय के लक्षण करते समय भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि द्रव्यपर्याय प्रदेशप्रमुख मानी जाती है और गुण पर्याय भाव प्रमुख। इसी लिये आगम में द्रव्यपर्याय का लक्षण उस वस्तु या द्रव्य का संस्थान या आकृति किया गया है, और प्रदेश या संस्थान से अतिरिक्त उसके अन्य सब गुणो की पर्याय को गुण पर्याय नाम दिया गया है।

इस प्रकार द्रव्यपर्याय के दो लक्षण स्वीकार किये गये है। द्रव्य के लक्षण न १ के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण गुणो की किसी एक विवक्षित समय की पृथक पृथक सम्पूर्ण पर्यायो का समूह ही उस विवक्षित समय का द्रव्य है यही द्रव्य पर्याय है। द्रव्य के लक्षण न २ के आधार पर कहा जा सकता है कि द्रव्य के आश्रित अनेक गुणो में से केवल प्रदेशत्व गुण की पर्याय को द्रव्यपर्याय कहते है और उससे अतिरिक्त अन्य सब गुणो की पृथक् पृथक् पर्याय को गुण पर्याय कहते है। द्रव्य पर्याय का दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय और गुण पर्याय का दूसरा नाम अर्थपर्याय भी है।

दूसरे प्रकार से भी अर्थ व व्यञ्जन पर्याय के लक्षण किये गये है। वस्तु में जो परिवर्तन स्थूल दृष्टि से देखने में आता है, उसके सबंध में विचार करने से पता चलता है कि वह परिवर्तन वास्तव में प्रतिक्षण होने वाले किसी सूक्ष्म परिवर्तन का फल है। जैसे बालक से वृद्ध होने-

द्रव्य से पृथक् अपनी सत्ता न रखने के कारण स्वय द्रव्य है, द्रव्य मे सर्वत्र व्यापकर रहने के कारण द्रव्य का आकार या क्षेत्र ही उसका आकार या क्षेत्र है, एक क्षण स्थायी होने के कारण क्षण मात्र उसका काल है, उस क्षण मे प्रगट हुई गुण की शक्ति का कुछ अश ही उसका भाव है क्योकि गुण की किसी पर्याय मे शक्ति अश अधिक प्रगट रहते है और किसी मे कम, जैसे कि बालक की पर्याय मे ज्ञान गुण की शक्ति कम व्यक्त होती है और युवा अवस्था मे अधिक।

द्रव्य गुण व पर्याय का क्षेत्र काल व भाव क्योकि सर्वत्र समान नही रहता है, हीन या अधिक देखा जाता है, इसलिये इनकी हीनाधिकता को मापने के लिये किसी एक गज या यूनिट की आवश्यकता पडती है। मापने के छोटे से छोटे पैमाने को यूनिट कहते है। क्षेत्र का छोटो से छोटा भाग क्षेत्र का यूनिट है और इसी प्रकार काल व भाव का भी अपना अपना छोटे से छोटे भाग उस उसका यूनिट है। यूनिट द्वारा क्षेत्रादि का परिमाण जाना जाता है, पर यूनिट का प्रमाण अन्य के द्वारा नही जाना जाता, क्योकि वह आदि मध्य अन्त की कल्पना से रहित अविभागी होता है।

किसी पुद्गल स्कन्ध अर्थात दृष्ट पर्याय का विभाजन करते जाये। इस प्रकार इसका जो ऐसा अन्तिम भाग प्राप्त हो जिसका पुन: विभाजन न किया जा सके उसका नाम 'परमाणु' है। वह सब से छोटा द्रव्य है। अत: किसी स्कन्ध मे द्रव्य का परिमाण जानने के लिए परमाणु एक यूनिट है। यह परमाणु जितनी जगह घेरता है वह सब से छोटा क्षेत्र है उसे एक प्रदेश कहते है। अथवा क्षेत्र का कल्पना द्वारा विभाजन करते जाने पर जो ऐसा अन्तिम भेद प्राप्त हो जिसका पुनः विभाग न किया जा सके उसे एक 'प्रदेश' कहते है। यह क्षेत्र मापने का यूनिट है। इसी प्रकार किसी काल के परिमाण को कल्पना द्वारा घटा, मिनट सैकेन्ड आदि के क्रम से विभाजित करते जाने पर जो अन्तिम

भाग प्राप्त हो जिसका आगे विभाग किया जाना सभव न हो, उसे एक 'समय' कहते हैं। यह छोटे से छोटा काल है। इससे कालका परिमाण जाना जाता है। इसी प्रकार किसी गुण की शक्ति का कल्पना द्वारा विभाजन करते जाने पर उसका जो अन्तिम भाग प्राप्त हो, जिसका पुन विभाग किया जाना सम्भव न हो, उसे एक 'अविभाग प्रतिच्छेद' कहते ह। यह सब से छोटे भाव है। इसके द्वारा गुण या भाव की शक्ति का परिमाण जाना जाता है।

परमाणु द्रव्य का यूनिट है, प्रदेश क्षत्र का यूनिट है, समय कालका यूनिट है और अविभाग प्रतिच्छेद भावका यूनिट है, इन के द्वारा उस उस की हानि वृद्धि का प्रमाण मापा जाता है। इस प्रकार द्रव्य गुण व पर्याय इन तीनो को चतुष्टय में गर्भित कर दिया गया आगे आगे के प्रकरणो में इसी चतुष्टय के आधार पर वस्तु का या नयो का कथन किया जायेगा, अत इनको दृढत हृदयगम कर लेना योग्य है।

५ सामान्य व विशेष तत्व परिचय

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इस चतुष्टय रूप से वस्तु का विभाजन कर दिया गया। अब इन चारो में सामान्य व विशेष भाव रूप द्वैत दर्शाता हू। जिस विकल्प मे अन्य भेद सम्भव न हो उसे विशेष कहते है, और इस प्रकार के अनेक विशेषो में अनुगत कोई एक अखण्ड भाव सामान्य शब्द का वाच्य है अर्थात जिसके अन्तगत अनेको विशेष या भेद देखे जा सकें उसे सामान्य कहते है।

सत् की अपेक्षा समस्त जड व चेतन द्रव्यो का समूह रूप सर्व व्यापी यह अखण्ड विश्व सामान्य सत है। क्योकि इसके अन्तगत जीव अजीव आदि अनेको अन्य द्रव्य जातियें पाई जाती है। इसे महा सत्ता भी कहते ह। अन्तगत भेद स्वरूप जीव अजीव द्रव्य जातियें इस के

विशेप हे । उन्हे अवान्तर सत्ता भी कहते है । महा सत्ता व अवान्तर सत्ता का यह सक्षिप्त परिचय है । इसका विगद वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा । सत् के इन अवान्तर विशेषो मे भी निम्न प्रकार सामान्य व विशेष का विभाजन किया जा सकता है ।

द्रव्य की अपेक्षा जीव या अजीव जातिये सामान्य द्रव्य है, क्योकि इनके अन्तर्गत मनुष्य तिर्यच आदि अथवा पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि अन्य भेद प्रभेद पाये जाते है । इसे जीव या अजीव द्रव्य सामान्य कहते है, और इसके अन्तर्गत पाये जाने वाले उपरोक्त भेद उसके विशेष हे । द्रव्य के इन विशेपो मे भी सामान्य व विशेप का विभाग किया जा सकता है । जैसे——

मनुष्य जाति सामान्य मनुष्य है, क्योकि इसके अन्तर्गत आर्यम्लेच्छ, अनेको जातिये, पाई जाती हें । और इस मे पाये जाने वाले उपरोक्त भेद उसके विशेप है । आर्य म्लेच्छ आदि इन विशेषो मे भी सामान्य व विशेष का विभाग किया जा सकता है ।

आर्य मनुष्य सामान्य है, क्योकि इसके अन्तर्गत देवदत्त इन्द्रदत्त आदि अनेको व्यक्ति पाये जाते है । और इसमे पाये जाने वाले उपरोक्त भेद विशेप है । इसी प्रकार परमाणु अजीव द्रव्य का अन्तिम विशेप है ।

इस प्रकार सामान्य व विशेष विभाग की यह अटूट श्रृंखला तब तक चलती रहती है जब तक कि अन्तिम वह विशेष प्राप्त न हो जाये जिसमे कि अन्य भेद दिखाई न दे सके । इनमे से प्रथम विकल्प सर्वथा सामान्य है और अन्तिम विकल्प सर्वथा विशेष । इन के मध्य के सर्व भेद कथञ्चित सामान्य व कथञ्चित विशेप है । सामान्य इसलिये कि उनमे अवान्तर भेद दिखाई देते है और विशेप इसलिये

कि अपने से ऊपर वाले विकल्प म स्वयभेद रूप से रहते ह । इस प्रकार अपने से ऊपर की अपेक्षा सब भेद विशेष कहलाते है, और अपने अवान्तर भेदो की अपेक्षा वही सामान्य कहलाते ह । सामान्य व विशेष विभाग का क्रम क्षेत्र काल व भाव में भी सत्र इसी प्रकार जानना । कथन को सरल बनाने के लिये उनके मध्य वाले अवान्तर भेदो को छोड कर केवल सर्व प्रथम सामान्य व अन्तिम विशेष को ही दर्शाया जायेगा ।

क्षेत्र की अपेक्षा सब व्यापी एक अखण्ड विश्व का आकार सामान्य क्षेत्र है, क्योकि इसके अन्तगत अनन्तो प्रदेशो का विभाग किया जाना सम्भव है । एक प्रदेश इसका विशेष है, क्याकि उसमें अन्य प्रदेशो की कल्पना सम्भव नही । इन दोनो के मध्य में सामान्य जीव द्रव्य का लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी आकार, या मनुष्य का सीमित असख्यात प्रदेशी आकार, अथवा पुद्गल स्कन्धो के यथा योग्य बडे छोटे सब ही दृष्ट आकार अवान्तर सामान्य या विशेष क्षेत्र हे । पुद्गल स्कन्धो में से कोई अनन्त प्रदेशी होता है । कोई असख्यात या सख्यात प्रदेशी परमाणु का एक ही प्रदेश होता है ।

काल की अपेक्षा अनादि से अनत पयन्त एक अखण्ड काल की धारा त्रिकाली सामान्य काल है, क्योकि इसके अन्तगत अनेको समयो का विभाग किया जाना सम्भव है । एक समय मात्र काल विशेष काल है । इन दोनो के मध्य म सैकण्ड, मिनट, घण्टा, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, कल्प आदि अवान्तर सामान्य या विशेष काल है । काल का अर्थ यहा काल नही बल्कि उतनी उतनी स्थिति प्रमाण द्रव्य की पर्यायें है यह बात न भूलना ।

भाव की अपेक्षा पूर्ण शक्ति युक्त त्रिकाली सामान्य गुण का भाव सामान्य है, क्याकि उसमें अनेको अविभाग प्रतिच्छेद का विभाजन

किया जाना सम्भव है। और एक अविभाग प्रतिच्छेद उसका विशेष है। इन दोनों के मध्य मे हीनाधिक ज्ञान की प्रगटता की भाति अनेकों अवान्तर सामान्य व विशेष भावो की कल्पना की जा सकती है।

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो मे ही इस प्रकार सामान्य व विशेपपना देखा जा सकता है। तहा सामान्य चतुष्टय से सहित द्रव्य या सत् सामान्य द्रव्य या सत् कहा जाता है और विशेप चतुष्टय से युक्त द्रव्य या सत् विशेप द्रव्य या सत् कहा जाता है। अवान्तर चतुष्टय से युक्त द्रव्य या सत् अवान्तर सामान्य या विशेप द्रव्य या सत् कहा जाता है।

नयो का कथन समझने के लिये सामान्य तथा विशेष की व्याख्या ध्यान मे रखनी अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि बहुत आगे जाकर नयो के मूल व उत्तर भेदो के लक्षण आदि करते समय 'सामान्य व विशेप यह दो शब्द ही प्रमुखत प्रयुक्त करने मे आयेगे। जैसे कि सामान्य सत् या सामान्य द्रव्य की ही सत्ता को स्वीकार करके विशेष द्रव्य की सत्ता को गौण करने वाला द्रव्यार्थिक नय है, और केवल विशेष द्रव्य या सत् द्रव्य की सत्ता को स्वीकार करके सामान्य सत्ता को गौण करनेवाला पर्यायार्थिकय नय है। तहा भी द्रव्यर्थिक नय के दो भेद हे-शुद्ध व अशुद्ध। महासत्ता रूप प्रथम सामान्य की ही सत्ता को स्वीकार करे सो शुद्ध द्रव्यार्थिक है, और अवान्तर सामान्यो की सत्ता को स्वीकार करे सो अशुद्ध द्रव्यार्थिक है। महा सत्ता एक ही है, अत. उसको विषय करने वाला शुद्ध द्रव्याथिक भी एक ही है। अवान्तर सत्ता अनेक है अत उसको विषय करने वाले अशुद्ध द्रव्यार्थिक भी अनेक है। इसी प्रकार पर्यायार्थिक नय भी दो प्रकार है—शुद्ध व अशुद्ध। एक अन्तिम विशेष का ग्राहक शुद्ध पर्यायार्थिक नय एक है और अवान्तर विशेषो का ग्राहक अशुद्ध पर्यायार्थिक अनेक भेद रूप है।

११. अथवा द्रव्य के आकार या संस्थान सम्बन्धी पर्याय को द्रव्य पर्याय कहते है, और इससे अतिरिक्त अन्य गुणो की पर्यायो को गुण पर्याय कहते है ।

१२. द्रव्य पर्याय को व्यञ्जन पर्याय और गुण पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं । अथवा सूक्ष्म पर्याय को अर्थ पर्याय व स्थूल पर्याय को व्यञ्जन पर्याय कहते है ।

१३. गुण व पर्याय का अधिष्ठान द्रव्य कहलाता है। वह आकार वान होता है ।

१४ द्रव्य के आकार या संस्थान को उसका क्षेत्र कहते हैं । उसका सूक्ष्मतम भाग प्रदेश कहलाता है ।

१५ द्रव्य, गुण व पर्यायो की स्थिति उस उस का काल कहलाता । उसका सूक्ष्मतम भाग एक समय कहलाता है । अर्थ पर्याय की स्थिति एक समय है, तथा व्यञ्जन । पर्याय की स्थिति मिन्ट, घण्टे, द्रवर्षादि है ।

१६ गुण या गुण पर्याय का नाम ही भाव है। उसका सूक्ष्मतम भाग एक अविभाग प्रतिच्छेद कहलाता है ।

१७. यह द्रव्य क्षेत्र काल व भाव वस्तु के स्वचतुष्टय कहलाते है ।

१८. अन्तिम निर्विशेष भाग को विशेष कहते है, जैसे प्रदेश समय आदि और अनेक विशेषो मे अनुगत एक तत्व सामान्य कहलाता है ।

१९. सामान्य चतुष्टय स्वरूप तत्व सामान्य और विशेष चतुष्टय स्वरूप तत्व विशेप कहलाते है ।

द्रव्य के इस उलझे हुये रूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये यहा कुछ प्रश्नोत्तर करना आवश्यक है

द्रव्य व अगो सबधी समन्वय

१ प्रश्न — गुण व गुण पर्याय में क्या अन्तर है

उत्तर — (1) गुण पर्याय उस गुण की एक समय की व्यक्ति का नाम है जो अगले समय में बदल जाती है, और गुण उस शक्ति का नाम है जिस के आधार पर कि वह पर्याय बदलती रहती है, या जिस पर कि वे सब आगे पीछे होने वाली पर्याय नृत्य करती है।

(11) गुण पर्याय उसकी एक समय की व्यक्ति का नाम है और गुण उसकी तीन काल की सब व्यक्तियो के समूह का नाम है, उनके एक अखड पिण्ड का नाम है। अखड पिण्ड का रूप आगे प्रश्न न ३ में दर्शाया जायेगा ।

२ प्रश्न — द्रव्य व द्रव्य पर्याय में क्या अन्तर है

उत्तर — द्रव्य उस त्रिकाली पिण्ड रूप गुणो का समूह है द्रव्य पर्याय उन सब गुणो की एक समय की पृथक पृथक पर्यायो का समूह। त्रिकाली गुणो का समूह त्रिकाली द्रव्य और गुणो की एक समय की पर्यायो का समूह एक समय का द्रव्य। त्रिकाली द्रव्य को द्रव्य कहते ह और एक समय के द्रव्य को द्रव्य पर्याय। यह भी अगले प्रश्न के अन्तर्गत आने वाले दृष्टात पर से स्पष्ट हो जायेगा। इसके अतिरिक्त द्रव्य के स्थान या आकृति को भी द्रव्य पर्याय कहते ह ।

३ प्रश्न — द्रव्य म या गुण मे पर्याय, भले सर्वत्र व्यापकर रहती हो पर सर्वदा व्यापकर नही रहती, ऐसा नियम कर दिया गया

है। इस नियम के अनुसार गुण मे या द्रव्य मे एक समय मे एक ही पर्याय हो सकी है, दो नही। फिर एक समय मे त्रिकाली पर्यायो को कैसे देखा जा सकता है ?

उत्तर — प्रश्न ठीक है। वस्तु मे व वस्तु के ज्ञान मे कुछ अन्तर है। यह अन्तर तेरी दृष्टि मे स्पष्ट नही है, यही कारण है इस प्रश्न की जागृति का है।

वस्तु मे पर्याय उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाती है, फिर दिखाई नही देती, परन्तु क्या ज्ञान मे भी ऐसा होता है ? वहा तो वह एक पर्याय को जान लिया तो सर्वदा के लिये जान लिया। वहा वह विनष्ट पर्याय दिखनी वन्द हो जाये ऐसा नही हो सकता। क्योकि वह वहा स्मृति का विपय वन जाती है। इसी प्रकार अनुत्पन्न पर्याय या भविष्य काल सम्वन्धी पर्याय भले ही वस्तु मे व्यक्त न हो, पर अनुमान के आधार पर ज्ञान मे वह व्यक्त है। जैसे कि आप अपनी होने वाली मृत्यु के समय की अवस्था का या वुढापे की अवस्था का पहिले ही से निर्णय किये वैठे हो।

आप अपने जीवन पर दृष्टि डाल कर देखे तो आपकी दृष्टि मे आप का वचपन अव्यक्त नही है, प्रत्यक्षवत् है। आज की अवस्था तो व्यक्त है ही, और आगे की वुढापे वाली अवस्था भी व्यक्त् व तही है। इस प्रकार आपके ज्ञान मे वस्तु की तीनो कालो की पर्याये पड़ी है। हीन ज्ञान मे यह पर्याय कुछ कम है, ज्ञान अधिक हो जाने पर यह कुछ अधिक हो जाती है, और पूर्ण हो जाने पर वस्तु की त्रिकाली पूरी की पूरी पर्यायो को पकड़ने मे समर्थ हो जायेगा। परीक्षा ज्ञान मे यह कुछ अस्पप्ट सी है, विशेषत: भविष्यत काल सम्वन्धी, पर प्रत्यक्ष ज्ञान मे यह सव स्पप्ट होगी चाहे भूत काल की हो या भविष्यत

काल की। नय प्रमाण ज्ञान का अग है वस्तु का नही, अत, यहा ज्ञान पर से वस्तु को पढना है, वस्तु पर से नही। जो वस्तु को ही पढने जायेंगे तो वहा तो एक समय की पर्याय ही मिलेगी, तीनो कालो की पर्यायो का अवस्थान वहा असम्भव है।

लोक में ऐक ऐसा मत है कि वस्तु में जितनी पर्याय हो चुकी ह वे भी वस्तु में अभी तक बठी हुई है, और जितनी होने वाली ह वे भी सब इसमे पहिले ही से विद्यमान है। मानो वस्तु त्रिकाली पर्यायो का कोष है। एक एक करके वे पर्याय बाहर आती रहती ह और पुन उसमें प्रवेश करती रहती है। दृष्टान्त के रूप मे उनका कहना है, कि शब्द आकाश की पर्याय है, और जितने भी शब्द आज तक रामायण या महाभारत काल में उत्पन्न हुये ह या उससे पहिले हो चुके ह या आगे होने वाले है वे सब आकाश में विद्यमान ह वैज्ञानिक किसी यन्त्र विशेष के द्वारा उनमें से जो चाहे वर्तमान में सुन सकता है। सो भाई! ऐसा नही है। ज्ञान मे उन शब्दो का भान विद्यमान रह सकना सम्भव है, पर आकाश में नही, न ही वैज्ञानिक कोई ऐसा यन्त्र बना सकता है कि रामायण काल की आवाजें वर्तमान म सुन सकें। रेडियो में सुने जाने वाले शब्द तो वर्तमान समय में प्रगट हो रहे ह वही है, भूत भविष्यत काल वाले नही। इसलिये रेडियो पर से उस मत की पुष्टि की जाना सम्भव नही।

४ प्रश्न — ज्ञान में उन त्रिकाली पर्यायो को कैसे देखा जा सकता ह ?

उत्तर — आप अपने सारे जीवन की एक फिल्म तय्यार कीजिये जसी कि सिनमा की फिल्म होती है। इसमें बचपन का फोटो स्पष्ट है, स्कूल के जीवन का फोटो स्पष्ट है, पिकनिक पर गये थे वह फोटो भी स्पष्ट है, आपके विवाह का फोटो स्पष्ट है,

आज का फोटो स्पष्ट है, आगे आने वाले बुढापे व मृत अवस्था का फोटो कुछ अस्पष्ट है। पर अस्पष्टता ज्ञान की कमी के कारण है। प्रत्यक्ष ज्ञान मे यह भी स्पष्ट हो जाता है। यह तो आपके छोटे जीवन की फिल्म हुई। देखिये मे अपने पूर्ण जीवन की फिल्म खेचकर दिखाता हूँ, जो मेरे ज्ञान मे प्रत्यक्ष पडी हुई है। देखिये इसमे न.१ का फोटो निगोद का रूप है, दूसरा फोटो घास के रूप का, तीसरा आग्नि के रूप का और इसी प्रकार यह देखिये आगे आगे वायु, कीडा, चीटी, मक्खी, भवरा, ततैया, चिडिया, तोता, मछली, सर्प, वृक्ष, नारकी, गाय, बैल, घोडा, देव फिर कीडा, चूहा, मनुष्य, यह यहा तक तो भूत काल की २२ अवस्थाओं के फोटो नम्बर वार इस पर चित्रित है। और आगे चलिये। देखिये यह देव, फिर मनुष्य, मुनि, अर्हंत और यह दखिये सिद्ध इस प्रकार यह पाच फोटो भविष्य काल की सारी यथा योग्य अवस्थाओं के भी नम्बर वार इस पर स्पष्ट चित्रित है। बस मेरे जीवन की २७ फोटो वाली फिल्म तैय्यार हो गई। इसमे न पहले की कोई पर्याय छूट पाई है और न पीछे की ।

सिनेमा की फिल्मवत् इसको देखने के दो तरीके है ।

(1) या तो इसे मशीन पर चला कर जैसे साधारणत देखने मे आती है उस प्रकार देखले ।

(ii) और या इसे सामन दीवार पर लम्बी लटका कर देखते । या यो कहिये कि किसी ऐसी कल्पनिक मशीन के द्वारा देखले जिससे कि उस सारी लम्बी फिल्म के आकार यथा स्थान जड़े हुये सामने पर्दे पर, एक लबी फैली हुई फिल्म के रूप मे ही आ जाये ।

न १ वाले टग से देखने पर तो उसमें भाग दौड होती दिखाई देगी जैसे कि रोज देखने में आता है। पर न २ वाले टग से देखने पर तो सब फोटो यथा स्थान जडे हुये स्थिर दिखाई देंगे।

पहिले ढग से देखने पर आपको दृष्टि के सामने एक समय में एक ही फोटो आता है, वह आगे सरक जाने के पश्चात फिर दूसरा आता है, परन्तु दूसरे ढग से देखन पर इस प्रकार क्रम नही रहता, सारे फोटो एक साथ दृष्टि में आ रहे ह। या यो कहिये पहिले ढग म तो आगे आगे के फोटो देखते समय पीछे ओर आग स आख मूदे ली जाती ह पर दूसरे ढग में आख बराबर खुली रहती है।

बस प्रत्येक वस्तु को भी पढने के दो ढग है उसकी पूरी फिल्म में से उसका एक एक फोटो क्रम से देख कर या उसकी सारी की सारी फिल्म को एक साथ देख कर। पहले ढग से एक समय का द्रव्य या द्रव्य पर्याय देखी जाती है और दूसरे ढग से त्रिकाली द्रव्य। पहिले ढग से वस्तु बदलती हुई दिखाई देगी पर दूसरे ढग से स्थिर, मानो उसकी सारी पर्यायें वस्तु में पहिले से टाकी से खोद दी गई हो। यह बात विशेष ध्यान म रखने योग्य है, क्योकि आगे त्रिकाली ज्ञान की बात आयेगी। वहा यह बताया जायेगा कि इस ज्ञान में वस्तु बदलती नही, सदा ज्यो की त्यो बनी रहती है।

५ प्रश्न — द्रव्य, गुण पर्याय का स्पष्ट चित्रण खेंचकर दिखाईये।

उत्तर — ठीक है देखिये। पहिले एक गुण 'क' नाम का लीजिये। इसकी सारी त्रिकाली पर्यायो की एक फिल्म बना कर हृदय पट पर बिछा लीजिये। अब दूसरा 'ख' नाम का गुण लीजिये

इसकी भी सारी त्रिकाली पर्यायो की एक फिल्म वना कर हृदय पट पर उस पहिली फिल्म के नीचे उसके वरावर में सटा कर बिछा दीजिये । इसी प्रकार तीसरे 'ग' नाम के गुण की व चौथे 'घ' नाम के गुण की भी त्रिकाली पर्यायो की फिल्मे बनाकर उनके नीचे एक दूसरे से सटा कर बिछा दीजिये, जैसे कि नीचे चित्र मे दिखाया गया है ।

क	१	२	३	४	५	X	७	८	९	१०	११	१२	१३
ख	१	२	३	४	५	X	७	८	९	१०	११	१२	१३
ग	१	२	३	४	५	X	७	८	९	१०	११	१२	१३
घ	१	२	३	४	५	X	७	८	९	१०	११	१२	१३

चित्र मे 'क' 'ख' 'ग' व 'घ' नाम के चार गुणो की चार फिल्मों को ऊपर नीचे वरावर बराबर सटा कर बिछाया गया है । प्रत्येक गुण की फिल्म मे आगे पीछे १३ अवस्थाओ के फोटो हं ।

कल्पना कीजिये कि यह समय जिस समय कि आप विचार करने वैठे है वस्तु की न. ६ वाली अवस्था का समय है । अत. न ६ की पर्याय तो वर्तमान की पर्याय है न. १ से ५ तक भूत काल की पर्याय है और ७ से १३ तक भविष्य काल की पर्यायो हे । इस प्रकार यह चित्र त्रिकाली पर्यायो का प्रतिनिधित्व कर रहा है फिल्म मे न. ६ वाले पृथक पृथक ४ फोटुओ को पृथक पृथक देखे तो, यह उन 'क' आदि ४ गुणो की ४ गुण पर्याये है जो द्रव्य मे एक ही समय मे विद्यमान है । क्योकि गुण पर्यायों क समूह को द्रव्य पर्याय कहते है इसलिये ऊपर स नीचे की ओर

देखते हुये चारो न ६ वाले खाने मिलकर वतमान समय की एक द्रव्यपर्याय है। और इसी प्रकार सवत्र समझना।

चारो न १ को पृथक पथक देखने पर उन उन गुणा की न १ वाली ४ गुण पर्यायें ह और ऊपर से नीचे की ओर चारो न १ को एक साथ देखन पर न १ वाली एक द्रव्यपर्याय है। न २ वाली पृथक पृथक ४ गुण पर्याय है और उपर मे नीचे चारो का एक साथ ग्रहण न २ की एक द्रव्य पर्याय है। यह तो गुण पर्याय व द्रव्य पर्याय को देखने की रीति है। अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर देखे तो पयाय पढी जायेगी अब गुण व द्रव्य पढने की रीति बताते है। गुण व द्रव्य वास्तव में दिखाई नही दिया करत दिखाई देन वाली तो व्यक्ति या पर्याय हुआ करती है ऐसा पहिले बता दिया गया है। गुण व पर्याय का तो अनुमान किया जा सकता है जो बायें से दाई ओर को दखन स सभव है। न १ मे न १३ तक ओर 'क' वाली फिल्म क सारे फोटुओ की एक साथ फैली हुई अखड फिल्म के रूप में पढे तो 'क' नाम का अखड गुण पढा जायेगा। इसी प्रकार 'ख' 'ग' व 'घ नाम के पृथक पृथक अखड गुण भी, उन उन की न १ मे न १३ की सारी अखड फिल्म रूप से स्थित है। यह द्रव्य म एक साथ पाय जाते ह, क्योकि गुणो के समूह को द्रव्य कहते ह। अत १ मे १३ तक ऊपर नीच फैली हुई इन चारो अखड फिल्मो की एक साथ देखने पर त्रिकाली द्रव्य दखा कहा जा सकता है। दृष्टात म उपर मे नीच तथा बायें मे दाय इस प्रकार पढने की दो रीति बताई ह। ऊपर मे नीचे गुणो का पिण्ड द्रव्य या गुण पर्यायों की पिण्ड द्रव्य पर्याय पढी जाती है। या बायें से दायें गुण पर्यायो का पिण्ड गुण या द्रव्य पर्यायो का पिण्ड द्रव्य पढा जाता है।

इसमें मे दो प्रकार के पिण्ड सिद्ध हुये एक गुणो का पिण्ड दसरा पर्यायों का पिण्ड या पर्यायो का पिण्ड तो आगे पीछे के फोटुओवत

ठीक प्रकार फिल्म के रूप मे वाये से दाये को दर्शाया जा सकता है। पर गुणो का पिण्ड चित्रण में दिखायेवत ऊपर से नीचे को नही दिखाया जा सकता। क्योकि गुण इस प्रकार वस्तु मे उपर नीचे नही होते, वे तो जीरे के पानी वत एक रस होते है। परन्तु क्या किया जाये, एक रस का चित्रण खेंचा जाना असम्भव है। अत दाये से वाये की ओर पर्याय माला का फिल्म रूप चित्रण तो यथार्थ ही समझना, पर उपर से नीचे की ओर गुणो के समूह का चित्रण काल्पनिक जानना। कुछ भी हो भाव पडने का प्रयत्न करे, और किसी प्रकार समझाने की योग्यता नही है।

७

—' आत्मा व उसके अंग :-

दिनांक १२।१०।६०

१. आत्मा सामान्य का सक्षिप्त परिचय, २ ज्ञान, ३. चारित्र, ४. श्रद्धा, ५. वेदना, ६. शुद्धाशुद्ध भाव परिचय, ७, क्षायिकादि चार भाव, ८ पारिणामिक भाव ९ भावों का स्वामित्व, १० वस्तु में पाचो भावों का दर्शन, ११ आत्मा को द्रव्य पर्यायों का परिचय, १२. पारिणामिकादि भावो का समन्वय।

१ आत्मा सामान्य का संक्षिप्त परिचय

नय दर्पण का यह विषय प्रसंगत अपने जीवन में हित व सरलता उत्पन्न करने के प्रयोजन से पढ़ा व पढ़ाया जा रहा है तथा आगम के गूढ़ व रहस्य मयी वाक्यों का यथार्थ भावार्थ जानने का अभ्यास

कराने के लिये भी। क्योकि आगम मे भी आत्म पदार्थ के सम्वन्ध मे ही प्रमुखत· कथन करने मे आया है, अत वहा भी आत्मा के अनेकों अगो का भिन्न-भिन्न दृष्टियो व नयो से कथन मिलता है। इन दोनो प्रयोजनो की सिद्धि के अर्थ यहा भी आत्म पदार्थ का किन्चित् परिचय करा दिया जाना आवश्यक है। क्योकि ऐसा किये बिना आगम के प्रकरणो मे नयो को लागू किया जाना सम्भव न हो सकेगा। दूसरे, आगम मे नयो के उदाहरण भी यदि खोजने जाऊंगा तो वहा केवल आत्मा पर लागू करके ही दर्शाये हुए उपलव्ध हो सकेगे, अन्य सामान्य पदार्थो व वस्तुओ पर नही। अत. आत्म पदार्थ के सम्वन्ध मे सक्षिप्त परिचय प्राप्त करना ही इस स्थल पर अत्यन्त आवश्यक है।

वैसे तो आत्म पदार्थ वडा विचित्र व जटिल है। एक तो इसलिये कि अनन्तो शक्तियो का पून्ज है, और दूसरे इसलिये कि यह अदृष्ट है। इसका अनुभव या दर्शन आज तक कभी हुआ नही। अत. समझने व समझाने मे वहुत कठिनाइये पडेगी। अतः बिना विस्तृत कथन किये, विषय पूर्ण रूपेण स्पष्ट होना असम्भव है। परन्तु यहा यह विषय प्रकृत नही है। अतः सक्षिप्त परिचय ही बताया जा सकेगा, सो ध्यान देकर सुनना।

वस्तु सामान्य वत् आत्मा के भी अनेको अग है, जिन्हे यहां शक्तियो के रूप मे दर्शाया जा रहा है। इनमे से कुछ त्रिकाली शक्तिया है जो गुण रूप है, और कुछ क्षणिक या परिवर्तनशील शक्तिया है जो पर्याय है। त्रिकाली शक्तिये इसमे प्रमुखत चार है--ज्ञान, चरित्र, श्रद्धा व वेदना। इन्ही की सामान्य वा विशेष व्याख्या करने मे आती है। शक्तियो का परिचय पाने से पहिले यह वात ध्यान मे बैठा लेनी चाहिये कि आत्मा नाम का पदार्थ इन इन्द्रियो से देखा व जाना नही जा सकता, क्योकि इसमे इन

इन्द्रियों के विषय जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श है वे पाये नहीं जाते। इस पदार्थ का अनुभव केवल विचारणाओं रूप से होता है। यह जो पुतला बैठा दिखाई दे रहा है सो दो पदार्थों के सम्मिश्रण से बना हुआ है शरीर व आत्मा। इन दोनों की शक्तियें वर्तमान में दूध पानी वत् घुलमिल कर इस प्रकार एक मेक हो गई है, कि पता नहीं चलता कौन शक्ति शरीर की है और कौन आत्मा की। सो इन दोनों की शक्तियों को पृथक पृथक पढ़ने का काम तभी सिद्ध हो सकता है जब कि इनको पृथक् पृथक् निकाल कर देखा जाये, और यह सम्भव नहीं। कदाचित शरीर को पृथक करके देखा जा सके पर आत्मा को तो नहीं।

यदि मृत्यु के पश्चात् इस शरीर को पढ़ें तो पता चलेगा, कि इस में कुछ शक्तियें तो अब भी रह गई है और कुछ शक्तियें इसमें से निकल गई है। बस जो शक्तियें निकल गई हैं वे सब ही आत्मा की थी ऐसा जान लेना। वे शक्तियें न इसकी थी और न इसमें रह सकती थी। आत्मा की थी और इसीलिये आत्मा के साथ चली गईं, जहां कहीं भी इस शरीर से पृथक होकर गई है। इस प्रकार पूर्ण शक्तियों में से उन निकलने वाली शक्तियों का विचार कर तो आत्मा की शक्तियों का स्पष्ट परिचय हो जायेगा। अब विचार कर देखिये कि किस चीज का प्रमुखतः अभाव हुआ है। प्रकाश तथा विचारणाओं व चिन्तवनाओं का। और तो यहां सब कुछ पड़ा है। आंख, नाक, कान सब ज्यों का त्यों होते हुए भी, उनका प्रकाश जाता रहा। अब वे जान कुछ नहीं पा रही है। अतः समझ लीजिये कि यह जो छूकर कुछ अन्दर से महसूस होता था, यह जो चख कर खट्टा मीठा सा महसूस होता था, यह जो सूंघ कर कुछ दुर्गंधी या सुगंधी का चित्रण अन्दर में आता था, या जो कुछ देखकर प्रकाश का या वस्तुओं का स्पष्ट आभास सा चेतन में आता था तथा सुन कर जो कुछ शब्दाकार व गुंजार सी प्रतीति में आती थी वह सब इन इन्द्रियों का नहीं आती थी बल्कि आत्मा की आती थी। यदि

ऐसा न हुआ होता तो अब भी इन इंद्रियो को यह काम करते रहना चाहिये था । तथा अन्य भी ।

२. ज्ञान यह उपर बताई गई सर्व शक्तिये ज्ञान रूप ही समझना ज्ञान नाम जानने का है । जानना उपर प्रमाण इन पांच इन्द्रियो से भी हो रहा है तथा एक अदृष्ट इन्द्रिय अर्थात् मन से भी मन से होने वाला जानना विचारणाओ रूप है । आत्मा इन्द्रियों वाला नही । यह जानना व विचारणा उसीका काम है । बस इसे ही ज्ञान कहते हैं आत्मा की समस्त शक्तिया चाहे वह चारित्र हो या श्रद्धा व वेदना, सर्व विचारणात्मक है या प्रकाशात्मक है अतः पर-मार्थतः सब ही ज्ञान रूप है । वर्तमान मे यह ज्ञान दो प्रकार से अनुभव मे आ रहा है एक तो इन छहो इन्द्रियो के आधार पर होने वाला तथा दूसरा शेख चिल्ली की कल्पनाओ वत्, कड़ी बद्ध कोरी कल्पनाओ रूप से, या किसी भी पदार्थ को जानने के साथ साथ उसमे इष्टता व अनिष्टता की कल्पना रूप से, जिन कल्पनाओं का आधार कोई वस्तु नही होती, बल्कि अन्दर मे पड़े ही कुछ पहिले आकर होते है । उन आकारो का स्मरण कर करके ही वे कल्पना जागृत हुआ करती है । इन्द्रियो का ज्ञान किसी वस्तु को आश्रय करके ही वर्तता है । अत ज्ञान दो प्रकार का कहा जा सकता है । इन्द्रिय ज्ञान व कल्पना विज्ञान । कल्पना विज्ञान विचारणा रूप होता है यह विचारणा दो प्रकार की होती है एक तो किसी वस्तु को सामने रख कर की जाने वाली तथा एक केवल स्मृति व अनुमान के आधार पर । पहिली जाति की विचारणा को इन्द्रिय ज्ञान मे ही सम्मिलित कर लीजिये और दूसरी को पृथक रहने दीजिये । इस इन्द्रिय ज्ञान को हम व आगम 'मतिज्ञान' इस नाम से पुकारते है तथा दूसरे कल्पनाओ रूप ज्ञान को 'श्रुत ज्ञान' कहा जाता है । यह दोनो हम मे ही नही बल्कि चीटी आदि क्षुद्र जन्तुओ तक मे देखने मे आता है । इसके अतिरिक्त अवधि ज्ञान कुछ भूत व भविष्यत

कात सम्बन्धी विलुप्त बातो को प्रति विम्ब रूप से जान जाया करता है, और मन पयय ज्ञान समक्ष आये हुये किसी भी प्राणी के मन में 'क्या विचार आ रहा था या आगे आयेगा' यह सब प्रत्यक्ष प्रतिविम्ब रूप से जान जाया करता है। अवधि ज्ञान तो यथा योग्य रीति मे गृहस्थो व साधुओ दोनो को हो सकना सभव है पर मन पयय ज्ञान बडे बडे तपस्वी योगियो को ही होना सभव है इसके अतिरिक्त एक और भी ज्ञान होता है जिसे 'केवलज्ञान' कहते हैं। यह सकल विश्व की वतमान काल सबधी भूतकाल सबधी व भविष्यन् काल सबधी सर्व दृष्ट व अदृष्ट बातो को प्रतिविंब वत् प्रत्यक्ष एक ही वार जानने में समथ है। यह ज्ञान आत्मा की पूण विकसित अवस्था है। जिसे सिद्ध अवस्था या निगु ण अवस्था कहते हैं।

इस प्रकार मति श्रुत अवधि मन पयय व केवल ये पाचो ज्ञान की ही विशेष शक्तिया ह। ये पाचो जिसमे से स्फुरायमान होते ह या यो कहिये कि जिसके उपर नृत्य करते हैं, अर्थात कभी हीन रूप से और कभी अधिक रूप से प्रगट होते व विलीन होते रहते ह, उस सामान्य शक्ति का नाम ही ज्ञान है। इसका काम तो जानना मात्र है। भले मति रूप से जाने, या श्रुत रूप मे, अवधि रूप मे या मन पर्याय रूप से, या केवल रूप से ये पाचो तो कभी या किसी आत्मा में प्रगट दृष्ट होते ह और कभी नही इस लिये क्षणिक या परिवतन शील अङ्ग ह पर्याय ह। पर वह जानने की त्रिकाली शक्ति सो ज्ञान है। सो उसमे तो जानने की अनन्त शक्ति है, भले ही वतमान मे पूण रूपेण प्रगट न दीखती हो।

प्रगट म दीखने वाली को व्यक्ति व अन्दर में छिपी हुई का शक्ति कहते ह। जैसे यदि पूछू कि दीपक की लौ मे कितने पदार्थो का जला देने की शक्ति है, तो आप यही कहेंगे कि यदि सारा विश्व भी सामने आये तो उसे भी जलादे, और फिर भी न थके। परन्तु वर्तमान

मे तो इतनी व्यापक दिखाई देती नही छोटी सी दीखती है। वस इस अन्दर मे छिपी शक्ति का नाम शक्ति है और प्रगट दीखने वाला वर्तमान का छोटासा रूप उस अग्नि सामान्य की व्यक्ति है। इसी प्रकार ज्ञान को समझना। वह जानने की अनन्त शक्ति रखता है जो भी सामने आ जाये उस ही जान जाये। क्या जानता हुआ यह थकेगा कभी ? नही। सर्व विश्व भी सामने आये तो जान जाये और फिर भी न थके। यदि ऐसे ऐसे अनन्तो विश्व भी हो तो भी जान ले और फिर भी न थके। वस इसी का नाम ज्ञान की शक्ति है। उस का मति श्रुति आदि रूप तो वर्तमान की छोटी छोटी सी व्यक्ति मात्र है। इस शक्ति को गुण सामान्य समझो और व्यक्ति को उसकी परिवर्तन शील पर्याय। मति, श्रुति, अवधि, व मनः पर्यय इस की छोटी व्यक्ति है, और केवल ज्ञान इस की पूर्ण व प्रचण्ड व्यक्ति या रूप है। सर्व शक्ति वहा व्यक्त या प्रगट हो जाती है अर्थात इस समस्त विश्व को तो यह जान ही लेता है, परन्तु यदि और भी हो तो भी जान जाये। जब और है ही नही तो जाने क्या ? इसे ही सर्वज्ञता कहते हैं। सो इस प्रकार जानना नाम तो ज्ञान शक्ति है।

३ चारित्र रूप ही है

अव चारित्र शक्ति को सुनिये। यद्यपि यह भी ज्ञान व विचारण रूप ही है पर क्योकि इसका अनुभव दूसरे प्रकार से होता है इसलिये इसका दूसरा नाम रख दिया है। या यों कहिये कि जानने का ही जब ऐसा सा ढग होता है तो उस ज्ञान को ही चारित्र नाम दे दिया जाता है। यह जो नित्य ही राग व द्वेषादि व क्रोधादि भाव विचारणाओं मे उठते व दवते दिखाई देते है, वस इसी को हम चारित्र नाम की शक्ति कहते है। कोई भी शक्ति अपनी व्यक्ति के आधार पर ही जनाई जा सकती है या यो कहिये कि कोई भी गुण सामान्य अपनी पर्याय के आधार पर ही जनाया जा सकता है। जैसे कि रंगपना दर्शाने के लिये हरा पना व पीला पना ही दिखाना पड़ता है। पहिले भी वताया जा चुका है कि अनुभव गुण का नही हुआ करता, वल्कि पर्याय का होता है।

उसी के आधार पर गुण रूप त्रिकाली शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है उपर ज्ञान के प्रकरण म भी यही बात लाग होती ह। और आगे भी यही लाग होगी व्यक्ति या पर्यायो की ओर लक्ष्य दिलाकर उस शक्ति सामान्य को अनुमान का विषय बनाने का प्रयत्न किया जायेगा ।

चारित्र गण की कई व्यक्तियें हमें प्रत्यक्ष अनुभव म आती ह। उनमें से १३ प्रधान है १ क्रोध, २ अभिमान, ३ मायाचार, ४ लोभ, ५ हास्य भाव, ६ किसी पदाथ के प्रति रति व आसक्ति भाव, ७ किसी पदार्थ के प्रति का अरति या अरुचि भाव, ८ शोक भाव, ९ भय भाव, १० ग्लानि व घृणा भाव ११ स्त्री, १२ पुरुष व १३ नपुसक में उठने वाल उस उस जाति के मैथुन व काम सेवन रूप भाव। यह तेरह के तेरह भाव सब जननमत है। इन्हें ही सक्षेप मे कहें तो दो शब्द राग व द्वेष द्वारा कहा जा सकता है। राग भाव कहते है आकपण भाव को और द्वेष भाव कहते है हटाव के भाव को। सा उपरोक्त १३ म से क्रोध, मान, अरति, शोक, भय व जुगुप्सा ये ६ भाव तो द्वेष रूप है और माया, लोभ, हास्य, रति, व तीनो प्रकार के मथुन भाव ये सात राग रूप है। सो ज्ञान की इन राग द्वेष मे रगी हुई विचारणाओं का नाम चारित्र है।

इन उपरोक्त राग द्वेष का तो हमे परिचय है क्योंकि यह तो हमारे जीवन के अङ्ग है, पर इन से विपरीत वीतरागता से परिचय नही है। वास्तव में चारित्र की अनन्त शक्ति उस वीतरागता मे ही निहित है। उस वीतरागता की किंचित पहिचान निम्न भावो पर स की जा सकती है जो कि उपरोक्त १३ से विपरीत भाव है। क्रोध के विपरीत क्षमा है, जो इस प्रकार से प्रगट होता है कि अरे ! जाने भी दे क्या लेंगे लडकर। जा भाई जा। तेरी करनी तेरे साथ। अभिमान को दबाते हुअे मादव भाव प्रगट होता है जिसका रूप

इस प्रकार इन चार शक्तियो का सक्षिप्त परिचय दिया गया ।

६. शुद्धाशुद्ध भाव परिचय

और भी वहुत कुछ है पर समय थोडा होने के कारण विस्तार नही किया जा सकता यहा इतना ही समझना चाहिये कि आत्मा तो ज्ञानपुज है । यह ज्ञान ही अनेक प्रकार से प्रगट होकर भिन्न भिन्न शक्तियो रूप वन वैठता है ।

ऊपर की चारो शक्तियों मे से ज्ञान मे तो शुद्ध पना व अशुद्ध पना होता नही । वहा तो हीन ज्ञान पना न अधिक ज्ञान पना होता है । सो वहा तो हीन ज्ञान पने का नाम ही विभाव व ज्ञान की अशुद्धता है और अधिक या पूर्ण ज्ञानपने का नाम ही स्वभाव या ज्ञान की शुद्धता है । पर चारित्र, श्रद्धा व वेदना, में शुद्धपना व अशुद्ध पना होता है, जैसा कि दर्शा दिया गया । शांति रूप से प्रगट होने को यहा शुद्ध पना और अशाति रूप से प्रगट होने को अशुद्ध पना कहते है । सर्वत्र ही यह शुद्ध पना व अशुध्द पना तीन प्रकार का हो सकता है। १. पूर्ण शुध्द, पूर्ण अशुध्द, तथा ३. शुध्द व अशुध्द का मिश्रण । पूर्ण का अर्थ है पूर्ण शाति मे स्थित होने पर प्रगटे भाव, पूर्ण अशुद्ध का अर्थ है पूर्ण अशाति या चिन्ताओ मे उलझे हुए भाव और शुध्दाशुध्द रूप मिश्रित भावो का अर्थ है कुछ शान्ति तथा साथ ही साथ कुछ अशान्ति मे बसने वाले भाव ।

पूर्ण शुद्ध व पूर्ण अशुद्ध तो ठीक प्रकार समझ मे आ जाता है पर शुद्धाशुद्ध रूप मिश्रित भाव कुछ उलझन उत्पन्न कर रहा है । इस को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता हू । देखो, ये घर पर विलो कर निकाला गया एक सेर पूर्ण शुद्ध घी है और यह है एक सेर पूर्ण अशुद्ध व नकली डालडा । यह लो दोनो को मिला दीजिये । अव यह मिला हुआ वह घी शुद्ध कहलायेगा या अशुद्ध ? कहना होगा कि न पूर्ण शुद्ध, न पूर्ण अशुद्ध वल्कि इसे तो मिश्रित कहना होगा, या शुद्धाशुद्ध कहना होगा । यद्यपि शुद्ध व अशुद्ध तो एक एक ही कोटि के हो सकते है, पर शुद्धाशुद्ध

तो अनन्तों कोटियों के हो सकते हैं। एक तोला शुद्ध व शेष सर्व अशुद्ध का मिला हुआ भी शुद्धाशुद्ध है, आधा आधा मिला हुआ भी शुद्धाशुद्ध है और एक तोला अशुद्ध और शेष सर्व शुद्ध मिला हुआ भी शुद्धाशुद्ध है। तथा इन के बीच में एक एक अंश शुद्ध का बढ़ाते हुये और साथ साथ एक एक अंश अशुद्ध का घटाते हुये अनन्तों सब शुद्धाशुद्ध हो जायेंगे। जितना अंश अधिक होगा, घी उसी कोटि का कुछ कुरता हुआ सा प्रतीति में आवेगा। जैसा कि सुगन्धित व दुर्गन्धित दो पदार्थों को मिलाने पर यदि सुगन्धि का अंश उसमें अधिक है तो सारा का सारा मिश्रण कुछ सुगन्धित सा प्रतीत होगा। ज्यूं ज्यूं सुगन्धि का अंश बढ़ता जायेगा त्यूं त्यूं अधिक अधिक सुगन्धित प्रतीति में आने लगेगा। दुर्गन्धि उतनी उतनी ही घटती जायेगी। इस क्रम में बढ़ते बढ़ते शुद्ध घी तोला पूरा सेर हो जाये और घटते घटते अशुद्ध घी इसमें से बिल्कुल निकल जाये तो यह पुनः शुद्ध कहलाने लगेगा।

बस इसी प्रकार आत्मा में समझना। चारों गुणों की कुछ शुद्ध और अशुद्ध व्यक्तियें मिली हुई पड़ी हों तब उसे उस उस गुण का शुद्धाशुद्ध भाव कहते हैं। जैसे चारित्र में तीव्र क्रोध आ जाने पर तीव्र दाह प्रतीति में आई सो तो पूर्ण अशुद्धता हुई। अब मेरे समझाने व सान्त्वना देने पर कुछ मन्द पड़ा उस व्यक्ति पर ऐसा भाव प्रगट हुआ कि अच्छा, जो मर्जी में आवे कर मुझे क्या। तब तीव्र दाह कुछ हलकी सी हुई प्रतीत हुई। बस जितनी हलकी हुई उतनी क्षमा आ गई। यह पहिली स्थिति है जो कि अभी क्षमा रूप दीखने नहीं पाई क्योंकि अभी भी इसमें क्रोध का अंश अधिक है अतः क्रोध ही मुख्यतः प्रतीति में आ रहा है। आगे जाकर धीरे धीरे दाह मन्द पड़ती गई। इसलिये क्षमा का अंश बढ़ता गया और क्रोध का अंश उतना ही कम होता गया। आखिर भूल जाने पर आप पूर्ववत अपने काम में लग गये, पर अन्दर में थोड़े थोड़े कुछ अंश भी रहे हैं। आगे क्षमा और बढ़ी और क्रोध कुछ कम हुआ तो कुछ शान्ति सी प्रतीत होने

लगी जो वरावर वढती गई, यहा तक कि क्रोध ससाप्त हो गया और उसका स्थान क्षमा ने ले लिया आप पूर्व वत शान्त हो गये। यह सव पहिले से लेकर इस अन्तिम तक के शुद्धाशुद्ध अग कहलायेगे । इसी प्रकार सर्वत्र जानना। यहा चारित्र सवंधो शुद्धाशुद्ध भाव को मैं ने लौकिक दृष्टि से दृष्टान्त रूप मे समझाया है । आगम की अपेक्षा तो यह सव अशुद्ध भाव ही है । जव तक पारमार्थिक अन्तरग शान्ति रूप क्षमा की रेखा हृदय मे प्रगटती नही तव तक की क्षमा आदि वास्तव मे अशुद्ध ही है ।

ज्ञान का पूर्ण अशुद्ध भाव पूर्ण अन्धकार रूप जिसमे कुछ भी जाना न जा सके, शुद्ध भाव है पूर्ण प्रकाश जिसमे समस्त विश्व जाना जा सके जैसे कि भगवान मे है, और शुद्धाशुद्ध भाव अधूरा प्रकाश जैसे हम सभो मे है । कुछ जानते है और कुछ नही जानते है। सो सव मे वरावर नही है । किसी मे शुद्धता रूप प्रकाश का अश अधिक है और किसी मे अध कार अधिक है । जैसे कि यहा जो वात को पकड़ सकते है उनमे प्रकाश का अश अधिक है ओर जो विल्कुल नही समझ पाते उनमे अधकार का अश अधिक है ।

चारित्र का पूर्ण शुद्ध भाव है पूर्ण वीतरागता जैसा कि अर्हन्त व सिद्ध भगवान मे है। इसका पूर्ण अशुद्ध भाव है विपयों मे पूर्ण रूपेण फसकर नित्य क्रोधादि भावो मे उलझे रहना । क्रोध जाये तो मान आ वैठे और मान जाये तो माया। जैसा कि जन साधारण मे होता है। इसका शुद्धाशुद्ध भाव है राग मे रहते हुये भी वीतरागता का अभ्यास करने रूप । जैसे कि गृहस्थ मे रहते हुये भी कुछ व्रतो को धारना व विषयो का कुछ त्याग करना ।

श्रद्धा का पूर्ण शुद्ध भाव है विवेक का निश्चलपना । लोकके सर्व कार्य करते हुए भी "मेरा मकान अमुक ही स्थान पर है, मेरा पुत्र

विलायत म जीता जागता विद्यमान है ही" इस प्रकार की दृढ श्रद्धा अदर में पडी रहना । उसमें पोचता न आना, उसमे कम्पन न आना, उस मे कुछ धु धला पन न आना । इसी प्रकार रागात्मक लौकिक काय करते हुए भी "यह का काय मेरे लिये अहित कर है" वीतरागता ही हितकर है । ऐसा निश्चल भाव अन्दर में वन रहना । श्रद्धा का पूण अशुद्ध भाव है विवेक का पूरा अभाव, अहित में हित की श्रद्धा जसे कि "धन ही मेरे लिये तो हित कारी है, मझ शान्ति नही चाहिये इत्यादि" । इस का शुद्धाशुद्ध भाव है उतार चढाव रूप । चिन्तायें वढ जाने पर तो "अरे आज ही छोडकर भाग इम धधे को, इससे वटा अहित और कुछ नही हो सकता" एसा सा भाव प्रगट हो जाना । और चिन्तायें कुछ कम होने पर तथा विपयो की उपलब्धि हो जाने पर वह भाव दव सा जाना, उपरोक्त प्रकार प्रगट न हो पाना । और इस प्रकार वरावर उसकी दृढता मे हानि वृद्धि होते रहना श्रद्धा का शुद्धाशुद्ध भाव है ।

वेदना का पूण शुद्ध भाव है पूण शान्ति मे निश्चल स्थिति, इच्छाओ का पूर्ण अभाव । पूण अशुद्ध भाव है पूण अशान्ति, इच्छाओ, में सदा जलते रहना । ओर शुद्धाशुद्ध भाव है अशाति में कुछ कभी और कुछ कुछ शाति की प्रतीति जो कभी वढ जाती है और कभी घट जाती है ।

शुद्ध भाव की व्यक्ति दो प्रकार की हो सकती है । एक थोडी देर के लिये पूण शुद्ध होकर फिर अशद्ध या शुद्धाशुद्ध हो जाने वाली जैसे कि गदला पानी गाद वठने पर थोडी देर को पूर्ण शुद्ध हो जाता है पर हिलने पर फिर अशुद्ध हो जाता है । और दूसरी सवदा के लिये पूण शुद्ध होकर फिर कभी भी अशुद्ध या शुद्धाशुद्ध होने की सम्भावना न रहे ऐसी शुद्ध । जैसा कि उवाल कर सुखाया गया गेहू का दाना सदा के लिये अव उगने की शक्ति को खो बैठा है ।

जैसेकि सिद्ध प्रभु का पूर्ण वीतराग चारित्र किसी पर पदार्थ का आश्रय ग्रहण करने के रूप या त्याग करने रूप नही है परन्तु इस की उत्पत्ति, पर के त्याग पूर्वक हुई थी, इतना ही इसमें पर सापेक्ष पना है ।

८ पारिणामिक भाव

क्षायिकादि चार भावों को समझ लेने के पश्चात् उस भाव को प्रमुखतः समझना योग्य है, जिसके उपर कि यह चारों भाव नृत्य कर रहे हैं । उसे पारिणामिक भाव कहते हैं । से त्रिकाली वस्तु का स्वभाव समझना, जिसमें कि पर पदार्थ के ग्रहण की यात याग की, निकटता की व दूरता की, कर्मों के उदय की या क्षय की कोई अपेक्षा नही । इसको समझना जरा कठिन पड़ेगा, क्यो कि इसकी त्रिकाली शुध्द भाव के रूप मे प्रतीति होती है । शुध्द भाव दो प्रकार के हो जाते है । एक तो पर की अपेक्षा का अभाव होने पर प्रगटे क्षायिक व औपशमिक भाव, और एक वह जिसमें पर की अपेक्षा न थी और न हटी है, जो सदा से शुद्ध था और सदा शुद्ध रहेगा । यहां वड़ा संशय खडा हो जाता है और कदाचित भ्रम का कारण भी वन वैठता है । अतः सूक्ष्म दृष्टि से समझने का प्रयत्न करना ।

यह कथन त्रिकाली ध्रुव शक्ति या भाव की अपेक्षा विचारा जाना चाहिये । यदि व्यक्ति पर अर्थात् प्रगट जो अनुभव मे आ रहा है ऐसी पर्याय पर दृष्टि चली गई तो अनिष्ट हो जायेगा । क्योकि या तो यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि राग मे रहते हुये भी आत्मा को शुद्ध कैसे कहा जा सकता है, और या यह अभिमान उत्पन्न हो जायेगा कि मै तो त्रिकाली शुद्ध हूं अतः रागद्वेपादि मेरा अपराध ही नही, मैं इन्हे करता ही नही, वर्तमान मे जो देखने मे आता है वह तो भ्रम मात्र है । अतः व्यक्ति और शक्ति का विवेक रखकर ही समझना योग्य है । व्यक्त रूप जितने भी भाव है वह तो सव के सव औदायिकादि चारो मे से ही कोई न कोई हो सकते हैं ।

जैसे कि पहिले बता दिया गया कि अनुभव सदा पर्याय का हुआ करता है गुणका नही, अर्थात व्यक्ति का होता है शक्ति तो वह है जो इन सब व्यक्तियो के पीछे छिपी बैठी है । दृष्टात पर से समझिये "स्वर्णत्व" यह शब्द सुनकर आप इसे शुद्ध कहेगे या अशुद्ध ? खान म से निकले स्वर्ण पाषाण म पड स्वर्णत्व में और फासे मे पडे स्वर्णत्व में क्या अन्तर है । खोटे सोने में पडा और खरे सोने म पडा स्वर्णत्व क्या भिन्न भिन्न है ? स्वर्णत्व तो जहा भी है स्वर्णत्व है । स्वर्णत्व क्या कभी खोटा हो सकता है ? स्वर्णत्व तो केवल उस भाव विशेष का नाम है जो केवल पीलेपने, चमकदार पने व भारीपने रूप मे प्रतीति म आता है । यह तो भाव वाचक सज्ञा (Abstract Noun) है । इसलिये भले स्वर्ण मे खोट मिलाया जा सकना व निकाला जा सकना सम्भव हो, पर स्वर्णपने में तो खोट मिलाना निकलना सम्भव नही । यदि म पूछ कि स्वर्ण पने का क्या आकार तो क्या बतायगे आप ? क्या इसे फासे की शकल का बतायेंगे या कण्ठे की शकल का । फासे या कण्ठ की शकल सोने की तो कही जा सकती ह, पर सोने पन की नही । एक तोले के जेवर में और पाच तोले के जेवर में सोना तो कम या ज्यादा कहा जा सकता है, पर क्या एक तोले वाले में सोना पना कम कह सकेंगे कभी ? स्वर्ण की एक कणिका में सोने पने का जो एक सामान्य भाव विद्यमान है वही पाच तोले के जेवर में है । सोना शुद्ध और अशुद्ध हो सकता है, पर सोने पने का भाव नही । बस इस सोन पने के भाव को, जो अनुमान मे आ सकता है पर व्यक्त नही देखा जा सकता, आप स्वर्ण का परिणामिक भाव या उसकी शक्ति समझ । यह है स्वर्ण का त्रिकाली शुद्धपना । पका कर शुद्ध किये गये सोन की शुद्धता में और इस त्रिकाली शुद्धता में महान अन्तर है, क्योकि वह कृत्रिम है और यह स्वाभाविक वह काम है और यह कारण । यदि सोने म यह सोने पने का स्वभाव न होता तो भट्टी पर चढाने से निकल कैसे पाता ? वही तो निकला है जो स्वभाव रूप स पहिल स उसमे विद्यमान था । भाव वाचक सज्ञा पर मे अनुमान लगाया जा

सकता है कि पारिणामिक भाव किसे कहते है । वह शक्ति रूप होता है व्यक्ति रूप नही ।

इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान गुण ले लीजिय । भल ही आज उस की हीन व्यक्ति हो । हमे ज्ञान अत्यन्त अल्प प्रगट हो परन्तु इसके ज्ञान पने मे क्या कमी है । अर्थात हमारा हीन जानना भी जानना मात्र है और अर्हन्त प्रभू का पूर्ण जानना भी जानना मात्र है । निगो दिया मे भी जानन पना वैसा ही है जैसा कि प्रभु मे । जानन पने मे हीनाधिकता या शुद्धता अशुद्धता क्या ? वह तो जानन की जाति का एक भाव सामान्य है । वही ज्ञान का परिणामिक भाव समझिये । जो न कभी पर का सयोग लेता है और न छोड़ता है । वह तो शक्ति मात्र है, पर को जानना तो व्यक्ति मे है । जानन भाव क लिय न कोई स्व है और न पर, वह तो जानना मात्र है । वह न कभी शुद्ध होता है न अशुद्ध वह तो त्रिकाली शुद्ध ही है । यहां शुद्ध का अर्थ ठीक ठीक प्रकार समझना । एक शुद्ध तो होता है अशुद्धि को दूर करके उसे तो क्षायिक भाव कहते है । एक शुद्ध होता है निर्पेक्ष, जिसमे न अशुद्धि की अपेक्षा होती है और न शुद्धि की । शब्द एक है और इसमे प्रदर्शित भाव दो, अत उलझना नही । आगे के प्रकरणो मे शुद्ध शब्द का प्रयोग वहुत करने मे आयेगा, कही तो इस त्रिकाली शुद्ध के अर्थ मे और कही उस कृत्रिम शुद्ध के अर्थ मे । अत. वहा शुद्ध-शुद्ध मे विवेक वनाये रखना । क्षायिक शुद्ध को सापेक्ष और पारिणामिक शुद्ध को निर्पेक्ष ही समझते रहना ।

लेखन मे भाव दर्शाया जाना असम्भव है । अत: भाव वाची संज्ञा अर्थात् (Abstract Noun) पर से जो सामान्य भाव पकड़ मे आता है उसे ही आगम भाषा मे पारिणामिक भाव कहते है । क्योकि यह किसी भी पदार्थ के संयोग व वियोग की अपेक्षा नही रखता अत. यह

सवथा निरपेक्ष है । इसम हानि वृद्धि या शुद्धि अशुद्धि नही होती अत त्रिकाली शुद्ध है । इसमें सादि अनादि पन की विवक्षा भी नही होती, अत यह कोई पर्याय तो है ही नही । पर इसे गुण भी कह नही सकते । क्योकि जानना और बात है जानने की शक्ति और बात है, और जानन पना और बात है । जानन पने को धारण करने वाली शक्ति का नाम जानन शक्ति या ज्ञान गुण है । पर जान न पना तो स्वय कोई शक्ति नही । शक्ति तो उसे कहते हैं जो कि कुछ काय कर सके, अर्थात जो पर्याय रूप में वदल कर प्रगट हो जाये उसे तो गुण व शक्ति कहते हैं, परन्तु जिसमे प्रगट होने व दव जाने की कोई अपेक्षा ही नही पडती हो, उसे शक्ति नही कह सकते वह तो उस शक्ति का सार या abstract है । जसा कि ऊपर के दृष्टातो से सिद्ध किया गया । इसके अतिरिक्त भी गमी पना, रस पना, इत्यादि जितने भी भाव सामान्य गुणो का सार दर्शाने के लिये, या चिन्मात्र, जडमात्रादि भाव, अखड व एक रसरूप वस्तुओ का सार दर्शाने के लिये प्रयुक्त करने में आते ह वे सव उन उन गुणो व वस्तुओ के पारिणामिक भाव समझने । ऊपर जिसे शक्ति कहते आय थे, उसे ही यहा और अधिक सूक्ष्म वनाकर शक्ति से भी दूर केवल अखण्डित ध्रुव भाव सामान्य रूप मे सिद्ध किया है ।

पारिणामिक भाव के सम्वन्ध में निम्ननियम याद रखने –

१ यह वस्तु या गुण का सार मात्र भाव होता है । जसे कि जानन मात्र या स्वणत्व ।

२ इसमें हानि वृद्धि रूप उत्पत्ति व विनाश का प्रश्न करन तक को अवकाश सम्भव नही ।

३ यह त्रिकाली ध्रुव भाव व्यक्त नही होता वल्कि अनुमान के आधार पर प्रतीति में आ जाता है ।

४ यद्यपि यह स्वयं उत्पत्ति विनाश रूप पर्यायों से अतीत है, पर वस्तु या गुण की प्रत्येक पर्याय में इस की झलक ओत प्रोत है। यह न हो तो वह वह पर्याय अपने एक जातीय भाव को स्थिर न रख सके।

५ यह शुद्ध व अशुद्ध पने से अतीत त्रिकाली शुद्ध है। इसकी शुद्धता क्षायिक भाव वत अशुद्धि को दूर करके उत्पन्न नहीं होती। अतः क्षायिक भाव की शुद्धता और इसकी शुद्धता में महान अन्तर है।

६ यह अन्य किसी भी पदार्थ के संयोग वियोग से तथा अपेक्षाओं से अतीत सर्वथा निर्पेक्ष सहज सिद्ध भाव है।

७ यह स्वभाव रूप है।

[६ भावों का स्वामित्व

इस प्रकार आत्म नाम पदार्थ के चार प्रमुख गुणो का, उनकी प्रमुख प्रमुख पर्यायो का, उन पर्यायो की शुद्धता व अशुद्धताक इ,सक्षणिक शुध्दता अशुध्दता के आधार भूत क्षायिक आदि चार भावों का, तथा त्रिकाली ध्रुवभाव समान्य रूप पचम परम पारिणामिक भाव का परिचय देकर, आत्म पदार्थ की धुधलीसी रूप रेखाये आपके हृदय पर पट वनाने का प्रयत्न किया गया, ताकि आगे आने वाले प्रकरणों मे नयो को लागू करते समय कुछ सुविधा रहें।

यहां तक तो गुणो के आधार पर वात की। अव आत्म पदार्थ रूप अखण्डित वस्तु के आधार पर करके दर्शाने मे आती है। आत्मा पदार्थ सामान्यत तीन प्रकार से विचार ने मे आया है साधारण संसारी आत्मा, सिद्ध आत्मा व साधक आत्मा। साधारण संसारी आत्मा मे केवल तीन भाव ही होते हैं, पारिणामिक, औदायिक व क्षायोपशमिक। परिणामिक तो स्वभाव रूप होने के कारण सब मे है ही।

औदायिक भाव भी चारित्र व श्रध्दा मे विपरीतता रुप मे तथा वेदना में दु ख रूप से व्यक्त हो ही रहा है। इन तीनो में क्षायोपशमिक भाव नही है औदयिक है। प्रश्न होता है कि साधारण जीवो में क्षायोपशमिक भाव क्या है। सो यहा ज्ञान में क्षयोपशमिक व औदयिक दोनो भाव पाये जाते है। जब तक पूण ज्ञान प्रगट होता नही तब तब ज्ञान का कुछ भाग तो व्यक्त रहता है, और कुछ दबा रहता है। कोई भी जीव ऐसा नही जिसमें ज्ञान पूण रूपेण दब गया हो अर्थात् शत प्रतिशत अन्धकार हो। निगोदिया तक में भी १ प्रतिशत प्रकाश प्रगट रहता अवश्य है, भले वह कुछ कायकारी हो या न हो। ज्ञान में ही यह नित्य व्यक्ताव्यक्त पने की बात लागू होती है, अन्य गुणो में नही। क्योकि अन्य गुणो में तो शुध्दता व अशुध्दता का अथ अनुरूपता व विपरीतता है, पर ज्ञान सदा ही जानने रूप रहता है। इसका विपरीत परिणमन सम्भव नही। इसकी व्यक्ति में हीनता अधिकता रहती है, पर अन्य गुणो की व्यक्ति में हीनता अधिकता नही रहती। वहा तो शुध्द व्यक्ति की हीनता व अशुध्द व्यक्ति की अधिकता या अशुध्दता की हीनता और शुध्द की अधिकता रहती है। पर गुण सामान्य की व्यक्ति की अपेक्षा हीनता अधिकता वहा नही रहती। ज्ञान में ही वह सम्भव है। अत जितने अश में ज्ञान प्रगट व्यक्त है वह उस ज्ञान गुण का क्षायोपशमिक भाव है, और जितने अश में उस की व्यक्ति का अभाव है या अन्धकार है उतने अश में उसका औदयिक भाव है। इसलिये प्रत्येक ससारी जीव में ज्ञान के क्षायोपशमिक व औदयिक दोनो भाव विद्यमान रहते है। ज्ञान का पूण औदयिक भाव किसी में भी नही होता। इसी लिये ससारी जीवो मे तीन भावो का सद्भाव बताया गया।

सिद्ध जीवो में पारिणामिक तो है ही। शेष चारो में से केवल क्षायिक भाव है। क्योकि किसी गुण में अशुध्दि रूप मे या ज्ञान में हीनता रूप मे औदयिक भाव सवथा नही। औदयिक के अभाव में क्षायोप

शमिक व औपशमिक भी कैसे हो सकते है। क्योंकि जब अशुद्धि है ही नही तो उसका कुछ देर के लिये दबना या इसमें आंशिक कमी होने का प्रश्न ही कैसे हो सकता।

हा साधक जीव मे पाचो भाव उपलब्ध हो सकते है। पारिणामिक तो है ही। जब तक ज्ञान मे कुछ भी कमी है तब तक वहा औदयिक भाव विद्यमान है। साधक में वेदना गुण तो पूर्ण शान्त होना सम्भव नहा है। हा आशिक शाति आने के कारण से वहा क्षायोपशमिक सुख है। चारित्र व श्रद्धा यह दोनो गुण क्षायिक, औपशमिक या क्षायोपशमिक तीनो प्रकार के हो सकते है। इस प्रकार यथा योग्य रीति से वहा पाचो भावो की व्यक्ति सिध्द है।

१० वस्तु में पांचो भावो का दर्शन—

अब इन पाचों भावो को यथा योग्य रीति से वस्तु मे या आत्मा मे कैसे पढा जाये सो दृष्टात देकर समझाता हूँ। मेरे पास एक सोने का जेवर है। इसे सुधवाना अभीष्ट है। शोधन करने के लिये इसको गला कर इसमें कुछ चान्दी मिला दी गई। अब यह बजाये सुनहरी के सफेद दीखने लगा। सफेद होते हुये भी इसे हम सोना ही कह रहे है। यह तो इसका औदयिक भाव समझिये, क्योकि इसमे पर पदार्थ के संयोग से अत्यन्त तन्मयता-इतनी कि अपना सुनहरी रूप भी खो बैठा, पाई जाती है। अब इसे तेजाव मे डालकर अग्नि पर पकने के लिये रख दिया गया। धीरे धीरे चान्दी अन्य ताम्बे आदि खोट को लेकर तेजाव मे घुलने लगी। जूं जूं वह तेजाव मे घुलने लगी तूं तूं सोने की उन सफेद डलियो का रंग कुछ कुछ बदलने लगा। पूरा नही बदला। यह उसका क्षायोपशमिक भाव समझिये। कुछ देर के पश्चात चान्दी सारी की सारी तेजाव मे घुल गई उसके साथ साथ और सारा खोट भी घुल गया, और सोने की छोटी छोटी डलिये पृथक पड़ी रह गई। तेजाव निकाल कर पृथक बर्तन मे कर दिया गया। अन्दर पड़ी स्वर्ण की

डलियो को धोकरे साफ कर लिया गया। अव इन का रूप लाल पत्थर की वजरी वत दीखता है। यद्यपि अदर का खोट सवथा निकल गया परन्तु अव भी वाहर में कुछ कमी है। सो अन्दर की अपेक्षा तो यह पूण शुद्ध है और वाहर की अपेक्षा कुछ अशुद्ध। यहा इसक अन्दर में ता क्षायिक भाव समझिये। क्योकि खोट का क्षय हो गया है, और वाहर में औदायिक भाव समझिये। अव इन डलियो को आग पर गलाने के लिये रख दिया। गलने के पश्चात साचे म भर कर इसका फासा वना दिया गया। अव इसका वाहर का रूप भी सुनहरी व चमकदार हो गया। अदर और वाहर दोनो दृष्टियो मे यह अव शुध्द है। सो यह इसका पूण क्षायिक भाव समझिये। परन्तु इसके आदयिक, क्षायोपाशमिक व क्षायिक तीनो भावो मे दीखने वाले स्वणत्व में क्या अन्तर पडा ? जो स्वणत्व पहिली अवस्था में था वही दूसरी म था और वही अव इस अन्तिम अवस्था में है। वह तो न अशुध्द हुआ था और न शुध्द हुआ। न चान्दी के साथ सयोग को प्राप्त हो सका था और व सयोग का क्षय कर पाया है। अत वह तो त्रिकाली शुध्द ही रहा। वस यही स्वणत्व इसका पारिणामिक भाव समझिये।

यदि म पूछू कि हार का रूप या शक्ल क्या है तो तुरन्त उसका फोटो मेरे सामने रख दगे। यदि पूछू कि फासे का आकार क्या है तो उसका भी फोटो मेरे सामने रख देग। पर यदि पूछू कि स्वणत्व का आकार क्या है तो उसका कोई फोटो न रख सकेंगे, और कहा कि स्वणत्व तो भाव वाचक है, उसका आकार हो ही नही सकता वह तो केवल जाना जा सकता है। इसी प्रकार औदयिक भाव का भी आकार हो सकता है, क्षायिक भाव का भी आकार हो सकता है पर पारिणामिक भाव का कोई आकार नही हो सकता।

अव यदि म पूछ कि वताइये ता सही कि इस पृथिवी पर कुल कितने हार किने होंगे। तो अनुमान के आधार पर आप यह कहेंगे कि

१० लाख हार होगे । यदि पूछू कि स्वर्ण इस पृथिवी पर कितना होगा, तो भी अनुमान के आधार पर सारे हारो मे सारे कुंडलो में सारे अन्य जेवरो व सारे फासो मे दीखने वाले स्वर्ण को जोड कर कह सकेगे, कि लगभग होगा । १० टन सोना सारी पृथिवी पर। यदि पूछू कि वताइयै कुल स्वर्णत्व कितना होगा तो क्या कहेगे । आप ? स्वर्णत्व का क्या कितना उतना पना ? वह तो एक भाव है। एक रत्ती स्वर्ण मे भी उतना ही, और १० टन स्वर्ण मे भी उतना ही। हार मे भी उतना ही और फासे में भी उतना ही। खोटे स्वर्ण मे भी वैसा व उतना ही और खरे स्वर्ण मे भी वैसा व उतना ही।

बस इसी पर से अनुमान लगा लीजिये कि पारिणामिक भाव एक होता है न अनेक, वह तो एक अनेक की कल्पना से अतीत एक रूप होता है। वह न वजन मे इतना होता है न कितना। वह तो इतने कितने की कल्पना स अतीत अपने जितना ही होता है।

इसी प्रकार सर्वत्र समझना। पारिणामिक भाव का त्रिकाली शुध्द पना वास्तव मे शुध्दता अशुद्धता की कल्पना से अतीत कोई अवक्तव्य शुद्धता है। यह अनुमान गम्य है शब्द गम्य नही । यह क्षायिक भाव की शुद्धतावत नही है । वह तो अशुद्धता का अभाव करने पर प्रगट हुआ वक्तव्य व दृष्ट भाव है । इसी प्रकार पारिणा-मिक भाव का एक पना, एक अनेक पने की कल्पना से अतीत कोई अवक्तव्य एक पना है। यह अनुमान गम्य है शब्द गम्य नही। क्षायिक भाव का एक जातीय पना तो अनेक फासो मे दीखने वाला एकी भाव है। सो अनेकता सापेक्ष है। इसी प्रकार अन्य सारी बाते भी इस पारिणामिक भाव मे जब जहा तहा वताने मे आयेगी, तब शब्दो मे ऐसा लगेगा कि यह तो क्षायिक भाव मे भी बताई गई है। परन्तु उनमे का यह महान अन्तर अनुमान मे ले लेना। सर्वत्र य ही समझना कि पारिणामिक भाव मे दर्शाई जाने वाली वे सब बाते अवक्तव्य व व अदृष्ट है, और क्षायिक भाव मे दीखने वाली वही बाते वक्तव्य व

दष्ट । क्योकि क्षायिक भाव व्यक्ति रूप है, और पारिणामिक भाव शक्ति से भी अतीत एक भाव मात्र ।

आत्मा पदाथ में यह सव भाव इस रूप में पढे जा सकते ह । आप का क्रोध म भरा आशान्त भाव तथा शरीर सहित का आकार औदयिक भाव है क्योकि अन्य पदार्थों व शरीरादि के सयोग की अपेक्षा रखने हैं । आपका किञ्चत क्षमा की और झुकता हुआ पर क्रोध अश मिश्रित कुछ शात व कुछ अशात भाव तथा वर्तमान का प्रगटा अधूरा ज्ञान, क्षायोपशमिक भाव है, क्योकि शुद्धता अशुद्धता मिश्रित है । ११ वें गुणस्थान में जाकर उत्पन्न हुआ, एक क्षण के लिये क्रोध के पूण तय दबजाने से उपजा पूण क्षमा रूप शात भाव औपशमिक भाव है । क्याकि एक क्षण के पश्चात ही पुन कोई भी सूक्ष्म या स्थूल क्रोध का अश वहा जागृत हो जायेगा । अह त अवस्था में प्रगटे पण क्षमा रूप शात भाव तथा पण केवल ज्ञान क्षायिक भाव है, क्योकि अब यह भाव कभी विनष्ट नही होंगे । उन का शरीर सहित का आकार औदयिक भाव है क्योकि शरीर की अपेक्षा सहित है। सिद्ध अवस्था में रहा पूण क्षमा रूप शात भाव व केवल ज्ञान तो क्षायिक भाव है ही, पर शरीर रहित का उनके अपने प्रदेशो का शरीर के समान आकार भी उन का क्षायिक भाव है, क्योकि इस आकार में शरीर की अपेक्षा अब नही रही है । इसी प्रकार अन्य गुणो मे भी यथा योग्य लागू कर लेना । परन्तु इन सव उपरोक्त भावो से अतीत वह शाति का त्रिकाली भाव, जिसमें से कि यह क्षायिक भाव रूप शाति व ज्ञान व्यक्त हुए हैं, यदि यह न होता तो यह व्यक्ति कहा से प्रगट होती इस अनुमान पर जो जाना जाता है चारो भावो में जो व्याप्त है, आत्मा की सव ही अवस्थाओ में जो रहता है, जो न तो औदयिक भाव मे विनष्ट हो पाया और न क्षायिक भाव में नवीन जागत हुआ है, जिसमे उत्पत्ति व विनाश का प्रसग ही नही, ऐसा शाति व जानने पने का सहज स्वभाव आपका पारिणामिक

- आत्मा
  - मुक्त
  - ससारी
    - त्रन
      - दो इन्द्रिय कीडा
      - तीन इन्द्रिय चीटी
      - चतुरेन्द्रिय भवरा
      - पचेन्द्रिय
        - सज्ञी
          - नारकी सात नरक
          - तिर्यञ्च
            - जलचर
            - थलचर
            - नभचर
          - मनुष्य
            - कर्म भूमिज
              - आर्य
              - म्लेक्ष
            - भोग भूमिज
            - कुभोग भूमिज
          - देव
            - भवन वासी
            - व्यंतर
            - ज्योतिषी
            - विमान वासी
              - कल्प
              - कल्पातीत
        - असंज्ञी तिर्यञ्च
    - स्थावर
      - पृथ्वी
      - जल
      - अग्नि
      - वायु
      - वनस्पति

यह उपरोक्त सर्व भेद एक त्रिकाली जीव के पेट मे पडे हैं। परन्तु देखने पर प्रतीत होता है, कि इन मे से एक भी भेद को हम जीव का गुण या गुण की पर्याय नही कह सकते, पर उसे जीव द्रव्य की एक अवस्था या पर्याय अवश्य कह सकते है। जैसे ममुष्य को जीव का गुण या ज्ञानादि गुण की पर्याय नही कहा जा सकता, पर जीव की ही एक क्षणिक अवस्था या पर्याय अवश्य कहा जा सकता है। और इस प्रकार पर्याय दो स्थान पर पाई जाती है गुणो मे और

द्रव्य में भी गुण में तो ज्ञान की मति, श्रुति आदि, चारित्र की राग वीतरागतादि, श्रद्धा की सम्यक् मिथ्या श्रद्धादि, वेदना की शांति अशांति आदि, ये पर्याय है । और द्रव्य में उपरोक्त सब भेद पर्याय हैं ।

पर्याय क्षणिक भाव को कहते है । क्षण भी बडा व छोटा हो सकता है । बडा तो इतना कि कल्पो लम्बा और छोटा इतना कि एक सैकंड का भी असंख्यातवा भाग । अत यहा क्षणिक भाव या भेद का अर्थ यह न समझना, कि इस छोटे क्षण वाली अवस्था को ही क्षणिक अवस्था या पर्याय कहते है । त्रिकाली की अपेक्षा सब ही भेद उस की क्षणिक अवस्थाये है क्योकि वे कभी अवश्य उत्पन्न होती है और कभी अवश्य विनश जाती है। इन में कोई अधिक काल तक स्थित रह कर विनशती है और कोई उस छोटे क्षण मात्र के लिये रह कर विनश जाती है । पर क्योकि विनश जाती है, इस लिये कहा जायगा सबको पर्याय ।

और इस प्रकार मुक्त जीव भले न विनशे पर उत्पन्न अवश्य हुआ है । इसलिये यह त्रिकाली जीव की एक सादि अनन्त पर्याय है । इस का काल जीव सामान्य के अनादी अनत काल की अपेक्षा बहुत छोटा है । ससारी जीव भी इसी प्रकार भले कभी उत्पन्न न हुआ हो पर कदा चित विनश कर मुक्त अवश्य हो सकता है, इसलिये यह त्रिकाली जीव की एक अनादि सान्त पर्याय है । इसका काल भी जीव सामान्य के अनादि अनन्त काल की अपेक्षा बहुत छोटा है । पर फिर भी अपने अपने उत्तर भेदो की अपेक्षा इन का काल बहुत अधिक लम्बा है । त्रस जीव उत्पन्न होते तथा मरते रहते हुए भी धारा प्रवाही रूप से पुन पुन त्रस ही होते रहें, बीच मे कभी स्थावर न होपाये तो यह काल त्रस जीव का काल कहा जाता है । पर ससारी सामान्य की अपेक्षा तो यह बहुत छोटा है स्थावर जीव भी त्रस का बराबर मरता और जन्म लेता यदि धारा रूप से पुन पुन स्थावर ही होता

रहे, वीच मे त्रस न बने, तो यह काल स्थावर काल कहलाता है। यह यद्यपि त्रस के काल से बहुत लम्बा है, पर सामान्य ससारी जीव के काल से बहुत छोटा है। इसी प्रकार स्थावर के पृथिवी आदि प्रत्येक भेद का पृथक पृथक धारा रूप काल स्थावर सामान्य से बहुत छोटा है। और दो इन्द्रिय आदि त्रस के प्रत्येक भेद का धारा रूप काल त्रस सामान्य से बहुत छोटा है। आगे भी इसी प्रकार प्रत्येक उत्तर भेद का काल अपने मूल सामान्य भेद की अपेक्षा अधिक अधिक छोटा होता चला जायेगा। यहा तक की मनुष्य का धारा रूप काल अर्थात मर मर कर पुनः पुनः मनुष्य ही बनता रहे तो अनुमानत अधिक से अधिक चार पांच वार ही बन पायेगा। और इस प्रकार मनुष्य का काल लगभग अधिक से अधिक ४०० वर्ष लगा लीजिये। यहा आगम का आधार न लेकर स्थूल रूप से समझाया जा रहा है ऐसा समझना। आगम मे कर्मभूमिज व भोगभूमिज मनुष्य व स्त्रियो को मिला कर मनुष्य का सामान्य काल ३ पल्य व ४७ पूर्व कोडि कहा गया है उस की यहां अपेक्षा नही है। यह काल या आगम कथित उसका ३ पल्यादि काल तो अपने पूर्व मे पड़े 'सज्ञी' के काल से बहुत छोटा है। और आज दीखने वाले आपके इस भव का काल तो केवल ८० वर्ष ही है। जो उस धारा प्रवाही सामान्य मनुष्य के काल से भी वहुत छोटा है, इस की भी एक युवावस्था का काल केवल ४५ साल (१५-६० तक की आयु वाला) रह जाता है, जो उस एक भव से मी छोटा है। और इस से भो आगे यदि और सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो यह युवावस्था प्रतिक्षण वुढापे की और जा रही है। तव तो इस का एक क्षणिक भेद केवल उस छोटे क्षण जितना ही रह जाता है।

इस प्रकार हमने देखाकि प्रत्येक नीचे नीचे के भेद का काल ऊपर ऊपर के भेद से वरावर अधिकाधिक छोटा होता हुआ अन्त मे एक क्षण मात्र वन वैठा। अतः उन लम्बे कालो मे स्थित जीव की

अवस्था या पर्यायो को भी क्षणिक ही कहा जायेगा। जीव द्रव्य के इन क्षणिक भेदो को हम द्रव्य पर्याय कहते ह पर्याय तो इसलिये कि यह सब भेद क्षणिक है, त्रिकाली नही। और द्रव्य इसलिये कि इनमें से कोई भी भेद जीव के किसी एक गुण की किसी पर्याय विशेष रूप नही ह, बल्कि सब ही गुणो की उतने लम्बे क्षणो तक टिकने वाली क्षणिक शुद्ध या अशुद्ध पर्यायो का एक रस रूप पिण्ड है। अर्थात् इन सब जीव के भेदो में किसी न किसीरूप में ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा व वेदना आदि गुण अखण्ड रूप से पाये जाते ह। इसलिये इन भेदो को द्रव्य पर्याय कहते हैं।

१२ पारिणामिकादि भावो का समन्वय

आत्मा के इन भावो के विशेष स्पष्टीकरणार्थ कुछ शंका समाधान किया जाना यहा आवश्यक है।

(१) प्रश्न -- एक अखण्ड वस्तु मे पारिणामिक व औदयिकादि भावो का विवेक कैसे किया जाये ?

उत्तर — द्रव्य के अगो का समन्वय करते हुए पहिले वाले अध्याय में बताया जा चुका है कि वस्तु की फिल्म बना कर उसे दो ढगो से पढ़ा जा सकता है एक तो पृथक पृथक फोटुओ को देख कर और दूसरे सारी की सारी फिल्म को चला कर। इसी में तीसरा ढग और देखिये।

लीजिये पूर्वोक्त २७ फोटो वाली मेरे जीवन की इस फिल्म को चला दीजिये। देखिये प्रत्येक फोटो में से छन कर कुछ प्रकाश आ रहा है। किसी फोटो में से कम और किसी में से अधिक, किसी में से किसी आकार का और किसी में से किसी आकार का। यदि इस प्रकार सामान्य को पढे तो पृथक पृथक फोटुओ में से छन कर आने वाले उस प्रकाश की जाति में क्या अन्तर

है ? यदि पहिले फोटो के प्रकाश मे वैठ कर पुस्तक पढ़ना चाहे तो भी वैसे ही पढी जायेगी । और अन्त वाले फोटो के प्रकाश मे पढे तव भी वैसी ही पढ़ी जायेगी । यह वात अवश्य है कि पहिले फोटो से प्रकाश वहुत कम आ रहा है क्योकि वहा काला भाग अधिक है, और अन्त के फोटो से प्रकाश पूरा आ रहा है क्यो कि यहा काला भाग विल्कुल नही है, पर प्रश्न तो यह है कि पढते समय क्या दोनो मे पृथक पृथक प्रकार के अक्षर दिखाई देगे ? दूसरे प्रकार से भी यह प्रकाश सामान्य देखा जा सकता है। यदि फिल्म को मशीन पर चढा कर मशीन वहुत अधिक तेजी से चला दे, तो पर्दे पर चित्र नही आयेगे, केवल एक धुन्धला सा स्थिर प्रकाश आकर रह जायेगा, जो आदि से अन्तपर्यन्त जव तक मशीन, चलती रहेगी जू का तू बना रहेगा ।

फिल्म मे से आने वाला यह प्रकाश सामान्य मेरी सर्व पर्यायो मे स्थिर रहने वाला चैतन्य सामान्य है । पहिली निगोद अवस्था मे भी वैसा व वही था और अन्त की सिद्ध अवस्था मे भी वैसा व वही है । इस मे कोई अन्तर पडा नही । यह मेरा पारिणामिक भाव है । दूसरे प्रकार से भी सारी पर्यायो को मिला जुलाकर एक मेक कर डाले जो धुधला सा प्रकाश मात्र दिखाई देगा वह पारिणामिक भाव है । भले धुन्धला हो कि स्पष्ट पर है तो प्रकाश ही । यह प्रकाश पना पारिणामिक भाव है, धुन्धला पना नही । इस प्रकार अखण्ड वस्तु मे पारिणामिक भाव पढाया गया ।

अब इसी फिल्म मे औदयिक आदि भाव देखिये । यह जो न० १ से न० २४ तक के भूत कालीन फोटो दिखाई दे रहे है वे सब मेरे औदयिक भाव का प्रदर्शन कर रहे है । न० २५ मे मुनि के रूप वाला फोटो मेरे क्षायोपशमिक भाव को दर्शा रहा है । न २६ मे अर्हत रूप वाला फोटो क्षायिक व औदयिक दोनो भावों को दर्शा रहा है–शरीर

का आकार औदयिक है और अंतरंग शांति का रूप क्षायिक । नं० २७ में सिद्ध के रूप वाला फोटो सर्वथा क्षायिक भाव का प्रतिनिधित्व कर रहा है ।

इस प्रकार हम ने देखा कि परिणामिक भाव रूप प्रकाश सामान्य तो सब फोटुओं में स्थिर रहा, बदला नही, परन्तु औदयिकादि भाव बदल गये हैं । पारिणामिक भाव सारी की सारी लम्बी फिल्म में है । पर औदयिकादि कोई एक भाव सारी फिल्म में नही है । जहा औदयिक है वहा क्षायिक नही, जहा क्षायिक है वहा औदयिकादि नही । अतः यह औदयिकादि भाव तो पर्याय रूप हैं और उत्पन्न ध्वंसी हैं, इसीसे इन को क्षायिक कहा जा रहा है । पर पारिणामिक भाव त्रिकाली है, उत्पन्न ध्वंसी नही है ।

इस प्रकार एक ही पदार्थ की फिल्म में एक ही समय यह चारों अर्थात पारिणामिक, औदयिक, क्षायोपशमिक व क्षायिक भाव पढे जा सकते हैं, पर वस्तु मे पाये नही जा सकते हैं, क्योंकि वहा सब पर्याय एक साथ नही रहती ।

२ प्रश्न — चार भावों का तो कथन किया पर औपशमिक भाव का नहीं किया ?

उत्तर — औपशमिक भाव को जान बूझ कर छोड़ दिया है । इसके कई कारण हैं । पहिला कारण तो यह है कि यह भाव बहुत थोड़े समय तक टिकता है इसलिये इसका दृष्टांत दिया जाना बहुत कठिन पड़ता है । दूसरा कारण यह है कि नय प्रकरण में इसकी मुख्यता नहीं है । आगम में कहीं भी इस भाव पर नय लागू करके नहीं दिखाई गई है । तीसरा कारण यह है कि यह अपने थोड़े मात्र समय में क्षायिक वत् अत्यन्त शुद्ध व निर्मल रहता है अतः शुद्धता की अपेक्षा क्षायिक व औपशमिक में कोई अन्तर नहीं । केवल दोनों के काल में अन्तर है, पर नय विवरण में काल का ग्रहण नहीं वस्तु के भाव का ग्रहण है ।

८

—: सप्त भंगी :—

१. सप्त भंग सामान्य का परिचय, २. वस्तु के वक्तव्य अवक्तव्य दो अंग, ३. स्ववपर चतुष्टय, ४. अस्ति नास्ति भंग, ५. सात भंगों की उत्पत्ति ६. सात भंगों की सार्थकता, ७. सात भंगों के लक्षण ८. सप्त भंगी के कारण प्रयोजनादि, ९. शंका समाधान

१. सप्त भग सामान्य का परिचय

जिन वाणी की एक एक वात अलौकिक है । तत्वो के प्रत्यक्ष से अति दूर तत्सम्बन्धी विवाद ग्रह मे घुमेर] खाते लौकिक जनो के कोलाहल को शान्त करने के लिये, तत्वों के अन्त. स्वरूप मे डुबकी लगाकर महान् पुरुषो के द्वारा निकाला हुआ यह सप्त भंग सिद्धात भी अलौकिक है । इसकी भूमिका कल्पना नही मनोविज्ञान है । लौकिक व अलौकिक किसी भी विषय

का ज्ञान करते या कराते हुए यह सात भंग स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं।
अब तक वस्तु के अनेकों अंगों का तथा सामान्य व विशेष का स्वरूप
दर्शाया गया। इन अपने सर्व अंगोपांगों से समवेत वस्तु सदा ही
इनमें स्थित रहती है, न तो इनमें से किसी भी विशेष का त्याग कर
सकती है, और न किसी अन्य वस्तु के किसी एक भी सूक्ष्म या स्थूल
विशेष को ग्रहण कर सकती है। वस्तु की इस स्वतंत्रता को दर्शाना
ही इस सिद्धांत का प्रयोजन है।

यद्यपि लोक में कोई विषय ऐसा नहीं कि जिनका ज्ञान इन सातों
बातों से निरपेक्ष हो रहा हो, परन्तु इन्द्रिय प्रत्यक्ष व सुलभ होने के
कारण उस ज्ञान में इन सात बातों का स्थूल दृष्टि में साक्षात् हो
नहीं पाता। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तो ये सातों बातें उस
साधारण प्रति दिन के ज्ञान में भी अवश्य दिखाई देती हैं।

इसका कारण है वस्तु का अनेक धर्मों से युगपत स्पर्श और उन
सब को युगपत कहने में असमर्थ वचन और इन दोनों का परस्पर
वाच्य वाचक सम्बन्ध जिस प्रकार वस्तु में अनेक धर्मों की युगपत
सत्ता है उस प्रकार की युगपत वाचकता वचन में नहीं, और जिस
प्रकार उन्हीं धर्मों की क्रमिक वाचकता वचन में है उस प्रकार उनकी
क्रमिक सत्ता वस्तु में पाई नहीं जाती।

घट या स्वर्णादि पदार्थों के दृष्टांतों के आधार पर शीघ्र ही इन
भंगों की व्याख्या हो जाने के कारण ऐसा प्रतीत होने लगता है कि ये
भंग इतने आवश्यक नहीं जितना कि इन्हें कहा जाता है यदि इनको
आवश्यक भी माना जाये तो केवल एक या दो भंगों से ही काम चल
सकता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रत्येक बात का ज्ञान कर
लिये ये सात ही भंग उत्पन्न होते हैं, हीनाधिक नहीं। यह बात तब
प्रतीति में आती है जबकि सदा पदार्थ जब तक कि अस्पष्ट और-
[illegible] अनुभूत अभ्युपगम किया जाता देखा गया हो। व सात भंग

१५० २ वस्तु के वक्तव्य व अवक्तव्य दो अंग ३ स्व व पर चतुष्टय

ये है—१. अस्ति, २ नास्ति, ३ अस्ति नास्ति, ४. अवक्तव्य, ५. अस्ति-अवक्तव्य, ६. नास्ति अवक्तव्य, ७. अस्ति नास्ति अवक्तव्य ।

कल्पना करो कि ऐसे अज्ञात पदार्थ का ज्ञान अत्यन्त अनिष्णात श्रोता को कराने के लिये कोई भी ज्ञानी वक्ता क्या करेगा ? वह जानता है कि प्रत्येक पदार्थ की भाति इसमे भी दो मुख्य अंश विद्यमान है—एक वक्तव्य और दूसरा अवक्तव्य । वक्तव्य अश के ज्ञान के विना अवक्तव्य अंश की पकड होनी असम्भव है, और अग अवक्तव्य अंश के भान विना वक्तव्य अग का ज्ञान निरर्थक है । इसी कारण प्रत्येक विज्ञान के दो अग है एक सिद्धातिक (Theoritical) और दूसरा अनुसन्धानिक (Practical) दोनो मे सिद्धातिक अग वक्तव्य है तथा सुना जाने योग्य भी, और अनुसंधानिक अग अवक्तव्य पर अनुभवनीय है । यह अवक्तव्य अग भी "अवक्तव्य है" ऐसे वचन द्वारा प्रगट किया जा सकने के कारण कथाचित वक्तव्य है ।

२ वस्तु के वक्तव्य व अवक्तव्य दो अग

यहा यह जो पहिला वक्तव्य अग है वह दो प्रकार का है—एक तो विवक्षित पदार्थ के स्व धर्मो की उस उस रूप से व्याख्या स्वरूप दूसरा उन्ही धर्मो के समान अन्य पदार्थो के धर्मो के निषेध स्वरूप जैसे कि "यह वस्त्र लाल है काला नही' ऐसा कहना । पहिले का नाम अस्ति धर्म है और दूसरे का नास्ति ।

वस्तु के स्व चतुष्टय का स्वरूप पहिले दर्शाया जा चुका है । द्रव्य गुण व पर्याय आदि वस्तु के सर्व विशेषो का इसी मे अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये कथन पद्धति को सरल बनाने के लिये, सामान्य व विशेष वस्तु का कथन करते समय, वस्तु के इस स्वचतुष्टय का आश्रय लेना ही पर्याप्त है । गुण व पर्यायों का अधिष्ठान 'द्रव्य' कहलाता है, उस द्रव्य का सस्थान या आकृति उसका

३ स्व व पर चतुष्टय

स्व क्षेत्र है, उसकी पर्यायें ही उसका स्वकाल है और उसके गुण उसका स्व-भाव है । वस्तु इस चतुष्टय से गुम्फित एक रस रूप है । कहने मात्र के लिये ही ये चार ह, वास्तव मे एक ही है क्योंकि तीन काल मे कभी ये बिखर कर वस्तु मे पृथक नही हो सकत, या यो कह लीजिये कि इससे शून्य वस्तु असत है ।

लोक में अनन्तो वस्तुय ह-जो सव,चेतन व अचेतन इन दो प्रमुख जातिया में या मूर्त व अमूत इन दो प्रमुख जातियो मे विभाजित की जा सकती ह । वे सव ही अपने अपने विशेपो में अवस्थित रहने के कारण अपने अपने ही चतुष्टय की स्वामी ह । इसलिये वस्तु का अपना एक चतुष्टय तो उसका स्व चतुष्टय है और अपने से अन्य सव वस्तुओ के अनेक चतुष्टय उसके लिये अन्य चतुष्टय है या पर चतुष्टय है । जसे कि म और आप दोनो ही जीव द्रव्य ह, दोनो ही सस्थान वाले ह, दोनो ही पर्याय वाले ह, और दोनो ही गुण पिण्ड हे । परन्तु आप आप ही ह और म मैं ही हूँ, आप का सस्थान आपका ही है और मेरा सम्थान मेरा ही है, आप के रागादि विकल्प आपके ही है और मेरे रागादि विकल्प मेरे ही है, आपके ज्ञानादि गुण आप के ही ह आर मेरे ज्ञानादि गुण मेरे ही है । आप कभी भी मैं रूप से नही ह और म कभी आप रूप मे नही हूँ, इसी प्रकार आपका सम्थान रागादि व ज्ञानादि कभी मेरे नही है और मेरा सस्थान रागादि व ज्ञानादि कभी आपके नही है । यद्यपि आपका यह चतुष्टय बिल्कुल मेरी जाति का है परन्तु मेरे वाला ही नही है और इसी प्रकार मरा भी चतुष्टय आपके वाला नही है । इसलिये आपका चतुष्टय आपके लिये तो स्व चतुष्टय है पर मेरे लिये वही पर चतुष्टय है, तथा मेरा चतुष्टय मेरे लिये तो स्वचतुष्टय है और आपके लिये वही पर चतुष्टय है । इसी प्रकार जगत के सब पदार्थों में लाग करना ।

उपरोक्त प्रकार प्रत्येक पदार्थ की सत्ता तभी सिद्ध की जा सकती

४ अस्ति नास्ति भग

है, जबकि उस पदार्थ को चारो ही अपेक्षाओं से अन्य पदार्थ से व्यावृत्त कर दिया जाये, अन्यथा तो पदार्थों का परस्पर मे सम्मेल हो जाने के कारण अथवा दोनो के चतुष्टयो में परस्पर आदान प्रदान हो जाने के कारण सर्व सकर व सर्व शून्य दोषो का प्रसग प्राप्त होता है। अर्थात् यदि पदार्थ के लिये अपने ही चतुष्टय मे रहने का नियम न हो तो कदाचित यह संभव है, कि वह अन्य के चतुष्टय को छीन ले और अपना चतुष्टय किसी अन्य को दे दे। और यदि ऐसा हो जाये तो मै तो आप बन जाऊँ और आप मै बन जाये, अथवा जीव तो जड़ बन जाये और जड़ जीव बन जाये। इस प्रकार लोक मे पदार्थों की सत्ता की तथा स्वभाव की कोई भी निश्चित व्यवस्था न रह जाये। भोजन करते करते ही जिव्हा पर पडा हुआ ग्रास चूहा बनकर जिव्हा को काट खाये। परन्तु न तो ऐसा कभी हुआ है कि और न हो सकता है।

इसी बात को एक सिद्धात के रूप मे यदि कहने लगू तो ऐसा कहूंगा, कि प्रत्येक पदार्थ स्वचतुष्टय मे ही अवस्थित है, पर चतुष्टय मे नही, अथवा स्व चतुष्टय ही उसके लिये सत् स्वरूप है पर चतुष्टय नही, अथवा स्व चतुष्टय की अपेक्षा ही उस वस्तु का अस्तित्व है, पर चतुष्ट की अपेक्षा नही। या यो कह लीजिये कि स्व चतुष्टय की अपेक्षा तो वह और उसकी अपेक्षा स्व चतुष्टय तो अस्तित्व रूप है या अस्तित्व स्वभावी है, और पर चतुष्टय की अपेक्षा वह और उसकी अपेक्षा पर चतुष्टय नास्तित्व रूप है या नास्तित्व स्वभावी है। उदाहरणार्थ आप अपने स्व चतुष्टय की अपेक्षा तो अस्तित्व रूप है और मेरे चतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्व रूप है। यदि दोनो ही चतुष्टयो की अपेक्षा आप अस्तित्व रूप या अस्तित्व स्वभावी होंगे तो हम दो न होकर निश्चय से एक ही हो जायेगे, और इस प्रकार सकल व्यवस्था विच्छिन्न हो जायेगी।

इस सब कथन पर से यह तात्पर्य निकला कि वस्तु में दो विरोधी धर्म विद्यमान है-अस्तित्व धर्म व नास्तित्व धर्म । अर्थात वस्तु सर्वथा सत्ता स्वरूप ही हो ऐसा नही है वह किसी अपेक्षा असत् भी है । यहा यह शका करनी योग्य नही कि वस्तु को असत् मानने पर तो उसके अभाव का प्रसग होगा, अथवा एक ही स्थान पर, विरोध को प्राप्त ये अस्तित्व व नास्तित्व दो धर्म परस्पर में लडकर एक दूसरे का विनाश कर देंगे, और वस्तु शून्य मात्रा बनकर रह जायेगी । क्योंकि यहा जिन विरोधी धर्मों की स्थापना की गई है वह दो भिन्न भिन्न अपेक्षाओ मे की गई है, एक ही अपेक्षा से नही । अर्थात अस्तित्व तो स्व चतुष्टय की अपेक्षा । यदि अस्तित्व व नास्तित्व दोनो ही स्व चतुष्टय की या पर चतुष्टय की अपेक्षा कहे गये होते तो अवश्य दोनो में झगडा हो जाता । दृष्टि भेद से दोनो धर्म पढे जा सकते है परन्तु स्थूल बुद्धि से नही ।

उपरोक्त सिद्धान्त के आश्रय पर जब हम यह कहने जाते है कि घट तो 'घट' ही है 'पट' नही, या घट स्व चतुष्टय की अपेक्षा ही अस्तित्व रूप है, परन्तु पट की अपेक्षा तो वह नास्तित्व रूप ही है तब स्वत ही ऐसा सा लगने लगता है कि घट का अस्तित्व दर्शाना मात्र ही पर्याप्त था, पट का नास्तित्व कहने की क्या आवश्यकता ? क्योंकि घट का अस्तित्व ही स्वय पट के नास्तित्व स्वरूप है । यहा प्रकाश है' ऐसा कहने मात्र मे ही उस स्थल पर अन्धकार का अभाव सिद्ध हो जाता है तब उसे अर्थात नास्तित्व को भी पृथक मे कहना वाक् गौरव के अतिरिक्त और क्या है ? सो ऐसी आशका करनी योग्य नही, क्योंकि भले ही साधारण तथा क्षेत्र व भाव की अपेक्षा पृथक पृथक विषयो में उसकी कोई आवश्यकता न पडती हो परन्तु विशेष तथा क्षेत्र व भाव की अपेक्षा एक या समान दीखने वाले अपृथक या पृथक पृथक विषयो में उसकी आवश्यकता अवश्य पडती है । जैसे कि घट व पट आदि, क्षेत्र की अपेक्षा पृथक पृथक पदार्थों में

विना कहे भी एक की दूसरे मे नास्ति का ग्रहण हो जाता है, परन्तु जीव व शरीर या खोटे स्वर्ण मे रहने वाला स्वर्ण व ताम्बा, ऐसे जो क्षेत्र से अपृथक पदार्थ है, उनमे विना वताये किसी अनिष्णात व्यक्ति को, उनकी एक दूसरे मे नास्ति का भान होना असम्भव है। इसी प्रकार घट व पट ये दोनों तो भाव या स्वरूप की अपेक्षा भी भिन्न है क्षेत्र की अपेक्षा भी पुथक पृथक है ? अतः इन मे तो विना कहे भी पृथकता का ज्ञान हो जाता है, परन्तु स्वर्ण व पीतल या ऐसे ही अन्य पदार्थ जो स्वरूप की अपेक्षा समान दिखते है, उनमे विना वताये किसी अनिष्णात व्यक्ति को स्वरूप की पृथकता का ज्ञान कैसे हो सकता है । स्वर्ण के पीतादि गुणों का परिचय पा लेने पर भी वह पीतल मे स्वर्ण के भ्रम को कैसे दूर कर सकता है, क्योकि पीतल भी स्वर्ण वत् पीला है।

अत एक ही जाति के अनेक गुणो मे तथा मिश्रित पदार्थों के भिन्न भिन्न गुणो मे परस्पर व्यतिरेक वताये विना विवक्षित पदार्थ का अविवक्षित पदार्थ से पृथक्करण करना दुस्साध्य है। ऐसा न होने के कारण ही अनभिज्ञ व्यक्तियो के द्वारा पीतल व स्वर्ण मे तथा शुद्ध व अशुद्ध स्वर्ण मे भेद देखना अत्यन्त कठिन है। अत. किसी भी पदार्थ की स्पष्ट सत्ता का भाव तभी सम्भव है, जबकि उससे उपरोक्त प्रकार अस्तित्व व नास्तित्व दोनो धर्म स्वीकार किये जाये ।

ये अस्तित्व व नास्तित्व दो धर्म ही मूल है क्योंकि अगले पाच का आधार यही है तथा यही वक्तव्य भी हैं क्योंकि स्व व पर की अपेक्षा से विकल्पो को ग्रहण करने वाले है। इन दोनो धर्मो का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जिस प्रकार स्व पर चतुष्टय पर लागू करके परस्पर विरोधी अस्ति व नास्ति स्वभाव वाली वस्तु सिद्ध होती है, उसी प्रकार अपने ही अन्दर मे रहने वाले सामान्य व विशेष इन दोनो अगो मे भी परस्पर विरोधी धर्म वाली वस्तु देखी जा सकती है। स्व द्रव्य का सामान्य भाव देखने पर वह

अभेद है और गुण पर्यायादि विशेष भाव देखने पर वह भेद रूप है । इसलिये वह भेदाभेदात्मक है । स्व क्षेत्र में सामान्य भाव को देखने पर वह अखड है और उसी के विशेष प्रदेश देखने पर वह खड रूप है । इसलिये वह खडिताखडित है । स्वकाल में सामान्य भाव को देखने पर वह नित्य है और उसी के विशेष काल या पर्यायो को देखने पर वह अनित्य है । इसलिये वह नित्यानित्य है। स्वभाव में सामान्य भाव को देखने पर वह स्वलक्षण भूत एक स्वभावी है और उसी के विशेष गुण देखने पर वह अनेक स्वभावी है । इसलिये वह एकानेक स्वभावी है । इस प्रकार वस्तु में अस्ति-नास्ति, भेद-अभेद, खड-अखड *नित्य-अनित्य, एक अनेक आदि अनेको विरोधी धर्म एक ही स्थान* मे व एक ही काल मे देखे जा सकते है । इन सब विरोधी धर्मों का प्रतिनिधित्व एक अस्ति-नास्ति कररहा है ।

५ अवक्तव्य भग

वक्तव्य भग के दो भेदो (अस्ति व नस्ति) का कथन कर दिया गया अब दूसरे अवक्तव्य भग को भी बताता हूँ । वस्तु में दो प्रकार से अवक्तव्यता देखी जा सकती है एक तो उसके एक रस रूप अखड स्वाद की तरफ से, और दूसरे कथन क्रम की असमर्थता के कारण से । इन दोनो में पहिला भाव अर्थात वस्तु का अखड स्वरूप क्योंकि अनेकान्तात्मक है, इसलिये जाना ता जा सकता है पर कहा नही जा सकता, जैसे जीरे के पानी का अखड स्वाद । दूसरी अवक्तव्यता कथन क्रम की असमर्थता के कारण से है । अस्ति नास्ति भगो का वर्णन करते हुए वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व नाम के दो विरोधी धर्मो की स्थापना कर दी गई । ये दोनो धर्म वस्तु में युगपत पाये जाते है, परन्तु युगपत कहे नही जा सकते । क्रम पूर्वक ही कहे जा सकते है, परन्तु वस्तु में आगे पीछे क्रम रूप नही है । वस्तु के सम्बन्ध में न उसे केवल अस्ति कहने से काम चलता है । और न केवल नास्ति । ऐसा कोई शब्द नही जो अकेला दो विरोधी धर्मो को व्यक्त कर सके, इसलिये कोई भी शब्द पूर्णरूपेण वस्तु स्वरूप

का प्रतिपादन करने मे समर्थ नही है । इसी लिये वह अवक्तव्य है, या यो कह लीजिये कि उसमे अवक्तव्यता नाम का धर्म है ।

ये तीनो अस्ति नास्ति व अवक्तव्य (अनुभवनीय) अंग वस्तु मे युगपत पाये जाते है । यद्यपि वस्तु का स्वभाव तो इन तीनो अगो मे समाप्त हो जाता है परन्तु उसका ज्ञान कराने मे प्रवृत्त हुए वचन क्रम मे इन तीनों के ही पूर्वोक्त सात भग वन जाते है । वह कैसे सो ही दर्शाने मे आता है ।

६ सात भगो की उत्पत्ति

कल्पना करो किसी ऐसे विषय की (जैसे आत्मा) जो अतीन्द्रिय है, जिसका या जिसके किसी भी कार्य का साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा कराया जाना असम्भव है । उसके सम्बन्ध में कोई ज्ञानी वक्ता व्याख्या करने लगता है, और विधि निषेध रूप से उसके वक्तव्य अंगों की व्याख्या करते हुए उसे महीनों या सालो वीत जाते हैं ।

इस अन्तराल मे अनेको पुराने श्रोता किसी लौकिक कार्य वश, या निराशा वश, या प्रमाद वश या व्याकुलता वश व्याख्या को पूरी सुने विना वीच मे ही चले जाते है । और अनको नये नये श्रोता वीच वीच मे आकर उसे सुनने लगते है । इन सब श्रोताओ को उनके द्वारा सुने हुए अगों की अपेक्षा यदि श्रेणियो मे विभाजित करें तो वे सात श्रेणी ही वनेगी, छ या आठ नही । पहिली श्रेणी मे वे श्रोता आयेगे जिन्हो ने केवल अस्ति अग ही सुना है, नास्ति व अवक्तव्य अग नही । दूसरी श्रेणी वालो ने केवल नास्ति अग सुना है शेष दो अंग नही । तीसरी श्रेणी वालो ने "अवक्तव्य है, केवल अनुभव गोचर है" इस प्रकार की ही वात सुन ली है, शेष दो नही । यह तीन तो एक संयोगी श्रेणिया होती हैं ।

तीन द्वि संयोगी श्रेणियां वनती है पहिली वह जिसने अस्ति व नास्ति अंग सुने है और अवक्तव्य अग से सर्वथा अनभिज्ञ रही है ।

दूसरी वह जिसने अस्ति व अवक्तव्य अग सुने ह पर नास्ति अग का परिचय नही पाया है। तीसरा वह जिसने नास्ति व अवक्तव्य अग सुने ह पर अस्ति अग का परिचय नही पाया है।

एक श्रेणी त्रि सयोगी श्रोताओ की भी है जिन्हो ने तीनो बात पूरी की पूरी सुनी है।

अब यदि विचार करें तो इन श्रेणियो में से पहिली छ श्रेणिया वस्तु स्वरूप से इतनी ही दूर है जितनी कि वे उस समय थी जब तक कि उन्होने कुछ भी न सुना था। केवल इतना अन्तर अवश्य पडा है कि ये अब उस विषय मे विवाद करने के योग्य हो गये ह। परन्तु सातवी श्रेणी में स्थित व्यक्ति वस्तु स्वरूप के अत्यन्त निकट पहुँच चुका है। वह उपरोक्त विवाद में न पडकर उसको साक्षात रूप जानने के लिये अवक्तव्य अग सम्बधी अनुसधान में जुट जाता है अथात अभेद वस्तु का वास्तविक स्वरूप क्या है यह जानने के लिये उद्यत हो जाता है।

उसने भी यद्यपि "एक अग अवक्तव्य है" ऐसी बात सुनी अवश्य है परन्तु जब तक उस अवक्तव्य या अनुभवनीय अग का अनुसधान द्वारा प्रत्यक्ष कर नही लेता तब तक वह भी वास्तव में अस्ति नास्ति वाले द्वि,सयोगी भग में ही समाविष्ट है। अन्तर केवल इतना है कि द्वि सयोगी अग वाला तो अवक्तव्य अगा मे बिल्कुल अपरिचित रहने के कारण उतने मात्रा में वस्तु स्वरूप का अत समय लेता ह अत वह तो अनुसधान करता ही नही, पर यह दूसरा जिसने उन दो अगा के अतिरिक्त एक अवक्तव्य अग की बात भी कानो में सुनी है, वह वस्तु स्वरूप का उतने मात्र में ही अत समय कर सतुष्ट नही होता, पर कुछ और भी अदृष्ट बात जानने के लिये अनुसधान में प्रवृत्ति करता है। आगे इस प्रकार उद्यम पूर्वक अनुसधान में तपन

हो जाने पर वास्तविक त्रि सयोगी श्रेणी मे कदाचित प्रवेश पा जाता है ।

अस्ति अवक्तव्य व नास्ति अवक्तव्य वाली द्वि सयोगी दो श्रेणियो ने यद्यपि "अवक्तव्य" ऐसी बात सुनी है और अनुसंधान के उपाय भी सुने है पर पूर्ण वक्तव्य अग के भान विना वह उनका सारा ज्ञान निष्फल है । क्योकि ऐसी अवस्था मे वे यदि अनुसधान भी करने लगे तो अन्धकार मे इधर उधर हाथ पाव मारने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकेगे ?

७. सात भगो की सार्थकता

इतनी बातो को अन्तर मे धारण करके ही वे ज्ञानी वक्ता विवक्षित विपय को प्रारम्भ करने से पहिले, उस अनिष्णात जिज्ञासु श्रोता को इस प्रकार समझाता है कि "भो भव्य ! मै तुम्हे वह दुलभ तत्व अवश्य वताऊंगा, परन्तु एक वचन मुझको देना होगा । वह यह कि सम्पूर्ण व्याख्यान व अनुसधान को पूरा किये विना इसे बीच मे न छोड़ना । यदि तेरा क्षयोपशम अधिक है तो शीघ्र ही तू उस तत्व को जान जायेगा । परन्तु यदि क्षयोपशम हीन है तो अधिक समय लगेगा । इससे निराश मत होना, साहस मत छोड़ना, तथा इससे पहिले अनेक व्यक्तियो ने जो अधूरी वातों मात्र का ग्रहण किया हुआ है, वे यदि अभिमान वश तुझसे विवाद करने लगे तो उनसे विवाद मत करना । तथा उन्ही छ श्रेणियो मे से किसी व्यक्ति के द्वारा की हुई किसी शका को निवारण करने मे असमर्थ रहो तो भी इस व्याख्या पर अविश्वास न करना । तथा वचन द्वारा क्रम से कहे जाने वाले इन अस्ति नास्ति व अवक्तव्य अगो का ज्ञान मे क्रम न रखना । इन सबको एक रस रूप करके युगपत अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप कों ही ग्रहण करने का प्रयन्त करना । इस प्रकार तुम अवश्यमेव अन्त मे सातवी श्रेणी मे प्रवेश करके इस तत्व के वास्तविक ज्ञाता हो जाओगे ?"

खाता निष्फलता के कारण निराश हुआ उस सर्व व्याख्या को कपोल कल्पना मान वैठता है जव तक यथार्थ रीतय: सातवी 'अस्ति-नास्ति अवक्तव्य' रूप त्रिसयोगी श्रेणी मे प्रवेश नही पाता तव तक आनिष्णात ही रहता है और इस प्रकार अपने तथा वक्ता के परिश्रम को निष्फल करता है ।

परन्तु सात भगो से भली भांति परिचित हो जाने के पश्चात् अल्प तथा अधूरी अवस्था मे, इनमे से किसी भी श्रेणी के विचार के प्रति सदा सावधान रहता हूआ, धैर्य पूर्वक सप्तम श्रेणी को प्रान्त करके ही चैन लैता है ।

७. सातो भगो के लक्षण

अस्ति नास्ति भग बताते हुए यह बात दर्शा दी गई, है कि वस्तु अनेकों विरोधी धर्मो की पिण्ड है । इस अनेकान्त वस्तु मे जहा अभेद वैठा है वहा ही भेद भी वैठा है । द्रव्य की अपेक्षा या सामान्य की अपेक्षा अभेद है और गुण व पर्यायो की अपेक्षा या विशेष की अपेक्षा भेद है । जहां एकत्व वैठा है वहा अनेकत्व भी वैठा है । सामान्य रूप से एकत्व है और पर्यायों की अपेक्षा अर्थात् विशेष रूप से अनेकत्व है जैसे एक ही जीव मनुष्य व पशु आदि अनेक रूप होता हुआ पाया जाता है । जहाँ नित्य वैठा है वहा अनित्य भी वैठा है । सामान्य रूप से नित्य है और विशेष रूप से अनित्य है । और इसी प्रकार काल नियमित व अकाल नियमित, कर्मधारा रूप व ज्ञान धारा रूप, नियत व अनियत ईश्वर व अनीश्वर स्वतत्र व परतत्र इत्यादि अनेको दृष्टियो के आधार पर अपनी वुद्धि से वस्तु मे एक ही समय मे अनेको विरोधी युगल पढे जा सकते है । .इस प्रकार एक वस्तु मे वस्तु पने को निपजाने वाली परस्पर विरुद्ध शक्ति युगलो को प्रकाशित करने वाला अनेकान्त है ।

साधारणत. सुनने पर यद्यपि इन युगलो मे विरोध दिखाई देता है परन्तु भिन्न भिन्न दृष्टियों या नयों से देखने पर यह सब वस्तु मे

एक ही समय दिखाई, अवश्य देते हैं। वस्तु में यह एक रस रूप से पडे हैं परन्तु वचनो द्वारा क्रम पूवक ही कह कर वताये जा सकते हैं युगपत नही। जिस प्रकार अद्वैत रूप से वस्तु में है उस प्रकार वचन में नही आते और जिस प्रकार वचन में आते ह उस प्रकार वस्तु म नही है। यदि कोई पूछे कि क्रम पूवक न कह कर मुझे तो किसी ऐसे ढग से बताइये कि वस्तु के अनुरूप ही सुनने मे आवे क्रम पूर्वक सुनने मे तो उलझन पडती है, 'तब आप क्या कहेंगे ?' इस प्रकार तो कहा नही जा सकता यही तो कहेंगे। बस यहा से ही तीन अग निकल आये–एक विधि रूप अग जैसे एक, नित्य, नियति आदि, दूसरा निपेघ रूप अग जैसे अनेक, अनित्य, अनियति आदि तीसरा अवक्तव्य रूप अग। यह तीनो ही सप्त भगी के मूल है, क्योकि शेप चार इन्ही तीनो के सयोगी भग है।

अस्ति का अथ केवल अस्तित्व गुण नही परन्तु वस्तु मे दिखने वाले विधि आत्मक सब धम है और इसी प्रकार नास्ति का अथ निपेधात्मक सब धम ह। कथन को सरल व सम्भव बनाने के लिये विधि के प्रतिनिधि रूप 'अस्ति' तथा निपेघ के प्रतिनिधि रूप 'नास्ति' के आधार पर ही सप्त भगी सिद्धान्त की स्थापना की गई है।

स्व चतुष्टय से अस्ति ही है नास्ति नही, और पर चतुष्टय स नास्ति ही है अस्ति नही, सामान्य रूप से नित्य ही है अनित्य नही और विशेप रूप मे अनित्य ही है नित्य नही, सामान्य रूप से अभेद ही है भेद नही और विशेप रूप से भेद ही है अभेद नही। इस प्रकार प्रत्येक एक एक धम पर दो मूल अगो के आधार पर विधि व निपेध या अस्ति व नास्ति का विकल्प किया जा सकता है। किसी धम को दर्शाने के लिये केवल विधि दर्शाना ही पर्याप्त नही बल्कि उसमें दृढता लाने के लिये उससे विरोधी धम का निपेध किया जाना भी साथ साथ आवश्यक है, अन्यथा सशय व अनध्यवसाय का निराकरण नहीं हो सकता।

बस इसी पर से सातों भंगों के लक्षण निकल आये:-

१. किसी धर्म को दर्शाने के लिये, "इस अपेक्षा से ऐसा ही है" इस प्रकार कहना अस्ति भग है।

२ उसी धर्म को और दृढ करने के लिये उसके विरोधी धर्म का निषेध करते हुए, "ऐसा नही ही है" इस प्रकार कहना नास्ति भंग है।

३ दोनों के आगे पीछे, 'ऐसा ही है ऐसा नही है' इस प्रकार कहना अस्ति नास्ति भंग है।

४ युगपत दोनों को एक रस रूप से कहने की असमर्थता अवक्तव्य भग है।

५. अवक्तव्य कहने से कोई सर्वथा अवक्तव्य न मान बैठे इसलिये 'अवक्तव्य होते हु ए भी अपने अपने धर्म का उस अपेक्षा से अस्तित्व अवश्य है' इस प्रकार कहना अस्ति अवक्तव्य अग है।

६. इसी प्रकार "अवक्तव्य होते हुए भी अपने अपने से विरोधी धर्मों का उस अपेक्षा से नास्तित्व अवश्य है' इस प्रकार कहना नास्ति अवक्तव्य भग है।

७. 'यद्यपि युगपत कहा जाना असम्भव है पर क्रम से विधि निषेध द्वारा कहा अवश्य जा सकता है, सर्वथा अवक्तव्य नही है' इस प्रकार कहना सातवा अस्ति नास्ति अवक्तव्य भंग है।

किसी भी उलझी हुई बात को कहने का यह एक वैज्ञानिक ढंग है जो नित्य ही हमारे प्रयोग मे आता है, परन्तु सिद्धांत का विकल्प न होने के कारण क्योंकि हम बुद्धि पूर्वक इन भागो का प्रयोग नही करते है, इसलिये यह

८. सप्त भंगी के कारण प्रयोजनादि

सिद्धात कुछ अटपटा सा लगता है, पर वास्तव में ऐसा नही है । किसी को स्वर्ण की पहिचान बताते समय 'यह स्वण है' इतना कहना ही पर्याप्त नही है बल्कि 'इस ही के जैसा पीतल होता है पर यह पीतल नही है ऐसा कहना भी आवश्यक है । यद्यपि जानकार व्यक्तिया को तो बताने के लिये ऐसा कहना नही पडता पर अनजान को बताने के लिये अवश्य ऐसा कहना पडता है, अन्यथा भय है कि कही वह भूल कर लुट न जाये । यही है अस्ति ओर नास्ति भगा का लौकिक प्रयोग इन्ही दोनो के उपरोक्त रीतय सात भग बन जाते ह जो भिन्न भिन्न अवसरो पर कथन क्रम में अवश्य आने ह विशेषतय उस समय जब कि अनजान व्यक्ति को किसी वस्तु का परिचय देना अभीष्ट हो। इसलिये यह सिद्धात अध्यात्मिक दिशा मे अत्यन्त उपयोगी है ।

यद्यपि अस्ति और नास्ति मे परस्पर विरोध है, पर वस्तुत ऐसा नही है । विरोध अवश्य हो जाता यदि जिस धम को अस्ति कहा जा रहा है उस ही धर्म को नास्ति कहा जाता, परन्तु उससे विरोधी धर्म को नास्ति कहने मे विरोध आना असम्भव है । जैसे कि, "अग्नि उष्ण ही है और उष्ण नही ही है" ऐसा कहना तो विरोध को प्राप्त हो जायगा, परतु, "अग्नि ऊष्ण ही है शीतल नही ही है" ऐसा कहना विरोध को प्राप्त नही हो सकता बल्कि ज्ञान की दृढता के अर्थ सिद्ध होगा ।

यद्यपि अवक्तव्य कहने मे "वचन द्वारा वताना असम्भव है' ऐसा घोषित होता है परन्तु ऐसा इस सिद्धान में मे ग्रहण होना सम्भव नही है क्योकि साथ में रहने वाले अस्ति अवक्तव्य व नास्ति अवक्तव्य वाले भग उसको किसी प्रकार वक्तव्य बना देते ह ।

इस प्रकार वक्तव्य भी है और अवक्तव्य भी है ऐसा प्रदर्शन सातवें भग से हो जाता है।

अत. यह सिद्धात जिज्ञासु जनो के लिये वडा उपकारी है। अनन्तो धर्मो पर पृथक पृथक सप्त भंगी लागू की जा सकती है, इसलिये वस्तु मे अनन्त सप्त भंगियों की सिद्धि होती है।

वस्तु मे दीखने वाले अनेको परस्पर विरोधी धर्म तो इस सिद्धात की उत्पत्ति का कारण है। क्योकि यदि धर्मो में परस्पर विरोध न हुआ होता तो इस सिद्धात का जन्म भी न हुआ होता। वस्तु के उलझे हुए रूप का सरलता से परिचय देना, उसके सम्वन्ध के सशय आदि का निरास करके ज्ञान मे दृढता लाना इस सिद्धांत का प्रयोजन है।

६. शका समाधान यहां इस विषय सम्वन्धी कुछ शंकाओ का समाधान कर देना योग्य है।

१. शंका.—"पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु है ही नही अर्थात नास्तित्व स्वभाव वाली है" इस प्रकार वस्तु का निपेध किया जाना कैसे सम्भव है, क्या जगत मे से उसका अभाव हो गया है?

उत्तर.— निपेध का अर्थ यहां सर्वथा निपेध नही है, वल्कि विवक्षित विषय मे से उसके अतिरिक्त अन्य विषयों का निषेध है। इसी भाव को सिद्धातिक भापा मे उपरोक्त प्रकार कहा जाता है। वस्तु मे पर चतुष्टय नही है, या पर चतुष्टय मे यह वस्तु नही है दोनो वाते एकार्थक है। इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु असत् है या नास्ति रूप है। यदि ऐसा न करे तो लोक के सर्व पदार्थ मिलकर एक हो जाये, अर्थात ज्ञान मे उन का पृथक पृथक ग्रहण न हो सके।

२. शंका.— नास्तित्व स्वभाव स्वीकार कर लेने पर उसी वस्तु मे रहने वाले अस्तित्व स्वभाव के साथ विरोध आ जायेगा?

उत्तर – नही आयेगा, क्योकि यहा अस्तित्व और नास्तित्व का लक्ष्य एक ही विषय नही है, बल्कि भिन्न भिन्न विषय हैं उसी विषय की अपेक्षा अस्तित्व और उसी विषय की अपेक्षा नास्तित्व कहते तो विरोध होता, पर भिन्न भिन्न विषयो पर लागू होने के कारण विरोध नही आता। अस्तित्व का अर्थ है स्व चतुष्टय या अपने स्वभाव की अपेक्षा अस्तित्व और नस्तित्व का अर्थ है पर चतुष्टय या अन्य पदार्थों के स्वभाव की अपेक्षा नास्तित्व। जैसे उष्णता की अपेक्षा तो अग्नि नाम का पदार्थ सत् है, परन्तु शीतलता की अपेक्षा वह असत है, अर्थात, शीतल स्वभाव वाली किसी अग्नि की सत्ता लोक में नही है। यहा एक ही अग्नि में अस्ति व नास्ति का विरोध नही है। यदि कहते कि उष्ण स्वभाव की अपेक्षा अग्नि सत है और उसी उष्ण स्वभाव की अपेक्षा उसकी नास्ति है, तो अवश्य विरोध आता।

३ शका –जब दोनो का एक ही अर्थ है, तो दोनो को पृथक पृथक कहना वचन विलास के अतीरिक्त और क्या है ?

उत्तर –नही भाई! ऐसा नही है, क्योकि "यह घट है" ऐसा कहने के साथ साथ "यह पट नही है" ऐसा कहने की यद्यपि कोई आवश्यक्ता व्यवहार में प्रतीति नही होती, अनुक्त भी उसका स्वय ग्रहण हो जाता है, परन्तु कठिनता तो वहा पडती है, जबकि दूध पानी वत घुल मिलकर दो पदाथ एक हो गए हो, और उस एकमेक दिखने वाले पदाथ में से विश्लेषण करके किसी एक अभिष्ट पदाथ को अलग निकालना पडे। और यह कठिनाई और भी बढ जाती है जबकि यह विवक्षित पदार्थ अदृष्ट हो। जैसे कि गाय के थन से निकले हुए शुद्ध दूध में यदि किसी साधारण व्यक्ति से पूछे, तो क्या उसमें पानी का अस्तित्व स्वीकार करेगा? यही तो कहेगा कि इसमें पानी की एक बूद भी नही है।

अब विचारिये क्या यह ठीक है ? क्या सारा का सारा दूध ही है ? दूध तो सम्भवत: उसमे एक पाव होगा, शेष तो पानी ही है। आप भी चकरा गये होगे यह सुनकर। पर भाई ? विचार कर देखे तो पता चले कि दूध का तो उसमें उतना ही भाग है जितना कि आग पर रखकर जलाते जलाते शेप रह जाये, अर्थात पावडर मिल्क ही वास्तविक दूध है। जितना कुछ जल गया वह तो पानी है, दूध नही।

बस सेर भर दूध मे दूध को ही स्पप्ट दर्शाने के लिये यह कहना ही होगा कि इसमे दूध तो एक पाव वाला अंश ही है, शेप बारह छटाक वाला अंश नही, क्योकि वह दूध नही पानी है। ऐसा कहे बिना यदि केवल इतना कहकर छोड़ दे कि भाई! यह एक पाव दूध है, या इस बर्तन मे एक पाव दूध है, तो बताइये एक अपरिचित व्यक्ति क्या उलझन मे न पड़ जायेगा। ? अरे ! क्या कह रहा है यह, साक्षात एक सेर को एक पाव बता रहा है ? या तो इसका दिमाग खराब हो गया है या मेरा।

इसलिये मिले जुले पदार्थों मे स्पष्ट पृथकता दर्शाने के लिये विवक्षित पदार्थ की विधि के साथ साथ दूसरे विद्यमान पदार्थों का और यदि आवश्यकता पढे तो अविद्यमान अन्य सर्व पदार्थों का भी निपेध किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। अत. ये अस्ति व नास्ति के दोनों ही भग सार्थक है व्यर्थ नही। इस सिद्धात का हर समय शब्दो मे प्रयोग हुआ ही करे ऐसा आवश्यक नही, परन्तु भावो मे यह विधि निपेध बराबर बना रहता है, और तभी लोक का व्यवहार चलता है। शास्त्रीय अदृप्ट व सूक्ष्म विषयो को जानने के लिये बुद्धि पूर्वक इसका प्रयोग किया जाता है। अभ्यस्त हो जाने पर भावभासन हो जाने के कारण, फिर वहा भी शब्दों मे इसके प्रयोग की आवश्यकता नही। अत यह वाग्विलस मात्र नही है।

अर्थात एक बात पर जोर देकर दूसरी बात को उस समय दबाने का प्रयत्न करता है। इस अवसर पर श्रोता की दृष्टि भी यदि वक्ता के अनुरूप ही रहे तब तो वह कुछ समझ सकता है, परन्तु यदि श्रोता की दृष्टि किसी दूसरे अग को पढ़ने का प्रयत्न करने लगे, अर्थात वक्ता की दृष्टि के अनुरूप न रहने पाये तो वह उसका प्रयोजन पढने मे असफल रहेगा। अतः उसे वक्ता की वह बात सुनकर या तो कुछ भी समझ नही आयेगा, या उसके हृदय मे वस्तु के अगके स्थान पर वक्ता के प्रति संशय प्रवेश कर जायेगा, और वह आगे सुनने की जिज्ञासा भी खो बैठेगा। इस प्रकार भी हित के स्थान पर अहित हो जाना सम्भव है। अतः नय की स्थापना करते समय यहा यह बता देना आवश्यक है कि वक्ता के द्वारा बोले गये प्रत्येक शब्द मे उसका कोई विशेष प्रयोजन व अभिप्राय छिपा रहता है। श्रोता को उसका परिज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

वक्ता जो कुछ बात करता है या विचारक जो कुछ विचारता है, वह वस्तु को नही बल्कि ज्ञान को देखकर ही बोलता विचारता है। इसलिये कभी तो वह वर्तमान काल सम्बन्धी वस्तु के सम्बन्ध मे कहने लगता है, और कभी भूत या भविष्यत काल सम्बन्धी वस्तु के सम्बन्ध मे। सम्पूर्ण त्रिकाली प्रमाण ज्ञानरूप चित्रण को एक साथ कहने मे असमर्थ, तथा एक साथ समझाना असम्भव होने के कारण, वह कोई एक एक अंग उस सम्पूर्ण मे से निकालकर दिखाने का प्रयत्न करता है। कौनसा अग कब निकालकर दिखाये, यह कोई नियम नही। क्योकि ज्ञान मे पड़े ३० अगो के चित्रण मे कोई आगे पीछे रहने का नियम नहीं है। एक रसरूप वस्तु मे ऐसा कोई नियम हो भी नही सकता। यह तो वक्ता की मर्जी पर है कि जो भी अंग वह चाहे पहिले कहदे, और जो भी चाहे पीछे कहदे। कथन करने के लिये वास्तव मे उसका कुछ अपना स्वार्थ या प्रयोजन आड़े आता है। जैस कि पाकशाला मे अग्नि जलाते समय तो हाथ सैकने का

विकल्प होता है, और दीपक जलाते समय उसमें हाथ सैकने का विकल्प आपको उत्पन्न नही होता ।

भले आपको ज्ञान में सब कुछ स्वीकार है, पर यदि पाकशाला मे जाकर मै आप से पूछू तो आप यही कहेंगे कि "देखो अग्नि की कृपा जो हम आज भोजन पकाने में सफल हो गये है, अग्नि का पाचकगुण महान् है ।" और इसी प्रकार दीपक के निकट ले जाकर पूछू तो आप कहेंगे कि "इसका प्रकाशगुण महान् है ।"

बस इसे ही कहते है वक्ता का प्रयोजन या मुख्य गौण व्यवस्था । जो कुछ भी उस समय वक्ता का अपना स्वार्थ या प्रयोजन होता है, वह उसी के अनुरूप अग को प्रमुखत ज्ञान में से निकालकर विचारता या बात करता है । दीपक जलाते हुये यदि दाहकता की मुख्यता रहे तो घर में आग लगने के भय से दीपक कभी न जला पाये । किसी अग की मुख्यता के आधार पर ही किसी काय विशेष की सिद्धी हुआ करती है, और किसी अग की मुख्यता के आधार पर ही वचन क्रम का निकलना सम्भव है । ऊपर के दृष्टान्त पर से काय की सिद्धि वश प्रमुखता दर्शाई गई । अब वचन क्रम में आने वाली प्रमुखता भी देखिये । वक्ता कौनसे अग को किस समय प्रमुख बना कर कथन करे यह बात उसके अपने प्रयोजन में छिपी हुई है, और यह प्रयोजन उसके अन्दर श्रोता को देखकर उत्पन्न होता है । श्रोता में वह जिस अग की कमी देखता है उस समय वह उसी अग को मुख्य करके कथन करने लगता है । भले उस पर श्रोता को दृढ करने के लिये उसे उसके अतिरिक्त शेष अगो का उस समय निषेध ही क्यो न करना पडे । परन्तु बाहर में दीखने वाला वह निषेध निषेध नही होता, क्योकि ज्ञान में उसका बराबर स्वीकार पडा रहता है ।

जसे किसी निराश श्रोता को देखने पर, जोकि यह कह रहा हो कि "बस जी रहने दो, यह धम की बात मुझ पापी को सुननी भी

योग्य नही, क्योकि मेरे लिये इस अवस्था मे इसका अपनाया जाना असम्भव है," मै उसे वीरप्रभु के भूतकाल का ही चित्र दर्शाऊगा और यही कहूंगा कि "घवराता क्यो है, देख महावीर प्रभु का यह रूप। क्या वह पापी नही दिखते है तुझे ? सम्भवतः वह इस अवस्था मे तुझ से अधिक पापी हैं। जव वे ऊचे उठ गये तो तू क्यो उठ न सकेगा। निराशा तज, साहस ठान, आलस हान, और आगे वढ। तू वीरो की सन्तान है" यहा वीर प्रभु को पापी वनाने का प्रयोजन क्या उन्हे गाली देना है, या श्रोता को ऊंचे उठाना ? इसी प्रकार जव किसी श्रोता को आलस मे पड़ा देखता हूं, जोकि यह समझ वैठा है कि काफी धर्म कर लिया, और अधिक करके क्या करूंगा, तो उसे वीर प्रभु के वर्तमान काल का चित्रण दर्शाऊंगा, और यही कहूंगा कि "वस इतने पर ही थक गया ? अरे ! तुझे तो यहां पहुंचना है जिस अवस्था मे कि वीरप्रभु आज हैं। तेरा गुमान मिथ्या है। अपने जीवन और इनके जीवन को मिलाकर देख, कहां है तू ? भाई उठ ! अभी वहुत कुछ करना शेप है। सन्तोप न कर।" यहा भी तो उसे ऊंचा उठाने का वही प्रयोजन है।

इसी प्रकार, ऐसे श्रोता को देखकर जोकि वाह्य चारित्र, व्रत, वेप, तप, उपवास, शुद्ध भोजनादि की क्रियाओं पर अभिमान करके अपने को मोक्ष मार्गी या शान्ति पथगामी मान वैठा है, उसको तो अभेद रत्नत्रय मार्ग मे से ज्ञानवाला अंग ही पृथक निकालकर प्रमुखतः दर्शाऊगा, और यही कहूंगा कि तेरी यह सव क्रियाये निरर्थक हैं, उन्हे छोड दे, ज्ञान प्राप्त कर, वही तेरी उन्नति का मार्ग है, यह वाह्य क्रिया कलाप नही। यह फोकट है वेकार है। क्या यहां चारित्र छुड़ाना अभीष्ट है या उसे उन्नति पथ पर लगाना ? इसी प्रकार यदि कोई ज्ञान मात्र प्राप्त करने मे और अधिकाधिक ग्रन्थो का अध्ययन करने मात्र मे सन्तोष पा गया हो, तो ऐसे व्यक्ति के सामने यही कहूंगा कि भाई ! यह ज्ञान तेरे कुछ काम मे आने वाला नही। यह

गधे का भार है। चारित्रधार वही अमृत व जीवन का सार है। त्याग कर व साम्यता धारने का अभ्यास कर"। क्या यहा जिन वाणी की अविनय करना अभीष्ट है। नही परन्तु सवत्र श्रोता को ऊचे उठाने का ही मात्र प्रयोजन है।

परतु इस प्रयोजन से अनभिज्ञ आप मेरे वक्तव्यो का उल्टा अथ समझकर झुझलाने लगते है। चर्चा करने लगते ह कि यह तो भ्रष्टाचारी है। भगवान को पापी कहते नही हिचकता, वाणी की अविनय करते हुये नही डरता। बस एक अपनी स्वतत्रता स्वतत्रता के राग अलापता है। यही तो स्वच्छन्दता के लक्षण है। "चारित्र का निषेध सुनकर भी इसी प्रकार आप बौखला उठते हो और मझ मे लडने लगते हो, परन्तु ज्ञान का निषेध सुनकर तुम्हें कुछ हष सा होने लगता है। इसका क्या कारण? केवल यही कि आपको 'नय-ज्ञान' नही है। भले ही निश्चय व्यवहार आदि नयो के नाम याद किये हो। और उन्ह प्रयोग भी करने हो, पर वह केवल कथन मात्र है, प्रयोजन शय है, अघे के तीर वत् है। प्रभो! अपने कल्याण को दृष्टि मे रखकर तथा स्वय अपने जीवन को उन्नत करने के लिये अपनी भूल सुनकर चिडना अव छोड दे। यह चिडचिडाहट तेरे ही लिये बाधक है, मेरे लिये नही। मै अव नय का लक्षण व स्वामित्व दर्शाता हूँ। निणय करने का प्रयत्न कर।

२ नय का लक्षण – उपरोक्त प्रकार प्रयोजन वश, वस्तु के सम्पूण त्रिकाली अगा के प्रमाण ज्ञान रूप चित्रण मे से, कोई एक अग को वाहर निकालकर कहने की जो यह पद्धति दर्शाई गई है, इसी को नय वाद कहते ह। इस बात को इस प्रकार भी कहन में आता है कि भाई! मने यह वात इस प्रयोजन या अभिप्राय से कही है। किसी को गलत फहमी उत्पन्न हो जाने पर आप लौकिक क्षेत्र में भी तो उसे समझाने को तथा गलत फहमी दूर करने के लिये यही वात कहते हो।

वस इसी का नाम नय है । इसमे कोई खोटा प्रयोजन नही रहता । या यह भी कह सकते हो कि मैने यह वात इस दृष्टि से कही है, इस अपेक्षा से कही है, यह मुख्यता रखकर कही है, यह लक्ष्य रखकर कही है, या इस नय से कही है । इसलिये प्रयोजन, अभिप्राय लक्ष्य. दृष्टि, अपेक्षा, मुख्यता व नय—यह सारे शब्द एकार्थवाची है । निप्रयोजन नय के नाम का प्रयोग नय नही कहलाता । और इसी प्रकार कोई विशेष कारण रूप कार्यकारी पना देखे विना भी जिस किस नय का प्रयोग करना नय नही कहलाता । नय उसी का नाम है जो किसी प्रयोजन व कारण को दृष्टि मे रखकर प्रमुखत: दर्शाने मे आये। इसलिये नय सर्व साधारण व्यक्तियों को होनी असम्भव है । इसका यथार्थ प्रयोग तो प्रमाण ज्ञानी या सम्यगदृष्टि ही कर सकता है ।

उस वक्ता के प्रयोजन विशेष को दृष्टि मे रखकर वोला गया वह वाक्य ही श्रोता के जीवन मे हित उत्पन्न कर सकता है, या यो कहिये कि श्रोता को वस्तु व्यवस्था समझाने मे सफल हो सकता है, अर्थात् उसे वस्तु स्वरूप के निकट ले जाने मे सफल हो सकता है । परन्तु यह तभी सम्भव है जवकि श्रोता स्वयं, प्रमुख करके कहे गये एक एक अग को समझकर हृदय कोष मे जमा करता जाये, और इस प्रकार धीरे धीरे क्रम से सम्पूर्ण अंगो को धारण करके, अन्त मे जाकर उन्हे परस्पर मे मिलाकर एक रस कर दे । जू जू वह आगे आगे के अगो को धारण करेगा तू तू उसे "वस्तु के निकट जा रहा है" ऐसा कहा जायेगा । इस लिये उपरोक्त प्रयोजन वश वोला गया नय वाक्य श्रोता को वस्तु के निकट पहुचाने या ले जाने की शक्ति रखता है, और इसी से अत्यंत उपकारी है ।

क्योकि प्रमाण ज्ञान के एक अग को प्रमुख करके वोला जाता है, इसलिये इसे एकांत भी कहते है । उस एक अग को कहते हुए शेष अंग गौणा रूप से निषिद्ध भले हो गये हों, पर अभाव रूप से निषिद्ध

नही हो पाये ह, ज्ञान में अब भी वे उतने ही बल से स्वीकार किय जा रहे ह जितने बल से कि वह प्रमुख अग। वचनो म मुख्य पर अधिक जोर दिया जा रहा है और इस लिये बाहर मे ऐसा दिखाई देने लगता है, मानो यही अग इसे स्वीकार है, अन्य नही। पर ज्ञान में ऐसा होने नही पाता। यदि ज्ञान में भी ऐसा हो जाये तो वह नय नय नही रहती, उसे नयाभास व मिथ्यानय या मिथ्या एकात कहते ह। परन्तु यह उसी समय सम्भव है जबकि प्रमाण ज्ञान रूप अखड चित्रण हृदय पट पर हो। अत मुख्यता व गौणता का अथ सदभाव व अभाव नही बल्कि दोनो का सद्भाव है, और समान शक्ति रूप मे सद्भाव है—जैसे कि दीपक में अग्नि का प्रकाश मुख्य हो जाने पर भी ज्ञान में पाचकता का कोई कम महत्व नही हो जाता। प्रमान ज्ञान त्रिकाली वस्तु के अनुरूप होता है। वस्तु में कोई गुण मुख्य या या गौण नही होता। वहा तो सारे ही मुख्य ह। मुख्यता गौणाता तो रागी प्राणी का, स्वार्थ वश उत्पन्न किया गया मानसिक विकल्प है। इसलिये वस्तु क अनुरूप प्रमाण ज्ञान में भी मुख्यता गौणता नही होती। वहा सब अग समान रूप से प्रमुख ह। उसमें सब अगो की प्रमुखता रहने पर ही नय रूप मुख्यता की अपेक्षा का प्रयोग सच्चा कहा जा सकता है। अतरग में भी यदि हीन बल वाली दिखाई दे तो अपेक्षा सच्ची नही होती। इसी का नाम है प्रमाण सापेक्ष नय। तथा सब अग अपने अपने स्थान पर समान शक्ति वाले स्वीकार करने पर ही उस प्रमुख अग का अपने पडोसी अन्य अगो के साथ सहयोग रहना सम्भव है, अन्यथा नही।

एक अग की सुनते समय उससे विरोधी अग की स्वीकृति को बराबर हृदय पट पर चित्रित देखते रहने को ही नयो की परस्पर सापेक्षता कहते ह। नय की प्रमाण से सापेक्षता और नय की नय से सापेक्षता इस प्रकार सापेक्षता दो प्रकार की हो जाती है। अपेक्षा या नय की स्पष्ट बताये बिना, 'किसी अपेक्षा से भगवान पापी भी है'

ऐसा भी कहने में आ सकता है। परन्तु तभी, जब कि श्रोता यह जानता हो कि यह कथन भूतकाल की पर्याय की अपेक्षा कहा जा रहा है। यदि श्रोता अनभिज्ञ है तो अपेक्षा स्पष्ट बतानी ही चाहिये, ताकि उसे भ्रम उत्पन्न न हो जाये। इस प्रकार की कथन पद्धति मे 'कथंचित' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है, किसी अपेक्षा से।

ऊपर के वक्तव्य पर से नय के निम्न लक्षण निकलते है। वक्ता व श्रोता दोनो का पृथक पृथक आश्रय लेकर इसके पृथक पृथक लक्षण निकालते है –

१ वक्ता के अभिप्राय को नय कहते है

२. सम्यग्ज्ञान या प्रमाण ज्ञान के विकल्प को नय कहते है

३. जो श्रोता की वस्तु के प्रति ले जाये सो नय है।

ऊपर के दो लक्षण वक्ता को दृष्टि मे रखकर दिये गये है, और इस पर से यह सिद्ध होता है कि वक्ता संम्यग्ज्ञानी ही होना चाहिये। क्योकि उसी के ज्ञान का विकल्प, नय है, सर्व साधारण ज्ञान का नही। न ३ वाला लक्षण श्रोता को दृष्टि मे रखकर किया गया है जिस पर से यह सिद्ध हो सकता है कि नय वचन उसी के लिये कार्य कारी है, जो अपने पक्षपातो को दबाकर वस्तु को समझने का प्रयास करे।

३ अर्थ, ज्ञान व वचन नय

इस प्रकरण मे थोडी और विशेषता भी यहा जान लेनी आवश्यक है, क्योकि अब तक हमने नय की व्याख्या का आधार ज्ञान मे पड़े अखड चित्रण को ही बनाया है, परन्तु इतना ही मात्र नही है। वस्तु के अंग तीन स्थान पर पढे जा सकते है—१ वस्तु मे जाकर, २. वस्तु के अनुरूप प्रमाण ज्ञान मे जाकर, ३. प्रमाण ज्ञान मे से किसी अंग को मुख्य रूपेण दृष्टि मे लेकर बोले

गये या लिखे गये वाक्यो में जाकर। इन तीनो में परस्पर कार्य कारण भाव है। वस्तु ज्ञान की सत्यता का कारण है और ज्ञान वचन की सत्यता का कारण है। इसलिये नय के भी तीन ही भेद समझ लेने चाहिये –

१ वस्तु नय, अर्थात् वस्तु मे दीखने वाले अग। इसे आगम में अर्थ नय कहा जाता है।

२ ज्ञान नय, अर्थात् प्रमाण ज्ञान में प्रति भासने वाला वस्तु का अग। वस्तु के अनुरूप ज्ञान को ज्ञान नय कहते है। अथवा वस्तु के आकार से प्रतिबिम्बित ज्ञान को ज्ञान नय कहते है।

३ वचन नय, अर्थात् ज्ञान के उपरोक्त प्रतिभास के प्रकाशनार्थ बोले गये या लिखे गये शब्द। इसे आगम में शब्द नय या व्यञ्जन नय भी कहते है।

वचन नय से इस बात का विवेक कराया जाता है, कि बोले या लिखे गये शब्द ऐसे होने चाहिये जिससे कि श्रोता या पाठक ठीक ठीक ही वाच्यार्थ को ग्रहण करे, भ्रम में न पडे। क्योकि भिन्न भिन्न स्थलो पर भिन्न अभिप्राय से बोले गये शब्दो के अर्थ में भी तदनुसार भेद अवश्य पड जाता है।' जिसका खुलासा आगे नय के भेदो में 'शब्द नय' तथा उसके भेद प्रभेदो की व्याख्या करते हुए किया जायेगा।

४ वचन कैसा होना चाहिये

अर्थ नय, ज्ञान नय, और वचन नय, इन तीनों के सम्यक मिथ्या पने पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि वस्तु के प्रमाण ज्ञाता के लिये, अर्थ नय व ज्ञान नय तो सदा प्रमाण व नय सापेक्ष ही रहते है क्योकि वस्तु को देखते हुए या उस

सम्बन्धी विचार करते हुए, उसे वस्तु मे या प्रमाण ज्ञान में मुख्य वनाये हूए अंग के साथ साथ, अन्य और भी अवश्य ही दिखाई दे रहे हैं। अव तो प्रश्न यह है कि वचन नय को सापेक्ष कैसे वनाया जाये ? आगम मे पढा है कि सापेक्ष नय ही सम्यक् है, निर्पेक्ष नय मिथ्या है, इसका क्या तात्पर्य ?

वचन को भी सापेक्ष वनाया जा सकता। सापेक्षता दो प्रकार की है–प्रमाण के प्रति व अन्य नय के प्रति। वचन मे एक समय मे एक ही अंग प्रमुखतः कहा जा सकता है, सर्व अगो का युगपत कहा जाना सम्भव नही। फिर भी इसको प्रमाण सापेक्ष वनाया अवश्य जा सकता है। सो किस तरह वह सुनिये। इस प्रकार, कि वस्तु के किसी अंग विशेष का प्रवचन प्रारभ करन से पहिले, उसकी भूमिका वना देनी चाहिये। जिसमे उस वस्तु विषयक सम्पूर्ण अगों का संकेत मात्र देकर संक्षिप परिचय श्रोता को दे दिया जाये, "इस प्रकरण के अन्तरगत स्थूलतः यह यह विषय आयेगे, सो इनका कथन लगभग एक महीने मे पूरा कर पाऊगा, अतः आपका कर्त्तव्य है कि विषय को एक महीने तक वरावर सुनकर एक महीने पश्चात् ही उस सम्पूर्ण विषय के सम्वन्ध मे अपना कुछ निर्णय स्थापित करना, अधूरा सुनकर नही, और न ही इसे अधूरा सुनकर छोड देना। क्योकि ऐसा करने से आपका भ्रम वश अहित होने की सम्भावना है इत्यादि।" तथा वक्तव्य के वीच वीच मे भी यथा अवसर ऐसा संकेत देते रहना चाहिये, कि "जितना आप अव तक सुन पाये है, यह पूरा नही है। इतने मात्र पर सतोष पाने का प्रयत्न न करना। इसके अतिरिक्त और भी कुछ है। सारे का सारा सुन कर ही कुछ निर्धारित करना, उससे पहिले नही।" इस प्रकार आपका वोला गया तद्विषयक हर वचन प्रमाण के प्रति वरावर सकेत करते रहने के कारण, प्रमाण सापेक्ष वन जायेगा, जो आप व श्रोता दोनों के लिये हितकारी होगा।

हित के इस माग मे आपका हर वचन हित और मित व मिष्ट होना चाहिये । मिष्ट तो उसे बनाया जा सकता है सरलता व प्रेम को हृदय मे रखकर बोलन के द्वारा, और हित बनाया जा सकता है उसे सापेक्ष बनाकर । प्रमाण के साथ वचन की सापेक्षता दर्शा दी गई। अब नय के साथ सापेक्षता सुनिये ।

नय के साथ सापेक्षता के अन्तगत आता है, दो विरोधी अगो का कथन भले एक दिन के वक्तव्य के सम्पूण अग न कहे जा सके, किन्तु एक विपय के दो अग कहे जाने सम्भव ह । फिर भी मुख्य गौण व्यवस्था वश, उस विपय के दो विरोधी अगो में से मुख्य अग पर अधिक जोर देकर उसकी ही व्याख्या की जाना न्याय सगत है । परन्तु ऐमा करते हुये भी यदि यह विवेक रख लिया जाये, कि उस दिन का वक्तव्य समाप्त होने के पश्चात् ५ मिनट के लिये यथा योग्य रीति से उस विरोधी अग की कायकारिता भी दर्शा दें, तो वह सब आपका कथन नय सापेक्ष हो जायेगा जैसे कि निम्न दृष्टान्त से स्पष्ट होता है ।

कल्पना करें कि मुझे जीव के चारित्र अग का कथन करना अभीष्ट है । चारित्र के दो विरोधी भाग ह । राग व वीतरागता । जहा राग होना है वहा वीतरागता नही, और जहा वीतरागता होती वहा राग नहीं । वीतरागता कैसे प्राप्त की जाये यह प्रकरण है । सो स्पष्ट है कि म जोर देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूगा कि राग द्वारा वीतरागता की प्राप्ति असम्भव है । क्योकि विप पान से अमृतत्व मिलना असम्भव है । घन्टे भर बोलने का समय है । सो मुझे चाहिये कि ५५ मिनट तो उसी बात पर जोर देकर कहूँ, कि राग के द्वारा वीतरागता तीन काल में प्राप्त हो नही सकती, अत राग त्याग कर वीतरागता में स्थिति पा ।

पर यह विचार कर कि रागी जीव के लिये ऐसा किया जानाएक दम सम्भव नही। रागी को ही तो वीतराग होना है। वीतराग ही हो गया तो वीतरागता की प्राप्ति का प्रश्न ही क्या रहा? अत राग मे रहते रहते वीतरागता की प्राप्ति तो राग के आधार पर ही हो सकेगी। केवल उस राग की दिशा मे परिवर्तन करना होगा। अतः अन्त के शेष ५ मिनिट मे यह बताना भी मेरा कर्त्तव्य अवश्य है, कि भाई! राग अवस्था मे राग ही एक मात्र साधन है, अत· इसकी दिशा भोगो की ओर से हटाकर वीतराग देव शास्त्र गुरु की ओर कर भोगो के ग्रहण के राग की दिशा घुमाकर भोगों के त्याग की ओर कर। और इस प्रकार राग तो कर, पर राग के प्रतिका नही, वीतरागता के प्रति का कर। इस प्रकार राग भी कथंचित वीतरागता का साधन इस निचली भूमिका मे अवश्य है। आगे जाकर शुल्क ध्यान मे इसका आश्रय पूर्णत· छूट जाने पर, ऊपर वाला नियम लागू होगा। अत. वीतरागता के प्रति का राग साधन है, और वीतरागता साध्य है। इस प्रकार चारित्र की व्याख्या के अन्तंगत वीतरागता अग का पोषक कथन सापेक्ष हो गया।

प्रभो! यह मार्ग कल्याण का, है पक्षपात का नही। जिस वचन मे आप व पर का दोनो का हित हो, वही बोलने योग्य है। तेरे पास बुद्धि है, अनुमान के आधार पर यह जाना जा सकता है, कि श्रोता मेरा वचन सुनकर अहित की और तो नही झुक जायेगा। यदि ऐसा होता दिखाई दे, तो तत्क्षण, अपनी मुख्य बात का विरोधी अंग पुष्ट कर देना योग्य है। देख राजा वसु का दृष्टात। यद्यपि उसके ज्ञान मे सत्य और असत्य का निर्णय मौजूद था। वह यह जानता था कि इस यज्ञ के प्रकरण मे 'अज' शब्द का अर्थ 'जौ' होता है "बकरा नही"। फिर भी अपने किसी स्वार्थ या पक्ष विशेष वश उसने यह कह दिया कि 'अज' का अर्थ यहां 'वकरा' ही ग्रहण करना चाहिये। यद्यपि ज्ञान मे वह वरावर जान रहा था कि वह बात असत्य है, पर फिर

भी वह बोल गया। साधारण व्यक्ति के रूप में बोलता तब भी कुछ और बात थी, परन्तु उसने यह बात न्याय के सिंहासन पर बैठकर बोली बोलते समय उसे यह विचार न आया, कि इस एक छोटे से वचन से असंख्याते जीव हिंसक होकर अपना अकल्याण कर बैठेंगे। और ऐसा ही उसका फल हुआ भी। इसीमे वह उस विषय सम्बन्धी सम्यग्ज्ञानी होते हुए भी, अधोगति का पात्र हुआ।

बस इसी प्रकार तू जिस समय, शास्त्र की गद्दी पर बैठा है, उस समय साधारण व्यक्ति नहीं, गुरु का प्रतिनिधि है। तेरा एक भी शब्द असंख्याते जीवों के कल्याण व अकल्याण का कारण बन सकता है। अत वचन सम्बन्धी बहुत विवेक रखने की आवश्यकता है। भले ही तेरा ज्ञान सत्य हो, अर्थात् प्रमाण हो, परन्तु यदि कदाचित उपरोक्त विवेक शून्य होकर, अपने किसी पक्ष पोषण वश, एक प्रमुख बात ही बारम्बार कहता रहेगा, और उसकी विरोधी बात को अंश मात्र या संकेत मात्र रूप में भी न कहेगा, तो श्रोता बेचारा बहा जायेगा। वह क्या जाने कि तेरे अन्दर में दोनों अंगों की सापेक्षता मौजुद है। उसका तो आधार वचन है। उसमें सापेक्षता आने पर ही वह कल्याण की ओर झुकेगा, अन्यथा अकल्याण की ओर झुकने की सम्भावना है। अर्थात "राग मे वीतरागता की प्राप्ति असम्भव है" बराबर यही बात सुनते सुनते उसकी दृष्टि कदाचित वीतराग देवादि के प्रति से भी उपेक्षित हो जायेगी, और इस प्रकार वह अहित कर बैठेगा। अत यदि उपरोक्त विवेक उत्पन्न नही कर पाया तो ऐसा न हो कि कदाचित राजा वसु वाली उपमा को प्राप्त होकर, तू अपना भी अहित कर बैठे। वीतरागी गुरुओं की शरण में आकर हित ही को अपना, अहित को नही। प्रभु तेरी रक्षा करें।

५ प्रत्येक शब्द एक नय है

कथन करने की अनेकों दृष्टियें हो सकती है। जितनी दृष्टियों से मुख्य करके कथन किया जाता है उतने ही वचन विकल्प हो जाते हैं। यह सब ही वचन विकल्प 'नय'

के नाम से कहे जाते है । भिन्न भिन्न समय पर वक्ता की दृष्टि या प्रयोजन भी अनिश्चित रूप से भिन्न भिन्न ही होता है, अत: यह दृष्टिये या वचन विकल्प या नय असख्याती हो जाती है । जिनमे से सब की सब तो जानी या बताई जानी असम्भव है हा मुख्य मुख्य कुछ दस पांच पचास बताई जा सकती है ।

यहा इतना ध्यान मे रखना आवश्यक है कि किसी भी कथन को चलाने के लिये वचन या शब्द ही हमारे पास एक माध्यम है, इसलिये किसी भाव को दर्शाने के लिये हमे उस भाव का कुछ न कुछ सज्ञा करण करना अवश्य पड़ता है, अर्थात् उस भाव का नाम अवश्य रखना पड़ता है । इसके विना कथन चल नही सकता । जितने भी शब्द आज प्रचलित है वे सबके सब आगे पीछे इसी प्रकार प्रकाश मे आये है । एक वार एक शब्द का प्रयोग होने के पश्चात वह शब्द लोक मे प्रसिद्ध हो जाता है, और शब्द कोपों मे स्थान पा लेता है । अव उसका कोई न कोई अर्थ होने लगता है । और इसी प्रकार शब्द कोष मे वरावर वृद्धि होती जाती है । आवश्यकता आविष्कार की जननी है । आवश्यकता पडने पर यथा योग्य नये शब्द भी, उस उस समय के भावों व प्रयोजनों के प्रति संकेत देने के लिये, वनाये जाते रहते है । जैसे कि आज भारत विधान मे हिन्दी भापा को स्थान देने के लिये, हमारी सरकार को अनेको नये शब्दो का निर्माण करना पडा । यह शब्द अव तो नये घड़े गये है, परन्तु आगे जाकर वे हमारे शाब्दिक सग्रह के अग बन जाने पर प्रसिध्द व पुराने हो जायेगे, हमें उनके प्रयोग का अभ्यास हो जायगा । इसी प्रकार नयो के सम्बन्ध मे जानना । जितने भी नयो के नाम आगम मे आते है, उतनी ही नय हो, ऐसा नही है । वह तो कुछ भी नही है, और भी असख्यातो हो सकती है । वे सब किसी न किसी वाच्य अभिप्राय के प्रति संकेत करने का साधन मात्र है ।

हरेक शब्द का कुछ अर्थ उसी समय बन पाता है, जब कि यह समझ लिया जाय, कि यह शब्द किस अदृष्ट भाव गुण या पर्याय के प्रति संकेत करता है। यदि यह समझे बिना केवल वचन ही याद किया जाये, तो उसका संकेत किसी भी सत्ता भूत भाव के प्रति उस श्रोता का लक्ष्य ले न जा सकेगा, और इसलिये निरर्थक रहेगा। अत प्रत्येक शब्द के वाच्य भाव को ग्रहण करके ही शब्द को कहना व सुनना सार्थक होता है। एक बार भाव समझाने के पश्चात पुन पुन समझाना नही पडता। फिर तो एक छोटे से शब्द मात्र का संकेत भी उस भाव को दर्शाने को पर्याप्त है। इसलिये जितने भी शब्द शब्द कोष में भरे पडे है, वे सब ही नय है। और समय समय पर अनेको शब्द या नयी नय जागृत हो सकती है। आगम मे लिखी है कि नही लिखी है यह कोई परीक्षा नही है। न तो सारी लिखी जा सकती है, और न सारी कही जा सकती है। बुद्धि का अभ्यास करने के लिये कुछ मात्र के भाव दर्शा कर उनके प्रयोग की रीति बतायी जा सकती है। आगे तो वह अभ्यस्त बुद्धि स्वय काम करेगी। किस स्थान पर वक्ता की क्या दृष्टि है, यह बुद्धि ही पहिचानेगी। उस दृष्टि को पहिचान कर ही श्रोता उस दृष्टि को कुछ नाम दे सकेगा। या कदाचित पूछने पर वक्ता भी श्रोता का संकेत उस दृष्टि के नाम या नय के नाम द्वारा, उस ओर आकृष्ट कर सकेगा।

इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ आप स्वतन्त्र रूप से भी अपनी दृष्टि के प्रति संकेत करने के लिये, अपने श्रोताओं को कोई भी नाम या शब्द अपनी ओर से निश्चित करके बता सकते है कि जब जब मै यह शब्द कहूगा तब तब आप इस शब्द का यह अर्थ या भाव या दृष्टि समझ जाना। आगे प्रयोग किया जाने पर उस श्रोता के लिये तो वह शब्द अपने भाव का प्रतिनिधित्व करने मे सफल हो जाता है, परन्तु दूसरे नये श्रोता उससे कुछ भी भाव समझ नही पाते। वह अपनी बुद्धि के अनुसार उस शब्द के वह अर्थ लगाने लगते है जो कि

उन्होने पहिले से सीख रखे है, और इसी लिये वक्ता के वे शब्द सुन कर भी वह उसके आशय को नही समझ पाते, और कदाचित उलटा ही समझ बैठते है। उस समय श्रोता का कर्त्तव्य उस शब्द का वह अर्थ जानने का है, जिस अर्थ मे कि वक्ता उसे उस समय प्रयोग कर रहा है, तभी वह शब्द नय कहला सकता है। और इस प्रकार जितने शब्द है उतनी ही नय है। जितने शब्द पैदा किये जायेगे वह सब नय है। 'हरा' 'पीला' 'सुख' 'दु ख' वह सब शब्द 'नय' है। क्योकि 'हरा' यह शब्द सुनकर आप वक्ता की दृष्टि को तुरन्त पहिचान जाते है, कि इस समय ये नेत्र इन्द्रिय के किसी उस भाव के प्रति संकेत कर रहा है जो कि पहिले मैने कच्चे आम मे देखा था, और जो मेरी धारणा मे बैठा हुआ है।

इसी प्रकार शब्द कोष मे जितनी भी संज्ञाये, सर्व नाम व विशेषण है वे सब नयो के नाम है, यह समझना। मै कहता हूं "वह आदमी आज देहली गया है"। बस इस वाक्य मे मैने चार सज्ञा व सर्व नाम का प्रयोग किया। बस यही चार नय हो गई। 'वह' शब्द 'जो उस रोज देखा था' इस प्रकार की वक्ता की दृष्टि का प्रतिनिधित्व कर रहा है, इसलिये इसको 'वह' नाम की नय कह लीजिये। "आदमी" शब्द दो हाथ दो पैरो वाले इस पुतले की ओर सकेत कर रहा है, इस भाव को दर्शा रहा है, इस लिये इसे 'आदमी' नाम की नय कह लीजिये। 'देहली' शब्द उस सत्ता भूत बडे नगर की ओर सकेत कर रहा है, जो आपके हृदय पर चित्रित है, इस लिये इसे 'देहली' नाम की नय कह लीजिये। और इसी प्रकार सर्वत्र लागू करते हुये प्रत्येक वह शब्द जो श्रोता को संकेत द्वारा वस्तु के निकट ले जाने मे सफल हो जाये, नय कहलाता है। यही लक्षण पहिले किया भी गया है। श्रोता न समझ पाये तो उस शब्द को नय नही कहेगे यह बात कुछ हास्यप्रद सी प्रतीत होती है, तथा व्यवहार मे लाई जाने योग्य भी नही है, इसलिये सग्रह करण द्वारा कुछ दृष्टि विशेषो का परिचय पा लेना ही पर्याप्त है।

आगम कारो ने अनेक प्रमुख प्रमुख दृष्टियो का सग्रह करके उनका सज्ञा करण किया है। यद्यपि आप अपनी ओर से भी उस उस दृष्टि के लिये कोई अपना शब्द नियुक्त कर सकते ह, पर इस प्रकार की उलझन मे न पड कर जैसा कि व्यवहार है, म उन्ही आगमोक्त शब्दो का प्रयोग करके वह वह दृष्टि दर्शाऊगा। इसे ही नय के प्रयोग का अभ्यास कहते ह। एक वार उस शब्द का ठीक ठीक प्रयोग वाक्य पर लागू करना आपको आ जाये तो, वह वह शब्द आपके लिये भी नय रूप हो जायेगा। अभ्याम कीजिये, इसी का नाम सीखना है, इसी का नय वाद कहते है। और इस प्रकार स्कूलो व कालेजो में या आपके दैनिक व्यवहार मे जो भी यह शब्द व्यवहार प्रचलित है वह सव नय व्यवहार है। अन्तर केवल इतना ही है कि वहा शब्दो का प्रयोग करके भी उसके प्रयोग का कारण आप जान नही पाते। स्वत ही प्रयोग हो जाता है। यहा उसे ही सिद्धात का रूप देकर उन प्रयागो के लक्षण कारण प्रयोजन आदि दर्शाये जा रहे ह। इसीसे कुछ विचित्र नया सा लगता है। वास्तव में नया नही। यह वैज्ञानिक माग है। साम्प्रदायिक नही। जैनियो के लिये ही नही, हर व्यक्ति के लिये इस सिद्धान्त का जानना आवश्यक है। यदि इस सिद्धात की ट्रेनिग प्राप्त कर ली जाये, तो वक्ता के वचना का ठीक ठीक अर्थ वहुत सरलता से लगाया जा सकता है। अत यह नय वाद जैनियो की कोई मीरास हो ऐसा नही। किसी भी वैनानिक सिद्धात को, भल ही आप उसके अग्र प्रदाता अर्थात वैज्ञानिक के नाम के आधार पर जानें या कहें, पर वह सर्व लोक के लिये ही सत्य रूप से ग्राह्य है, वस इसी प्रकार से यहा भी समझ कर साम्प्रदायिक दृष्टि का त्याग कर। इस सिद्धान्त की महत्ता को समझ, और आगे आगे जीवन में इसका प्रयोग कर, ताकि पद पद पर वक्ता व श्रोता के वीच पडने वाली गलत फेहमियें दूर हो जायें।

आगे आन वाले लम्बे प्रकरण में म यही दर्शाने का प्रयत्न करूगा कि किस प्रकार अनेको भिन्न भिन्न अभिप्रायो में रगा हुआ वाक्य

बोलने मे आता है, और किस प्रकार उसका ठीक ठीक अभिप्राय समझा जा सकता है। तथा वक्ता का उस अभिप्राय से वाक्य बोलने का क्या प्रयोजन या स्वार्थ है, यह भी समझा जा सकना है। वक्ता के उन उन अभिप्रायो या भावो का संज्ञा करण करने के लिये मुझे कुछ शब्द चाहिये। यद्यपि मै अपनी ओर से भी उनके लिये कोई शब्द निश्चित कर सकता हू पर ऐसा करने से भले ही आप मेरे वक्तव्यो का अभिप्राय तो समझ लेगे, पर आगम वाक्यों का अभिप्राय फिर भी आपकी समझ मे न आ सकेगा। क्योकि वहां जो शब्द अपने अभिप्रायो का प्रतिनिधित्व करने के लिये लेखकों ने स्वयं प्रयुक्त किये है, उनका अर्थ समझे बिना उनका अभिप्राय समझा जाना असम्भव है। अत. मै आगम कथित ही मुख्य मुख्य नयो के प्रयोग का रूप आपको दर्शाऊगा।

७ वस्तु मे नय प्रयोग की रीति

वस्तु के अनेक अगो मे से वक्ता किसी भी अग को किसी भी समय किसी प्रयोजन विशेष वश मुख्य करके कह सकता है। उस समय श्रोता को ऐसा लगेगा मानो यह दूसरे अगों को या तो भूल गया है, या उनका निषेध कर रहा है। दृष्ट पदार्थो मे तो ऐसे सशय को अवकास होने नही पाता, हा अदृष्ट पदार्थो मे अवश्य ऐसा होता है। श्रोता के इस सशय के निवारणार्थ वक्ता उन पृथक पृथक अगों का स्वरूप अनेको दृष्टान्तो व उदाहरणो के आधार पर आगे पीछे विस्तृत रूप से समझाता है श्रोता जब उस उस अग का वह स्वरूप समझ जाता है तब आगे आगे के प्रकरणो मे पुन. पुन. प्रकरण आने पर वही स्वरूप दोहराना न पड़े, इसलिये उन अंगों का संज्ञाकरण कर देता है, ताकि अवसर आने पर केवल एक शब्द कहना ही श्रोता को उस अग तक ले जाने मे पर्याप्त हो सके। यह काम तो अर्थात वस्तु के अनेको अगो का सज्ञाकरण तो, अब तक के विस्तृत कथन मे किया जा चुका।

अब किस श्रोता को समझाने के लिये, कौनसा अग उठाकर उसे उस समय दर्शाया जाये कि वह हित माग पर अग्रसर हो सके, यह वक्ता अपनी योग्यता पर निभर है। इसे वक्ता का अभिप्राय या दृष्टि कहते ह। यह नियम करना तो असम्भव है कि वक्ता को अमुक ही अग अमुख अवसर पर कहना चाहिये, इसलिये वक्ता किस दष्टि से कब क्या बात कह रहा है, यह विवेक उत्पन्न करने के लिये श्रोता को कुछ अपना अभ्यास करना पडेगा। इस प्रयोजन की सिद्धि के अथ वक्ता की कुछ मुख्य मुख्य दृष्टियो का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है, जिन दृष्टियो के आधार पर कि हित माग में प्रमुगत कथन करने में आता है। दृष्टि तो वक्ता का अभिप्राय है, इसलिए प्रत्यक्ष दिखाई नही जा सकती। हा अनेक दृष्टान्तो व उदाहरणो के आधार पर यह अवश्य समझाया जा सकता है, कि अमुक अवसर पर अमुक प्रयोजन की सिद्धि के अथ, अमुक अग का कथन करने से श्रोता पर यह प्रभाव पडता है। इस प्रकार वस्तु के अगो की व्याख्या की भाति ही वक्ता की इन दृष्टिया का भी पृथक पृथक विस्तृत कथन किया गया है। उदाहरणा व दृष्टान्तो के आधार पर किये गये इस विस्तत कथन पर से जब श्रोता उस दृष्टि के भाव को समझ जाता है ता, उस दष्टि का भी कोई नाम रख दिया जाता है। यद्यपि दृष्टि कोई पदाथ नही, पर उसको किसी न किसी नाम से पुकारा जाना सम्भव है। समझने व समझाने के लिये नाम या शब्द ही एक माध्यम है।

इस दृष्टि का नाम भी जब श्रोता को याद हो जाता है, तो उसके लिये वह नाम वाला एक शब्द या सकेत मात्र ही अब वक्ता की उस दष्टि का स्पर्श करने के लिये पर्याप्त हो जाता है, जिसको समझाने के लिये कि पहिले इतने लम्बे विस्तार की आवश्यकता पडी थी। यदि दृष्टि का कोई नाम न रखें तो पुन पुन उस उस प्रकार का वाक्य बोला जाने पर वही दृष्टान्त व उदाहरण दोहरा कर, पुन पुन उस दृष्टि को विस्तार से समझाने के लिये यदि इतना विस्तृत कथन

करना पड़े तो कथन क्रम ही नही चल सकता। जैसे कि रेखा गणित विज्ञान (Geometry) मे एक समस्या (Problem) को हल कर देने के पश्चात उस समस्या का कोई सज्ञा करण कर दिया जाता है। ताकि आगे आगे के सवालो मे जहा कही भी उस प्रकारकी उस समस्या आ जाये, तो केवल उस समस्या के नाम का हवाला दे देना पर्याप्त हो सके, उसे पुन हल करना न पड़े। इसी प्रकार एक बार दृष्टि को समझा देने के पश्चात उसका सज्ञा करण कर दिया जाता है। ताकि आगे आगे के प्रकरणो मे जहा कही भी उसी प्रकार की दृष्टि आ जाये, तो केवल उस दृष्टि के नाम का हवाला या नय का नाम देना ही पर्याप्त हो सके, उसे पुनः समझाने की आवश्यकता न पड़े।

यद्यपि हर वाक्य मे वक्ता की कोई न कोई दृष्टि अवश्य छिपी रहती है, परन्तु कथन क्रम मे सर्वत्र प्रत्येक वाक्य के साथ उस दृष्टि या नय का हवाला देकर ही कथन करना भी सम्भव नही है। क्योकि कथन क्रम तो धारा प्रवाही रूप से बहा चला जाता है। वक्ता में स्वत यथा अवसर एक दृष्टि के पीछे दूसरी दृष्टि जागृत होती रहती है, और उस उस दृष्टि के अनुरूप वाक्य बन बनकर उसके मुख से निकलते रहते है। यह काम आप ही आप (automatically) इतनी जल्दी हो जाता है कि स्वय वक्ता भी यह जान नही पाता, कि क्या दृष्टि आई थी और क्या वाक्य निकल गया। क्यो कि बोलते समय यह विचारा नही जाया करता, कि इस पर अमुक दृष्टि काम देगी, और अमुक प्रकार का वाक्य बोलना चाहिये। यह वक्ता के अभ्यास पर निर्भर है, कि उसे धारा प्रवाही रूप से दृष्टिये बराबर जागृत होती चली जाये। दृष्टि उत्पन्न होने पर बिना विचारे वाक्य तो स्वय बन जाया करता है।

अब श्रोता की ओर चल कर देखिये। यदि श्रोता मुख्य मुख्य सब दृष्टियो या नयो से परिचित है, तो वक्ता का वाक्य सुनते ही

बिना विचारे स्वत ही वह उस की दृष्टि को पहिचान जाता है, कि यह किस बात को लक्ष्य में रखकर यह वाक्य कह रहा है। अधिक तर तो ऐसा ही होता है, पर फिर भी कही कही उसे सशय व शका होने की सम्भावना रहती है। उस समय उसकी शका को दूर करने के लिये, दृष्टि का यह उपरोक्त सज्ञा करण या नय का नाम बहुत उपयोगी पडता है। उसे केवल यह सकेत कर देना ही पर्याप्त है कि भाई! यह वाक्य मने अमुक नय से कहा है'। बस इन दो शब्दो को सुनते ही तुरत उसका लक्ष्य वक्ता के लक्ष्य से जा टकराता है और दो सैकेन्ड में गुत्थी सुलझ जाती है। वह ठीक ठीक अर्थ समझ जाता है और उसकी शका कथन क्रम में विशेष बाधक होने नही पाती। बस यही है नयो के नाम रखकर उन का प्रयोग करने, अर्थात हवाला देने का प्रयोजन।

८ नय का उदाहरण लक्षण कारण व प्रयोजन

अब प्रश्न यह होता है, कि वक्ता की उन प्रमुख दृष्टियो या नयो को कैसे समझा या समझाया जाये। सो यद्यपि कठिन काम है, परन्तु सम्भव है। हा बुद्धि का प्रयोग अवश्य मागता है, क्योकि नय के नाम या शब्द को याद करके सतोष पाना निरर्थक है। वक्ता के भाव को पकडना है। भावो को समझाने या गले से नीचे उतारने के लिये दृष्टान्त व उदाहरण ही एक मात्र उपाय है। लौकिक दिशा में नित्य कहे व सुने जाने वाले कुछ वाक्य उदाहरण के रूप मे सामने लाये जाते है और श्रोता को कहा जाता है कि ऐसा वाक्य बोलते या सुनते समय तुम्हे विरोध क्यो नही होता, जबकि वाक्य का शब्दार्थ बिल्कुल उल्टा सा भासता है। जैसे कि अपने खिलाडी पुत्र को धमकाते हुए जब पिता उसे यह कहता है कि 'क्या मेरा पैसा व्यर्थ बरबाद कर' रहा है। इसमे अच्छा तो "स्कूल न जाया कर" तो वह पुत्र उसका अर्थ उलटा क्यो नही समझ जाता। 'स्कूल न जाया कर" का अर्थ क्या' कभी

भी वह यह समझ पाता है, कि पिता मुझे स्कूल से छुट्टी दिला रहे है ? वह तो उसका अर्थ यही समझता है, कि वह मना तो खेलने को कर रहे है, स्कूल जाने को नही । अब जरा मिलाइये तो सही वाक्य के शब्दार्थ से इस ग्रहण किये गये अर्थ को । क्या मेल खाता है ? दोनो मे स्पष्ट विरोध है । खेल का शब्द भी उसमे आया नही फिर भी खेल का अर्थ कैसे निकल आया ? बस इसे ही मै दृष्टि की पहिचान कह रहा हूं । लौकिक दृष्टान्त सुन कर श्रोता कहता है कि इस वाक्य को बोलने वाले व्यक्ति का अभिप्राय मै समझता हू, इसीलिये विरोध नही होता, भले शब्दार्थ कुछ भी हो ।

बस तो पारमार्थिक मार्ग मे भी इस जाति का वाक्य आने पर ऐसा ही अर्थ समझ लेना । जैसे कि बाह्य त्याग मे सन्तोष पाकर अभिमान को प्राप्त किसी त्यागी को यदि मै यह कहू कि, "यह त्याग तेरे कुछ काम न आयेगा । इससे अच्छा तो इस त्याग को छोड दे, तो इस वाक्य मे से त्याग को छोडने का अर्थ ग्रहण न करना, बल्कि ज्ञान प्राप्त करने को कहा जा रहा है, ऐसा समझना । भले ज्ञान शब्द वाक्य मे न आ पाया हो पर मेरी दृष्टि मे से पढ लेना । क्योकि तुम पारमार्थिक दिशा मे प्रयुक्त वाक्यो का अर्थ लगाने मे व दृष्टि को स्वत समझने मे अभी अभ्यस्त नही हुए हो, इसलिये सम्भव है कि कदाचित मेरे वाक्य का ठीक-ठीक अर्थ न लगा सको और तुम्हारे हृदय मे संशय जागृत हो जाये । ऐसे अवसर पर मै उस दृष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाला वह नाम जो कि सज्ञा करण के द्वारा एक बार निश्चित कर लिया गया है बोल दू गा । बस तुम समझ लेना कि अमुक दृष्टि को लक्ष्य मे रखकर कथन किया गया है, और शका दूर हो जायेगी । आगे के प्रकरण मे दृष्टि को नय शब्द के द्वारा ही सर्वत्र कहा जायेगा यह याद रखना ।

यह जो दृष्टि का भाव तुम इन उदाहरणो के आधार पर ग्रहण कर पाये हो, बस यही उस नाम से चिन्हित नय का लक्षण है । या यो कहिये कि इन उदाहरणो के आधार पर सिध्दात रूप से नय का लक्षण निर्धारित कर दिया जाता है, ताकि श्रोता उस लक्षण को भाव सहित शब्दो मे याद करले और वह नाम सामने आने पर तुरत उस भाव को पकड सके । इस प्रकार नय का कोई न कोई लक्षण अवश्य होता है ।

यह नय क्यो उत्पन्न हुई ? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि वस्तु में या तदनुरूप प्रमाण ज्ञान में वस्तु के उस अग का स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है । और इस अ ग को देखने से श्रोता के हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव पडेगा जिससे कि वह वतमान की निराशा व पुरूपार्थ हीनता या अभिमान को छोड कर हित को जीवन में अपनान के प्रति कुछ उद्यमशील हो जायेगा । बस यही नय के प्रयोग का कारण है ।

श्रोता म हेयोपादेय दृष्टि उत्पन्न करने के लिये किसी अग को उभारना और किसी अग की हानियो को दर्शाना ही नय प्रयोग का प्रयोजन है । क्योकि हेयोपादेय दृष्टि बने बिना श्रोता का कल्याण माग पर आगे वढना असम्भव है ।

इस प्रकार नय वही काय कारी होती है जिसमें निम्न बाते पाई जायें । इन बातो से शून्य केवल शब्द मात्र नय की रटन्त निरथक व मिथ्या है –

१ नय के भाव को किसी न किसी उदाहरण के आधर पर निश्चित किया जाना चाहिये ।

२ निर्धारित भाव के आधार पर शब्दा में उस नय का कोई सिद्धातिक रूप प्रगट करने वाला लक्षण होना चाहिये ।

३. उस नय का प्रयोग निष्कारण नही सकारण होना चाहिये । और वह कारण ऊपर दर्शा दिया गया है । उस नय के नाम की सार्थकता भी जाननी चाहिये ।

४. उस नय का कोई न कोई हितकारी प्रयोजन होना चाहिये । जिसमे श्रोता का अहित हो, वह नय का प्रयोग नही कहलाता ।

९ नयो के मूल भेदो का परिचय

यह नय कितनी होती है, इसके लिये कोई नियम नही किया जा सकता । क्योकि जैसे कि पहिले बताया जा चुका है जितने शब्द है उतनी ही नय हो सकती है । फिर भी अध्यात्म मार्ग मे उपयोगी मुख्य-मुख्य दृष्टियो का प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ नये आगम मे कही गई है । यद्यपि यथा अवसर अपनी ओर से नयी नयो की स्थपना की जा सकती है पर यहां तो केवल उन्ही नयो का वर्णन करना अभीष्ट है जो कि आगम मे पहिले से आई हुई है ।

वैसे तो आगम मे भी नयो के अनेको भेद प्रभेद है पर उन सब की उत्पत्ति जिन दो मूल नयो से हुई है उनका नाम द्रव्यार्थिक व पर्यार्थिक नय है । अर्थात् नये है द्रव्यार्थिक व पर्यार्थिक । आगे जाकर इन के ही भेद प्रभेद बहुत हो जाते है । यद्यपि द्रव्यार्थिक या पर्यार्थिक नय का विशेष विस्तार तो आगे आयेगा, पर इस स्थल पर उनके सम्बन्ध मे सामान्य कथन कर देना अभीष्ट है । ताकि आगे कहे जाने वाले भेदो की स्थापना के लिये कोई भूमिका तैयार हो जाये ।

प्रमाण ज्ञान मे तो त्रिकाली द्रव्य पड़ा है, उसके सम्पूर्ण अग भी वहा पड़े है । प्रमाण ज्ञान तो इन दोनो को अर्थात् अंगी व अगो को युग पत स्वीकार करता है । परन्तु द्रव्यार्थिक नय इन दोनो मे से

अगो की पृथक-पृथक सत्ता को गौण करके उनके समूह स्वरूप केवल अगो की अभेद सत्ता को ही मुख्य रूपेण ग्रहण करता है, और पर्यायार्थिक नय अभेद अगी की सत्ता को गौण करके कवल एक किसी भी अग को पृथक पृथक सत्ता को ही मुख्य रूपेण देखता ह ।

उदाहरणाथ द्रव्य गुण व पर्यायो का एक अखण्ड पिण्ड है । तहा गुण व पर्यायें वास्तव में अपना कोई भी पृथक अस्तित्व नही रखते । इन का सामूहिक एक अखण्ड पिण्ड ही सत है । वही द्रव्य है। जीव ज्ञानादि अनेक गुणो व तिर्यच मनुष्यादि अनेक पर्यायो में अनुस्यूल जो एक ध्रुव तत्व है वही जीव द्रव्य है । बालक, युवा व बूढा यह तीन नही बल्कि एक ही मनुष्य है । ऐसा द्रव्यार्थिक नय देखता है । इससे विपरीत एक एक गुण व एक एक पर्याय की पृथक पृथक सत्ता को दर्शाना पर्यायार्थिक नय का काम ह । जैसे ज्ञान कुछ और है और श्रध्दा, चारित्रादि कुछ और है । इनमें परस्पर कोई एकता नही है । इसी प्रकार तिर्यच कोई और है और मनुष्य कोई और इनमें अनुस्यू कोई जीव नामका अन्य ध्रुव तत्व लोक में दिखाई नही देता । इसी प्रकार बालक कोई और था और यह बूढा व्यक्ति, कोई और है इन दोनो को एक ही व्यक्ति कहना भ्रम है । पर्यायार्थिक नय का ऐसा अभिप्राय रहता है । इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय तो द्वैत में अद्वैत करके देखता है। पर पर्यायार्थिक नय केवल एकत्व को ।

जिस प्रकार ऊपर कालात्मक या परिवर्तन शील अग का आश्रय लेकर कथन किया गया उसी प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, व भाव पर भी लागू करना । दो द्रव्यो का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दिखाना द्रव्यार्थिक है, और प्रत्येक द्रव्य को पृथक पृथक देखना पर्यायार्थिक है । द्रव्य को अनेक प्रदेश वाला कहना द्रव्यार्थिक दृष्टि है और एक प्रदेश मात्र ही उसे देखना पर्यायार्थिक दृष्टि है ।

इसी प्रकार अनेक पर्यायो का समूह द्रव्य है ऐसा कहना द्रव्यार्थिक दृष्टि है और एक वर्तमान पर्याय मात्र ही द्रव्य है ऐसा कहना पर्यायार्थिक है । अनेक गुणो का समुदाय द्रव्य को द्रव्यार्थिक है और एक गुण मात्र ही द्रव्य कहना पर्यायार्थिक है । विशेष आगे जानने मे आयेगा ।

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि मूल नये दो ही क्यो कहे गए । जिस प्रकार द्रव्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक, पर्याय को विषय करने वाला पर्यायार्थिक, उसी प्रकार गुण को विषय करने वाला एक गुणार्थिक नय भी कहना चाहिये था । सो इस प्रश्न का उत्तर राजवार्तिककार ने निम्न प्रकार दिया है—

(रा.वा.।५।३८।२।५०१।२.)

द्रव्यस्य द्वावात्मनौ सामान्य विशेषश्चेति । तत्र सामान्य-मुत्सर्गोऽन्वयः गुण इत्यनर्थान्तरम् । विशेषो भेद पर्यायेति पर्याय शब्दः । तत्र सामान्य विषयो नयो द्रव्यार्थिक. । विशेष विषय पर्यायार्थिकः । तदुभय समुदितमयुतसिद्धरूप द्रव्यमित्युच्यते, न तद्विषयस्तृतीयो नयो भवितुमर्हति, विकलादेशत्वान्नयानाम् । तत्समुदायोऽपि प्रमाणगोचरः सकलादेशत्वात् प्रमाणस्य ।"

अर्थः—द्रव्य के सामान्य और विशेष ये दो स्वरूप है। सामान्य, उत्सर्ग, अन्वय और गुण ये एकार्थक शब्द है। विशेष, भेद और पर्याय ये पर्यायार्थिक शब्द है । सामान्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है, और विशेष को विषय करने वाला पर्यायार्थिक । दोनों समुदित-अयुतसिद्ध द्रव्य है । अतः गुण जब द्रव्य का ही सामान्य रूप है, तब उसके ग्रहण के लिये द्रव्यार्थिक से पृथक गुणार्थिक नाम के किसी तीसरे नय

की कोई आवश्यकता नही है । क्योंकि नय विकलादेशी होती है । समुदाय रूप द्रव्य सकलादेशी प्रमाण का विषय है ।

१० आगमपद्धति व अध्यात्म पद्धति

इन दोनो ही नयो का कथन दो प्रकार से करने म आता है—आगम पद्धति स और अध्यात्म पद्धति से । तहा जीव अजीव आदि सब ही पदार्थो का सामान्य कथन करना अर्थात् द्रव्य सामान्य सम्बन्धी सिद्धात जानने के अथ व्याख्यान करना आगम पद्धति है। इस पद्धति मे जीव द्रव्य की कुछ प्रधानता और अन्य द्रव्यो की गौणता सम्भव नही । यहा सब ही पदार्थ एक कोटी में ह । उनको जानना मात्र अभीष्ट है, अत किसी का भी निषेध नही । कौन पदाथ हेय है और कौन उपादेय यह बताना यहा प्रयोजनीय नही है । इसीलिये इस पद्धति में नयो के नाम भी वस्तु के स्वभाव का आश्रय करके रखे गये है—जसे द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, भेद ग्राहक, अभेद ग्राहक आदि ।

अध्यात्म पद्धति म कवल आत्मा अर्थात् जीव द्रव्य का ही कथन करना प्रमुख है । आत्मा का स्वभाव, उसक गुण पर्याय, उनमें भेद अभेद तथा उसका अन्य पदार्थों के साथ निमित्त नमित्तिक सम्बन्ध आदि सब बाते बताना इसका काम है । आत्मा क लिये क्या कुछ हेय है और क्या कुछ उपादेय इस बात का विवेक करार्क उसकी शुद्धता व अशुद्धता आदि के विकल्पो का परिचय देना इस अध्यात्म पद्धति में ही आता है । इसीलिये इस पद्धति में नयो के नाम भी केवल आत्म पदाथ का तथा उसके लिये इष्ट व अनिष्ट बातो का आश्रय करके रखे गये है—जैसे निश्चय, व्यवहार, शुद्ध, अशुद्ध, सद्भूत, असदभूत आदि ।

इन दोना में स पहिल आगम पद्धति के आधार पर नयो का निरूपण किया जायेगा, क्योंकि द्रव्य सामान्य सम्बन्धी परिचय पाये बिना द्रव्य विशेष अर्थात् आत्म पदाथ का तथा उसके लिये हेय व उपादेय का निणय करना असम्भव है ।

—: मुख्य गौण व्यवस्था :—

दिनांक १०॥ १० ।६०

१. मुख्य गौण व्यवस्था का अर्थ,
२. विशेषण विशेष्य व्यवस्था,
३. किस को मुख्य किया जाये,

१ मुख्य गौण व्यवस्था का अर्थ

पहिले सकेत किया गया था कि नयो के मूल भेद दो है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। अब उन ही का विशेष स्पष्टी करण करने में आता है। यद्यपि वक्ता के प्रमाण ज्ञान में परिपूर्ण त्रिकाली अखण्ड वस्तु पडी है, वह उसे प्रत्यक्ष वत् देख सकता है पर कह नही सकता। जिस प्रकार कि २ भाग नीला, ८ भाग पीला और ६ भाग लाल रग मिला दें तो आप अनुमान के आधार पर भी सम्भवत उसके मिले हुए एक रग को प्रत्यक्षवत देख तो सकेंगे पर कह न सकेंगे। कहने के लिये

आपको उपरोक्त नीले पीले व लाल रगो के नाम लेकर, उनको कितने कितने पृथक पृथक भागो मे मिलाया गया है, यह वताना होगा, और कोई उपाय नही। इसी प्रकार अखण्ड वस्तु का परिचय देने के लिये उसके अंगो के नाम लेकर ही वताना होगा, और कोई उपाय नही है।

प्रमाण ज्ञान मे परिपूर्ण वस्तु की दो प्रमुख वातें पड़ी है जिनके सम्वन्ध मे पहिले प्रकरणो मे अनेको वार पुन. पुन: कथन आ चुका है–अभेद वस्तु और उसके भेद या अग। दोनो ही वाते जाननी योग्य है। क्योंकि भेदों के जाने विना तो वस्तु या द्रव्य जाना नही जा सकता, और अखण्ड द्रव्य के जाने विना वे भेद जाने नही कहे जा सकते, क्योंकि द्रव्य से वाहर पृथक पृथक उन भेदो की सत्ता लोक में है ही नही। इन दोनो वातों को क्रम से दर्शाया जा सकता है। विचार करे कि विल्कुल अपरिचित व अनिष्पन्न कोई श्रोता आपके सामने है, तो क्या कथन क्रम अपनाना होगा, कि आप श्रोता के गले यह दोनों वाते उतारने मे सफल हो जाये। स्पष्ट है कि पहिले तो आप पृथक पृथक इन भेदो की व्याख्या करके इन भेदो या अंगो (गुण व पर्यायो) का स्वरूप उसे दर्शायेंगे। केवल व्याख्या पर से ही नही पर उन उन अगो का जो कोई भी रूप उस के अनुभव मे आ रहा है, है, उसके उस अनुभव की ओर संकेत करके भी। जव पृथक पृथक उन सव अगो के भावो से वह परिचय प्राप्त कर चुकेगा तो आप उससे कहेगे कि अव इन सव अगो को अपने अनुमान ज्ञान मे मिला जुला कर एक रस कर दे, और देख अव तुझे कैसा दिखाई देता है। जव वह ऐसा कर चुके तो आप कहेगे कि देख अव थोडी देर के लिये उन अगों वाली पढाई को भूल जा और केवल इस एक रस की ओर देखकर मुझे वता कि क्या दिखाई देता है। अव वह क्या कहेगा, इसके सिवाये कि दिखाई तो देता है पर कह नही सकता। इसी का नाम मुख्य गौण व्यवस्था है। सो दृष्टान्त पर से स्पष्ट हो जायेगी।

यद्यपि पहिले यह दृष्टान्त आ चुका है परन्तु फिर भी देता हूं। कल्पना कीजिये कि एक रस रूप जीरे का हाजमा पानी तो वह पदार्थ

है जिसका परिचय देना है। नमक, मिर्च, खटाई, हींग आदि कुछ मसाले उसके गुण रूप अंग हैं और उन मसालों की हीनाधिक मात्रा (Ratio) उन अंगों की पर्याय हैं। श्रोता ने आज तक उसे चाखकर नहीं देखा है। केवल वचनों पर से उसको अनुमान कराना है। भले ही उस जीरे के पानी का स्वाद पहिले न चखा हो पर नमक मिर्च आदि मसालों का पृथक पृथक स्वाद उसने पहिले चखा है, अर्थात् पृथक पृथक मसालों का ज्ञान उसको है। यदि श्रोता को इनका भी ज्ञान न होता तो उसे किसी प्रकार भी आप जीरे के पानी का शब्दों द्वारा परिचय न दे सकते, परन्तु अब उसके इस ज्ञान को आधार बना कर आप उसे जीरे के पानी के स्वाद का परिचय दे सकते हैं, भले ही आपके शब्दों पर से वह उसका असल स्वाद चख न सके पर किसी भी प्रकार वह उसके ख्याल में अवश्य आ जायेगा।

इस प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ आप के वक्तव्य का क्रम परस्पर में निम्न प्रकार होगा –

आप –क्या कभी नमक का स्वाद चख कर देखा है तूने ?

श्रोता –हां।

आप –कैसा होता है ?

श्रोता –खारा।

आप –कैसा खारा ?

श्रोता –मैं जानता हूं पर कह नहीं सकता।

आप –अच्छा तो इस खारे स्वाद को ध्यान में रखना।

श्रोता –रख लिया।

आप –बस इसी प्रकार मिर्च के स्वाद को, फिर खटाई के स्वाद को, तत्पश्चात हींग के स्वाद को फिर जीरे के स्वाद को, फिर सौंठ के स्वाद को क्रमशः ध्यान में ले लेना।

श्रोता:—ले लिया ।

आप —इन सबका पृथक पृथक स्वाद ठीक ठीक ध्यान मे आ गया?

श्रोता.—हा आ गया ।

आप.—क्या बता सकेगा कि कैसा कैसा ध्यान मे आया है ?

श्रोता —ध्यान मे आया है पर बता न सकूगा । और ध्यान मे भी प्रत्यक्ष व अत्यन्त स्पष्ट आ गया है, क्योकि मैंने उन उन पदार्थों को पहिले भिन्न भिन्न अवसरो पर चखकर देखा हुआ है ।

आप —खैर ध्यान मे आना चाहिये, मेरे पूछने का यही तात्पर्य है । अब एक काम कर, कि एक सेर पानी ले और इसमे दो तोला नमक मिलाकर इस पानी का स्वाद अनुमान में ले कि क्या होना चाहिये ।

श्रोता —उतना स्पष्ट तो नही पर फिर भी अनुमान मे वह आ अवश्य गया है ।

आप.—अब इस पानी मे एक तोला मिर्च मिलाकर इस पानी के स्वाद का ध्यान कर ।

श्रोता.—कर लिया ।

आप —इसी प्रकार एक तोला खटाई, फिर एक माशे हीग, फिर एक तोला जीरा, फिर एक तोला सौठ, क्रम पूर्वक एक एक करके इस पानी मे मिलाते जाओ और तब तक क्रम पूर्वक उस पानी का स्वाद भी ध्यान मे लेते जाओ ।

श्रोता —ठीक है यह भी कर लिया ।

आप —क्या स्वाद कुछ बदलता हुआ प्रतीत हुआ ?

श्रोता –हां, जूं जूं और और चीजें मिला मिलाकर अनुमान करता जाता हूं त्यूं त्यूं स्वाद और और ही जाति का होता जाता है।

आप –सबको मिलाने पर अब कैसा स्वाद ध्यान में आ रहा है?

श्रोता –बिल्कुल विजाति प्रकार का कोई अनौखा सा स्वाद बन गया है।

आप –नमक मिर्च आदि का स्वाद याद न रखना। भूल जाना।

श्रोता –अच्छा भूल गया।

आप –अब कैसा स्वाद आता है?

श्रोता –जानता हूं पर बता नहीं सकता।

आप –बस यही है वह जीरे के पानी का स्वाद।

बस अब तो श्रोता प्रसन्न हो जायेगा और हर्ष से भरा हुआ वह देगा कि ओह! यही है वह जीरे का पानी? भले ही उसे आपके जैसा प्रत्यक्ष स्वाद न आया हो पर उसके अनुरूप कुछ धुंधला सा भान उसे अवश्य हो गया।

इसी प्रकार आत्मा एक पदार्थ है। ज्ञान चारित्र-श्रद्धा व वेदना इसके गुण या त्रिकाली अंग या विशेषण हैं। मति श्रुत आदि ज्ञान, राग रूप चारित्र, भौतिक पदार्थों में इष्टता रूप श्रद्धा, अशान्ति की वेदना यह इन चारों गुणों की सब जन सामान्य के अनुभव में आने वाली वर्तमान अर्थ पर्याय है, मनुष्यत्व वर्तमान की व्यञ्जन पर्याय है। यह दोनों पर्याय उस आत्मा के क्षणिक अंग या विशेषण हैं। ये सब विशेषण श्रोता के अपने अनुभव में आये हुए हैं जैसा कि अध्याय नं ७ में सिद्ध किया जा चुका है। श्रोता को इस आत्म पदार्थ का परिचय दिलाने के लिये आपको यही दृष्टान्त में दिखाया गया क्रम अपनाना पड़ेगा।

जिस प्रकार वहां पहिले नमक मिर्च आदि मसालो के पृथक पृथक स्वाद को श्रोता के ध्यान मे स्थापित किया गया था, उसी प्रकार यहा पहिले मति श्रुत ज्ञान व अन्य क्षणिक अनुभवनीय अगो के पृथक पृथक भावो को श्रोता के ध्यान मे स्थापित किया जायगा। तत्पश्चात जिस प्रकार वहां क्रम पूर्वक पानी मे नमक फिर मिर्च आदि घोल घोल कर उस मिश्रित स्वाद को ध्यान मे स्थापित किया गया था, उसी प्रकार यहा भी क्रम पूर्वक ज्ञान मे राग फिर भोगो की श्रद्धा और फिर अशान्ति को घोल घोलकर उसके मिश्रित भाव को ध्यान मे स्थापित किया जायेगा। जिस प्रकार अन्त मे जाकर वहां श्रोता को नमक मिर्च आदि का स्वाद भूल जाने के लिये कहा था, उसी प्रकार अत मे आकर यहा भी श्रोता को मति ज्ञान अशान्ति आदि के भावो को भूल जाने के लिये कहा जायगा। जिस प्रकार वहा एक रस रूपी जीरे के पानी का स्वाद ही मुख्यत याद रखने के लिये कहा गया था उसी प्रकार यहा भी उन सब खण्डित अगो का एक रस रूप चैतन्य ही मुख्यत याद रखने के लिये कहा जायेगा। यही जीव द्रव्य की एक अखण्ड ससारी पर्याय का परिचय है। इसी प्रकार मति ज्ञान की बजाये केवल ज्ञान और राग आदि की बजाये वीतरागता, स्वात्म श्रद्धा व शान्ति के मिश्रण से सिद्ध पर्याय का परिचय भी दिया जा सकता है। तदनन्तर ससारी व सिद्ध दोनो पर्यायो को एक अटूट फिल्म मे जट लेने पर त्रिकाली जीव या आत्मा का परिचय भी दिया जा सकता है।

इस क्रम के अन्तर्गत कहे गये दृष्ट्रान्त व दाष्ट्रान्त दोनो पर से यही पढने मे आता है कि पहिले वस्तु के अंगो या विशेषणो की और श्रोता का लक्ष्य खेच कर, पीछे उस लक्ष्य को तो भूलने या दवाने को को कहा गया है और उन विशेषणो के आधार पर अनुमान मे आये हुए किसी एक अखण्ड भाव या विशेष को ग्रहण करने या याद रखने के लिये कहा गया है।

बस इसे ही गौण मुख्य व्यवस्था कहते हैं। याद करके भी कुछ देर के लिये भूल जाने को गौण करना कहते हैं, सर्वथा या सर्वदा के लिये भूल जाने को नहीं। जिस प्रकार कि दृष्टान्त में जीरे का पानी का स्वाद जानते हुए भी श्रोता ने भले नमक आदि का पृथक पृथक स्वाद थोडी देर के लिये ध्यान से ओझल कर दिया हो, पर ज्ञान से उसे धो डालना उसके लिये सम्भव नहीं है, हा थोडी देर के लिये दृष्टि से ओझल अवश्य किया जा सकता है, अर्थात उस समय तक वह विचारणाओं में न आ सके, इस प्रकार उसे दबाया अवश्य जा सकता है। बस इसी प्रकार विचारणाओं में कुछ देर के लिये दबा देने को गौण करना कहते हैं, और उतनी देर के लिये विचारणाओं को किसी एक विषय पर केन्द्रित करने को, उस विषय को मुख्य करना कहते हैं। यहा भी मुख्य का अर्थ सर्वथा या सर्वदा के लिये उसे ही विचारणाओं का आधार बनाना नहीं, बल्कि केवल उतने मात्र अन्तराल के लिये बनाना है जितने में कि उपरोक्त बात को गौण करके दबाया गया है। किसी अन्य समय में सम्भव है कि और कोई नया ही अंग विचारणा में मुख्य हो जाये, या वही अंग मुख्य हो जाये जिसे कि अब गौण किया गया है। जैसे की इस बातचीत का क्रम समाप्त होने पर, यदि श्रोता से आप नमक का स्वाद पूछे, तो तुरन्त पुन उसकी विचारणायें नमक पर जा लगती हैं, और जीरे के पानी को भूल जाती हैं। इसी प्रकार सर्वत्र समझना।

यद्यपि यहा दृष्टान्त में अंगों या विशेषणों को गौण तथा अंगी व विशेष्य जो द्रव्य या पदार्थ उसे मुख्य करके दर्शाया गया है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मुख्य गौण व्यवस्था का अर्थ विशेषण का गौण व विशेष्य को मुख्य करना ही है। बल्कि प्रयोजन वश सभी अंगों या विशेषणों को मुख्य और विशेष्य या पदार्थ को गौण भी किया जा सकता है।

वस्तु के भेद व अभेद दो भागो मे से, किसी भी एक को प्रयोजन वश मुख्य करके, उस समय के लिये दूसरे भाग को गौण करना, मुख्य गौण व्यवस्था कहलाती है। यह नियम सर्वत्र आगे के प्रकरणो मे लागू होगा। अत अच्छी तरह याद कर लेना।

साथ साथ यह न भूलना कि यह नियम ज्ञान की अपेक्षा जानने मे ही अर्थात आगम पद्धति मे ही लागू होता है, अध्यात्म पद्धति मे नही। क्योंकि वहा चारित्र की प्रधानता से जानना होता है इसलिये वहा मुख्य का अर्थ जीवन के लिये हितकर व उपादेय और गौण का अर्थ जीवन के लिये अहितकर व हेय होता है। अत. आगम पद्धति मे तो क्षण भर के लिये ही किसी अंग को मुख्य व किसी अङ्ग को गौण किया जाता है, परन्तु अध्यात्म पद्धति मे सर्वदा के लिये ही किसी अङ्ग को मुख्य या किसी अङ्ग को गौण किया जाता है अर्थात वहां सर्वदा के लिये ही किसी अङ्ग को ग्राह्य और किसी अङ्ग को त्याज्य स्वीकार किया जाता है। जैसे कि उपादान की वहा सर्वदा मुख्यता व निमित्त की वहां सर्वदा गौणता ही रहती है। अत अध्यात्म पद्धति मे मुख्य गौण व्यवस्था विधि निषेध व्यवस्था का रूप धारण कर लिया करती है। तात्पर्य यह कि आगम पद्धति मे तो कभी द्रव्यार्थिक नय ग्राह्य हो जाता है और कभी पर्यार्यथिक नय, पर अध्यात्म मे सर्वत्र द्रव्यार्थिक नय ही प्रधान रहता है, पर्यायार्थिक या व्यवहार नय का सदा निषेध किया जाता है।

२. विशेषण विशेष व्यवस्था

किसी भी अपरिचित विषय को जनाने या जानने के लिये, सदा ही वस्तु के भेदो व अगो को, वचन क्रम का तथा श्रोता के ज्ञान क्रम का, आधार बनाया जाता है। इसके बिना अन्य मार्ग नही। तथा अभेद रूप वस्तु इस आधार पर से जनाई या जानी जाती है। अत वस्तु के भेद व अभेद दो भागो मे से, भेद तो गुरु व शिष्य के मध्य आधार होता है और अभेद

वस्तु आधेय होती है। इसलिये वक्ता व श्रोता के मध्य के वचन क्रम में सदा ही वस्तु के अङ्ग विशेष रूप से आश्रय किये जाते हैं। इसीलिये वस्तु के इन अगो को 'विशेषण' यह नाम दिया गया है, और इन विशेषणो पर से विचार करके अपरिचित अभेद या अखण्ड वस्तु को स्पष्ट किया जाता है, या स्पष्ट कराने का प्रयत्न किया जाता है, इसलिये अभेद को 'विशेष' कहते हैं। जैसे कि जो जनावे सो ज्ञान तथा जो जाना जाये सो ज्ञेय, जो दिखावे सो प्रकाश और जो दिखाया जाय सो प्रकाश्य, इसी प्रकार जिसके आधार पर जनाया जाये सो विशेषण और जो जाना जाये सो विशेष।

इस पर से यह नियम नही किया जा सकता कि त्रिकाली अखण्ड वस्तु ही सवत्र विशेष स्वीकारी जाय, और उसके वे सब भेद प्रभेद जो अध्याय न ८ में दर्शाये गये है, और उसकी सब व्यञ्जन पर्याय, सब गुण, तथा सर्व अर्थ पर्यायें सर्वत्र विशेषण रूप से ग्रहण किये जायें। जैसाकि पहिले यह सब भेद दर्शाते समय अध्याय न ८ में भी दर्शा दिया गया है, और आगे सग्रह-व्यवहार नय वाले अध्याय न १२ में भी स्पष्ट किया जायगा, वस्तु की भेद प्रभेद व्यवस्था में पहिला पहिला अर्थात वहा दिखाये गये चार्ट की अपेक्षा उपर ऊपर का भेद तो बराबर अपने से आगे नीचे वाले प्रभेदो की अपेक्षा अभेद या अगी बनता चला जाता है और उससे आगे व नीचे के वह प्रभेद उसके अङ्ग बनते चले जाते हैं। यहा तक कि अर्थात सूक्ष्म अङ्ग अर्थात सूक्ष्म अर्थ पर्याय आ जाती है जिसका कि आगे भेद होना ही सम्भव न हो सके।

जसे कि त्रिकाली सामान्य जीव की अपेक्षा ससारी व मुक्त आदि आगे के सब भेद तो अङ्ग है और वह जीव सामान्य एक अङ्गी है। और ससारी जीव की अपेक्षा त्रस स्थावर तथा उनके आगे के सब उत्तर प्रभेद अङ्ग है और ससारी जीव एकना अङ्गी है। यहा

जीव सामान्य व मुक्त का प्रसग न होने के कारण, न व अङ्ग है और न अङ्गी । इसी प्रकार त्रस जीव की अपेक्षा दो इन्द्रिय आदि भेद तथा इनके आगे के सर्व उत्तर भेद तो अङ्ग है और वह अकेला त्रस जीव अङ्गी है । यहा स्थावर जीव का प्रसंग न होने से वह तथा उसके सर्व पृथिवी आदि भेद, न अङ्ग है न अङ्गी । और इसी प्रकार आगे भी यथा योग्य अन्तिम भेद तक समझ लेना । अङ्ग और अङ्गी की यह व्यवस्था तो द्रव्य व द्रव्य पर्यायो या व्यञ्जन पर्यायो मे लागू होती है । द्रव्य गुणो मे भी इसी प्रकार लागू की जा सकती है । वहा सर्व गुण तो अङ्ग है और द्रव्य अङ्गी । इसी प्रकार व्यञ्जन पर्याय व अर्थ पर्यायो मे यथा योग्य सर्व अर्थ पर्याये अङ्ग है और व्यञ्जन पर्याय अङ्गी । उसके अतिरिक्त अन्य के व्यञ्जन पर्याय न अङ्ग है न अङ्गी । इसी प्रकार सर्वत्र ऊपर ऊपर भेद अङ्गी और नीचे नीचे के अङ्ग बनते जाते है, जहां तक कि अन्तिम अङ्ग अर्थात ज्ञान की अपेक्षा मति ज्ञान की क्षणिक व सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्राप्त न हो जाये । यहा इतना अवश्य समझ लेना चाहिये कि अङ्गी अनेक अङ्गो का स्वामी व समूह होता है, अत अङ्गी सदा बड़ा होता है और अङ्ग छोटा, या उसका एक भेद या भाग मात्र ।

अङ्ग अङ्गी की इस व्यवस्था मे सर्वत्र अङ्ग को विशेषण बनाया जाता है और अङ्गी को विशेष । क्योकि भेदो पर से अभेद का निर्णय करने या कराने का नियम सिद्ध किया जा चुका है । यही विशेषण विशेष व्यवस्था है ।

३ किसको मुख्य किया जाये

विशेषण व विशेष मे से किसको मुख्य किया जाये तथा किसको गौण, यह प्रश्न आता है ? सो भाई ! वस्तु मे जाकर देखे या तद्रूप प्रमाण ज्ञान मे जाकर देखे तो, वहा विशेषण व विशेष दोनो एक साथ निवास

करते हुए दिखाई देंगे। किसको मुख्य कहें व किसको गौण ? वहां तो दोनों ही युगपत समान रीति से प्रकाशित हो रहे हैं। कोई भी दबा हुआ या भूला हुआ नहीं है। इसलिये वस्तु या प्रमाण ज्ञान में तो दोनों ही मुख्य हैं। इसीलिये वस्तु व प्रमाण ज्ञान दोनों को निर्विकल्प कहा गया है। यह दोनों ही नय के विकल्पों से अतीत हैं। मुख्य गौण व्यवस्था नय में होती है, वस्तु व प्रमाण में नहीं। इसी से नय को सविकल्प या सम्यक् श्रुत ज्ञान का विकल्प कहते हैं।

वस्तु को जानते समय या अनुभव करते समय तो कोई विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ करता। जैसेकि सरलता से जीरे के पानी को जानने वाले उस वक्ता को, श्रोता के सम्पर्क में आने से पहिले तत्सम्बन्धी कोई विकल्प नहीं था। वह जीरे का पानी उसके ज्ञान में चित्रित रूप से केवल पड़ा मात्र था। हां वही वस्तु जब किसी को बतानी या सुनानी अभीष्ट हो, या उस वस्तु के अङ्गों की विशेषता पर विचार करना अभीष्ट हो, तब अवश्य उसके विशेषण व विशेष्यों में मुख्य गौण व्यवस्था के विकल्प उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि ऐसा किये बिना वह प्रयोजन सिद्ध होना असम्भव है। किसी विशेषण को मुख्य करके ही बताया जा सकता है, किसी विशेषण को मुख्य करके ही जाना जा सकता है तथा किसी विशेषण को मुख्य करके ही वस्तु की विशेषता पर विचार किया जा सकता है।

बताने या विचारने का विकल्प आने पर भी, विशेषण व विशेष दोनों में किस को मुख्य किया जाये व किसको गौण, यह नियम बांधा नहीं जा सकता। प्रयोजन वश दोनों में से किसी को मुख्य किया जा सकता है और किसी को भी गौण। यही आगे स्पष्ट किया जाता है।

पहिले यह देखना होगा कि मुख्य गौण करने का विकल्प कैसे अवसरों पर उत्पन्न हुआ करता है। सो कह सकते हैं कि मुख्यतः तीन अवसरों पर उत्पन्न हुआ करता है।

१. किसी अनिष्पन्न शिष्य को, अपरिचित वस्तु का वचनो द्वारा परिचय देते समय ।

२. किसी ज्ञानी या निष्पन्न व्यक्ति द्वारा परीक्षार्थ द्रव्य के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध मे प्रश्न किया जाने पर उसका उत्तर देते समय, या उस प्रश्न के सम्बन्ध मे विचार करते समय ।

३. किसी वस्तु की विशेपताओ को पूछते या विचार करते समय ।

इन तीनो मे पहिला विकल्प वक्ता सम्वन्धी है, दूसरा विकल्प श्रोता सम्वन्धी है, तीसरा विकल्प किसी भी विचारज्ञ सम्वन्धी है । इन तीनो के दृष्टान्त दिये जाते है । जरा विचार करना और पता चल जायेगा, कि तीनो मे किस अवसर पर विशेपण को मुख्य किया जाता है और किस अवसर पर विशेष्य को ।

पहिले विकल्प का दृष्टान्त तो दिया जा चुका है । जिस पर से यह जाना जाता है कि अनिष्पन्न श्रोता को समझाने के लिये वक्ता को सर्वदा, विशेपण को ही मुख्य करके कहना पड़ेगा विशेष को मुख्य करके नही, क्योकि विशेष को मुख्य करके कहा ही नही जा सकता । अर्थात पहिले विकल्प मे सदा विशेपण मुख्य व विशेष्य गौण होते है ।

अब दूसरे विकल्प सम्वन्धी दृष्टान्त सुनिये उस पहिले ही दृष्टात से आगे का क्रम विचारिये । वहा श्रोता को समझाकर आपने छोड दिया था । यहा उसकी परीक्षा लेनी अभीष्ट है, कि आपके इतने वचन पर से वह आपका अभिप्राय समझ भी पाया है या नही । ऐसा न हो कि वैसे ही हां मे हां मिला रह हो, और आपका परिश्रम विफल जा रहा हो आओ श्रोता से प्रश्न करे ।

आप —जीरे के पानी का स्वाद तूने जाना-कैसा आता है ?

श्रोता —एक अभेद विजातीय प्रकार का स्वाद है, कह नही सकता।

आप —क्या किसी प्रकार भी कह नहा सकते ?

श्रोता —जिस प्रकार आपने बताया है उसी प्रकार कहने के अतिरिक्त तो और कोई उपाय सूझता नही ।

आप —अच्छा बताओ नमक जैसा स्वाद है वहा ?

श्रोता —नही । पृथक पृथक नमक मिर्च जैसा नही है।

आप —तो फिर कैसा है ?

श्रोता —नमक जैसा तो है पर नमक जितना ही नही ?

इसी प्रकार आत्मा पदार्थ के सम्बन्ध में भी उससे पूछें तो यह उपरोक्त चार बातें ही कहेगा, पृथक ज्ञान रूप नही है, ज्ञान वाला है पर ज्ञान मात्र ही नही, सब अगो के अभेद रूप है, कहा नही जा सकता ।

बस तो जान लेने के पश्चात के दूसरे विकल्प में केवल अभेद वस्तु या विशेष ही मुख्य है । जिसको दर्शाने के लिये अन्य या विशेषणो का निषेध किया जा रहा है। यह निषध सर्वथा निषेध रूप नहो है, बल्कि "इतना ही नही है कुछ और भी है" इस रूप वाला है। इसी का नाम गौण करना है । अर्थात दूसरे विकल्प म विशेष्य मुख्य है और विशेषण गौण हो जाते है ।

अब यदि उस वस्तु के सम्बन्ध में आपको स्वयं विचार करना अभीष्ट हो तो भी उपरोक्त ही दृष्टान्त लागू होगा । अनेक कथन

इतना ही होगा कि तव पूछने वाले तो आप ही होंगे पर और श्रोता होगा आपका हृदय । वहा से भी वही चार वाते आयेगी। जिन पर से जाना जा सकता है कि विचार करते समय भी विशेष्य (अङ्गी) मुख्य व विशेषण (अङ्ग) गौण होते है ।

अव तीसरे विकल्प को लीजिये। जीरे के पानी की विशेषताओं के सम्वन्ध मे श्रोता से या अपने मन से पूछ कर देखे कि क्या उत्तर देता है।

आप—क्यो भाई ! इस पानी मे जरा वताओ तो कि नमक कम है कि ज्यादा ?

श्रोता या हृदया—तनिक विचार कर—कुछ कम सा लगता है।

आप—अच्छा मिर्च कम है कि ज्यादा ?

श्रोता या हृदय—पुनः तनिक चखकर और विचार कर-यह कुछ ज्यादा लगती है। परन्तु थोडा सा नमक यदि और मिलादे तो यह भी ठीक हो जायेगी।

इसी प्रकार आत्म पदार्थ के सम्वन्ध मे विचार करके आप वता सकते हैं कि यह अधिक ज्ञानी है कि हीन ज्ञानी, विद्वान है कि मूर्ख, क्रोधी है कि शान्त ।

इस पर से जाना जाता है कि अभेद वस्तु को जानते समय भी आप विशेषणो को सर्वथा भूल गये हो, ऐसा नही है । उनके सम्वन्ध मे पृथक पृथक विचार करने पर वह विशेषण उसमें पृथक पृथक भी भासते हुए अवश्य प्रतीत होते हैं। तथा उस समय अभेद स्वाद प्रतीति मे नहीं आता। या यों कहिये कि वस्तु की विशेषता के सम्वन्ध मे विचार करते समय विशेषण मुख्य हो जाते हैं और विशेष गौण ।

उपरोक्त विस्तार पर से निम्न चार सिद्धान्त निकले —

१ वस्तु में या तदनुरूप प्रमाण ज्ञान में मुख्यता गौणता का विकल्प सर्वथा नहीं होता । 'वहां' विशेषण व विशेष्य दोनों मुख्य है, गौण कोई नहीं ।

२ अनिष्पन्न शिष्य को पढाते समय भेद या विशेषण मुख्य होते है और अभेद या विशेष गौण ।

३ वस्तु की विशेषताओ के सम्बन्ध में किसी से पूछते या स्वयं विचार करते समय भी सदा विशेषण या भेद मुख्य और विशेष्य गौण होता है ।

४ परन्तु किसी ज्ञानी से या अपने हृदय से स्वयं अपने अनुभव के सम्बन्ध में बात करते समय या विचारते समय सदा विशेष्य या अभेद मुख्य होता है और विशेषण या भेद गौण ।

११

शास्त्रीय नय सामान्य

१ ज्ञान अर्थ व शब्द नय, २ वस्तु के सामान्य व विशेष अंश ३. द्रव्यार्थिक नय सामान्य ४. सप्त नय सामान्य

१. ज्ञान अर्थ व शब्द नय

वस्तु के एक देश को ग्रहण करने वाला ज्ञान नय कहलाता है, ऐसा पहिले भली भांति समझाया जा चुका है । अव उस नय की विशेषतायें तथा भेद प्रेम भेदो का विस्तार से कथन प्रारम्भ किया जाता है । वस्तु को जानना ज्ञान का लक्षण है, इसलिये जितने प्रकार की वस्तु होती है, उतनी ही प्रकार का ज्ञान भी होना चाहिये । जगत मे वस्तु तीन प्रकार की उपलब्ध होती है - ज्ञानात्मक, अर्थात्मक और शब्दात्मक । तहां ज्ञान ज्ञेय संवध द्वारा वस्तु का ज्ञान मे जो प्रतिविम्व या प्रतिभास पड़ता है उसे ज्ञानात्मक वस्तु कहते हैं । वाच्य वाचक सम्वन्ध द्वारा वस्तु का शब्द में जो प्रतिभास पड़ता है उसे शब्दात्मक वस्तु कहते

है। अर्थ क्रिया रूप में वस्तु की जो अर्थ में सत्ता रहती है उसे अर्थात्मक वस्तु कहते हैं। जैसे ज्ञान में प्रतिबिम्बित 'गाय' ज्ञानात्मक गाय है। ब्लैक बोर्ड पर लिखा हुआ 'गाय' शब्द या मुख से बोला हुआ 'गाय' शब्द शब्दात्मक गाय है। और दूध देने रूप अर्थ क्रिया करने वाली असली 'गाय' अर्थात्मक गाय है। इन तीनों में से ज्ञानात्मक वस्तु स्वयं जानी जा सकती है परन्तु न दूसरे को दिखाई जा सकती और न किसी प्रयोग में लाई जा सकती है—जैसे ज्ञानात्मक गाय स्वयं जानी जा सकती है परन्तु न किसी को दिखाई जा सकती है और न उससे दूध दूह कर पेट भरा जा सकता है शब्दात्मक वस्तु स्वयं भी पढ़ी व सुनी जा सकती है, दूसरे को भी पढ़ाई व सुनाई जा सकती है, परन्तु उसे किसी प्रयोग में नहीं लायी जा सकती—जैसे कि शब्दात्मक गाय या 'गाय' नाम का शब्द स्वयं भी पढ़ा व सुना जा सकता, दूसरे को भी पढ़ाया व सुनाया जा सकता है परन्तु उससे दूध दूह कर पेट नहीं भरा जा सकता। अर्थात्मक वस्तु स्वयं भी जानी व देखी जा सकती है, दूसरे को भी सुनाई व दिखाई जा सकती है और उस का प्रयोग में भी लाया जा सकता है—जैसे दूध देने वाली गाय स्वयं भी जानी व देखी जा सकती है, दूसरे को भी जनाई व दिखाई जा सकती है, और उस में दूध दूह कर पेट भी भरा जा सकता है।

इस प्रकार वस्तु तीन प्रकार की है—ज्ञानात्मक, शब्दात्मक व अर्थात्मक। चौथी प्रकार की वस्तु लोक में नहीं है। तीन प्रकार की वस्तुओं का जानने वाला ज्ञान भी तीन प्रकार का होना चाहिये। ज्ञान दो प्रकार है—प्रमाण रूप और नय रूप। अखंड वस्तु को जानने वाला एक रसात्मक ज्ञान प्रमाण कहलाता है और उस वस्तु के एक देश का जानने वाला अंश ज्ञान नय कहलाता है। अतः प्रमाण भी तीन प्रकार का है—ज्ञानात्मक प्रमाण—शब्दात्मक प्रमाण और अर्थात्मक प्रमाण। प्रत्यक्ष ज्ञान ज्ञानात्मक प्रमाण है, आगम या द्रव्य श्रुत शब्दात्मक प्रमाण है, और वस्तु स्वयं अर्थात्मक प्रमाण है नय भी

तीन प्रकार की है-ज्ञाननय शब्द नय और अर्थ नय । भावात्मक श्रुत ज्ञान रूप ज्ञान प्रमाण के एक देश को ग्रहण करने वाला 'ज्ञान नय' है। शब्दात्मक श्रुत ज्ञान रूप प्रमाण के अर्थात आगम के एक देश को ग्रहण करने वाला ज्ञान 'शब्दनय, है,अर्थात आगम मे प्रयुक्त अनेक प्रकार की युक्तियो वाला वाक्यो का ज्ञान 'शब्द नय' है। अथ अर्थात वस्तु के एक देश को, गुण को अथवा पर्याय को ग्रहण करने वाला ज्ञान 'अर्थ नय' है ।

यद्यपि नय के तीन भेद कर दिये गये ज्ञान-अर्थ, व शब्द । परन्तु इसका यह अर्थ नही शब्द या अर्थ (वस्तु) स्वयं नय रूप है, नय तो स्वय ज्ञान रूप ही है । वह ज्ञान जिस प्रकार की वस्तु का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है उस नाम से ही वह ज्ञान उपचार से पुकारा जाता है-जैसे कि घी के आश्रय भूत घड़े को भी घी का घड़ा उपचार से कहा जाता है । अतः ज्ञान को विषय करने वाला ज्ञान 'ज्ञान नय, कहा जाता है, अर्थ (वस्तु) को विषय करने वाला ज्ञान 'अर्थ नय, कहा है, और शब्द को विषय करने वाला ज्ञान 'शब्द नय, कहा जाता है। ये तीन ही नय अपने स्वरूप से ज्ञानात्मक ही हैं, शब्दात्मक व अर्थात्मक नही ।

यहां शंका हो सकती है कि अर्थ नय और शब्द नय कहना तो ठीक है, परन्तु ज्ञान नय कहना ठीक नही है । इसका भी कारण यह है कि ज्ञान 'अर्थ, को तथा 'शब्द, को तो विषय करता देखा जाता है, पर ज्ञान स्वयं ज्ञान को ही विषय करता हो, ऐसा देखा नही जाता । सो ऐसी शंका करना युक्त नही है, क्योकि दीपक की भांति 'ज्ञान, स्व पर प्रकाशक है । जिस प्रकार दीपक अन्य पदार्थों को तो प्रकाशित करता ही है, परन्तु स्वयं को भी वह स्वयं ही प्रकाशित कर लेता है, । उसे व्यक्त करने के लिये अन्य दीपक की आवश्यकता नही पड़ती । उसी प्रकार ज्ञान अन्य पदार्थों को तो जानता ही है, परन्तु

स्वय अपने को भी वह स्वय ही जान लेता है "मै यह ज्ञान घट पट आदि पदार्थों को जान रहा हू इस प्रकार की अनुभव गम्य प्रतीति सवजन सम्मत है। इस प्रतीति को उत्पन्न करने के लिये अन्य ज्ञान की आवश्यक्ता नही पडती। इसलिये सिद्ध हुआ कि ज्ञान जिस प्रकार अथ व शब्द को विषय करता है। उसी प्रकार स्वय अपने को अर्थात ज्ञान को भी विषय करता है। इस प्रकार ज्ञान तीन प्रकार की वस्तुओ को ग्रहण करने के कारण तीन प्रकार का बन जाता है–ज्ञान नय, अथ नय और शब्द नय।

फिर भी यहा यह शका हो सकती है कि ज्ञानात्मक वस्तु को भी शब्दो द्वारा कहकर या लिखकर व्यक्त किया जाता है, अर्थात्मक वस्तु को भी शब्दो द्वारा कहकर या लिखकर व्यक्त किया जाता है और शब्दात्मक वस्तु तो स्वय शब्दो रूप है। इस प्रकार जब तीनो नयो के विषयो को व्यक्ति एक शब्द द्वारा ही की जाती है, तब एक शब्द नय ही रही आओ, अन्य दो नय कहने की क्या आवश्यक्ता है। सो ऐसा कहना भी युक्त नही है। कारण कि यहा विषयो की शब्दो द्वारा व्यक्ति की अपेक्षा नही है बल्कि ज्ञान के प्रतिभास की अपेक्षा है। यह बात ठीक है कि कोई भी बात शब्द व्यवहार के बिना व्यक्त नही की जाती, परन्तु इस का यह अथ नही जो भी शब्द बोले जायें वे सब शब्दात्मक वस्तु को ही व्यक्त करते हो जिस प्रकार ज्ञानात्मक वस्तु को विषय करने वाला ज्ञान 'ज्ञान नय, है, उसी प्रकार ज्ञानात्मक वस्तु को वाच्य बनाने वाले शब्द व वाक्य भी 'ज्ञान नय, ही कहे जायेंगे। जिस प्रकार अर्थात्मक वस्तु को विषय करने वाला ज्ञान 'अथ नय, कहलाता है, उसी प्रकार अर्थात्मक वस्तु को वाच्य बनाने वाले शब्द व वाक्य भी 'अर्थ नय, के कहे जायेंगे। जिस प्रकार शब्दात्मक वस्तु तो जानने वाले ज्ञान 'शब्द नय, उसी प्रकार शब्दात्मक वस्तु को अर्थात स्वय शब्दो को वाच्य बनाने वाले शब्द व वाक्य 'शब्द नय, कहे जायेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जानना, नही तो जब भी

समझाने व समझाने के लिये कुछ भी पूछा या कहा जायगा तव केवल शव्द नय की वात ही कही गई समझी जायेगी अन्य नयो की नही। आगे आने वाली सभी नयो का कथन यद्यपि शब्दो द्वारा किया जायगा और आगम मे उनका प्रयोग भी शब्दो द्वारा किया जायगा पर इस पर मे यह नही समझना चाहिये कि सव कथन शव्द नय रुप है । शव्द भी तीन प्रकार क उपलव्ध है, ज्ञान वाचक अर्थ वाचक व शव्द वाचक जैसे 'विकल्प' शव्द ज्ञान वाचक है, जीव शव्द अर्थ वाचक है, स्वर व व्यजन शव्द शव्द वाचक है जिस प्रकार की वस्तु को वाच्य वनाना होता है उसी प्रकार के शव्द का प्रयोग वक्तव्य मे किया जाता है। तहा 'यह शव्द द्वारा कहा जा रहा है इस लिये शव्द नय है, इस प्रकार निर्णय करना योग्य नही। वल्कि इस शव्द द्वारा अमुक विषय को वाच्य वनाया जा रहा है इस प्रकार निर्णय करना योग्य है । अत नय तीन ही है-ज्ञान नय, अर्थ नय व शव्द नय

इन तीनो नयो के विषय के सम्वन्ध मे भी यहा विशेप प्रकार से विचार कर लेना चाहिये। ज्ञान, अर्थ व शव्द इन तीनो मे ज्ञान सव से वडी वस्तु है, अर्थ उससे छोटी वस्तु है और शव्द सवसे छोटी है। सो कैसे वही वताता हू। ज्ञान सत् व असत् सव प्रकार के अर्थ को जानने के लिये समर्थ है। सत्ता भूत पदार्थो को तो ज्ञान जानता ही है परन्तु कल्पना के आधार पर गधे का सीग, आकाश पुष्प, हौआ, अट्ट, विट्ट आदि बे सर पैर की बातो को जानने के लिये उसे कौन रोक सकता है ? अत. ज्ञान मे अर्थ व शव्द जन्य प्रतिभास भी होता है और कल्पना जन्य प्रतिमास भी । कल्पना जन्य प्रतिमास नियम से ज्ञान विपयक ही होता है, अर्थ व शव्द विषयक नही। और उस कल्पना जन्य प्रतिभास का विपय अर्थ है, व शव्द दोनो से अधिक है, क्योकि अर्थ व शव्द तो सीमित है और वह असीम। इसलिये ज्ञान सव से वडी वस्तु है । अर्थ व शव्द मे से अर्थ,वडा है और शव्द छोटा क्योकि द्रव्य

गुण पर्यायो में सूक्ष्म स्थूल रूप मे तथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप से रहने वाला अथ तो अनन्त है, परन्तु शब्द मख्यात मात्र से अधिक होने ही असम्भव ह । दूसरी यात यह है कि शब्द केवल स्थूल अथ को विपय कर सकता है, सूक्ष्म को नही और जगत में स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म अथ यहुत है । इसलिये शब्द का विपय अर्थ की अपेक्षा अत्यन्त अल्प है ।इस प्रकार तीनो नयो के विपयो में महान व लघु पना जान लेना चाहिये ज्ञान नय का विपय महान् है, अथ नय का उससे कम और शब्द नय का सब से कम ।

आगे आने वाली सात नयो में नैगम ज्ञान नय भी है और अर्थ नय भी । सग्रह, व्यवहार व ऋजु सूत्र ये तीन नयें अर्थ नय ही है । शब्द समभिरुढ और एवभूत ये तीन शब्द नय ही है । इस प्रकार उन सातो में एक नैगम नय ज्ञान नय है, नैगम सग्रह व्यवहार व ऋजु सूत्र ये चार नयें अथ नय है और शब्द समाभिरूढ तथा एवभूत ये तीन नय शब्द नय है । आगे इन्ही का सरल भापा में दृष्टान्त आदि दर्शा कर व्याख्यान किया जायेगा ।

२ वस्तु का सामाय व विशेप ग्रश

शास्त्रीय सात नयो का विशेप व्याख्यान प्रारम्भ करने से पहिले यहा पूव कथित अथनय का सामान्य परिचय दे देना योग्य है क्योंकि आगम में सवत्र अथ नय का ही कथन किया जाता है, ज्ञान व शब्द नय का कथन तो केवल उन नयो के लक्षण करके उनका किंचित परिचय कराने मात्र के लिये होता है । अथवा कदाचित कदाचित ही उनका प्रयोग करने में आता है । अत इस ग्रथ में अथ नय का ही विस्तार किया जायेगा । अत ज्ञान नय या शब्द नय के विशेपण से रहित जितना कुछ भी कथन या विस्तार या नयो के भेद प्रभेद आगे इस ग्रथ मे अथवा अन्यत्र आगम म किया गया है वह सब अर्थ नय की अपेक्षा ही किया गया समझना चाहिये ।

अर्थात्मक वस्तु का विश्लेषण करने पर उसमे दो मुख्य अंश दृष्टिगत होते है--सामान्य अंश और विशेष अंश। अनेक अर्थों मे रहने वाली एकता को सामान्य अंश कहते हैं और एक अर्थ में रहने वाली अनेकता को विशेष अश कहते हैं। वह सामान्य दो प्रकार का है-तिर्यक् सामान्य व ऊर्ध्व सामान्य। एक कालवर्ती व अनेक क्षेत्रवर्ती अनेक पदार्थों मे रहने वाली एकता को तिर्यक् सामान्य कहते हैं–जैसे खंडी मुडी आदि अनेक गौवों में रहने वाला एक गोत्व सामान्य। इसे सादृश्य सामान्य भी कहते है, क्योंकि इसमे 'यह भी गौ है, यह भी गौ ही है, यह भी गौ ही है' इस प्रकार का सादृश्य प्रत्यय प्राप्त होता है। एक कालवर्ती तथा एक क्षेत्रवर्ती अनेक पदार्थों मे रहने वाली एकता भी तिर्यक् सामान्य है–जैसे कि एक द्रव्य के अनेक सहभावी गुणों में अथवा उसके अनेक प्रदेशों मे रहने वाली एकता; क्योकि इसमे भी 'इस गुण व प्रदेश रूप भी वही एक द्रव्य है जो कि उस दूसरे गुण व प्रदेश रूप है' इस प्रकार तद्भाव प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है। अनेक कालवर्ती व एक क्षेत्रवर्ती अनेको क्रमवर्ती अवस्थाओं मे अनुस्यूत एक द्रव्य ऊर्ध्व सामान्य है–जैसे आगे पीछे प्रगट होने वाली बालक युवा वृद्ध आदि अनेक अवस्थाओ मे अनुस्यूत एक मनुष्यत्व; क्योंकि यहा भी, 'यह भी वही मनुष्य है जो कि पहिले बच्चा था' इस प्रकार के एकत्व प्रत्यय की प्राप्ति हो रही है।

विशेष अश भी दो प्रकार का है–तिर्यक् विशेष व ऊर्ध्व विशेष। एक काल व एक क्षेत्रवर्ती अनेक विभिन्न पदार्थों मे रहने वाली व्यक्तिगत पृथकता तिर्यक् विशेष है–जैसे अनेक गौओ मे रहने वाली अनेकता, क्योकि यहा जो यह गाय है वही यह दूसरी नही है' इस प्रकार व्यतिरेकी प्रत्यय प्राप्त होता है।। अनेक कालवर्ती व एक क्षेत्रवर्ती आगे पीछे होने वाली एक ही द्रव्य की अनेक पर्यायों मे रहने वाली पृथकता ऊर्ध्व विशेष है–जेसे एक व्यक्ति

में आगे पीछे उदय होने वाला हर्ष व विषाद क्योंकि यहा भी जो हर्ष का स्वरूप है वही विषाद का नही है' इस प्रकार का विसदृश प्रत्यय प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह कि एक ही समय में अनेक पदार्थों मे रहने वाली एक जातीयता तथा एक द्रव्य के अनेक गुणो में रहने वाला एक अन्वय तिर्यक सामान्य है तथा अनेक समयवर्ती अनेक पर्यायो में रहने वाला एक अन्वय (अनुस्यूत द्रव्य) उर्ध्व सामान्य है। इसी प्रकार एक समय म अनेक पदार्थों में रहने वाली व्यक्तिगत पृथकता तथा एक द्रव्य के अनेक गुणो में रहने वाली विसदृशता तियक् विशेष है और एक द्रव्य की आगे पीछे अनेक समयो में होने वाली पर्यायो की परस्पर असमानता उर्ध्व विशेष है 'तिर्यक' शब्द क्षेत्र वाची है और 'उर्ध्व' शब्द काल वाची। इस प्रकार सामान्य व विशेष का स्वरूप यथा योग्य रूप से सर्वत्र समझना इस ग्रंथ में जहा भी सामान्य या विशेष ये दो शब्द प्रयुक्त हो वहा वहा उपरोक्त अर्थों में से यथा योग्य कोई एक अर्थ समझ लेना।

३ द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय सामान्य

वस्तु में नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत-असत्, तत्-अतत् आदि अनेको सामान्य व विशेष अश पाये जाते ह। नित्यत्व, एकत्व, सत् व तत् उसके सामान्य अश हैं और अनित्वत्व अनेकत्व असत व अतत उसके विशेष अश है। इन सब सामान्य व विशेष अशो का एक रसात्मक अखण्ड पिण्ड वस्तु है। इनमें मे कोई भी एक अश जिस दृष्टि में ग्रहण किया जाय उस दृष्टि विशेष को नय कहते हैं अथवा परिवर्तन पाते हुए जैसे बदलते हुए भी उस पदार्थ में, 'यह वही है इस प्रकार का उर्ध्व सामान्य ग्रहण जिस दृष्टि से होता है उसे नित्य ग्राहक सामान्य दृष्टि या नय कहते ह, और उसकी परिवर्तन शील आगे पीछे की विभिन्न पर्याया या अवस्थाओ में पृथकता देखते हुए 'यह वह

नही है जो कि पहले था' इस प्रकार का उर्ध्व विशेष रूप ग्रहण जिस दृष्टि से होता है उसे ही अनित्य ग्राहक विशेष दृष्टि कहते हैं--जैसे बालक,युवा व वृद्ध अवस्थाओ 'वही तो है' ऐसा ग्रहण करने वाली दृष्टि नित्य या सामान्य ग्राहक है और बालक से वृद्ध हो जाने पर 'यह तो कुछ अन्य ही है' ऐसा ग्रहण करने वाली दृष्टि अनित्य या विशेष ग्राहक दृष्टि कहलाती है। सामान्य ग्राहक दृष्टि का नाम द्रव्यार्थिक नय है और विशेष ग्राहक दृष्टि का नाम पर्यायार्थिक नय है।

द्रव्यार्थिक नय मे वस्तु की सत्ता सामान्य की मुख्य रहती है और उसके विशेषाश गौण रहते है, तथा पर्यायार्थिक नय मे उसके विशेषाश मुख्य रहते है और उसकी सत्ता सामान्य गौण रहती है। वस्तु के दो ही मूल अश है अत इनको ग्रहण करने वाली मूल नये भी दो है—द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक। इनके भी आगे अनेक प्रकार से भेद प्रभेद किये जायेगे। तहा द्रव्यार्थिक नय के दो मुख्य भेद है--अभेद ग्राहक व भेद ग्राहक और पर्यायार्थिक के भी अनादि अनन्त पर्याय ग्राहक, अनादि सान्त पर्याय ग्राहक, सादि पर्याय ग्राहक इत्यादि अनेको भेद हो जाते है जिनका विशेष परिचय आगे यथा स्थान दिया जायेगा।

गुण पर्याय आदि विशेषांशो को ग्रहण न करके उस वस्तु का एक रस रूप निर्विकल्प व अखण्ड भाव ग्रहण करने वाली दृष्टि किसी भी पदार्थ को अभेद देखती है, जैसे कि मनुष्य ऐसा कहने पर बालक युवा आदि के विकल्पो से रहित सामान्य मनुष्य का ग्रहण होता है। यही अभेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि है। और द्रव्य मे गुण, पर्यायो आदि रूप से भेद उत्पन्न करके उनके समूह रूप मे उसे देखना भेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि है, जैसे 'मनुष्य' ऐसा कहने पर बालक से वृद्ध पर्यंत की सब उर्ध्व विशेष रूप अवस्थाओ का युगपत ग्रहण हो जाने

के कारण, बालक आदि अवस्थाओ का समूह ही मनुष्य है, या उष्णता व प्रकाशता आदि तियक् विशेषो का समूह ही अग्नि है, इस प्रकार के विकल्प पूवक उस उस पदाथ का ग्रहण करने में आता है । इनमे से अभेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि को शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते है और भेद ग्राहक द्रव्यार्थिक दृष्टि को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते ह ।

पर्यायार्थिक दृष्टि मे काल कृत भेद की प्रमुखता है । वह काल सूक्ष्म व स्थूल दोनो प्रकार का हो सकता है, जिसके कारण से पर्याय भी सूक्ष्म व स्थूल के भेद से दो प्रकार की हो जाती है, ऐसा पहले बताया जा चुका है । सूक्ष्म पर्याय को अथ पर्याय और स्थूल पर्याय को व्यञ्जन पर्याय कहते ह । इन दोनो में से कोई सी भी एक पर्याय को मूल द्रव्य से पृथक करक, एक स्वतन द्रव्य के रूप में देखने वाली दृष्टि पर्यायार्थिक है । इस दृष्टि में इस पर्याय का मूल द्रव्य के साथ कोई भी सम्बध देखा नही जाता । देखा भी जा सकता है जब कि इस दृष्टि म पर्याय से अतिरिक्त और कोई द्रव्य नाम का पदाथ दीखता ही नही । जसे कि मनुष्य मनुष्य ही है, ओर तियच तियच ही । इनमें अनुस्यूत रूप से रहने वाला ओर जीव द्रव्य कौन है, यह जानने में नही आता ।

अथ व व्यञ्जन पर्यायो में से अर्थ पर्याय तो सवथा पर्यायार्थिक का ही विषय बन सकती है । क्योकि वे व्यवहार गम्य नही है पर व्यञ्जन पर्यायो में बालक, युवा आदि कुछ ऐसी पर्यायें भी है, जिन में अनुस्यूत एक व्यक्ति सामाय सब सम्मत है तथा व्यवहार गम्य है । ऐसी पयाय पर्यायार्थिक व द्रव्यार्थिक दोनो की विषय बनाई जा सकती ह । बालक आदि को यदि स्वतत्र व्यक्ति के रूप में ग्रहण करें तो वह पर्यायार्थिक का विषय बन जाती है, और उन्ही का यदि एक व्यक्ति सामाय की किन्ही विशेष अवस्थाओ के रूप में ग्रहण हो तो

वही अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय वन जाती है, क्योकि यहा उसके सम्बन्ध से द्रव्य ही प्रमुखत. देखा जा रहा है ।

अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों मे से अर्थ पर्याय तो सर्वथा पर्यायार्थिक नय का ही विषय वन सकती है, क्योकि उसमे किसी प्रकार भी अन्य पर्याय दिखाई नही देती और इसलिये निर्विशेष है। परन्तु मनुष्यादि व्यञ्जन पर्यायें सर्वथा निर्विशेष नही हैं। यद्यपि द्रव्य की दृष्टि से वह अवश्य निर्विशेष है क्योकि किसी एक व्यक्ति गत मनुष्य मे अन्य मनुष्य की सत्ता नही है, परन्तु क्षेत्र की अपेक्षा उसका असंख्यात प्रदेशी एक अखण्ड क्षेत्र अनेकों प्रदेशों मे अनुगत है, काल की अपेक्षा भी वह बालक युवा वृद्ध आदि विशेष पर्यायो मे अनुगत है और इसी प्रकार भाव की अपेक्षा भी बालक आदि के अनेक भाव विशेषो मे अनुगत है, इसलिये कथंचित सविशेष भी है। इसलिये वह द्रव्यार्थिक अ पर्यायार्थिक दोनो नयो के विषय वन सकते है।

मनुष्य को यदि वालक आदि पर्यायो से निर्पेक्ष एक स्वतत्र व्यक्ति की अखण्ड सत्ता के रूप मे ग्रहण करे तो वह पर्यायार्थिक का विषय है, और यदि बालक आदि पर्यायो के पिण्ड रूप से ग्रहण करे तो अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है, क्योकि यहां अनेक पर्यायो मे अनुगत एक सामान्य अश दृष्टिगत हो रहा है ।

इसी प्रकार द्रव्य क्षेत्र व भाव मे भी लागू करे । द्रव्य की अपेक्षा एक से अधिक द्रव्यों मे किसी प्रकार का एक क्षेत्रा व गाह या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध देखना द्रव्यार्थिक नय का विपय है, और सर्व अन्य द्रव्यो के सम्बन्ध से सर्वथा रहित एक व्यक्तिगत द्रव्य की ही स्वतत्र सत्ता देखना पर्यायार्थिक नय का विषय है । इस दृष्टि मे न जीव व कर्म आदि का सयोग सम्भव है और न किसी के

निमित्त से कुछ काय की सिद्धि सम्भव है। क्षेत्र की अपेक्षा एक से अधिक प्रदेशो का परस्पर में स्पर्श देखना द्रव्यार्थिक नय का विषय है जैसे द्रव्य अनेक प्रदेशी है। और केवल एक प्रदेश की पृथक सत्ता को देखना पर्यायार्थिक नय का विषय है। इस नय से एक प्रदेशी ही द्रव्य हो सकता है, इससे बडा नही। काल की अपेक्षा एक से अधिक पर्यायो की परस्पर में एकता देखना द्रव्यार्थिक नय का विषय है जैसे तिर्य च व मनुष्य आदि रूप से परिणमन करने वाला एक ही जीव है। और पूर्व व उत्तर पर्यायो से रहित केवल वर्तमान पर्याय मात्र ही द्रव्य की सत्ता देखना पर्यायार्थिक नय का विषय है जैसे मनुष्य विशेष एक स्वतत्र द्रव्य है। इस नय से पर्याय ही स्वय द्रव्य है, अत न द्रव्य पर्याय का कारण है और न पूर्व पर्याय ही उसका कारण है। वास्तव में वहा काय कारण भाव ही घटित नही होता। भाव की अपेक्षा एक से अधिक भावो की परस्पर में एकता देखना द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे ज्ञान दर्शन आदि गुणो का समूह जीव है। और केवल स्वलक्षण भूत एक रसात्मक कोई एक व अविभागी भाव स्वरूप ही द्रव्य को देखना पर्यायार्थिक नय है। इस नय से एक द्रव्य में अनेक गुण नही हो सकते, तथा किसी एक गुण में भी शक्ति की हानि वृद्धि नही हो सकती।

अधिकार न ८ के अत में नय के भेद प्रभेदो का चार्ट दिया गया है। पाठक गण एक बार यहा उस पर दृष्टि पात कर लें। वहा नयो के भेद दो अपेक्षाओ से करने में आये है—आगम पद्धति से और अध्यात्म-पद्धति से। इन दोनो में पहिले आगम पद्धति की अपेक्षा नयो का प्ररूपण करूगा। उस में दो अपेक्षायें है—शास्त्र की तथा वस्तु की। यहा पहिले शास्त्रीय दृष्टि से नयो का कथन करूगा, तत्पश्चात वस्तु की अपेक्षा से। प्रकृत में सात नये है नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत। इनमें से नैगम, सग्रह व व्यवहार ये तीन नये द्रव्यार्थिक है और ऋजुसूत्र नय पर्याया-

थिक। शब्दादि आगे तीन की नये यद्यपि शब्द नय के भेदो मे गर्भित है, परन्तु इनको पर्यायार्थिक ही समझा जाता है, क्योंकि इनका विषयभूत शब्द स्वय एक व्यञ्जन पर्याय है।

नय की उपरोक्त दोनो श्रेणियो मे इतना अन्तर है कि शास्त्रीय सात नये तो विषय भूत वस्तु की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता को दृष्टि मे रखकर उत्पन्न हुए है और वस्तु भूत अगली नये केवल वस्तु मे दीखने वाले अनेको सरल विकल्पो को दृष्टि मे रखकर उत्पन्न हुए है। इन सात नयों की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता आगे वताई जाने वाली है।

नयो के उपरोक्त सात भेदो के नाम है—नैगम, सग्रह, व्यवहार ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ व एवभूत। इनके भी आगे अनेक उत्तर भेद हो जाते है, जैसाकि पहिले अधिकार नं. ८ मे नयो का चार्ट वना कर दर्शाये गये है। उनका विशेष कथन उस उस नय की व्याख्या करते समय किया जायेगा। यहां तो केवल इनका सामान्य व संक्षिप्त परिचय देना ही दृष्ट है।

४ सप्त नय सामान्य

जैसा कि पहिले वताया गया है नैगम नय ज्ञान नय भी है और अर्थ नय भी है। अतः इस नय के दो लक्षण होते है—एक ज्ञान नय की अपेक्षा और एक अर्थ नय की अपेक्षा। ज्ञान नय की अपेक्षा यह नय सकल्प मात्र ग्राही है। अर्थात कोई एक विचारक जब केवल सकल्प या कल्पना के आधार पर किसी भी पदार्थ का चितवन करने लगता है अथवा कोई वक्ता अपनी उस कल्पना का कथन करने लगता है तव उसके ज्ञान मे प्रतिभासित वह कल्पित विषय, यद्यपि असत् है परन्तु नैगम नय की दृष्टि से सत्ताभूत कहा जाता है। नैगम नय ज्ञान नय होने के कारण सत् व असत् दोनो को विषय कर सकता है, क्योकि कल्पना या संकल्प के लिये कोई ऐसा नियम नहीं कि वह सत्ताभूत पदार्थ के सम्वन्ध में ही उत्पन्न हो। सत्ताभूत

गुलाव के फूलो का सेहरा और अमत्ताभत आकाश के फूलो का सेहरा दोनो ही कल्पना में सत् है।

अथ नय की अपेक्षा करने पर नैगम नय का लक्षण 'एक को ग्रहण न करके दो को ग्रहण करना' है। अर्थात सग्रह नय के विषय भूत अभेद को, तथा व्यवहार नय के विषयभूत भेद को दोनो को ही ही युगपत परन्तु मुख्य गौण के विकल्प से ग्रहण करना नैगम नय है। तहा सग्रह नय अनेको मे अनुगत सामान्य को ही ग्रहण करके वस्तु को एक मानता है और व्यवहार नय उसी वस्तु में अनेको द्रव्य गुण व पर्याय गत विशेषो का ग्रहण करके उस अनेक रूप मानता है। जैस 'जीव एक है' यह सग्रह नय कहलाता है ओर 'जीव दो प्रकार का है—ससारी व मुक्त' यह व्यवहार नय कहलाता है परन्तु इन दोनो नयो के विषयो को मुख्य गौण भाव से युगपत ग्रहण करना नैगम नय का विषय है। उसमें कही सग्रह नय का अभेद विषय मुख्य होता है तो व्यवहार नय का भेद विषय गौण हो जाता है—जैसे जो यह ससारी व मुक्त दो प्रकार का कहा जा रहा है वह वास्तव में एक जीव ही है। कही व्यवहार नय का भेद विषय मुख्य हो जाता है और सग्रह नय का अभेद विषय गौण हो जाता है-जैसे यह जो एक जीव कहा जा रहा है वही ससारी व मुक्त के भेद म दो प्रकार का है। नैगम के इस लक्षण का विषय सत्ताभूत पदाथ ही है, क्योकि यह अर्थ नय है।

सग्रह नय व व्यवहार नय ये दानो अथ नयें है, इसलिये वे सत्ताभूत पदाथ को ही अभेद या भेद रूप विषय करती है। उनमें से भी सग्रह नय एक अभेद व सामान्य पदाथ को, उसके उत्तर भेदो या विशेषताओ को दृष्टि से ओझल करके, एक रूप से ग्रहण करता है, जबकि व्यवहार नय उसके द्वारा ग्रहण किये गये विषय के अनेक भेदो को अथवा उसकी अनेक विशेषताओ को दर्शाता है।

भिन्न शब्दो का प्रयोग करता है। उसकी दृष्टि मे पूजा का कार्य करते समय इन्द्र पुजारी हो सकता है पर इन्द्र नही, और आज्ञादि चलाते समय वही इन्द्र हो सकता है परन्तु पुजारी व शक्र नहीं, युद्ध करते समय वह शक्र ही है, इन्द्र व पुजारी नही इत्यादि ।

५. सात नयो में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता

इन नयो मे पहिले पहिले नय अधिक विषय वाले है और आगे आगे के नय परिमित विषय वाले है। संग्रह नय सत् मात्र को जानता है और नैगम नय संकल्प मात्र के द्वारा सत् व असत दोनो को ग्रहण करता है। सत् मे भी सग्रह नय केवल सामान्य अंश को ग्रहण करता है और नैगम नय सामान्य व विशेष दोनो को जानता है, इसलिये संग्रह नय की अपेक्षा नैगम नय का अधिक विषय है। व्यवहार नय सग्रह से जाने हुए पदार्थो को विशेष रूप से जानता है, और सग्रह समस्त सामान्य पदार्थ को जानता है, इसलिये संग्रह नय का विषय व्यवहार नय से अधिक है। व्यवहार नय तीनो कालों के पदार्थो को अथवा परस्पर सम्बद्ध सर्व क्षेत्राशो व भावाशो को जानता है और ऋजु सूत्र से केवल वर्तमान पदार्थ का अथवा किसी एक अविभागी क्षेत्र व भाव का ही ज्ञान होता है, अतएव व्यवहार का विषय ऋजु सूत्र से अधिक है।

शब्द नय काल, कारक आदि के भेद से वर्तमानव्यञ्जन पर्याय को जानता है, ऋजु सूत्र मे काल आदिका कोई भेद नही है, इसलिये शब्द नय से ऋजु सूत्र का विषय अधिक है। समभिरूढ नय इन्द्र शक्र आदि पर्याय वाची शब्दो को भी व्युत्पत्ति की अपेक्षा भिन्न रूप से जानता है, परन्तु शब्द नय मे यह सूक्ष्मता नही रहती अर्थात वह सब पर्याय वाची शब्दो को सर्वथा एकार्थ वाचक स्वीकार करता है अत. समभिरूढ से शब्द नय का विषय अधिक है। समभिरूढ से जाने हुए पदार्थो मे तत्क्षणवर्ती क्रिया के भेद से वस्तु के नाम में भेद मानना एवंभूत है. जैसे समभिरूढ की अपेक्षा पुरन्दर और शचीपति

में भेद होने पर भी, नगरो का नाश करते व न करते समय पुरन्द शब्द इन्द्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है परन्तु एवभूत की अपेक्षा नगरो का नाश करते समय ही इन्द्र को पुरन्दर नाम से कहा जा सकता है। अतएव एवभूत से समभिरूढ नय का विषय अधिक है।

अन्य प्रकार से भी इन सातो नयो की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता का विचार किया जा सकता है। यह निम्न प्रकार —

१ 'प्रमाण ज्ञान' भी वस्तु के सामान्य व विशेषाशो को युगपत ग्रहण करता है परन्तु मुख्य गौण के विकल्प रहित एक रसात्मक अखण्ड रूप मे, अत इसका विषय सबसे महान है।

२ 'नैगम नय' भी वस्तु के भेदात्मक व अभेदात्मक दोनो सामान्यो को युगपत ग्रहण करता है परन्तु मुख्य गौण के विकल्प सहित खण्डि रूप में। अत इसका विषय प्रमाण के विषय से अल्प है। अर्थात भेद व अभेद दोनो अशो को युगपत ग्रहण करने पर भी वह प्रमाण नही कहा जा सकता क्यो कि इसका विषय मुख्य गौण व्यवस्था सहित सविकल्प है, और प्रमाण का विषय मुख्य गौण व्यवस्था से रहित निर्विकल्प।

३ 'सग्रह नय' नैगम के विषय में से अनेक विशेषो रूप अथवा भेदो रूप सामान्य को छोडकर केवल उन विशेषो या भेदो में अनुगत एक अभेदात्मक सामान्य अश को ही परिपूर्ण वस्तु रूप से स्वीकार करता है। अत इसका विषय नैगम से अल्प है।

४ 'व्यवहार नय' नैगम के विषय में से अभेदात्मक सामान्याश को छोडकर उसको केवल भेदात्मक अश को अर्थात उस एक

६. समभिरूढ नय का वचन इस प्रकार है—जब मनुष्य नारक कर्म का बन्धक होकर नारक कर्म से संयुक्त हो जाये तभी वह नारकी कहा जाये ।५।

७. जब वही मनुष्य नरक गति को पहुंचकर नरक के दुःख अनुभव करने लगता है, तभी वह नारकी है, ऐसा एवंभूत नय कहता है ।

—

द्रव्यार्थिक (अर्थ नय)
नैगम
संग्रह
शुद्ध
अशुद्ध
सामान्य
विशेष
भूत
वर्तमान
भविष्यत
द्रव्य नैगम
अर्थ
पर्याय
नैगम
शुद्ध
अशुद्ध
द्रव्य ऋजु
सूत्र नैगम
शास्त्रीय
शुद्ध
(पारिणामिक)

चार्ट नं. २

शास्त्रीय नय
पर्यायार्थिक
व्यवहार
अर्थ नय
शब्द नय
शुद्ध
अशुद्ध
ऋजु सूत्र
शब्द
समभिरूढ
एवभूत
शुद्ध
अशुद्ध
नैगम
द्रव्य पर्याय नैगम
व्यजन पर्याय नैगम
अर्थ पर्याय नैगम
शुद्धद्रव्यार्थ पर्याय नैगम
अशुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम
शुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय नैगम
अशुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम
माभिरूढ
गम
द्रव्य एव भूत नैगम

१३
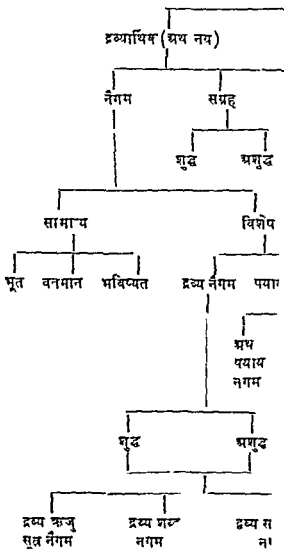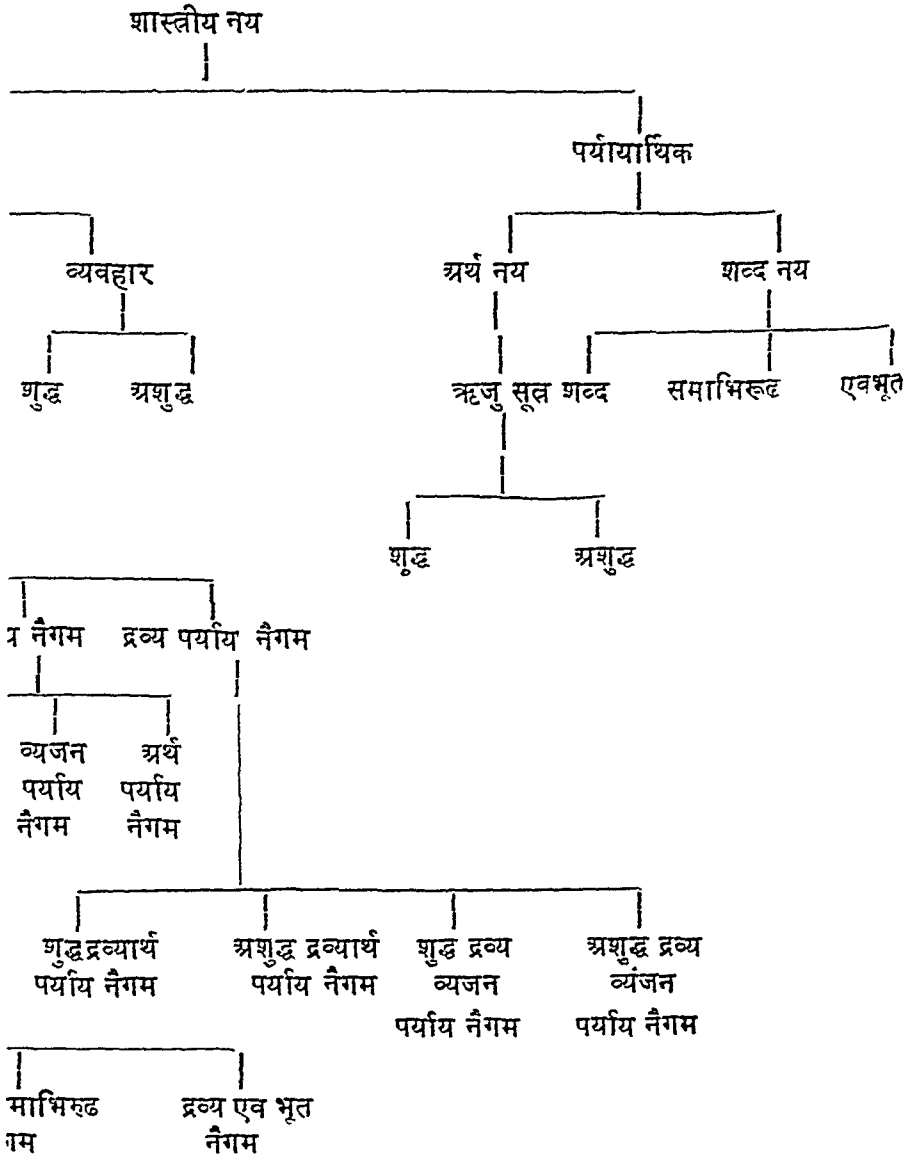
नैगम नय

१. नैगम नय सामान्य, २. नैगम नय के भेद प्रभेद, ३. भूत वर्तमान व भावि नैगम, ४ द्रव्य नैगम नय, ५ पर्याय नैगम नय, ६. द्रव्य पर्याय नैगम नय ७. नैगम नय के भेदो का समन्वय

१ नैगम नय सामान्य

जैसा कि पहले बताया जा चुका है नैगम नय अत्यन्त व्यापक है, क्योंकि यह ज्ञान नय है। ज्ञान सकल्प मात्र होता है। वह सत् पदार्थ सम्बन्धी भी हो सकता है और असत् पदार्थ सम्बन्धी भी। सत् पदार्थ सबंधी ज्ञान तो सर्व सम्मत है ही जैसे कि मनुष्य तथा वृक्षादि संबंधी ज्ञान। परन्तु असत पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान भी असिद्ध नही है। भले ही आकाश पुष्प की माला की सत्ता लोक में न हो पर सकल्प ज्ञान उसको भी गूथने में समर्थ

है। भले ही गधे को सीग न होते हों, पर ज्ञान मे सीग वाले गधे की कल्पना होना भी सम्भव है। अर्थ नय तो केवल सत्ता भूत पदार्थ को ही जान सकता है परन्तु ज्ञान या नैगम नय का व्यापार उपरोक्त प्रकार से असत् पदार्थ मे भी होता है।

सत्ता भूत पदार्थ मे भी इस नय का व्यापार अत्यन्त विस्तृत है। सग्रह व व्यवहार दोनो अर्थ नये इसके पेट मे पड़ी है। ज्ञान नय होने के कारण यह वस्तु की त्रिकाली पर्यायो का ग्रहण या सकल्प करने मे समर्थ है, भले हो वस्तु मे वे पर्यायें विनष्ट हो चुकी है या अभी उत्पन्न नही हुई है। यह नय सर्व गुणो की त्रिकाल गोचर पर्यायो वाले द्वैत को एक माला के रूप मे गूथ कर उसे अद्वैत रूप प्रदान कर सकता है इसलिये अर्थ नय के अन्तर्गत भी द्रव्यार्थिक के रूप मे इसका ग्रहण होता है।

उपरोक्त प्रकार इसकी व्यापकता का परिचय निम्न लक्षणो पर से आका जा सकता है।

१ लक्षण न० १ —पहिला लक्षण तो 'नैगम' शब्द की व्युत्पत्ति पर से लिया गया है। 'निगम' शब्द का अर्थ संकल्प है। उसमे जो रहे सो नैगम है। निगम शब्द का अर्थ है 'अन्दर से बाहर निकलना'। ज्ञान मे से स्वय फूट कर बाहर निकलना निगम कहलाता है, अर्थात् शान्त व स्थिर ज्ञान मे सहसा ही जो विकल्प उत्पन्न होता है, उसे निगम कहते है। उस निगम या विकल्प अथवा सकल्प में जो रहे सो नैगम है। इस प्रकार नैगम नय संकल्प मात्र ग्राही प्राप्त होता है।

सकल्प भी दो प्रकार का हो सकना सम्भव है—प्रमाण भूत व अप्रमाणभूत। सत्ता धारी किसी पदार्थ के सम्बन्ध मे होने वाला सकल्प प्रमाण भूत है, जैसे राजकुमार मे राजापने का सकल्प अथवा

राजभ्रष्ट व्यक्ति मे राजापने का सकल्प अथवा नाटक के किसी पात्र मे राजापने का सकल्प, अथवा खडाऊ या राजमुद्रा आदि में राजा का सकल्प । असत् पदाथ के सम्बन्ध में होने वाला सकल्प अप्रमाण भत है, जसे वि ध्यापुत्र के लिये आकाश पुष्प का सेहरा गूथने का सकल्प, अथवा सीग वाले घोडे पर सवारी करने का सकल्प अथवा स्वप्न की अनेको ऊँटपटाग बातो के सम्बन्ध में विचारने का सकल्प ।

भले ही काम करना अभी प्रारम्भ भी न किया हो, पर चित्त में उसे करने का सकल्प मात्र प्रगट हो जाने पर, वह काय जिस दृष्टि में निश्चित रूपसे समाप्त हो गया वत् प्रतिभासित होने लगता है, वही नैगम नय है, जसे अभी देहली नही गये पर देहली जाने का विचार ही करने पर "मै देहली जा रहा हूँ ऐसा कहने का व्यवहार होता है । इस प्रकार सकल्प मात्र के द्वारा भूत कालीन वस्तु को अथवा भविष्यत कालीन वस्तु को वतमान वत देखा जा सकता है, और इसी प्रकार अप्रमाण भत काल्पनिक बातो को भी ज्ञान के विकल्प में सत-स्वरूप वत देखा जा सकता है । वस प्रमाण भूत व अप्रमाणभूत दोनो प्रकार के विषयो को सत् स्वरूप देखना नैगम नय का लक्षण है ।

२ लक्षण न २ —इस दृष्टि की व्यापकता में वस्तु के सामान्य अश व विशेष अश दोनो युगपत पृथक पथक दिखाई देते ह। अर्थात अनेक भेदो में रहने वाली परिपूर्ण वस्तु का ग्रहण हो जाता है। यहा यह शका करनी योग्य नही कि सामान्य व विशेष का युगपात ग्रहण तो प्रमाण का विषय है, क्योकि प्रमाण व नैगम नय के ग्रहण में अतर है । प्रमाण भी सामान्य व विशेष दोनो अगो को युगपत ग्रहण करता है और नगम नय भी, परन्तु प्रमाण का वह ग्रहण "यह विशेष इस सामान्य के है' इस प्रकार के विकल्प से रहित एक रस रूप होता है, और नैगम नय का वही ग्रहण उपरोक्त विकल्प सहित होता है ।

अर्थात् एक रस रूप अखण्ड वस्तु में यह नय उसके गुणो व पर्यायों को पृथक पृथक जड़ा हुआ देखता है, तथा उन गुणों आदि मे अनुस्यूत एक अखंड सत्ता को भी साथ ही ग्रहण कर लेता है।

इस दृष्टि मे द्रव्य को अनेक गुणो व एक एक गुण को अनेक पर्यायो मे विभाजित करके देखा जाता है। द्रव्य की अखण्डता को अनेक प्रदेशो मे विभाजित करके देखा जाता है। इस प्रकार अद्वैत मे द्वैत उत्पन्न करके यह एक ही द्रव्य को अनेक रूप देखता है। उदाहरणार्थ इस नय की अपेक्षा अनेकों स्वतंत्र सत्ताधारी प्रदेश परस्पर मे एक दूसरे के साथ वंधकर एक रूप धार तिष्टते है। प्रमिति तो अपने कारण रूप प्रमाण से और ज्ञप्ति अपने कारण रूप ज्ञान से भिन्न है। अर्थात् उपादान कारण व उसका कार्य इस दृष्टि मे भिन्न भिन्न स्वतंत्र विषय है, जो परस्पर मे सम्मेल को प्राप्त होकर एक वत् दीखते है। वैशेपिक व नैयायिक लोगो के मत का आधार यह नैगम दृष्टि ही है।

३. लक्षण न. ३ –जिस प्रकार अद्वैत मे द्वैत देखता है, उसी प्रकार यह नय द्वैत मे अद्वैत भी देखता है। द्वैत मे अद्वैत को तीन प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है-दो धर्मो मे एकता रूप मे, दो धर्मियो मे एकता रूप से तथा धर्म व धर्मो मे एकता रूप से। यहां धर्म धर्मी आदि शब्दो से तात्पर्य द्रव्य, गुण पर्याय के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। गुण, गुणी आदि शब्दो का प्रयोग प्रयोजन वश नही किया गया है। वह प्रयोजन यह है कि गुण व 'पर्याय' यह शब्द अपने अपने सीमित अर्थ का ही प्रतिपादन करतें है। परन्तु 'धर्म' शब्द, गुण व पर्याय दोनो का युगपत प्रतिनिधित्व करता है। धर्म वस्तु के स्वभाव को कहते है गुण व पर्याय दोनो ही उत्पाद, व्यय, ध्रुवात्मक वस्तु के स्वभाव है। इसलिये गुण व पर्याय दोनों मे ही 'धर्म' शब्द का अर्थ चला जाता है, अकेली पर्याय भी वस्तु का धर्म है। और गुण व पर्याय दोनों

युगपत भी वस्तु का धम है। 'गुण' शब्द द्वारा 'पर्याय' का ग्रहण और 'पर्याय' शब्द द्वारा 'गुण' का ग्रहण होता नही। 'धर्म' शब्द के द्वारा 'गुण' 'पर्याय' दोनो का युगपत ग्रहण होता है, इसलिये यहा 'गुण' व 'पर्याय' शब्द के स्थान पर 'धम' शब्द को प्रयोग किया है। इसी पकारधर्मी शब्द केलिये भी समझ लेना। गुणी, पर्यायी, व अगी आदि सव शब्दो का अर्थ एक धमी शब्द में पडा है।

यहा धम धर्मी आदि की एकता का अर्थ, विशेषण विशेष्य भाव रूप द्वत में अद्वतता का सकल्प करना है। 'सत्' सामा य के ध्रुव स्वभाव परसे किसी गुण विशेष के ध्रुव स्वभाव का सकल्प करना अथवा 'सत्' सामा य के ऊध्रुव स्वभाव पर से किसी पर्याय विशेष के क्षणिक स्वभाव का सकल्प करना दो धर्मों म एकता है। "सद्द्रव्य लक्षणम्" ऐसे निर्विकल्प लक्षण पर से अथवा "गुणपर्यय वद् द्रव्य ऐसे विकल्पत्मक लक्षण पर से द्रव्य सामा य के अभेद व भेद स्वभाव का सकल्प करना अथवा इसी प्रकार द्रव्य विशेष के लक्षणो पर से उसके स्वभाव का सकल्प करना दो धमियो में एकता है। गुण विशेष अथवा पर्याय विशेष पर से किसी द्रव्य विशेष के स्वभाव का सकल्प करना धम धर्मी में एकता है। इसका विशेष परिचय द्रव्य नैगम व पर्याय नैगम की व्याख्या करते समय दिया जायेगा।

४ लक्षण न ४—अव इसका दूसरी प्रकार से भी लक्षण समझिये। नैगम नय जैसे कि ऊपर बताया गया है सग्रह व व्यवहार इन दोनो नयो के विषय को उल्लघन कर के अपना कोई पृथक विषय नही रखता। सग्रह व व्यवहार इसी के अग है, या यो कहिये कि सग्रह व व्यवहार नयो में व्यापक रहने वाला नगम नय है, या यो कहिये कि सग्रह व व्यवहार नयो के समूह का नाम या उनकी एकता का नाम ही नैगम नय है। इसका उदाहरण ऐसा समझना जैसे कि अखड जीव एक द्रव्य है। उसके मुक्त ससारी, त्रस, स्थावर, पृथिवी

आदि तथा एक, दो इन्द्रिय आदि तथा अन्य भी अनेकों भेद है। पृथक पृथक वे सव भेद प्रभेद तो सग्रह व व्यहार के विपय है, पर नैगम नय अकेला ही इन सव को विपय करता है। तात्पर्य यह कि नैगम नय-के दो भेद है—सग्रह व व्यवहार ।

५ लक्षण न. ५·—इन सव वातो के अतिरिक्त यह वस्तु मे अन्य प्रकार भी द्वैत उत्पन्न कर देता है। शव्द, शील, कर्ता-कर्म, साधन-साव्य, कारण—कार्य, आवार-आधेय, भूत-वर्तमान-भविप्यत, मान-उन्मान आदि का आश्रय करके यह वस्तु मे भेद डाल देता है। कभी गुण को साधन व द्रव्य को साध्य वनाकर प्रतिपादन करता है-क्योकि गुणों पर से ही द्रव्य की सिद्धि होती है। कभी द्रव्य को कारण औरपर्याय को कार्य कहता हुआ प्रगट होता है। क्योकि द्रव्य में ही पर्याय प्रगट होती है।कभी पूर्व पर्याय को कारण व उत्तर पर्याय को कार्य वतलाने लगता है-क्योकि पूर्व पर्याय का व्यय हो जाने पर ही उत्तर पर्याय की उत्पत्ति होती है। द्रव्य को आधार तथा गुण व पर्याय को आधेय कहकर वस्तु में द्वैत उत्पन्न करता है—क्योंकि द्रव्य मे ही गुण पर्याय रहते है, पृथक नही, जैसे अग्नि मे ही ऊष्णता रहती है पृथक नही। इस प्रकार अभेद द्रव्य मे भी विश्लेषण द्वारा द्वैत का उपचार उत्पन्न करके उसे विशद वनाना इस नय का काम है।

इतना ही नही, भिन्न द्रव्यों मे भी कारण-कार्य आदि भावो को स्वीकार करके वस्तु की कार्य-व्यवस्था का अत्यन्त व्यापक रूप दृप्टि मे लाना भी इसका काम है। उपादन-उपादेय ओर निमित्त-नैमित्तिक दोनो ही भाव इस के विषय है। वस्तु की सत्ता को तथा उसकी उत्पाद व्यय रूप कार्य व्यवस्था को सिद्ध करने के लिये जो कुछ भी जानने, देखने व कहने मे आता है वह सव इसका विषय है। यद्यपि आगम पद्धति मे वस्तु का निज वैभव अर्थात उसके स्व चतुप्टय ही दर्शाने मे प्रमुखत· आते है, पर उसकी कार्य व्यवस्था में

अन्य पदार्थों का सयोग तथा उनका परस्पर का निमित्त नमित्तिक सम्मेल सवथा दृष्टि से ओझल नही किया जा सकता । इसलिये पर चतुष्टय के आधार पर भी वास्तव मे वस्तु का निज वैभव ही दर्शाना अभीष्ट होता है । बिना निमित्त नैमित्तिक सयोग को जाने वस्तु की काय व्यवस्था का स्पष्ट ज्ञान होना असम्भव है । इसीमे यह नय अत्यन्त स्थूल है ।

इस प्रकार नैगम नय अनेको दृष्टियो से द्वैत उत्पन्न कर करके उसमें अद्वैत का सकल्प करता है । इसीलिये इसका नाम नैगम है । क्योंकि व्याकरण की दृष्टि से "जो एक को नही जानता कि तु द्वत को जानता है' उसे नैगम कहते ह । नीचे उन सारी दृष्टियो का एक ही स्थान पर सग्रह कर देना उचित है, ताकि विषय को स्मृति में उतारा जा सके । वास्तव में यह निम्न में दिये गये कोई पृथक पृथक लक्षण नही है, वल्कि वस्तु में भेद डालकर उसके अभेद को समझना व समझाना ही इसका एक सच्चा लक्षण है । वह भेद दो प्रकार के होते ह-गुण कृत या सहवर्ती भेद तथा पर्याय कृत या क्रमवर्ती भेद ।

एक जो एक का ग्राहक न होकर द्वैत का ग्राहक हो उसे नैगम नय कहते हैं । (यह लक्षण व्याकरणकी अपेक्षा निरुक्ति रूप अथ का द्योतक है ।)

१ सकल्प मात्र ग्राही नगम नय है ।

२ अद्वैत द्रव्य में गुण पर्यायि का द्वैत देखने वाला नगम नय है ।

३ धम धर्मी आदि द्वैत में अद्वैत देखने वाला नैगम नय है ।

४ संग्रह व व्यवहार दोनो को विषय करने वाला नैगम नय है ।

५ कर्ता कर्म आदि मे भेद करने वाला नैगम नय है ।

यह सब इस नैगम नय के लक्षण है । इसके अनेको भेद प्रभेद है, जो आगे बताये जायेगे । यहा तो नैगम सामान्य का प्रकरण है, अतः इसके उपरोक्त लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम के उद्धरण देखिये –

१. लक्षण नं १ (संकल्प मात्र ग्राही)

१. रा. वा. ।१।३३।२।९५ "निगच्छन्ति तस्मिन्निति निगमनमात्र वा निगमः निगमे कुशलो भवो नैगमः ।"

अर्थ— 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'गम' धातु से 'अच' प्रत्यय करने पर निगमन शब्द बना है । और निगम शब्द से कुशल या भव अर्थ मे 'अण्' प्रत्यय करनै पर नैगम शब्द की सिद्धि हुई है । (इसका अर्थ सकल्प करना है)

२ आ. प. १९।२३ "नैकं गच्छतीति निगम निगमो विकल्प स्तत्र भवो नैगम ।"

अर्थ— जो प्रचुर रूपेण जाने सो निगम । निगम का अर्थ विकल्प है । उसमे होने वाला ज्ञान नैगम कहलाता है ।

२ स सि ।१।३३।५।५०७ "अनभिनिर्वृत्तार्थसकल्पमात्रग्राही नैगम.। कश्चित्पुरुष परिगृहीतपरशु गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति । स आह प्रस्थमानेतुमिति । नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहित., तदर्थे व्यापारे स

प्रयुज्यते । एव प्रकारो लोक स व्यवहार अनभिनिवृत्तये सकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहार । (आगे भी)

अर्थ – अनिष्पन्न अथ म सकल्प मात्र का ग्रहण करने वाला नय नैगम है। यथा-हाथ मे फरसा ले कर जाते हुए किसी पुरुष को देखकर कोई अन्य पुरुष पूछता है, आप किस काम के लिये जा रहे है। वह कहता है, प्रस्थ लेने के लिये जा रहा हूँ। उस समय वह प्रस्थ पर्याय (माप) सन्निहित नही है, केवल उसके बनाने का सकल्प हाने से उसमें प्रस्थ व्यवहार किया गया है।

इसी प्रकार ईन्धन और जल आदि के लाने में लगे हुए किसी पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे ह। उसने कहा भात पका रहा हू। उस समय भात पर्याय सन्निहित नही है, केवल भात के लिये किये गये सकल्प में भात पकाने का प्रयोग किया गया है। (इस पैरेग्राफ की सस्कृत ऊपर छोड दी गई है)

क्रमश

३ रा वा ।१।३३।२।६५ अथवा 'यहा कौन जा रहा है' इस प्रश्न के उत्तर में कोई 'बैठा हुआ' व्यक्ति कहे कि 'म जा रहा हू।'

इन सब दृष्टान्तो में प्रस्थ और गमन के या ओदन पकाने आदि के सकल्पमात्रमें वे व्यवहार किये गये है। इस प्रकार जितना लोक व्यवहार अनिष्पन्न अथ के आलम्बन से सकल्प मात्र को विषय करता है वह सब नैगम नय का विषय है।

४ श्लो वा ।१।३३।२६६ "सकल्पो निगमस्तत्र भवोऽयतत् प्रयोजन। तथा प्रस्थादि सकल्प तदभिप्राय इष्यते।"

अर्थ --संकल्प को निगम कहते है । उसमे जो होता है सो ही नैगम है, ऐसा इस नय का प्रयोजन है । और प्रस्थादि लाने आदि का संकल्प करना इसका अभिप्राय माना गया ।

५ का. अ ।२७१ "जो साहेदि अदीदं, वियप्परूवं णेगमोविस्समत्थ च । संपडिकालाविट्ठं, सो हूणयो णेगमो णेयो ।"

अर्थः--जो नय अतीत भविष्यत तथा वर्तमान को सकल्प मात्र सिद्ध करता है वह नैगम नय है ।

२ लक्षण नं० २ (अद्वैत में द्वैत ग्राही) --

१ ध । पु ६ पृ १८१।२ "न एकगमो नैगम. ।"

अर्थः--जो एक को विषय न करे अर्थात भेद व अभेद दोनो को विषय करे वह नैगम नय है ।

२. ध । पु० १३। पृ १६६।१ "नैकगमोनैगमः द्रव्यपर्यायद्वय मिथो विभिन्नमिच्छन्न नैगम इति यावत् ।"

अर्थः--जो एक को नही प्राप्त होता वह नैगम है । जो द्रव्य और पर्याय इन दोनो को आपस मे अलग अलग स्वीकार करता है वह नैगम है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है ।

३ ध । पु० १०।सूत्र १।पृ १३ "नैगम व्यवहाराणं णाणावरणीय वेयणा दशणावरणीय वेयणा वेयणीय-वेयणा मोहणीय वेयणा आउववेयणा णामवेयणा गोदवेयणा अतराइय-वेयणा ।"

अर्थः--नैगम व व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना, दर्शनावरणीयवेदना, वेदनीयवेदना, मोहनीयवेदना, आयु-

वेदना, नामवदना, गोत्रवेदना और अन्तरायवेदना, इस प्रकार वेदना आठ भेद रूप है । यहा एक समय के जीव के अखण्ड भाव को आठ भेद डालकर बताया जा रहा है ।

४ घ ।पु १३।पृ १३।१ "असगहियणेगमणयभासिदूण लोगागास पदेशमेत्तधम्मदव्वपदेसाण पुध पुध लद्धदव्वववएसाण-मण्णोण्ण पासुवलभादो । ३ । अधम्मदव्वमधम्यदव्वेण पुसिज्जति, तक्खध देस, पदेस' परमाणूणमसगहियणेग-मणएण पत्तदव्वभावागमेयत्तदसणादो ।

अर्थ—असग्राहिक नैगम नय की अपेक्षा लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण और पृथक पृथक द्रव्य सज्ञा को प्राप्त हुए धर्म द्रव्य के प्रदेशो का परस्पर में स्पर्श देखा जाता है । ३ । इसी प्रकार अधर्म द्रव्य अधर्म के साथ स्पर्श को प्राप्त होता है, क्योकि असग्राहिक नैगम नय की अपेक्षा द्रव्य भाव को प्राप्त हुए अधर्म द्रव्य के स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुओ का एकत्व देखा जाता है ।

(यहा अखण्ड द्रव्यो में भी खण्डित करके उनके प्रदेशो को पृथक पृथक द्रव्य रूप से स्वीकारा गया और इस प्रकार अद्वैत में द्वैत डालकर उनका परस्पर सम्मेल दिखाया है ।)

५ स म । २८ । ३११।३ तत्र नैगम सत्तालक्षण महासामान्यम्, अवान्तरसामान्यानि च द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादीनि तथान्त्यान् विशेषान् सकलासाधारणरूपलक्षणान् अवान्तरविशेषादचापेक्षया पररूपव्यावर्तनक्षमान् सामान्यान् अत्यन्तविनिलु ठितस्वरूपानभिप्रैति ।"

अर्थ —नैगम नय सत्ता रूप सामान्य को, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व रूप अवान्तर सामान्य को, असाधारण रूप विशेषको, तथा पर रूप से व्यावृत्त और सामान्य से भिन्न अवान्तर विशेषो को जानती है।

क्रमश —स म.।२८।३१५।२४ मे उद्धृत अन्यदेव हि सामान्य-मभिन्नज्ञान कारणम् । विशेषोऽप्यन्य एवेति मन्यते नगमो नय. ।।१।।

अर्थ —नैगम नय के अनुसार अभिन्न ज्ञान का कारण सामान्य धर्म विशेष धर्म से भिन्न है।

६ लक्षण नं० ३ (धर्म धर्मी आदि रूप द्वैत में अद्वैत)

१ स म.।२८।३१७।२ मे उद्धृत "धर्मधर्मिणोधर्मधार्मिणोश्च प्रधानो पसर्जन भावेन यद्विवक्षण स नैगमो नैगम । सत् चैतन्यमात्मनीतिधर्मयो । वस्तु पर्ययव द्रव्यमिति धर्मिणो. क्षणमेक सुखी विषयासक्तजीव इति धर्मधार्मिणो ।

अर्थ —दो धर्म अथवा दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी ये प्रधान और गौणता की विवक्षाको नैगम अथवा नैगम-नय कहते है।

१. जैसे 'सत् और चैतन्य दोनो आत्मा के धर्म है'। यहा सत् और चैतन्य दोनो धर्मो मे चैतन्य विशेष्य होने से प्रधान धर्म है और सत् विशेषण होने से गौण धर्म है।

२. 'पर्यायवान द्रव्य को वस्तु कहते है'। यहा द्रव्य और वस्तु दो धर्मियो मे द्रव्य मुख्य और वस्तु गौण है । अथवा 'पर्यायवान वस्तु को द्रव्य कहते है' यहा वस्तु मुख्य और द्रव्य गौण है।

३ 'विपयासक्त जीव क्षणभर के लिये सुखी हो जाता है' यहा विपयासक्त जीव रूप धर्मी मुख्य और क्षण भर के लिये सुखी होना रूप धम गौण है।

क्रमश — स म । २८। ३१७।५ धमद्वयादीनामेकान्तिक पाथक्या-भिसन्धि नैगमाभास ।"

अर्थ —दो धम, दो धर्मी अथवा एक धम और एक धर्मी में सवथा भिन्नता दिखाने को नैगमाभास कहते ह। जैसे

१ आत्मा में सत और चतन्य परस्पर भिन्न है।

२ पर्यायवान वस्तु और द्रव्य सवथा भिन्न है।

३ सुख और जीव परस्पर भिन्न ह।

२ श्न वा ।१।३३।२१'यद्वा नकगमो योऽत्र सतत नैगमो मतः। धमयोर्धर्मिणो वापि विवक्षा धमधर्मिणो ।

अर्थ —जो एक को विषय न करे बल्कि सदा द्वैत को विषय करे उसे नगम नय माना गया है। जैसे दो धर्मों में या दो धर्मियों म अथवा धम व धर्मी में एकता करने में आती है।

४ लक्षण न० ४ (संग्रह व व्यवहार उभय रूप)

१ ध ।१३।प०१।४।१२ 'यह नय सब नयो के विषय को स्वीकार करता है।

२ ध०।१।८४।६ यदस्ति न तद्वयमतिलघ्य वर्तते इति नगमो नय । सग्रहासग्रह स्वरूप द्रव्यार्थिको नैगमेति यावत्—सते त्रयोऽपि नया नित्य वादिन स्व विषये पय याभावत सामान्य विशेष कालयोरभावात।"

अर्थ:—जो भी है वह दो पने को उल्लघन करके नही वर्तता ऐसा नैगम नय कहता है। अर्थात जो सग्रह व व्यवहार दोनो को छोडकर नही रहता वह नैगम नय है। सग्रह व असग्रह अर्थात भेद व भेद स्वरूप द्रव्यार्थिक है वही नैगम है। नैगम सग्रह और व्यवहार यह तीनो ही नय निजनिज विषय मे नित्यता बताने वाले है—क्योकि उन उनके अपने अपने विषय की सीमा मे सामान्य व विशेष काल के ग्रहण का अभाव होने के कारण वहा पर्यायो का भी ग्रहण हो नही पाता।)

३ ध.।६।१७१।४ "यदस्ति न तद्दयमतिल्लघ्य वर्ततेति सग्रह व्यवहारयो परस्पर विभिन्नोभय विषयावलम्बनो नैगमनय ।"

६ घ ।१२।३०३।१ (क पा।१।ह१८३।२२१।१)

(अर्थ—जो कुछ भी है वह संग्रह व व्यवहार अर्थात् अभेद व भेद इन दोनो को उल्लघन करके नही वर्तता। संग्रह व व्यवहार इन दोनो की परस्पर विभिन्नता को उभय रूप से अर्थात अभेद करके विषय करने वाली नैगम नय है।)

५ लक्षण नं० ५ (कर्ता कर्मादि भेद प्रदर्शक)

१ ध।९।१७१।४ "यदस्ति न तद्दयमतिलघ्य वर्ततेति सग्रह व्यवहारयो परस्पर विभिन्नोभय विषयावलम्बनो नैगम नय। शब्द शील, कर्म कार्यकरण, आधाराधेय, भूतभविष्यत-वर्तमान, मेयोन्मेयादिकमाश्रित्य स्थितोप्रचार प्रभव इति यावत्।"

(ध ।१२।३०३।१) (क पा ।१।ह्१८३।२२१।१) इन दोनो स्थानो पर भी उपरोक्त बात का पोषण किया गया है ।)

अर्थ—जो कुछ भी है वह सग्रह व व्यवहार अर्थात अभेद व भेद ऐसे दो पने को उल्लघन करके नही वतता । असग्रह व व्यवहार इन दोनो नयो की परस्पर विभिन्नता को उभय रूप से अर्थात अभेद करके विषय करने वाला नगम नय है । अभिप्राय यह है कि जो शब्द, शील, कम, काय, कारण, आधार, आधेय, भूत, वतमान, भविष्यत, मेय व उन्मेय, आदि विकल्पो को आश्रय करके रहने वाले उपचार से उन्नत होने वाला है, वह नैगम नय कहा जाता है ।

२ ध ।१२।२६५ २६६।सू० २ ३ "नैगम और व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावर्णीय (आदि अष्ट कर्मों) की वेदना जीव के होती है ।२। कथञ्चित वह नो जीव (पुग्दल कम) के होती है ।३।"

(**अर्थ**—यहाँ जीव व कर्मों म निमित्त नैमित्तिक भाव देखकर कर्मों की वदना या कर्मो का अनुभव जीव को होना स्वीकार किया गया है । वास्तव में तो उनके निमित्त से होने वाली ज्ञान में हानि वृद्धि की वेदना ही जीव को होती है, कर्मो की नही । यह नैगम नय की स्थलता है कि निमित्त की वेदना उपादान म बतादी गई।)

३ क० पा०।१।२५७।२६७।८ "नैगम नय की अपेक्षा कारण म काय या सदभाव स्वीकार किया जाता है ।

इस प्रकार नैगम नय के छहा सामान्य लक्षणो सम्बन्धी आगम कथित उद्धरण बता दिये गये । लक्षण व उदाहरण पहिले

ही वता दिये जा चुके है । विचार करने से पता चलता है कि यह सव के सव नाम मात्र को ही पृथक पृथक लक्षण है । वास्तव मे तो द्वैत मे अद्वैत देखना ही इसका एकमात्र लक्षण है । अव इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये ।

वस्तु के अखण्ड पिण्ड मे पड़े हुए उस ही के वस्तु भूत अगो के आधार पर दीखने वाला द्वैत या अनेकपना ही इस नयकी उत्पत्ति का कारण है । क्योकि यदि वस्तु मे यह द्वैत सर्वथा न हुआ होता तो इस प्रकार के द्वैत का सकल्प होना भी असम्भव था ।

प्रयोजन है अभेद का विश्लेषण करके भेद द्वारा अभेद का परिचय देना । अनिष्णात श्रोता को ऐसा द्वैत उत्पन्न किये विना वस्तु के अद्वेत का परिचय देना असम्भव है (स० म० ।२०२।१।१४) मे कहा है कि –

"अभेद मात्र का ज्ञान कराने वाला सामान्य धर्म तो अन्य है तथा विशेष रूप धर्म कुछ (उस से) जुदा है, ऐसा ज्ञान नैगम नय के द्वारा होता है ।"

२. नैगम नय के भेद प्रभेद

नैगम नय वहुत व्यापक नय है । अत. इसकी व्यापकता को दर्शाने के लिये इस नय का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है । इसका विपय द्रव्य, गुण व पर्याय तीनो है । जाति व व्यक्ति, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य, शुद्ध व अशुद्ध पर्याय, स्थूल व सूक्ष्म पर्याय, अर्थ व व्यञ्जन पर्याय सव कुछ इस नय के पेट मे समाया हुआ है । अतः विपय की अपेक्षा इसके अनेको भेद प्रभेद हो जाते है जो निम्न चार्ट मे दर्शाये गये है ।

यद्यपि अर्थ व व्यञ्जन पर्याय नैगम के भी शुद्ध व अशुद्ध रूप से ग्रहण करने पर दो दो भेद हो जाते है। परन्तु उनके लक्षण सामान्य अर्थ व व्यञ्जन पर्याय नैगम में ही गर्भित हो जाते है, अत यहा उनका पृथक ग्रहण नही किया है। इन सब भेदो के अब क्रम से लक्षण आदि दर्शाये जायेंगे। पहिले काल सूचक भूत, वर्तमान व भावि नैगम का स्वरूप देखिये।

३ भूत वर्तमान व भावि नैगम

यहा तक द्रव्य का विश्लेषण उसके अनेक सहवर्ती व क्रमवर्ती अगो के आधार पर अर्थात गुणो व पर्यायो के आधार पर कर करके, उनके अखण्डत्व का परिचय दिलाने के लिये, आगम पद्धति कथित शास्त्रीय सात नयो का निर्देश

ही बता दिये जा चुके है । विचार करने से पता चलता है कि यह सब के सब नाम मात्र को ही पृथक पृथक लक्षण है । वास्तव मे तो द्वैत मे अद्वैत देखना ही इसका एकमात्र लक्षण है । अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये ।

वस्तु के अखण्ड पिण्ड मे पड़े हुए उस ही के वस्तु भूत अगो के आधार पर दीखने वालाद्वैत या अनेकपना ही इस नयकी उत्पत्ति का कारण है । क्योकि यदि वस्तु मे यह द्वैत सर्वथा न हुआ होता तो इस प्रकार के द्वैत का सकल्प होना भी असम्भव था ।

प्रयोजन है अभेद का विश्लेपण करके भेद द्वारा अभेद का परिचय देना । अनिष्णात श्रोता को ऐसा द्वैत उत्पन्न किये बिना वस्तु के अद्वैत का परिचय देना असम्भव है (स० म० ।२०२।१।१४) मे कहा है कि –

"अभेद मात्र का ज्ञान कराने वाला सामान्य धर्म तो अन्य है तथा विशेष रूप धर्म कुछ (उस से) जुदा है, ऐसा ज्ञान नैगम नय के द्वारा होता है ।"

२. नैगम नय के भेद प्रभेद

नैगम नय बहुत व्यापक नय है । अत. इसकी व्यापकता को दर्शाने के लिये इस नय का विश्लेपण करना अत्यन्त आवश्यक है । इसका विषय द्रव्य, गुण व पर्याय तीनो है । जाति व व्यक्ति, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य, शुद्ध व अशुद्ध पर्याय, स्थूल व सूक्ष्म पर्याय, अर्थ व व्यञ्जन पर्याय सब कुछ इस नय के पेट मे समाया हुआ है । अतः विषय की अपेक्षा इसके अनेको भेद प्रभेद हो जाते है जो निम्न चार्ट मे दर्शाये गये है ।
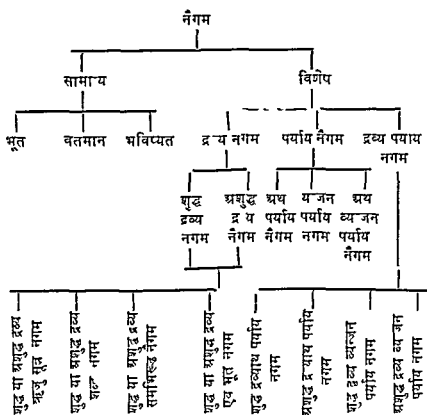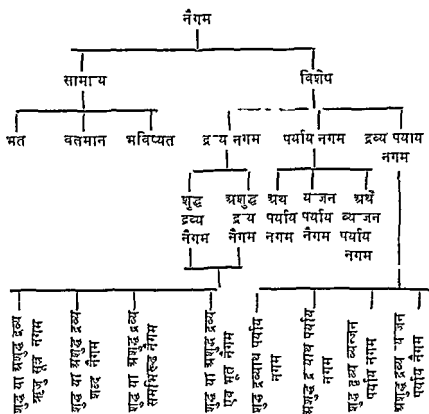
यद्यपि अथ व व्यञ्जन पर्याय नगम के भी शुद्ध व अशुद्ध रूप से ग्रहण करने पर दो दो भेद हो जाते ह । परन्तु उनके लक्षण सामान्य अथ व व्यञ्जन पर्याय नगम में ही गर्भित हो जाते ह, अत यहा उनका पृथक ग्रहण नही किया है। इन सब भेदो के अब क्रम से लक्षण आदि दर्शाये जायेंगे । पहिले काल सूचक भत, वतमान व भावि नगम का स्वरूप देखिये ।

३ भूत वतमान व भावि नगम

यहा तक द्रव्य का विश्लेषण उसके अनेक सहवर्ती व क्रमवर्ती अगो के आधार पर अर्थात गुणो व पयायो के आधार पर कर करके, उनके अखण्डत्व का परिचय दिलाने के लिये, आगम पद्धति कथित शास्त्रीय सात नयो का निर्देश

किया जा चुका है । अब आगे पीछे की पर्यायों मे कथचित एकत्व दर्शाने के लिये, नैगम नय के कालकृत भेदो का विस्तार करने मे आता है । जैसाकि पहिले बताया जा चुका है, नय प्रमाण-ज्ञान के अश का नाम है । प्रमाण-ज्ञान में और वस्तु में कुछ अन्तर है । वह यह कि वस्तु का विश्लेपण करने पर तो उसके सारे गुण तथा उन सब गुणो की उस समय वर्ती एक एक पर्याय ही किसी एक समय मे उपलब्ध होती है, परन्तु प्रमाण ज्ञान का विश्लेपण करने पर उस वस्तु के सम्पूर्ण गुण तथा उनकी त्रिकाल वर्ती सर्व पर्यायि किसी भी एक समय मे उपलब्ध हो जाती है । कारण है यह कि वस्तु मे सारे गुण तो हर समय रहते हैं पर सारी पर्यायें हर समय नही रहती, एक समय मे एक ही पर्याय रहती है, जबकि ज्ञान मे हर समय त्रिकाली पर्यायो का चित्रण पड़ा रहता है ।

वस्तु मे तो पर्याय आगे पीछे होती है, पर ज्ञान के चित्रण मे सर्व पर्याय युगपत पडी हुई हैं । वस्तु मे वर्तमान की एक पर्याय ही दिखाई देती है इसलिये वही सत् है और भूत व भविष्य की पर्याय विनष्ट व अनुत्पन्न होने के कारण असत् है, परन्तु ज्ञान मे एक ही समय मे भूत वर्तमान व भविष्यत की सर्व पर्याये टकोत्कीर्णवत् पडी हुई होने के कारण वहां न कोई पर्याय विनष्ट होती है और न कोई अनुत्पन्न है, बल्कि वहा तो सब की सब वर्तमान है, और इसीलिये वहा सर्व पर्यायै सत् ही है असत् एक भी नही । वस्तु मे काल कृत भेद के कारण पर्यायें बदलती दिखाई देती है परन्तु ज्ञान मे कुछ भी परिवर्तन होता दिखाई नही देता । जहा सर्व ही पर्याये सत् है वहा परिवर्तन किस बात का ? वस्तु मैं ही भूत वर्तमान व भविष्यत का विकल्प है, ज्ञान मे नहीं, वहा तो सब कुछ वर्तमान ही है, भूतकाल की पर्याय भी वहा वर्तमान है और भविष्यत की भी वर्तमान है । भले वस्तु की अपेक्षा लेकर ज्ञान मे पडी पर्यायो पर भूत व भविष्यत की मोहर लगा दे पर वहा तो भूत व भविष्यत कोई वस्तु ही नही ।

प्रमाण ज्ञान के लघुभ्राता भेद व अभेद ग्राही इस नैगम नय की ओर लखाने पर किसी भी पर्याय के रूप में वस्तु को वतमान में ही देखा व कहा जा सकता है ।

अथवा नैगम नय ज्ञान नय है, जिसका काम केवल कल्पना करना है । यह आवश्यक नही कि कल्पना सद्भूत पदाथ का ही विषय करे । सद्भूत व असद्भूत सब ही पदाथ कल्पना के विषय बन सकते हैं । भले ही वतमान मे भूत या भविष्यत पयाय असत् हो, पर क्या कल्पना पर भी यह प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है, कि वह दृष्ट ही पर्याय को ग्रहण करे अदृष्ट को नही ? कल्पना तो वतमान में ही एक भिखारी को राजा और राजा को भिखारी बना सकती है, पवत को आकाश मे उडा सकती है और सागर को पवत के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकती है । उसके लिये कुछ भी असत् व असम्भव नही । अत वतमान पदार्थ मे झूठी या सच्ची भावि पर्याय का सकल्प करना अथवा वतमान पदाथ में भूत पर्याय का साक्षात्कार करना आदि सब कुछ अत्यन्त सहल है । इसी प्रकार किसी अध निष्पन्न पर्याय में पूर्ण निष्पन्न का सकल्प करना भी सम्भव है । उपरोक्त सकल्पो के आधार पर ही इस ज्ञान नय के भूत, भविष्य वतमान ऐसे तीन भेद हो जाते है जिन का पृथक पथक कथन आगे किया जायेगा ।

(१) भूत नैगम नय—

ज्ञान मे सकल्प द्वारा वतमान पदाथ को भुत कालीन पयाय के रूप में देखना भूत नैगम नय कहलाता है । ऐसा कहते हुए भूतकालीन क्रिया (Tense) का प्रयोग करने म नही आता बल्कि वतमान काल सूचक ही प्रयोग किया जाता है, क्योकि ज्ञान में वस्तु उस पर्याय के साथ तन्मय रूप से वतमान ही दीख रही है ।

किसी व्यक्ति का भोला पना देखकर कदाचित यह कह दिया जाता है कि 'तू तो अभी बच्चा ही है' । वाक्य मे उसे बच्चा कह दिया गया है, यद्यपि वर्तमान में तो वह बच्चा नही बल्कि कई बच्चो का पिता है । फिर भी प्रयोजन वश उसे यहा बच्चा कह दिया गया है । सो ऐसा सुनकर भ्रम मे पड़ने की आवश्यकता नही । उसका भोला पना छुड़ाकर उसे चतुर बनाना अभीष्ट है, ऐसे प्रयोजन जान कर जिस प्रकार इस वाक्य का ठीक ठीक अर्थ आप समझ जाते है और भ्रम मे नही पडते, उसी प्रकार इस अध्यात्म मार्ग मे कदाचित इस प्रकार के वाक्य का प्रयोग करने मे आये तो भ्रम में पड़ना नही चाहिये, बल्कि उस नय के प्रयोजन को जानकर ठीक ठीक अर्थ का ग्रहण कर लेना चाहिये ।

इसी प्रकार किसी ऐसे व्यक्ति को जो पहिले आपके यहा नौकरी करता था पर पुण्योदय से आज धनवान बन गया है, आप कदाचित यह कह देते है कि तू वही मेरा पहिले वाला नौकर ही तो है । यहां भी आप भूत कालीन क्रिया का प्रयोग न करके अर्थात 'नौकर था' ऐसा न कहकर 'नौकर है' ऐसा वर्तमान कालीन प्रयोग करते हो । आज नौकर नही है, फिर भी 'नौकर है' ऐसा कहने मे आपका कुछ प्रयोजन है । या तो आप अपने अभिमान वश उसे नीचा दिखाना चाहते हो, या उसका गर्व तुडाकर उसमे सरलता लाना चाहते हो । और यथा अवसर वाक्य मे न कहा गया भी वह अभिप्राय आप पढ लेते हो, यह शका नही करते कि वर्तमान मे तो यह धन-वान है, इसे 'नौकर है' ऐसा क्यो कहते हो, 'नौकर था' ऐसा कहिये । नौकर वाली पूर्व पर्याय और धनिक वाली वर्तमान पर्याय एक ही व्यक्ति मे जड़ी हुई होने के कारण उपरोक्त संकल्प मिथ्या नही कहा जा सकता ।

इसी प्रकार अध्यात्म मार्ग मे भी सिद्ध प्रभु को ससारी तथा भगवान वीर को भील कहा जा सकता है । अथवा 'आज दीवाली के

दिन भगवान वीर को निर्वाण हुआ है' ऐसा भी कदाचित कहने में आ मकता है। वास्तव मे तो निर्वाण आज नही हुआ है बल्कि पहिल हुआ था, फिर भी 'हुआ है' ऐसा वतमान कालीन प्रयोग प्रयोजन वश किया जा सकता है। दीवार पर खिचा हुआ भगवान वीर के पूव भव का चित्र दिखाते हुए आप अनेकी वार यह कहते सुने जाते हो कि, 'देखो, पहिचानत हो यह कौन है ? यह भगवान वीर है।' यह वात सुनकर किसी अनभिज्ञ को यह सन्देह हो सकता है कि, 'क्या भगवान वीर इमी भील का नाम है ? यदि ऐसा है तो आज से उनकी पूजा करना वन्द कर देता हू।' परन्तु ऐसा सशय करना याग्य नही, और न ही होना सम्भव है यदि भत नैगम नय के प्रयोजन, से परिचय हो तो।

यद्यपि वाक्य मे भूत कालीन क्रिया का प्रयोग न करके वतमान कालीन क्रिया का प्रयोग किया है, पर इमका अर्थ यही है कि यह भगवान वीर का वीता हुआ जीवन है वत-मान का नही। इस भूत कालीन जीवन या चित्रण को दशाने का प्रयाजन यही है कि प्राणियो में पडी पामरता दूर हो जाये और वह यह समझने लगे, कि जब वह ऐसी निकृष्ट अवस्था को उल्लघन करके भगवान बन गये तो म क्यो न वन सकूगा। ऐसा प्रयोजन पकड लिया जाये तो भगवान को वतमान में ससारी या अपराधी वताना भी अनुचित न होगा, परन्तु इस प्रयोजन का पकड बिना तो उपरोक्त वाक्य बोलना महान अनथ का कारण वन जायेगा, क्योकि वास्तव में भगवान वतमान मे अपराधी नही है।

इस प्रकार भूत कालीन पर्याय में वतमान का सकल्प करना भत नैगम नय का लक्षण है। उदाहरण ऊपर कहे जा चुके। अव इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगम कथित उद्धरण देने म आते ह।

वहा विनष्ट पर्याय को वर्तमान के साथ जोडने का सकल्प किया गया था और यहा अनुत्पन्न पर्याय को । यह तो इस नय का लक्षण हुआ अब उदाहरण सुनिये ।

किसी एक ऐसे वालक को देखकर जो कि स्कूल मे वहुत होशियार है और सदा परीक्षा मे अव्वल आता है तथा जो कई वार दो दो कक्षा की परीक्षाये एक साथ दे चुका है और वडी वुद्धिमानी की वाते करता है, आप सहसा ही यह कह वैठते है कि "भाई ! यह तो कोई वड़ा आदमी है ।" यद्यपि है नहीं पर भविष्यत मे वनने की सम्भावना है, फिर भी 'है' या "हो चुका है" ऐसा कह दिया जाता है । प्रयोजन है उसको शावाश दे कर उसका उत्साह वढ़ाने का, और कारण है उसकी वर्तमान योग्यता को देखकर उस का 'भविष्य' ज्ञान मे आ जाना । यद्यपि यहाँ यह निश्चय नही है कि वह वडा आदमी ही वनेगा या कि भीख माँगेगा, परन्तु यदि इसी प्रकार वृद्धि करता रहा तो इसका भविष्य उज्जवल होना निश्चित ही है, इसी सकल्प के कारण ऐसा कह दिया गया है ।

इसी प्रकार अध्यात्म मार्ग मे किसी नव जात साधक को "तू तो भगवान ही है या अपने को भगवान हो गया ही समझ" ऐसा कहा जा सकता है । यद्यपि अभी तो गृहस्थ है, कोई निश्चय नहीं की साधना मे आगे वढेगा भी या नही, या कदाचित साधना को छोड़ ही बैठेगा, परन्तु ख्याल मे धुन्धला सा कल्पित निश्चय करके उसके आधार पर उसे वर्तमान मे भगवान कहा जा रहा है । "भगवान वन जायेगा" ऐसा भावि कालीन क्रिया का प्रयोग न करके "भगवान हो चुका है" ऐसा भूत निष्पन्न काल सम्बन्धी ही प्रयोग कर दिया गया है, जो आप के चित्त मे कदाचित भ्रम उत्पन्न कर सकता है, परन्तु प्रयोजन को समझ लेने पर ऐसा होना असम्भव है । यहां " भगवान हो गया है" ऐसा कहने का प्रयोजन नही है, बल्कि "यदि

साधना करता रहा तो भगवान हो जाने का निश्चय है" ऐसा दर्शाना अभीष्ट है। साधना की महिमा बताकर उसे उत्साह प्रदान करने का प्रयोजन है, और विचारणा म रहनेवाला उपरोक्त निश्चय इसका कारण है। ऐसे इस नय के उदाहरण हुए।

अनिष्पन्न या अन हुए व अनिश्चित का वतमान में निश्चित रूप से निष्पन्न मानने का सकल्प करना भावि नगम नय का लक्षण है। अब इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगम कथित उद्धरण सुनिये।

१ वृ न च ।२०७ "निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदाथ नरोऽनिष्पन्नम्। अप्रस्थे यथा प्रस्थो भण्यते स भावि नैगम इति नय ।२०८।'

(अर्थ – अनिष्पन्न भावि पदाथ को निष्पन्न वत कल्पना करना भावि नैगम नय है। जैसे कि कुल्हाडी लेकर जात हुए किसी मनुष्य से पूछने पर वह कह देता है कि प्रस्थ लेने जाता हूँ। यहा परस्थ पर्याय अभी बनी नहीं, फिर भी केवल सकल्प क आधार पर उसे बनी हुई वत ही स्वीकार कर लिया गया है।

२ नय चक्र गद्य पृ १२ "चित्तस्य पदनिवृत्त प्रस्थक प्रस्थकयथा। भाविनो भूतवद्भूते नगमोऽनागतो मत ।३।"

"भाविकाले परिणामित्यतोऽनिष्पन्न क्रिया विशेषान वतमान काले निष्पन्ना इतिकथन भावि नैगम ।'

अर्थ – जैसे निष्पन्न होने वाले अनिष्पन्न प्रस्थक को निष्पन्न कह दिया जाता है उसी प्रकार ध्यानस्थ मुनि को मुक्त

कहना, और इसी प्रकार भविष्य मे निष्पन्न होने वाले कार्य को भूतकाल मे निष्पन्न हो गये वत स्वीकार करने वाला भावि नैगम नय है ।३। भविष्यत काल मे परिणमेगी ऐसी अनिष्पन्न क्रिया विशेष को वर्तमान काल मे निष्पन्न कह देना भावि नैगम नय है ।)

३. आ पा.।६। पृ. ७६ "भाविनि भूतवत्कथन यत्र स भावि नैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव।"

(अर्थ– भावि काल को जहा भूतवत कहने में आये सो भावि नैगम नय है जैसे–'अर्हन्त भगवान सिद्ध ही हैं' ऐसा कहना ।)

४. ध ।७।गा १।२८ "किसी मनुष्य को पापी लोगो का समागम करते हुए देख कर नैगम नय से कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है ।")

अर्थ– यद्यपि अभी नारकी नही है परन्तु भविष्य मे नारकी हो जाने का निश्चय अवश्य है । इस निश्चय के आधार पर उसे वर्तमान मे ही नारकी कह देना भावि नैगम नय से न्याय संगत है ।)

५ ध ।१३।३०३।३१"भूत व भविष्यत पर्यायों को वर्तमान रूप स्वीकार कर लेने से नैगम नय मे यह व्युत्पत्ति बैठ जाती है ।"

६ स सि.।७।१६।५३-५४ "शका:–अगारिणो असकल व्रतत्वात् व्रतित्वम् न प्राप्नोति ?

उत्तर – नैप दोप, नैगमादिनयापेक्षया अगारिणोऽपि व्रतत्वम् नगरावासवत् व्रतत्वयुपपद्यते। यथा गृहे अपवरके वा वसन्नीय नगरावास, इत्युच्यते तथा असक्ल व्रतोऽपि नैगम सग्रह् व्यवहार नयापेक्षया व्रतीति व्यप दिश्यते।'

(अर्थ – शका है कि अपूण व्रत होने के कारण गृहस्थी को व्रती पना कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसके उत्तर मे कहते ह कि इसमें कोई दोप नही, क्योकि नगम सग्रह व व्यवहार नयो की अपेक्षा से गहस्थी को भी व्रतीपना है। उदाहरणाय जैसे घर मे रहने वाले को नगर म रहता है इस प्रकार कह दिया जाता है उसी प्रकार अपूण व्रत होते हुए भी व्रती व्यपदेश बन जाता है।)

७ व द्र स।१४।४८ "वहिरात्मावस्थायामन्तरात्मपरमात्मद्वय शक्ति रूपेण, भावि नगमनयेन व्यक्ति रूपेण च विज्ञेयम् अन्तरात्मावस्थाया तु परमात्मस्वरूप तु शक्तिरूपेण भावि नगमनयेन व्यक्तिरूपेण च।'

अर्थ– वहिरात्मा रूप अवस्था में अन्तरात्मपना व परमात्मा पना दोनो शक्ति रूप से तो निस्सन्देह स्वीकारनीय ह ही परन्तु भावि नगम-नय से तो वे व्यक्ति रूप से भी वहा विद्यमान है। और इसी प्रकार अन्तरात्मा रूप अवस्था में भी परमात्म स्वरूप यद्यपि शक्ति रूप मे तो है ही, परन्तु भावि नगम नय से भी वहा है। इस प्रकार भावि काल में भूत काल का सकल्प भावि नगम नय मे कर लिया जाता है।)

८ प ध्र।३०।६२१ तेभ्योऽर्गगपिद्धस्यस्पास्तद्रूपधारिण। गुरव स्युगु रोन्यायान्नान्याऽवस्याविशेपभाव।६२१।

अर्थः- देव होने से पहिले भी, छद्मस्थ रूप मे विद्यमान मुनि को देव रूप का धारी होने करि गुरु कह दिया जाता है। वास्तव मे तो देव ही गुरु है। ऐसा भावि नैगम नय से ही कहा जा सकता है। अन्य अवस्था विशेष मे तो किसी भी प्रकार गुरु संज्ञा घटित होती नही।)

इस प्रकार सर्वत्र भाविकाल मे होने वाले कार्य को वर्तमान मे या भूतकाल मे हो गया वत् कहा जा सकता है। परन्तु यत्र तत्र विवेक शून्य इस नय का प्रयोग करके जिस किसी को भी साधक या भगवान आदि कह देना योग्य नही। क्योकि ऐसा करने से प्रयोजन की सिद्धि होने की वजाये उल्टा ही फल कदाचित हो सकना सम्भव है। जैसे कि ज्ञान शून्य धार्मिक क्रियाये करने वाले को वर्तमान मे ऐसा कहना योग्य नही कि मेरी यह व्यवहारिक क्रियाये भावि नैगम नय से परम्परा मोक्ष का कारण है, क्योंकि ज्ञान शून्य उन क्रियाओ मे मोक्ष की साधक शक्ति का अभाव है। अत भावि नैगम नय का प्रयोग वहां ही करने मे आता है जहा कि भविष्यत कालीन कार्य का कोई अश वर्तमान मे प्रगट हो चुका हो, या भविष्यत मे वैसा फल होने का निश्चित हो गया हो। निश्चय अर्थ मे ही भावि नैगम का प्रयोग होता है जैसा कि निम्न उद्धरणों से प्रगट है।

१. ध।१।१८।१४ **शंका** – अक्षपकानुपशयकानां कथं तद्- (क्षायिक औपशमिकभावाना) व्यपदेशश्न्चेत ?

उत्तर — न, भाविनि भूत वदुपचारतस्तत्सिद्धे

शंका - सत्येवमति प्रसङ्ग स्यादिति चेत् ?

उत्तरः-- न, असति प्रतिबन्धरि मरणे नियमेन चारित्र मोह क्षपणोपशमकारिणां तन्दुन्मुखानामुपचार भाजामुप लम्भात्।

(ध ।५। २०६)

अर्थ – शका है कि आठवे, नवे व दसवें गुण स्थान में न ता कर्मो का क्षय है और न उपशम, फिर भी वहा क्षायिक व औपशमिक भावो का सद्भाव कैसे स्वीकार करते हो ? उत्तर में कहा कि भावि काल में भूत का उपचार करके अर्थात भावि नैगम नय से उन भावो की सिद्धि वहा हो जाती है । इस पर शका कार कहता है कि ऐसा करने से ता अति प्रसग दोष आ जायेगा, क्योकि भावि नैगम नय से तो जिस किसी भी जीव को क्षपक या उपशामक कहा जा सकता ह ? उत्तर में आचाय प्रवर कहते ह कि ऐसा नही है, क्योकि हम जिस जीव में उन भावों का सद्भाव बता रहे है वह जीव निश्चय से उन भावो को स्पश करेगा ही, यदि बाधक कम का उदय या मृत्यु न आये तो । इसी कारण नियम से चरित्र मोह का क्षपण व उपशमन करने वाले या ऐसा करने के उ मुख जीवो में क्षायिक व औपशमिक भावो की कथञ्चित उपलब्धि हो जाती है, अन्य जीवो में नहीं ।)

२ ध ।५।२०६।८ शका –इस प्रकार सवत्र उपचार का आश्रय करने पर अति प्रसग दोष क्यो नही प्राप्त होगा ?

उत्तर —नही, क्योकि प्रत्यासत्ति अर्थात समीपवर्ती (निश्चित) अथ के प्रसग से अति प्रसग दोष का प्रतिषेध हो जाता है ।

३ बृ द्र स ।१४।४८ "अभव्य जीवे अन्तरात्म परमात्म द्वये शक्ति रूपेणव न च भावि नगम नयेति ।"

(अर्थ--अभव्य जीव मे तो अन्तरात्मा परमात्मा पना केवल शक्ति रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है पर व्यक्ति रूप से तो भावि नैगम नय से भी कदापि स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि वहा उस की व्यक्ति का असम्भव पना है।)

इस प्रकार इस नय के लक्षण, उदाहरण व उद्धरण तो कह दिये गये। इस नय को उत्तर प्रज्ञापन नय तथा भावि संज्ञा व्यवहार भी कदाचित कहने मे आता है। अब इस के कारण व प्रयोजन सुनिये ।

ज्ञान की वर्तमान कल्पना मे किसी पदार्थ के भविष्य का साक्षात निश्चय होना इस नय का कारण है। और व्यक्ति या साधक को उसके पुरुषार्थ के लिये शाबाश दे कर उसे उत्साह प्रदान करना इस नय का प्रयोजन है ।

(२) वर्तमान नैगम नय –

भावि नैगम वत् वर्तमान नैगम मे भी अनिष्पन्न या अपूर्ण कार्य को निष्पन्न या पूर्ण वत् स्वीकार किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि वहा तो कार्य की निष्पत्ति कुछ दूर है और यहां अत्यन्त निकट। वहा तो कार्य की निष्पत्ति मे अनेको बाधाये आनी सम्भव है और यहा ऐसी कोई बाधा का आना ख्याल मे नही आता। वहा तो कार्य की निष्पत्ति मे उपरोक्त कारणो से कुछ सन्देह पडा रहता है और यहा निश्चय दृढ़ होता है। यद्यपि वर्तमान काल सम्बन्धी भी अर्ध निष्पन्न कार्य की निष्पत्ति, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तो भविष्यत मे ही पड़ी है पर फिर भी यह भावि काल बहुत छोटा होने के कारण स्थूल दृष्टि से वर्तमान संज्ञा को प्राप्त हो जाता है। इसीलिये इसे

भावि नैगम न कह कर वर्तमान नैगम कहा गया है। अर्थात वर्तमान के अनिष्पन्न कार्य को भूतवत् कहना वर्तमान नैगम है।

उदाहरणार्थ कल्पना कीजिये कि आप ने चुल्हे पर चावल पकने को चढाये हैं। अतिथि को भोजन कराना है जब तक उन चावलो मे एक उबाल नही आ जाता तब तक उनका पकना कुछ दूर दिखाई देता है और इसीलिये उतने समय तक अतिथि को पाक शाला में बुलाने का साहस आप को नही हो पाता। क्योंकि यद्यपि उन के शीघ्र ही पक जाने का अनुमान है पर निश्चय नहीं कि कितनी देर लगेगी। या यह कहिये कि पकेगें तो अवश्य परन्तु कुछ अधिक देर लगेगी, और अतिथि को प्रतीक्षा में खाली बैठाना शोभा नही देता। इसलिये उस समय तक तो पूछने पर भी आप यही उत्तर देते हैं कि "बस अभी पक जाते है थोडी देर पुस्तक पढिये"।

परन्तु जब उबाल आजाने के पश्चात उन्हें सीजने के लिये नीचे कोयलो पर रख दिया जाये तब तो आप पूरे विश्वास के साथ अतिथि को पाक शाला में ले आते हो और यही कहते हो कि "पधारिये खाना तयार है"। ऊपर तो "अभी पक जाते है" और यह यहा "तैयार है", ऐसें दोनो में ही प्रयोगो में यद्यपि वर्तमान काल मे तैयारी की सूचना है, परन्तु दोना में कुछ अन्तर है। पहिले प्रयोग में अनिश्चय व कुछ देरी की सूचना और दूसरे प्रयोग में पूर्ण निश्चय व पूर्ण निष्पत्ति की सूचना है।

यद्यपि दूसरे प्रयोग के समय भी चावल पूर्ण रीतय पके नही, पर इस विश्वास पर कि आसन ग्रहण करते तथा कुल्ला आदि करते करते वे अवश्य तयार हो जाने वाले है। परोसने मे देर करनी न पडेगी, आप उन्हें पके वत् ही समझ रहे हैं। बस पहिला प्रयोग भावि नैगम नय का समझिये और दूसरा प्रयोग वर्तमान नैगम का।

इस प्रकार दोनो में दूर भविष्य व निकट भविष्य का ही अन्तर है।

सिद्धान्तिक रुप से विचारने पर तो दूर भविष्य या निकट भविष्य दोनो भविष्य ही है। एक क्षण पीछे वाला समय भी वास्तव में भविष्य ही है और इसलिये इसे भी वर्तमान नैगम न कह कर भावि नैगम ही कहना चाहिये, परन्तु स्थूल व्यवहार मे निकट भविष्य वर्तमान रूप से ही ग्रहण करने मे आता है। जैसे "जो कल करना सो आज कर और जो आज करना सो अब कर" इस वाक्य मे 'कल' की अपेक्षा 'आज का सारा दिन' वर्तमान रुप से ग्रहण किया है और 'आज' की अपेक्षा 'अब' अधिक वर्तमान रुप से। 'अब' की अपेक्षा 'आज' का शेष समय भविष्यत मे पड़ा है और 'आज' की अपेक्षा 'कल' का सारा समय भविष्य मे पड़ा है। इसी प्रकार जू जू निकटता आती जाती है तू तू उस भविष्यत काल मे वर्तमान पने का सकल्प होता चला जाता है।

इसलिये निकट भविष्य मे निष्पन्न होने के निश्चय वाले कार्य के संकल्प को वर्तमान नैगम नय कहते है, और दूर भविष्य मे निष्पन्न होने वाले कार्य के संकल्प को भावि नैगम कहते है। यही दोनो मे अन्तर है। सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर तो वर्तमान नैगम भी भावि नैगम ही है।

अध्यात्म दिशा मे भी उदाहरणार्थ उपरोक्त प्रकार ही आप किसी ऐसे प्रगति शील साधक को देख कर जो बराबर अधिकाधिक उत्साह के साथ आगे बढ़ता जा रहा है—अर्थात गृहस्थ से श्रावक होता है, वहा भी कुछ कुछ महीनो या वर्ष पश्चात् ऊपर ऊपर की प्रतिमाये धारण करते हुए मुनि बन जाता है, या मुनि बनने की अतीव जिज्ञासा रखते हुअे मुनि बनने के उन्मुख हो जाता है। बराबर अपनी

हीनता को धिक्कारता हुआ आगे बढने के लिये वल लगा रहा है, वाहर से मुनि भले न वन सका हो पर अतरङ्ग से मुनि वत ही ध्यान आदि की साधना करता हुआ वरावर वैराग्य की ओर बढ रहा है। ऐसे किसी प्रगति शील साधक को या किसी सामान्य मुनिराज को या किसी ध्यानस्थ मुनि को वतमान में ही आप सिद्ध कह सकते हैं।

"अरे ! यह साधु नही है साक्षात प्रभु ही ह" ऐसा निश्चय पूवक वाक्य बोला जा सकता है। यद्यपि साधु ही है परन्तु "साधु नही है" ऐसा कहना, और प्रभु हुए नही फिर भी "प्रभु ही ह" ऐसा कहना विरोध को प्राप्त होता है। परन्तु निकट भविष्य में उन का प्रभु वन जाने के सम्बन्ध में हृदय निश्चय ऐसा कहने में कोई विरोध नही आने देता। वाक्य का अथ अनुक्त रूप में भी स्वत आप को ऐसा भास जाता है कि, "प्रभु नही है, साधु ही ह, पर निकट में ही प्रभु वन जाने का निश्चय ह"। इसे ही वतमान नैगम नय कहते है, जो भावि नैगम नय वत् होते हुते हुए भी उससे पृथक् है।

उपरोक्त उदाहरणो पर से इस नय का लक्षण वना लीजिये। निष्पत्ति के निकट पहुचे हुए वतमान के अनिष्पन्न या अध निष्पन्न काय को पूण निष्पन्न दर्शाने का सकल्प करना वतमान नैगम है। अव इस लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१ वृह न च । २०८ तथा भा प । ६ । पृ ७८ "प्रारब्धा या क्रिया पचनविधानादि कथयति य सिद्धा। लोकेषु पृच्छ्यमानो भण्यते स वतमान नय ।२०८।

"वतु मारब्धमीपन्निष्पन्नमनिष्पन्न या वस्तु निष्पन्न न रूप्यते तत्र स वतमान नेगमो यथा ओदन पच्यत"

(अर्थ- जो क्रिया प्रारम्भ कर दी गई है—जैसा कि भात आदि पाचन विधि को प्रारम्भ करके भात पक गये है इस प्रकार, उस कार्य को सिद्ध हो गया हुआ ही लोक में पूछने पर जो कह देना, सो वर्तमान नैगम नय है। २०८।

करना प्रारम्भ कर दिया है पर अभी पूरा नही हुआ है, ऐसा अर्व निप्पन्न या अनिप्पन्न कोई कार्य या वस्तु निष्पन्न वत् कह दी जाती है—जैसे "भात पकता है" ऐसा कहना सो वर्तमान नैगम है।)

२ नय चक्र गद्य पृ. १२ "अनिप्पन्न क्रिया रुप निष्पन्न गदति स्फुट ।
नैगमो वर्तमान. स्यादोदन पच्यते यथा ।२ ।"
"वर्तमान काले परिणमतोऽनिप्पन्न क्रिया विशेपान् वर्तमान काले निष्पन्न वत् कथनं वर्तमान नैगमः ।"

(अर्थ- अनिप्पन्न क्रिया को स्पप्ट रुप से निष्पन्न कह देना वर्तमान नैगम है—जैसे "भात पकता है" ऐसा कहना ।२। वर्तमान काल मे परिणमन करने वाले परन्तु अनिप्पन्न कार्य विशेप को वर्तमान मे निष्पन्न वत् कहना वर्तमान नैगम है ।)

यह इस नय के उद्धरण हुए, अव इस के कारण व प्रयोजन देखिये । कल्पना द्वारा किया गया निप्पत्ति का निर्णय तो इस का कारण है, और साधक के प्रति वहुमान उत्पन्न करके स्वय अपने जीवन को कुछ प्रेरणा देना अथवा साधक को उत्साह प्रदान करना इस नय का प्रयोजन है ।

इस प्रकार नैगम नय के काल कृत भेदों का निरुपण करके यह सिद्ध कर दिया गया कि त्रिकाल वर्ती पर्यायों मे से कोई भी एक

पर्याय का वतमान मे सकल्प करना नैगम नय है । अब आगे इस नय के द्रव्याथिक व पर्यायाथिक रूप भेदो का निरूपण करने म आयेगा । गौर से सुनना ।

४ द्रव्य नगम नय

काल सूचक नैगम के भेदो का कथन हो चुका । अब इसके धम धर्मी के द्वैत रूप भेदो का कथन करना चाहिये । द्रव्य, गुण व पर्याय तीनो को ही द्वैत रूप से युगपत गहण करने वाले इस व्यापक नय को तीन प्रमुख भेदो में विभाजित किया गया है–

१ दो धार्मियो में एकता का सकल्प

२ दो धर्मों में एकता का सकल्प

३ धम व धर्मी में एकता का सकल्प

इन्ही तीनो को विशेष स्पष्ट करने के लिये इनके निम्न प्रकार उत्तर भेद किये गये है, जो भले ही नामो की अपेक्षा भिन्न दीखते हो परन्तु उपरोक्त तीन विकल्पो से अन्य अपनी पथक सत्ता नही रखते ।

१ धर्मियो की अपेक्षा — १ द्रव्य नैगम, २ शुद्ध द्रव्य नगम, ३ अशुद्ध द्रव्य नैगम

२ धर्मो की अपेक्षा — १ पर्याय नैगम, २ अथ पर्याय नैगम ३ व्यञ्जन पर्याय नैगम, ४ अथ व्यञ्जन पर्याय नैगम ।

३ धम धर्मी की अपेक्षा — १ द्रव्य पर्याय नैगम, २ शुद्ध द्रव्य अथ पर्याय नैगम, ३ शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नगम, ४ अशुद्ध द्रव्य अथ पर्याय नैगम, ५ अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम

इस प्रकार इन तीन के कुल १२ भेद हो जाते है। इनमे भी द्रव्य नैगम, पर्याय नैगम और द्रव्य पर्याय नैगम यह तीन सामान्य भेद है, अर्थात उन पूर्वोक्त धर्म धर्मी आदि के ही पर्याय वाची नाम है। दो धर्मियो मे एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य नैगम है, जिसके कि दो भेद है-शुद्ध व अशुद्ध। इसी प्रकार दो धर्मों मे एकता के सकल्प का नाम ही पर्याय नैगम है, जिसके कि दो भेद है—अर्थ व व्यञ्जन। धर्म धर्मी मे एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य पर्याय नैगम है, जिस के कि चार भेद है--शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय मे, अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय, शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय और अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय। इस प्रकार तीन तो सामान्य भेद है और शेष नौ उनके उत्तर भेद है। अब इन का ही क्रम से कथन किया जायेगा। उनमे भी पहिले द्रव्य नैगम वक्तव्य है।

इतने ही नही और भी अनेकों विकल्प इन भेदो मे उत्पन्न किये जा सकते है, यदि द्रव्य व पर्याय इन, सामान्य वाची शब्दो को हटाकर इनके स्थान पर, इनको ग्रहण करने वाले सातो नयो के नाम लगा कर उनके सयोगी भग बना दिये जाये तो जैसे --

शुद्ध द्रव्य नैगमः--१ शुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र नैगम, २ शुद्ध द्रव्य शब्द नैगम, ३. अशुद्ध द्रव्य समभिरूढ नैगम, ४. शुद्ध द्रव्य एवभूत नैगम।

अशुद्ध द्रव्य नैगम --१. अशुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्र नैगम, २. अशुद्ध द्रव्य शब्द नैगम, ३. शुद्ध द्रव्य समभिरूढ नैगम, ४. अशुद्ध द्रव्य एवभूत नैगम।

अर्थ पर्याय नैगम.--१. ज्ञान अर्थ पर्याय नैगम, २. ज्ञेय अर्थ पर्याय नैगम, ३. ज्ञानज्ञेय अर्थ पर्याय नैगम

व्यञ्जन पर्याय नैगम -१ शब्द व्यञ्जन पर्याय नैगम, २ समभि-
रूढ व्यञ्जन पर्याय नैगम, ३ एवभूत
व्यञ्जन पर्याय नैगम, ४ शब्द समभिरूढ
व्यञ्जन पर्याय नैगम, ५ शब्द एवभूत
व्यञ्जन पर्याय नगम, ६ समभिरूढ एव-
भूत व्यञ्जन पर्याय नैगम

अथ व्यञ्जन पर्याय नैगम --१ शब्द अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम,
२ समभिरूढ अथ व्यञ्जन पर्याय नैगम
३ एवभूत अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम

द्रव्य पर्याय नैगम --१ शुद्ध द्रव्य अथ पर्याय नैगम, २ शुद्ध
द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम, ३ अशुद्ध द्रव्य अथ
पर्याय नैगम, ४ अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय
नैगम ।

तथा इसी प्रकार अन्य भी अनेको द्वैत रूप विकल्प उत्पन्न किये जा सकते ह ।

१ द्रव्य नैगम नय सामान्य --

वस्तु की पर्वाह न करके, ज्ञानगत कल्पनाओ में वतते हुए ही, "यह द्रव्य है, यह उसका स्वभाव है, यह पर्याय है, इसका सम्बन्ध इस द्रव्य से है" इत्यादि प्रकार के अनेको सकल्प विकल्प ज्ञान में उठा करते ह । इस कल्पनागत द्वैत के आधार पर ही द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प जब करने में आता है, तब द्रव्य नगम नाम पाता है इसका यह अथ न समझ लेना कि एक द्रव्य के आधार पर किसी अन्य द्रव्य का परिचय पाना इसका लक्षण है, क्योकि

भिन्न जातीय द्रव्यों मे लक्ष्य लक्षण भाव होना असम्भव है। तब द्रव्य पर से द्रव्य का संकल्प करना इसका क्या अर्थ ?

जैसा कि पहिले भली भाति स्पष्ट किया जा चुका है कि कल्पना म गुण गुणी आदि भेद करने से वस्तु मे भेद नही हो जाता फिर भी भाषा मे तो भेद दीखता ही है। द्रव्य का अदृष्ट रूप किसी को समझाने के लिये उसका कुछ न कुछ लक्षण करना पड़ता है। तब उस एक के अन्दर ही लक्षण लक्ष्य भेद उत्पन्न हो जाता, जैसे 'सद्रव्यलक्षणम् या 'गुणपर्ययवद्रव्यम्' यह दो लक्षण द्रव्य सामान्य के करने मे आते है, और 'उपयोगो लक्षणम्' या 'ज्ञानवाञ्च जीवो' ऐसे लक्षण जीव द्रव्य विशेष के करने मे आते है, तथा इसी प्रकार ही पुद्गल आदि द्रव्यों के भी यथायोग्य रूप से कुछ न कुछ लक्षण करने मे आते है ।

तहां यद्यपि 'सत्' व 'द्रव्य' कोई भिन्न भिन्न वस्तुएं नही है, फिर भी 'सत् को द्रव्य कहते है' या 'सत् द्रव्य है' या 'द्रव्य सत् है' इस प्रकार कहा जाता है। इसी प्रकार जो गुणपर्यायिवान है वही द्रव्य है, फिर भी 'गुणपर्यायिवान द्रव्य है' ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार एक ही के अन्दर लक्षण लक्ष्य भेद करके एक के आधार पर दूसरे का परिचय दिया जाता है। सर्वत्र ऐसा व्यवहार प्रचलित है। लक्षण उसे कहते है जिसके द्वारा या जिस पर से किसी विवक्षित वस्तु को अन्य वस्तुओ से पृथक करके दर्शाया जाये। और लक्ष्य उसे कहते है जिसे कि दर्शाया जाये। इस प्रकार दोनो मे द्वैत भासने लगता है । यह कार्य मात्र ज्ञान मे सकल्प द्वारा किया जाता है, वस्तु मे नही ।

लक्षण को सर्वत्र गौण किया जाता है और लक्ष्य को सदा मुख्य क्योकि जो बात समझनी अभीष्ट हो वही मुख्य होती है, जिसके द्वारा समझायी जाये उसकी प्रमुखता नही होती। द्रव्य अदृष्ट है और उसके कुछ कार्य व स्वभाव दृष्ट है। उन दृष्ट कार्यो व स्वभावो

पर से अदृष्ट का अनुमान किया जाता है अत वही मुख्य है। सवत्र यही लक्षण व लक्ष्य में गौण मुख्य व्यवस्था का नियम है।

तहा देखना यह है कि लक्षण किस नय का विषय है और लक्ष्य किस नय का है। उपरोक्त उदाहरणो मे लक्षण शुद्ध या अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय है, क्योकि 'सत्' ऐसा लक्षण अभेद का वाचक होने के कारण शुद्ध है और 'गुण पर्याय वान' ऐसा लक्षण भेद का वाचक होने के कारण अशुद्ध है। लक्ष्य जो द्रव्य वह तो स्वय द्रव्य है ही, अत वह भी द्रव्यार्थिक का ही विषय रहा। इस प्रकार ऊपर द्रव्यार्थिक का विषय ही लक्षण है और द्रव्यार्थिक का विषय ही लक्ष्य है। द्रव्यार्थिक के विषयभूत लक्षण पर से द्रव्यार्थिक ही के विषयभूत लक्ष्य को समझा या समझाया जा रहा है। इसीको कहते ह द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प या विचार करना।

क्योकि दोनो में से लक्षण को गौण व लक्ष्य को मुख्य किया जाता है, इसलिये यह द्वत मे अद्वैत या अनेकता में एकता का सकल्प कहलाता है। इस प्रकार द्वत में अद्वत और अद्वैत में द्वैत उत्पन्न करना ही सवत्र नगम नय का लक्षण है। तहा द्रव्य पर से द्रव्य क मकल्प का या द्रव्यार्थिक नय के विषय परसे द्र यार्थिक नय के ही विषय के सकल्प को द्रव्य नैगम कहते ह। इसे ही दो 'धर्मिया म एकता' इन शब्दो द्वारा कहा गया है, क्याकि द्रव्यार्थिक के विषय होने के कारण लक्षण भी धर्मी है और लक्ष्य भी। इस प्रकार एक धर्मी क आधार पर दूसरे धर्मी का सकल्प किया जाने के कारण यह दो धर्मियो की एकता है।

यह सामान्य द्रव्य नैगम का लक्षण है इसलिय इसमें सग्रह नय व व्यवहार नय दोनो क लक्षण समा जाते है। उदाहरणाथ गाये एक पशु है। वह दो प्रकार की होती है गजोल जाति की और

मार्तीय जाति की। इनमे मार्तीय जाति अनेक भेद वाली हैं। तहा पुन एक एक पृथक पृथक भेद भूरी काली व सफेद आदि रंगों की अपेक्षा अनेक प्रकार का है। इसी प्रकार जीव एक पदार्थ है। वही दो प्रकार का है संसारी व मुक्त। उनमे भी संसारी त्रस स्थावर आदि के भेदों से अनेक प्रकार का है, इत्यादि।

इस प्रकार भेद प्रभेद डालना द्रव्यार्थिक नैगम नय का विषय है। यहां भी एक द्रव्य को अथवा उसके एक भेद को उसी के उत्तर भेदों के आधार पर विशेष रूप से समझाना अभीष्ट है। द्रव्य स्वयं तो द्रव्यार्थिक का विषय है ही, पर वह उसके भेद भी द्रव्यार्थिक के ही विषय है, क्योंकि यथा योग्य रूप से सर्व ही भेद द्रव्य पर्याय स्वरूप है। इनमे कोई भी भेद अर्थ पर्याय वाला नही है, जो कि उन को पर्यायार्थिक का विषय बताया जा सकता। यद्यपि ये सर्व भेद तो पर्याय है द्रव्य नही, पर द्रव्य पर्याय होने के कारण इन्हे द्रव्यार्थिक के विषय रूप ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार उपरोक्त उदाहरण को द्रव्य नैगम नय का विषय बनाना निर्बाध सिद्ध है। ये सब ही इस व्यापक नय के लक्षण व उदाहरण समझना। अब इन की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगमोक्त वाक्य सुनिये।

१. क पा। पु १। पृ २४४ "सर्वमेकं सदविशेषात्, सर्वं द्विविधं जीवाजीवभेदादित्यादि युतयवष्टम्भबलेन विषयीकृत संग्रह व्यवहारनय विषयः द्रव्यार्थिक नैगमः।"

अर्थः—अभेद दृष्टि से देखने पर सकल विश्व व्यापी सत् एक है। वह ही जीव व अजीव के भेद से दो प्रकार का है। इसी प्रकार से युक्ति पूर्वक संग्रह व व्यवहार इन दोनो नयो के विषय को स्वीकार करने वाला द्रव्यार्थिक नैगम नय है।

२ ध । पु ६।पृ १८१।३ "न एगमो नैगम इति न्यायात्–शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नय द्वय विषय द्र यार्थिक नैगम ।"

अर्थ — जो एक को विषय न करे अर्थात भेद व अभेद दोनो को विषय करे वह नगम नय है' इस न्याय से जो शुद्ध द्रव्यार्थिक और अशुद्ध द्रव्यार्थिक दोनो नयो के विषय को ग्रहण करने वाला है वह द्रव्यार्थिक नैगम नय है।

३ रा वा हि ।१।३३।१९८ (यद्यपि यहा द्रव्य नैगम सामान्य का लक्षण नही दिया है, उसके भेदों के लक्षण अवश्य दिये ह जो आगे आने वाले है। वहा सर्वत्र द्रव्य जो लक्ष्य या विशेष्य उनको मुख्य किया है और 'सत्' अथवा 'गुणपर्यायवान' जो लक्षण या विशेषण इनको गौण किया है। तातै 'द्रव्य विषै विशेष्य को मुख्य और विशेषण को गौण करके द्रव्य का सकल्प करना द्रव्य नैगम है' ऐसा इसका लक्षण किया जा सकता है।)

इस प्रकार लक्षण, उदाहरण व उद्धरण इन तीना का कथन हो चुकने के पश्चात अब इसके कारण व प्रयोजन विचारिये। द्रव्य पर मे द्रव्य का सकल्प करने के कारण द्रव्य नय है। अद्वैत में लक्षण लक्ष्य रूप द्वैत को ग्रहण करने के कारण नगम है। वस्तु की तरफ न देखकर मात्र ज्ञान के आकार में ही सकल्प द्वारा इस प्रकार का द्वैत किया गया है। इसलिये भी यह नैगम नय है। इसलिये इसका 'द्रव्य नगम नय ऐसा नामा सार्थक है। यह इस नय का कारण है। तथा दृष्ट कार्यों या स्वभावो के आधार पर अदृष्ट व अखण्ड वस्तु का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

यहा इतना अवधारण करना योग्य है कि आगे आने वाले शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य नैगम नयों के प्रकरण में 'शुद्ध' शब्द का अर्थ सर्वत्र

अभेद और 'अशुद्ध' शब्द का अर्थ भेद ग्रहण करना। अर्थात द्रव्य की एक रस रूप सामान्य अखण्डता को दृष्टि मे लेना ही शुद्ध द्रव्य दृष्टि है, और उसके अन्तर्गत रहने वाले गुण पर्याय आदि विशेषो का भेद करके उनके समुदाय रूप से उसे देखना अशुद्ध द्रव्य दृष्टि है।

२ शुद्ध द्रव्य नैगम नय

इसका विशेष विस्तार करने की आवश्यकता नही। उपरोक्त द्रव्य नैगम के सामान्य लक्षण पर से ही इसका विस्तार जाना जा सकता है। अन्तर केवल इतना है कि यहा लक्षण शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषयभूत ही होना चाहिये। या यो कहिये कि शुद्ध द्रव्यार्थिक के विषयभूत शुद्ध द्रव्य पर से द्रव्य सामान्य का सकल्प करना शुद्ध द्रव्य नैगम नय का लक्षण है।

जैसे 'सत् द्रव्य है' ऐसा कहना। तहां 'सत्' यह शब्द वस्तु के उत्पाद व्यय व ध्रुव स्वरूप तीनों अशो मे अनुयूत एक सामान्य भाव का द्योतक है। इसलिये जैसा कि आगे सग्रह नय के प्रकरण मे बताया जायेगा, यह अभेद सत् शुद्ध द्रव्यार्थिक सग्रह नय का विषय है। अत यहा शुद्ध पर से द्रव्य सामान्य का सकल्प किया जा रहा है। अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देता हूं।

१. श्ल वा. १पु. ४।पृ. ३७ "भेद विकल्प रहित सन्मात्र वस्तु का संकल्प (शुद्ध द्रव्य नैगम है)।"

२. रा. वा हि ।१।३३।१९८ "सग्रह नय का विषय सन्मात्र शुद्ध द्रव्य है, ताका यह नैगम नय सकल्प करे है, जो सन्मात्र द्रव्य समस्त वस्तु है। ऐसे कहे तहा सत् तो विशेषण भया, तातै गौण भया। बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य है। यह शुद्ध द्रव्य नैगम है।

अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। ग्राह्य लक्षण शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है इसलिये यह नय शुद्ध है। द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प अर्थात द्रव्यार्थिक के विषय पर से द्रव्यार्थिक के विषय का सकल्प करने के कारण द्रव्य नय है। अद्वैत मत में लक्षण लक्ष्य द्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है। अथवा मात्र ज्ञान के आकार में ही सकल्प द्वारा द्वैत किया गया है, इसलिये भी इसे नैगम कहा गया है। इसलिये इसका 'शुद्ध द्रव्य नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। तथा दृष्ट जो सत्ता या अस्तित्व रूप स्वभाव उसके आधार पर अखण्ड व अदृष्ट वस्तु का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

२ अशुद्ध द्रव्य नैगम नय —

उपरोक्त शुद्ध द्रव्य नैगम नय की भाति इसके लक्षण का विस्तार भी द्रव्य नैगम सामान्य के लक्षण पर से जाना जा सकता है। अन्तर केवल इतना है कि यहा लक्षण अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषयभूत ही होना चाहिये या यो कहिये कि अशुद्ध द्रव्यार्थिक के विषयभूत अशुद्ध द्रव्य पर से द्रव्य सामान्य का सकल्प करना अशुद्ध द्रव्य नैगम नय का लक्षण है।

जैसे 'गुण पर्याय वाला द्रव्य है' या ज्ञानवान जीव ऐसा कहना तहा 'गुण पर्याय वाला' अथवा 'ज्ञानवान' यह कहना तो अभेद में भेद की कल्पना है। वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक या व्यवहार नय का विषय है। यह तो लक्षण है और द्रव्य सामान्य लक्ष्य है। इस प्रकार यहा अशुद्ध द्रव्य पर से द्रव्य सामान्य का सकल्प किया जा रहा है। अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देता हू।

१ श्लो वा।पु ४।९ ३६ "गुण पर्याय आदि भेद डालकर वस्तु का सकल्प करना (अशुद्ध द्रव्य नैगम नय है)।"

८. रा. वा हि. ।१।३३।१९८ "जो पर्यायवान है सो द्रव्य है' तथा गुणवान है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहार नय भेद करि कहै है। ताका यह नैगम नय सकल्प करै है। तहा 'पर्यायवान तथा गुणवान' यह तो विशेषण भया तातै गौण है। बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य भया। ऐसे अशुद्ध द्रव्य नैगम है।"

अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। ग्राह्य लक्षण अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है इसलिये यह नय अशुद्ध है। द्रव्य पर से द्रव्य का सकल्प, अर्थात द्रव्यार्थिक के विषय पर से द्रव्यार्थिक के विषय का सकल्प करने के कारण द्रव्य नय है। अद्वैत सत् मे लक्षण लक्ष्य रूप द्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है। अथवा वस्तु की अपेक्षा न करके मात्र ज्ञान के आकार को आश्रय कर, संकल्प द्वारा द्वैत किया जाने के कारण भी इसे नैगम कहा जाता है क्योकि नैगम नय ज्ञान नय है ऐसा पहिले कहा जा चुका है। इसलिये इसका 'अशुद्ध द्रव्य नैगम नय' 'ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। तथा दृष्ट जो स्वभाव तथा उनके कार्य, उनके आधार पर अखण्ड व अदृष्ट वस्तु का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

५ पर्याय नैगम नय

अब नैगम नय के उत्तर भेदों मे जो दूसरा विकल्प, अर्थात दो धर्मो मे एकता का ससल्प करना है, उसका कथन चलता है। द्रव्य नैगम नय के प्रकरण के प्रारम्भ मे ही यह बात दर्शा दी गई है कि इसका ही दूसरा नाम पर्याय नैगम नय है। इसके प्रमुखत. ३ भेद है—अर्थ पर्याय नैगम, व्यञ्जन पर्याय नैगम और अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम।

यद्यपि अर्थ पर्याय नैगम के भी शुद्ध अर्थ पर्याय नैगम व अशुद्ध अर्थ पर्याय नैगम ऐसे दो भेद किये जा सकते है, और इसी प्रकार

व्यञ्जन पर्याय नैगम के भी गुद्ध व्यञ्जन पर्याय नगम और अगुद्ध व्यञ्जन पर्यायनैगम ऐसे दो भेद किये जा सकते ह, क्योकि अथ व व्यञ्जन दोना ही प्रकार की पर्यायें शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो दो प्रकार की ह। परन्तु इनका पथक पृथक कथन यहा किया नही गया है, क्योकि ऐसा करना वाग्गौरव के अतिरिक्त कुछ न होगा।

गुद्ध व अगुद्ध पर्याय नयो के लक्षण अपनी अपनी सामान्य अथ व व्यञ्जन पयाय वाली नयो के समान ही होते ह । अन्तर केवल इतना है कि अथ व व्यजन पर्याय् नैगमसमाय मे तो सामाय पर्यायो का सकल्प करना अभीष्ट है और उनके भेदो द्वारा पर्याया के शुद्ध व अगुद्ध विशेषो का सकल्प करना अभीष्ट है। यहा लक्ष्य सामाय अथ व व्यञ्जन पर्याय है और वहा लक्ष्य गुद्ध या अगुद्ध अथ व व्यञ्जन पर्याय होगा।

इस पर से यह कहा जा सकता है कि तब तो सामाय पर्याय नैगम का ही कथन करना पर्याप्त था क्योकि अथ व व्यञ्जन पर्याय नैगम नये भी उन्ही में गर्भित हो जाती ह। सो बात नही है, क्योकि दोनो के लक्षणा में कुछ अन्तर है। जसा कि आगे उनके लक्षणो पर से जानने में आयेगा यहा अथ पर्याय नगम में प्रत्येक गुण की क्रमवर्ती क्षणिक पर्याय को अर्थात गुण पर्याय को ग्रहण किया है, भले ही वह सूक्ष्म हो कि स्थूल। व्यञ्जन पर्याय म किसी भी एक त्रिकाली गुण सामाय का या वस्तु के आकार का ग्रहण किया गया है। इसके अन्तर्गत द्रव्य पर्याया का ग्रहण सवथा किया नही जा सकता क्योकि उनको द्रव्य रूप स्वीकार किया जाने के कारण द्रव्य नैगम का विषय बनाया जा चुका है। स्थूल दृष्टि म स्थायी दीखने वाली मति ज्ञानादि पर्यायें भी व्यञ्जन पर्यायें ह। द्रव्य पर्याय कन उनको भी उपचार मे गुण रूप स्वीकार करने में कोई विरोध नही ह।

पर्याय नैगम नय मे पर्यायो का ग्रहण करने के कारण नैगम नय का द्रव्यार्थिक पना विरोध को प्राप्त नही हो सकता, क्योकि यहा दो पर्यायो मे अद्वैत किया जाता है अर्थात एक पर्याय पर से दूसरी पर्याय का सकल्प किया जाता है, जब कि पर्यायार्थिक नय मे के एक पर्याय की सत्ता के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता ही स्वीकार नही की जाती। यह द्वैत भाव ही इस नय की द्रव्यार्थिकता का द्योतक है। अब इसके भेदो का क्रम से कथन किया जाता है।

१ पर्याय नैगम नय सामान्य --

जैसा कि इसका नाम स्वयं बता रहा है, पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करने को पर्याय नैगम कहते है। यद्यपि द्रव्य नैगम का लक्षण भी बिल्कुल इन्ही शब्दों मे किया गया है, परन्तु दोनो मे कुछ भेद है। द्रव्य का लक्षण द्रव्य के अपने गुण पर्याय व स्वभाव रूप हो सकता है, परन्तु पर्याय का लक्षण अपनी पर्याय स्वरूप नही हो सकता, क्योकि जिस प्रकार भेद विवक्षा द्वारा द्रव्य मे गुण पर्याय देखे जा सकते है उस प्रकार भेद विवक्षा द्वारा भी एक पर्याय मे अन्य पर्याय नही देखी जा सकती। द्रव्य अगी है और पर्याय अग। अगी का विशेषण तो अग हो सकता है पर अग का विशेषण कौन बने ? एकत्व मे द्वित्व उत्पन्न करना असम्भव है। अत. किसी एक गुण की पर्याय का या उसके स्वभाव का परिचय पाने के लिये उसके साथ किंचित मेल खाती अन्य गुण की पर्याय का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। अत यहां 'पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करना' इसका अर्थ है एक गुण की पर्याय पर से अन्य गुण की पर्याय का सकल्प करना। यही दो धर्मो की एकता का तात्पर्य है।

द्रव्य या अभेद की अपेक्षा, सत् व द्रव्य, या सत् व गुण, या सत् व पर्याय कोई भिन्न वस्तु नही है। परन्तु पर्याय या भेद की अपेक्षा से सत् नाम का गुण तथा ज्ञानादि कोई अन्य गुण, अथवा

सत की पर्याय तथा किसी अन्य गुण की पर्याय अथवा सत् का अनित्य स्वभाव तथा किसी भी अन्य गुण या पर्याय का अनित्य स्वभाव, यह सब पृथक सत्ता रखते हैं। इस प्रकार यहा दो धर्मो में एकता करने के कारण द्वैत को अद्वैत करना कहा है, द्रव्य नैगम वत् अद्वैत को द्वैत करना नही।

मुख्य गौण व्यवस्था तो यहा भी द्रव्य नैगम वत ही है, अर्थात जिस गुण या पर्याय को विशेषण रूप से ग्रहण किया गया है वह तो गौण कर दिया जाता है। और जिस विशेष्य रूप में जानना अभीष्ट है उसे मुख्य किया जाता है।

यहा देखना यह है कि लक्षण किस नय का विषय है और लक्ष्य किस नय का। सो कोई भी अर्थ या व्यञ्जन पर्याय तो नि सदेह पर्यायार्थिक नय का विषय है ही, परन्तु द्रव्य से पृथक करके विचारा गया कोई गुण भी पर्यायार्थिक नय का ही विषय है। इस प्रकार लक्षण व लक्ष्य दोनो ही पर्यायार्थिक नय के विषय हैं। पर्यायार्थिक के विषय भूत एक गुण या पर्याय पर से पर्यायार्थिक के विषयभूत अन्य गुण या पर्याय का सकल्प करना ही पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करना है।

यह इस नय की स्थापना हुई। इसके उदाहरण तो आगे इस नय के भेदो के कथन में आने वाले है। उनसे पृथक इसका कोई स्वतंत्र उदाहरण नही हो सकता। अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगम कथित वाक्य उद्धृत करता हू।

१ क पा। प्र १। पृ २४४। १३ "ऋजु सूत्रादिनयचतुष्टयविषय युक्त्यवष्टम्भबलेन प्रतिपन्न पर्यायार्थिक नैगम ।"

अर्थ – ऋजुसूत्रादि चारो पर्यायार्थिकनयो के विषय को युक्तिरूप आधार के बल से स्वीकार करने वाला पर्यायार्थिक नैगम है।

२ धापृ ६ ।प्रा१८१।२ "न एकगमो नैगम इति न्यायात् शुद्धाशुद्ध पर्यायार्थिकनय द्वयविषय पर्यायार्थिक नैगम ।"

अर्थः- जो एक को विषय न करे अर्थात भेद व अभेद दोनो को विषय करे वह नैगम नय है । इस न्यायसे जो शुद्ध पर्यययार्थिक नय व अशुद्ध पर्यायार्थिक नय इन दोनो के विषय को ग्रहण करने वाला हो वह पर्यायार्थिक नैगम है ।

३. रा वा हि ।१। ३३। १६८ "पर्यायो मे विशेपण भाव को गौण तथा विशेष्य भाब को मुख्य करके पर्याय को विशे-पण रूप सकल्प करना ।"

इस प्रकार लक्षण व उद्धरण का कथन हो चुकने के पश्चात अब इस के कारण व प्रयोजन विचारिये । पर्याय पर से पर्याय का सकल्प करने के कारण पर्याय नय है । द्वेत मे लक्षण लक्ष्य भाव रूप अद्वैत का ग्रहण करने के कारण नैगम है । अथवा वस्तु की तरफ न देख कर इसका व्यापार मात्र ज्ञान के आकार मे हो रहा है, अर्थात सकल्प द्वारा ज्ञान के आकारो मे ही उपरोक्त द्वैत का ग्रहण किया जा रहा है । इसलिये भी इसे नैगम कहा गया है, क्योकि नैगम नय का व्यापार ज्ञान मे ही होता है वस्तु मे नही । अत इसका 'पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह इसका कारण है । तथा दृष्ट व परिचित पर्याय के आधार पर किसी पर्याय के अदृष्ट स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

२ अर्थ पर्याय नैगम नय

इसका विशेष विस्तार करने की आवश्यकता नही क्योकि पर्याय नैगम सामान्य के लक्षण पर से ही वह जाना जा सकता है । यहा विशेषता केवल इतनी है कि विशेषण रूप से ग्रहण की गई पर्याय भी अर्थ पर्याय या गुण पर्याय होनी चाहिये और विशेष्य रूप से

स्थापन की गई पर्याय भी अथ पर्याय या गुण पर्याय ही होनी चाहिये द्रव्य पर्याय नही, क्योकि उस का ग्रहण द्रव्य के रूप में द्रव्य नगम के अन्तगत किया जा चुका है। यहा अथ पर्याय या गुण पर्याय से तात्पय किसी भी गुण की क्षणिक पर्याय है।

यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि प्रत्येक पर्याय ही क्षणिक होती है, परन्तु स्थूल दृष्टि से कुछ पर्याय ऐसी भी होती ह जो बहुत कालपयन्त या सारे जीवन पयन्त जू की तू देखने में आती है। जैसे ज्ञान गुण की मति ज्ञान आदि पर्यायें। इस प्रकार की पर्यायो को व्यञ्जन पर्याय कहते ह। उपचार से इन को गुण भी कह दिया जाता है। इन के अतिरिक्त कुछ पर्यायें ऐसी भी होती है जो स्थूल दृष्टि स देखने पर भी क्षण स्थाई ही दिखाई देती ह—जसे विषय सुख या क्रोधादि भाव। ऐसी पर्यायो को अथ पयाय या गुण पर्याय कहते ह। इन के क्षण वर्ती पने के कारण इन्हे उपचार से भी गुण नही कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गुण की प्रति समयवर्ती जो एक सूक्ष्म पर्याय होती है, जो छद्मस्थ ज्ञान के अगाचर है, उसे भी अथ पर्याय कहते ह।

यहा पहिली अर्थात स्थूल अथ पर्याय को अशुद्ध अथ पर्याय कहते ह आर पिछली अथात सूक्ष्म अथ पर्याय को शुद्ध अथ पर्याय कहते है। अत्यत सूक्ष्म होने के कारण शुद्ध अथ पर्याय को लक्षण रूप मे ग्रहण नही किया जा सकता, क्योकि लक्षण सब जन परिचित ही होना चाहिये एसा न्याय है। अत यहा अथ पर्याय नगम के प्रकरण म अशुद्ध पर्यायो को ही लक्षण व लक्ष्य बना कर कथन किया जा रहा है।

यद्यपि अथ पर्याय नगम दो प्रकार की होनी है—शुद्ध अथ पर्याय नगम आर अशुद्ध अथ पर्याय नैगम परन्तु उपराक्त कारण से शुद्ध अथ पर्याय नगम का उदाहरण भी सम्भव नही है। अत अशुद्ध अथ पयाय नगम के उदाहरण पर से उस का भी योग्य रीति से अनुमान

कर लेना । 'क्रोध क्षण ध्वसी है' ऐसा कहना अर्थ पर्याय नैगम का उदाहरण है ।

वैसे तो क्रोध व क्षणध्वंसी पना कोई पृथक पृथक पर्याये नही है । क्रोध का स्वभाव ही क्षणध्वंसी है परन्तु फिर भी इस वाक्य मे या ऐसी विचारणा मे क्योकि क्रोध का स्वभाव जानना अभीष्ट है अत वह तो विशेष्य है और 'क्षणध्वसीपना' यह विशेषण है, क्योकि इस के द्वारा उस का परिचय मिल रहा है ।

यद्यपि प्रत्येक पर्याय स्वय क्षण ध्वसी होती है, परन्तु भेद विवक्षा से विचार करने पर, उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक 'सत्' के उत्पाद व्यय स्वरूप अनित्य अग के कारण से ही पर्यायो मे वह क्षणिक पना आता है । इस प्रकार कारण कार्य का भेद डालकर 'उत्पन्न ध्वंसी' इस भाव को तो 'सत्' गुण की अर्थ पर्याय कहते है और क्रोध' चारित्र गुण की अर्थ पर्याय है । इस प्रकार एक गुण की अर्थ पर्याय पर से अन्य गुण की अर्थ पर्याय का सकल्प करना अर्थ पर्याय नैगम नय का विषय है । अव इसकी पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित वाक्य उद्धत करता हू ।

१ श्लो वा पु. ४ पृ २९ "प्रति क्षण ध्वसी सुख से देह धारी ससारियो का सकल्प (अर्थ पर्याय नैगम है) ।

२ रा. वा. हि ।१।३३।१९८ "प्राणी के सुख सवेदन है सो क्षण ध्वसी है" या का यह नैगम सकल्प करे है ।

अव इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये । यहां लक्षण भी अर्थ पर्याय है और लक्ष्य भी अर्थ पर्याय है । इस प्रकार अर्थ पर्याय पर से अर्थ पर्याय का सकल्प करने या परिचय पाने के कारण यह अर्थ पर्याय नय है । द्वैत करके भी अद्वैत को ग्रहण करने के कारण नैगम है अथवा

ज्ञान मात्रा के आकारो म सकल्प के आधार पर ही यह द्वैत किया गया है, इसलिये भी इसको नैगम कहना यक्त है। इसलिये इसका अथ पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है। यह इसका कारण है। कोई भी अथपर्याय क्षणिक ही होती है ऐसा जताना इसका प्रयोजन है।

३. व्यञ्जन पर्याय नैगम --

अथ पर्याय वत यहा भी पर्याय पर मे पर्याय का सकल्प करना अभीष्ट है। विशेष इतना है कि वहा तो विशेषण विशेष्य दोना क्षणिक थे और यहा विशेषण विशेष्य दोना ही स्थायी होने चाहिये। तहा गुण सामान्य तो त्रिकाल स्थायी होने के कारण इस नय क विषय बन ही जाते है, परन्तु स्थूल दृष्टि म स्थायी दिखने वाली व्यञ्जन पर्यायें भी इस की विषय भूत है। यह बात अथ पर्याय नैगम का कथन करते समय बताई जा चुकी है। हा द्रव्य पर्यायो का ग्रहण इसमें सवथा हो नही सकता, क्योंकि अनेक पर्यायो का पिण्ड होने के कारण वह द्रव्य नैगम का विषय है।

'जीव में ज्ञान सत् है' अथवा 'ससारी जीव में मति ज्ञान सत है' ऐसा कहना इस नय के उदाहरण है। यहा सत सामान्य का नित्य अग तो विशेषण है और ज्ञान व मति ज्ञान विशेष्य है। इस प्रकार सत् की नित्यता पर से किसी भी गुण अथवा व्यञ्जन पर्याय की नित्यता या ध्रुव अस्तित्व का सकल्प करना व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है। यह तो इसके लक्षण व उदाहरण हुए, अब इस की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगम कथित वाक्य उद्धृत करता हूं।

१ श्ला वा।पु४।१ ३३ "वस्तु का आकार लेकर वस्तु को जानने का सकल्प (व्यञ्जन पर्याय नगम है)।

२ रा. वा हि. । १ । ३३ । १९८ "पुरुष विषै चेतन्य है सो सत् है । (ताकू यह नैगम नय संकल्प करै है) । यहां सत् नाम व्यञ्जन पर्याय है. सो विशेषण है, (तातै गौण भया) और चैतन्य नामा व्यञ्जन पर्याय है सो विशेष्य है तातै मुख्य है । यहू व्यञ्जन पर्याय नैगम है ।

'सत्' की व्यञ्जन पर्याय अस्तित्व रूप स्थायी सत् है और चेतन्य की व्यञ्जन पर्यायचैतन्य का स्थायी अस्तित्व है । एक व्यञ्जन पर्याय पर से दूसरी व्यञ्जन पर्याय का सकल्प करने के कारण व्यञ्जन पर्याय नय है । दोनो के द्वैत का परस्पर मे अद्वैत करने के कारण नैगम है अथवा इस सर्व द्वैताद्वैत रूप ग्रहण का आधार मात्र ज्ञान है, वस्तु नही । उसी मे सकल्प मात्र द्वारा यह सब व्यापार किया जा रहा है । इसलिये 'व्यञ्जन पर्याय नैगम नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह इसका कारण है । द्रव्य के सामान्य अस्तित्व पर से गुण विशेषो के अस्तित्व का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

४. अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय –

इसका नाम ही स्वयं अपना प्रतिपादन कर रहा है । पूर्व कथित अर्थ व व्यञ्जन पर्याय का उभय रूप ही अर्थ व्यञ्जन पर्याय है किसी अर्थ पर्यायविशेष पर से उसके साथ वर्तने वाली किसी अन्य व्यञ्जन पर्याय का सकल्प करना अर्थ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है ।

जैसे 'धर्मात्मा का जीवन सुखी व शान्त होता है' ऐसा कहने पर सुख व शान्ति ही उस जीवन की विशेषता है, ऐसा प्रतीति मे आता है । तहा सुख व शान्ति तो क्षणिक होने के कारण अर्थ पर्याय है और 'जीवन' स्थायी अस्तित्व मात्र होने के कारण व्यञ्जन पर्याय है । अर्थ पर्याय यहाँ विशेषण है और व्यञ्जन पर्याय विशेष्य । इस प्रकार अर्थ पर्याय पर से व्यञ्जन पर्याय की विशेषता का परिचय देना

इस नय का विषय है। यह तो इसके लक्षण व उदाहरण है। अब इसकी पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगमोक्त वाक्य उद्धत करता हू।

१ श्ला वा ।पु ४।प ३५ "सुख और जीवत्व से जीव को दशाने का सकल्प (अथ व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है)

२ रा वा हि ।१।३३।१६६ "धर्मात्मा जीव म सुखजीवी पना है (ताकू यह नैगम नय सकल्प कर है) यहा सुख तो अथ पर्याय है सो विशेषण है (तातै गौण भया।) बहुरि जीवीपना (व्यञ्जन पर्याय है सो) विशेष्य है तात मुख्य है। यहू अथ व्यञ्जन पर्याय नगम नय है।'

सुख रूप अथ पर्याय पर स जीवीपना रूप व्यञ्जन पर्याय की विशेषता का परिचय देने के कारण, तो यह अथ व्यञ्जन पर्याय नय है और ज्ञान के ही आकारों में सकल्प द्वारा द्वत मे अद्वतता करने के कारण नगम है। इसलिये इसका 'अथव्यञ्जनपर्याय नगम नय ऐसा नाम साथक है। यह इस नय का कारण है। अथ पर्याय विशष के अनुभव के आधार पर व्यञ्जन पर्याय विशेष की सुदरता व असुदरता आदि रूप विशेषता का परिचय देना इसका प्रयाजन है।

६ द्रव्य पर्याय नगम नय

अब नैगम नय के उत्तर भेदो में स तीसरा जो धर्मी व धम मे एकता के सकल्प करने रूप विकल्प है, उसका कथन चलेगा। धर्मी क स्वभाव का परिचय देन वाला द्रव्य नगम है और धम के स्वभाव का परिचय देने वाला पर्याय नगम है। अत धर्मी व धम का परस्पर सम्मेल करके दिखाने वाले नय का नाम द्रव्य पर्याय नैगम ही होना चाहिये।

दोना नयो के भेदो को परस्पर मिला देने स इस नय के चार भेद हो जाते है— १ शुद्ध द्रव्य अथ पयाय नैगम, २ शुद्ध द्रव्य

पर से, अर्थात् शुद्ध द्रव्य पर से अर्थ व व्यञ्जन पर्यायो की शुद्ध सत्ता सामान्य का अथवा अशुद्ध पर्यायों पर से अशुद्ध द्रव्यो का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

शुद्ध द्रव्य का अर्थ यहा भी पूर्ववत् अभेद द्रव्य अर्थात द्रव्य के सामान्य अखण्ड एक रस रूप का ग्रहण है जैसे सत्। परन्तु अशुद्ध द्रव्य का अर्थ यहा औदयिक भाव मे स्थित अशुद्ध द्रव्य पर्याय है, जैसे ससारी जीव। शुद्ध पर्याय से यहा किसी एक त्रिकाली गुण का या उसके क्षायिक भाव का ग्रहण होता है। तथा अशुद्ध पर्याय से किसी एक गुण की अशुद्ध पर्याय का अथवा अशुद्ध द्रव्य पर्याय का ग्रहण करना।

२ शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नयः-=

शुद्ध द्रव्य पर से शुद्ध अर्थ पर्याय का सकल्प करना इस नय का सक्षिप्त लक्षण है। यहा शुद्ध द्रव्य या शुद्ध पर्याय के साथ प्रयुक्त शुद्ध शब्द का अर्थ सहज स्वभाव है, क्षायिक भाव नही। द्रव्य का सहज स्वभाव 'सत्ता सामान्य' है जो पारिणामिक भाव स्वरूप होने के कारण शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है, अत शुद्ध है। पर्याय का सहज स्वभाव, जैसा कि स्वभावअनित्य पर्यायार्थिक नय युगल का कथन करते हुए आगे बताया जायेगा, पर्याय का क्षणिक 'सत्' है, जो स्वभाव व विभाग दोनो प्रकार की, शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो मे तथा अर्थ व व्यञ्जन पर्यायो मे समान रूप से देखा जाता है। अत यहा इस प्रकरण मे सर्वत्र ही शुद्ध द्रव्य का अर्थ द्रव्य की त्रिकाली सत्ता या 'सत्' सामान्य है और शुद्ध पर्याय का अर्थ पर्याय का क्षणिक सत् है।

यद्यपि त्रिकाली अखण्ड द्रव्य के अस्तित्व मे पर्यायों की अपेक्षा भेद डालना व्यवहार नय गत अशुद्धता कहा जाता है, परन्तु यहा वह विवक्षा नही है। यहा तो द्रव्य, गुण या पर्याय का अपना

अपना सत् सामान्य अभिप्रेत है, जिसमें अशुद्धता या भेद की कल्पना ही हानी असम्भव है। क्योकि सत तो अस्तित्व मात्र का नाम है। द्रव्य व गुण का त्रिकाली सत्व भी निर्विकल्प है और पयाय का क्षण स्थायी सत भी उतने समय के लिये निर्विकल्प है। यहा द्रव्य के सत् का द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखिय और पयाय न सत् का पर्यायार्थिक दृष्टि से। द्रव्यार्थिक दृष्टि में जिस प्रकार एकत्व हाने क कारण वह निर्विकल्प शुद्ध है, उसी प्रकार पर्यायार्थिक दृष्टि में भी एकत्व रूप होन के कारण वह निर्विकल्प शुद्ध है।

द्रव्यार्थिक सत और पर्यायार्थिक सत् इन दोना म भी पहिला तो कारण रूप है और दूसरा काय रूप, क्योकि सवत्र पयाय का उपादान कारण द्रव्य ही होता है द्रव्य का उपादान कारण पर्याय नही। कारण पर से ही काय का परिचय दिया जा सकता है, इसलिये शुद्ध द्रव्य व शुद्ध पर्याय के इस प्रकरण मे द्रव्यार्थिक नय के विपय भूत सत् को सवत्र विशेपण और पयायार्थिक के विपय भूत सत् को सवत्र विशेष्य बनाया गया है। इस प्रकार द्रव्य सत् रूप विशेपण को गौण करके उस पर स पयाय सत विशेष्य का मुख्य रूपेण सकल्प करना शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नगम विपय है।

उदाहरणार्थ "वतमान का यह क्षण वर्ती ज्ञान, ज्ञान ही ता है एसा कहने में 'ज्ञान का अस्तित्व' ता शुद्ध द्रव्यार्थिक का विपय है और वतमान ज्ञान का क्षणिक अस्तित्व' शुद्ध पर्यायार्थिक का विपय है। उपयाग का यह क्षणिक अस्तित्व ज्ञान के अस्तित्व स ही है। इस प्रकार ज्ञान गुण के सत् पर स उपयोग रूप अथ पयाय के सत का सकल्प करना, शुद्ध द्रव्य अथ पयाय नैगम नय का लक्षण है। इसी की पुष्टि व अभ्यासाथ निम्न उद्धरण है।

१ श्लो वा ।पु ४।पृ ४१ "ससारियो में भी शुद्ध सुख का सकल्प करना (शुद्ध द्रव्य अथ पयाय नगम नय है। यहा

शुद्ध सुख से अभिप्राय पारिणामिक सुख स्वभाव का सामान्य अस्तित्व है ।)

२. रा. वा हि. ।१।३३।१९९ "ससार विषै सत् विद्यमान सुख है सो क्षण मात्र है । (ताका यह नैगम नय सकल्प करै है ।) यहा सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है (तातै गौण भया) । सुख है सो अर्थ पर्याय है, सो विशेष्य है तातै मुख्य है । यहू शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय है ।

शुद्ध द्रव्यार्थिक के विषय पर से शुद्ध पर्यायार्थिक का परिचय देने के कारण यह शुद्ध द्रव्य पर्याय नय है । क्योकि पर्यायो के दोनो भेदो मे से भी अर्थ पर्याय का सकल्प किया गया है इस लिये अर्थ पर्याय नय है । क्योकि सकल्प मात्र के द्वारा ज्ञान मे द्रव्य सत् व पर्याय सत् इस प्रकार के द्वैत मे अद्वैत किया गया है इस लिये नैगम है । अत इसका 'शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक ही है । यह तो इस नय का कारण है । और पर्याय के निर्विकल्प अस्तित्व सामान्य का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

३. शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय --

शुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय वत् ही यहा भी शुद्ध व्यञ्जन पर्याय से तात्पर्य, उस उस पर्याय का निर्विकल्प एकत्व रूप अस्तित्व सामान्य है, जो शुद्ध पर्यायार्थिक अर्थात स्वभाव अनित्य पर्यायार्थिक का विषय है, और शुद्ध द्रव्य से तात्पर्य द्रव्य का निर्विकल्प अद्वैत रूप अस्तित्व सामान्य है, जो शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय है । ऐसे शुद्ध द्रव्य पर से या द्रव्य सामान्य रूप सत् पर से किसी भी व्यञ्जन पयाय के अस्तित्व का सकल्प करना शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्यय नैगम नय है ।

उदाहरणाथ 'चतय पना कहा या आनन्द पना कहो सब सत् रूप ही तो ह' एसा कहने मे चैतय या आनद तो यञ्जन पर्याय है और सत् सामाय द्रव्य हे । इस प्रकार द्रय सत् पर मे व्यञ्जन पर्याय क सत् का सकरप करना शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नगम नय ह। इसी की पुष्टि व अभ्याम निम्न उद्धरणो पर से किया जा सकता है ।

१ श्ला वा।पु ४।प ८। "जीव को सत् चित् रूप निणय का सकल्प (शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है) ।"

२ रा वा हि ।१।३३।१६८ "चित्सामाय है सो सत् है (ताकू यह नैगम नय सकल्प करै है)। यहा सत् ऐसा शुद्ध द्रव्य है, सो तो विशेषण है तात गौण ह। 'चित है सो व्यञ्जन पर्याय है, सो विशेष्य है तात मुख्य है । यह शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नगम भया ।'

शुद्ध द्रव्यार्थिक के विषयभूत मत सामाय पर मे स्वभाव अनित्य या शुद्ध पर्यायार्थिक क विषयभत सत विशेष का परिचय देता ह, इसलिये शुद्ध द्रयपयाय नय है। पयाय के दोना भेदो में से भी कात स्थायी व्यञ्जन पर्याय का मुख्यपेण ग्रहण करता है, इसलिये व्यञ्जन पर्याय नय ह। तथा ज्ञानाकार म द्रव्य सत् व पर्या मत ऐसे द्वैत में अद्वत का सकल्प करता है इसलिये नगम है। और इसका 'शुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है। यह तो इसका कारण हुआ और व्यञ्जन पर्याय के अस्तित्व का परिचय देना इस का प्रयोजन है।

७ अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय–

अशुद्ध अथ पर्याय पर मे अशुद्ध द्रव्य का सकल्प करना अशुद्ध द्रव्य अथ पयाय नैगम नय ह । अशुद्ध शब्द का अथ तो औदयिक

भया) । मुख है सो अर्थपर्याय है सो विशेषण है तातै गौण है । यह अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम है ।"

अशुद्ध अर्थ पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का परिचय देने के कारण अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नय है, और ज्ञानाकार के आश्रय अद्वैत में लक्ष्य लक्षण भेद रूप द्वैत का सकल्प करने के कारण नैगम नय है । इस प्रकार इसका 'अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है और अशुद्ध द्रव्य के स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

५ अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय –

'अशुद्ध द्रव्य अर्थ पर्याय नैगम नय' के समान ही इसके लक्षण का विस्तार समझना । अन्तर केवल इतना है कि यहा पर्याय रूप से किसी गुण के औदयिक भाव रूप चिरस्थायी व स्थूल व्यञ्जन पर्याय का ग्रहण किया जाता है । यहा भी द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक के विषय वाला ही होता है और पर्याय अशुद्ध पर्यायार्थिक के विषय वाली । इस प्रकार अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय को विशेषण या लक्षण बनाकर उस के आधार पर अशुद्ध द्रव्य रूप लक्ष्य का सकल्प करना ही इस नय का लक्षण है ।

जैसे 'दश प्राणो मे जीने वाला ही जीव है' ऐसा कहने में दश प्राण तो अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय है और उनसे जीने वाला ससारी जीव अशुद्ध द्रव्य है । यहा अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का सकल्प किया गया है । इसी बात की पुष्टि व अभ्यास निम्न उद्धरण पर से होता है ।

१ श्लो वा ।पु ४ ।पृ ४६ "ससारी अशुद्ध पर्याय पर से जीव का सकल्प करना (अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय है) ।

२ रा वा. हि ।१।३३।१९९ "जीव है सो गुणी है (ताकू यहू नैगम नय संकल्प करै है)। यहा जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है, सो विशेष्य है तातै मुख्य भया । बहुरि गुणी है सो व्यञ्जन पर्याय है । सो विशेषण है तातै गौण है । यहू अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम है ।"

अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का परिचय देने के कारण अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नय है, और मात्र ज्ञान के आश्रय पर अद्वैत मे 'लक्षण लक्ष्य' भेद रूप द्वैत का संकल्प करने के कारण नैगम नय है । इस प्रकार इसका 'अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय' ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है और अशुद्ध द्रव्य के स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है ।

७. नैगम नय के भेदो का समन्वय — इस विषय के विस्तृत विवेचन मे उठने वाली कुछ शंकाओ का समाधान अब कर देना योग्य है ।

१. **शंका** – द्रव्य पर्याय नैगम के प्रकरण मे शुद्ध द्रव्य व शुद्ध पर्याय का अर्थ 'सत्' सामान्य ही क्यो ग्रहण किया ? क्षायिक भाव क्यों नही ?

उत्तर – सत् स्वभाव सर्व जन सम्मत है और क्षायिक भाव अदृष्ट है इसलिये ऐसा किया है, पर क्षायिक भाव के ग्रहण का निषेध नही है ।

२ **शंका** – शुद्ध द्रव्यपर्याय नैगम मे द्रव्य पर से ही पर्याय का संकल्प करने में क्यो आया । पर्याय पर से भी द्रव्य का संकल्प क्यो करके नही दिखाया गया ?

उत्तर:– आधार या विशेषण सदा ही परिचित भाव स्वरूप होता है और आधेय या विशेष्य अपरिचित । सत् सामान्य

सव परिचित है पर पर्याय के सत का स्वीकार जरा कठिन पडता है इसलिये उसका प्रमुखत परिचय देना योग्य ही है। तहा भी त्रिकाली सत कारण है और क्षणिक सत् काय, इसलिये द्रव्य के अस्तित्व को ही विशेषण बनाया जा सकता है। क्षणिक अस्तित्व स्वय असिद्ध होने के कारण विशेपण वनाया जाने योग्य नही है।

३ शका – सूक्ष्म होने के कारण भले ही शुद्ध अथ पर्याय छद्मस्थ ज्ञान गम्य न हो पर क्षायिक भाव रूप केवल ज्ञानादि शुद्ध व्यञ्जन पर्याये तो किन्ही ज्ञानी जना के अनुमान का विपय है।

उत्तर – यह बात ठीक है, अत क्षायिक भावो का ग्रहण करने पर शुद्ध व्यञ्जन पर्याय को शुद्ध द्रव्य पर्याय का लक्षण वनाया जा सकता है। इसमे कोई विरोध नही। पर यहा विस्तार भय से उसका पथक ग्रहण नही किया है। अशुद्ध पर्याय पर से अशुद्ध द्रव्य का सकल्प कराने वाले अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगम नय की भाति ही यहा भी समझ लेना। या यो कहिये कि इन दोनो में लक्षण के प्रति कोई विशेपता न होने के कारण उसका पृथक ग्रहण नही किया है।

४ शका – अशुद्ध द्रव्य पर्याय नैगम के कथन में भी पर्याय पर से ही द्रव्य का सकल्प क्यो कराया गया, द्रव्य पर से भी पर्याय का सकल्प क्यो न कराया गया ?

उत्तर – द्रव्य अनुभव का विपय नही, पर्याय ही है शुद्ध हो कि अशुद्ध। अत पर्याय पर से ही शुद्ध या अशुद्ध द्रव्या के स्वभाव का निणय किया जा सकता है। पर्यायो के

परिचय के विना द्रव्य का एकान्त परिचय असम्भव होने के कारण उसे सर्वथा विशेषण नही वनाया जा सकता

५. शंका – नैगम नय मे भी सर्वत्र वर्तमान काल सूचक संज्ञा व्यवहार हुआ है और पर्यायार्थिक नय भी केवल वर्तमान समय को विषय करता है। तव लोक मे प्रचलित भूत व भावि संज्ञा व्यवहार किस नय का विषय वनेगा ?

उत्तरः– ऐसा व्यवहार नैगम नय का विषय ही वनेगा। यद्यपि इस प्रकार का प्रयोग नैगम नय के प्रकरण मे कही भी करके दिखाया नही गया है, परन्तु नैगम नय के द्वैत ग्राहक लक्षणो पर से इस वात को स्पष्ट देखा जा सकता है। "मै कल देहली गया था, या मै कल देहली जाऊँगा" इस प्रकार के सर्व प्रयोगों मे अदृष्ट रूप से द्वैत पढा जा रहा है, क्योकि कल शब्द आज की अपेक्षा रखकर ही प्रवृत्ति पाता है। द्वैत ग्राहक द्रव्यार्थिक नैगम नय मे ऐसा ग्रहण अवश्य किया जा सकता है। क्योकि वहा त्रिकाली पर्यायो मे अनुस्यूत एक द्रव्य की उपलब्धि होने के कारण, अथवा ज्ञान मे सकल्प मात्र उत्पन्न कर लेने के द्वारा, "जो मै कल देहली मे था, वही मै आज यहा हू" ऐसा अनुभव किया जा सकता है। दो पर्यायों मे परस्पर सम्मेल देखे विना अथवा कल्पना किये विना ऐसे प्रयोग को अवकाश नही। पर्यायार्थिक नय मे केवल एक वर्तमान पर्याय का ही ग्रहण होने के कारण इस प्रकार का सम्मेल वैठाया नही जा सकता। अतः इस प्रकार के प्रयोग पर्यायार्थिक नय मे गर्भित नही किये जा सकते।

६ शंका – भूत व भविष्यत पर्यायें वर्तमान वत् कैसे देखी जा सकती है ?

उत्तर – यह बात भली भांति समझा दी गई है कि नैगम नय का व्यापार वस्तु को त्रिकाली पर्यायो के अखण्ड पिण्ड रूप में देखना है अथवा वस्तु में सद्भाव व असद्भाव की पर्वाह न करके मात्र ज्ञानात्मक सकल्प में उसके दर्शन करना है ।

जिस ज्ञान में वस्तु की त्रिकाली पर्यायें फिल्म के फोटुओ वत् वर्तमान में ही पृथक पृथक यथा स्थान जड़ी हुई दिखाई देती है, उसके लिये क्या भूत और क्या भविष्यत् ? वहा तो जो फाड भी फोटो उठाकर विचार करो सो वर्तमान ही है । अथवा ज्ञानात्मक सकल्प में जिस किसी भी बात का विचार करें, सो तत्क्षण प्रत्यक्ष होने के कारण वर्तमान ही है । ज्ञानात्मक सकल्प के लिये भूत व भविष्यत कोई वस्तु है ही नही ।

इसी शंका का समाधान श्री राजवार्तिक मे निम्न प्रकार किया है ।—

रा वा ।१।३३।३।९५ "स्यादेतत् नाय नैगमनयविषय भावि संव्यवहार इति। तत् किं कारणम् ? भूत द्रव्यासन्निधानात । भूत हि कुमारतण्डुलादिद्रव्यमाश्रित्य राजौदनादिका भाविनी संज्ञा प्रवर्तते, न च तथा नैगमनय विषये किञ्चित् भूत द्रव्यमस्ति यदाश्रय भाविनी संज्ञा विधीयते ।"

अर्थ – "राजकुमार को कहना कि वर्तमान मे ही राजकुमार को राजा कहना अथवा चावल को भात कहना तो कोई नैगम नय का विषय प्रतीत नही होगा, क्योंकि यह तो केवल

उन उन पदार्थो मे भावि सज्ञा का व्यवहार मात्र है। इसके उत्तर मे ग्रन्थकार कहते है, कि ऐसा नही है, क्योकि सज्ञाकरण का व्यवहार तो केवल वस्तु भूत पदार्थ में ही होना सम्भव है, जैसे कि राजकुमार को या तदुल को योग्यता के आधार पर राजा व भात कह देना। परन्तु नैगमनय मे तो इस प्रकार का कोई वस्तुभूत पदार्थ ही सामने नही है, जिसको आश्रय करके कि इस प्रकार का व्यवहार सम्भव हो सके। इस नय का व्यापार तो मात्र कल्पना करना है।

७. शंका – केवल कल्पना तो कोई पदार्थ नही, फिर इस नैगम नय का स्वीकार किस प्रकार उपयुक्त है?

उत्तर – नयो के विषय मे यह आवश्यक नही कि व्यवहारगत उपयोगिता का ही विचार किया जाये, यहा तो ज्ञान की व्यापकता मे जो जो भी प्रतीति होनि सम्भव है, वह सव ही किसी न किसी नय का विषय है, ऐसा वताना अभीष्ट है।

राजवार्तिक कार इस शका का समाधान निम्न प्रकार करते है -

रा. वा ।१।३३।४।९५ "स्यादेतत् नैगम नय वक्तव्ये उपकारो नोपलभ्यते, भावि सज्ञा विषये तु राजादावुपलभ्यते, ततो नाय युक्त इति, तन्नकि कारणम्। अप्रतिज्ञानात् नैतदस्माभि, प्रतिज्ञातम् 'उपकारे सति भवितव्यम्' इति। कि तर्हि ? अस्य नयस्य विपय प्रदर्श्यते। अपि च, उपकार प्रत्यभिमुखत्वादुपकारवानेव।

अर्थ—शंकाकार कहता है कि भाविनैगम में जो यह आता है कि आगे उपकार आदि हो सकते हैं, पर नैगम नय में तो केवल कल्पना ही कल्पना है, अतः यह संव्यवहार के अनुपयुक्त है। इसके उत्तर में ग्रंथकार कहते हैं कि नयों के विषय के प्रकरण में यह आवश्यक नहीं है कि उपकार या उपयोगिता का विचार किया जाये। यहां तो केवल उनका विषय बताना है। अथवा संकल्प के अनुसार निष्पन्न वस्तु में आगे उपकारादि की संभावना भी है ही।

८ शंका—(श्लो वा ।१।३३।२७६।१०) में से उद्धृत—

"यह नैगम नय संग्राहिक और असंग्राहिक के भेद से यदि दो प्रकार का है, तो नैगम नय कोई स्वतन्त्र नय नहीं रहता है क्योंकि उसका कोई विषय नहीं पाया जाता। (अर्थात् यदि संग्रह और व्यवहार इन दोनों ही नयों का विषय इसका विषय है तो इसका अपना कोई स्वतन्त्र विषय नहीं रहता। यहां तीन विकल्प हो सकते हैं।)

(i) नैगम नय का विषय संग्रह है ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसको संग्रहनय ग्रहण कर लेता है।

(ii) नैगम नय का विषय व्यवहार भी नहीं हो सकता है, क्योंकि उसे व्यवहारनय ग्रहण कर लेता है।

(iii) और संग्रह और व्यवहार से अतिरिक्त कोई विषय भी पाया नहीं जाता है, जिसको विषय करने से पृथक् नैगम नय का अस्तित्व सिद्ध हो।"

उत्तर—"नैगमनय संग्रहनय और व्यवहारनय के विषय मे एक साथ प्रवृत्ति करता है, अत. वह संग्रह व व्यवहार नय मे अन्तर्भूत नही होता है; क्योकि उसका विषय इन दोनो के विषय से भिन्न है।"

(अर्थात उभय रूप से दोनो नयो के भेद प्रभेदो मे एकत्व की स्थापना करना इस नय का स्वतन्त्र विषय है।

शंका—'यदि ऐसा है तो दो प्रकार का (संग्राहिक व असंग्राहिक) नैगम नय नही बन सकता,?'

उत्तर—"नही, क्योकि, एक जीव मे विद्यमान अभिप्राय आलम्बन के भेद से दो प्रकार का हो जाता है। और अभिप्राय के भेद से उसका आधारभूत जीव दो प्रकार का हो जाता है इसमे कोई विरोध नही है। इसी प्रकार नैगमनय भी आलम्बन के भेद से दो प्रकार का है।"

(इसका तात्पर्य यह है कि जिस समय कोई वक्ता अभेद द्रव्य का आलम्बन करके द्रव्य का सामान्य परिचय देना चाहता है, तो नैगम नय अभेद ग्राही या संग्राहिक हो जाता है। उसी को द्रव्य नैगम कहते है। और जब उसकी पर्याय को आलम्बन करके उसी द्रव्य का विशेष परिचय देना चाहता है तो नैगम नय भेदग्राही या असंग्राहिक बन जाता है। उसी को पर्याय नैगम कहते है। परन्तु दोनो बार परिचय उस अखण्ड द्रव्य का ही देने के कारण इसका विषय संग्रह व व्यवहार से पृथक ही रहता है।

६ शंका—नैगमनय को द्रव्यार्थिक कैसे कहते हो?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर (ध.।१।८४।७) धवला मे निम्न प्रकार दिया है।

"एते अयोऽपि नया नित्यवादिन, स्वविषये पर्यायाभावत सामान्यविशेषकालयोरभावात् ।"

अर्थ—ये तीनो ही (नैगम, सग्रह व व्यवहार) नय नित्यवादी है, क्योकि इन तीनो ही नयो के विषय में सामान्य और विशेष काल का अभाव हैं । (नित्यवादी होने के कारण ही यह द्रव्यार्थिक है ।)

१० शका—नैगमनय यदि द्रव्यार्थिक है तो उसके भेदो म पर्याय नैगम का ग्रहण करके पर्याय को इसका विषय कसे बनाया जा सकता है ?

उत्तर—यद्यपि पर्याय नैगम में ऊपर मे देखने पर तो ऐसा ही प्रतीति में आता है कि नगमनय न वहा पर्याय को अपना विषय बना लिया है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ऐसा नही है। क्योकि पर्यायार्थिकनय उसे कहते हैं, जिसमें कि केवल एक पर्याय को ही एकत्व रूप से, द्रव्य की अन्य सब पर्याया स पथक निकाल कर एक स्वतत्र सत् के रूप मे विचारा जाये । उस विचारणा में उस समय उससे अतिरिक्त अन्य पर्याय की या अनस्यूत द्रव्य सामान्य की सत्ता रूप कोई वस्तु प्रतीति मे नही आती । परन्तु यहा नैगमनय में ऐसा प्रतीति होने नही पाता । यहा ता सवत्र द्वैत का ग्रहण किया गया है । यह नय द्रव्य के स्वभाव के आधार पर मे द्रव्य का और पर्याय के स्वभाव पर से पर्याय का, तथा इसी प्रकार द्रव्य पर से पर्याय का और पर्याय पर से द्रव्य का विचार करता है ।

पथक अकेली पर्याय का विचार करना यहा अभिप्रेत नही है । इस द्वैत भाव के ग्रहण के कारण पर्याय को विषय करने पर भी

इसका द्रव्यार्थिकपना नष्ट नही होता। क्योकि जैसा कि पहले वताया जा चुका है, लक्ष्य-लक्षण, विशेष्य-विशेषण अथवा कारण-कार्य आदि द्वैत-भाव द्रव्यार्थिक दृष्टि मे ही उत्पन्न किये जा सकते है। एकत्व ग्रहक पर्यायार्थिक मे ऐसा कोई भेद डाला नही जा सकता। पृथक अकेली पर्याय का विचार करना यहां अभिप्रेत नही है। इस द्वैत भाव के ग्रहण के कारण पर्याय को विषय करने पर भी इसका द्रव्यार्थिकपना नष्ट नही होता। क्योकि जैसा कि पहिले वताया जा चुका है, लक्षण-लक्ष्य, विशेषण-विशेष्य अथवा कारण-कार्य आदि द्वैत भाव द्रव्यार्थिक मे ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। एकत्व ग्राहक पर्यायार्थिक मे ऐसा कोई भेद डाला नही जा सकता।

११. **शंका**—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक व द्रव्य पर्यायार्थिक नैगम मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—दो धर्मियों मे एकता दर्शक द्रव्यार्थिक नैगम है, दो धर्मो मे एकता दर्शक पर्यायार्थिक नैगम है और धर्मी व उस के किसी धर्म मे एकता दर्शक द्रव्य पर्यायार्थिक नैगम है। सग्रह व व्यवहार इन दोनो के विषयो मे, अर्थात द्रव्य के अभेद स्वरूप व भेद स्वरूप मे गौण मुख्य भाव से एकता दर्शाना द्रव्यार्थिक नैगम का काम है। शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो मे गौण मुख्य भाव से एकता दर्शाना पर्यार्थिक नैगम का काम है और एक ही पदार्थ के सामान्य भाव के साथ उसी की शुद्ध व अशुद्ध पर्याय की एकता दर्शाना द्रव्य पर्यायार्थिक नैगम का काम है।

१२. **शंका**—सामान्य व विशेष से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—प्रत्येक पदार्थ द्रव्य क्षेत्र काल व भावइस चतुष्टय स्वरूप है। इन चारों ही वातों मे सामान्य व विशेष पढ़ा जा सकता है। अनेक व्यक्तिगत द्रव्यो मे अनुगत

एक जाति द्रव्यात्मक सामान्य है और वह व्यक्ति उसका विशेष है। अनेक सूक्ष्म प्रदेशों में अनुगत एक अखण्ड सस्थान क्षेत्रात्मक सामान्य है और वह एक प्रदेश उसका विशेष है। अनेक पर्यायो में अनुगत एक त्रिकाली सत कालात्मक सामान्य है और एक वर्तमान समयवर्ती पर्याय उसका विशेष है। अनेक शक्ति अशो या अविभाग-प्रतिच्छेदो में अनुगत एक गुण भावात्मक सामान्य है और वह एक शक्ति अश उसका विशेष है।

१३ शका—सामान्य और विशेष दोनो को ग्रहण करने के कारण नैगम नय को प्रमाणपना प्राप्त हो जायेगा।

उत्तर—नही होता, क्योकि प्रमाण ज्ञान में भेदाभेदात्मक समस्त वस्तु का बोध किसी एक धर्म को गौण और किसी एक धर्म को मुख्य करके नही होता, जबकि नैगम नय किसी एक धर्म को गौण और किसी एक धर्म को मुख्य करके वस्तु का ग्रहण करता है।

१० सक्षिप्त परिचय　उपरोक्त सब लक्षणो व शका समाधानो पर से यही दर्शाया गया है कि एक अखण्ड वस्तु कितने पहलुओ से पढी जा सकती है। केवल अखण्ड पिण्ड निर्विकल्प द्रव्य को देखकर उसका सामान्य परिचय प्राप्त किया जाता है। इसके अन्तर्गत पहिले उसके शुद्ध त्रिकाली एक सामान्य स्वभाव का ज्ञान कर और फिर उसकी त्रिकाली अन्य शुद्धाशुद्ध पर्यायो के सग्रह को दर्शाकर भी उसका परिज्ञान किया जाता है। उसी अखण्ड वस्तु का विभव जानने के लिये शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य की ओर से देखने का अभ्यास, द्रव्य नैगम तथा उसके शुद्ध व अशुद्ध भेदो द्वारा कराया गया। उसी अखण्ड एक अद्वैत वस्तु का विशेष परिचय देने के लिये पर्याय की ओर से भी उसे दर्शाया गया। पर्याय-नैगम व उसके अन्य

व व्यञ्जन तथा इनके भी शुद्ध व अशुद्ध भेदो द्वारा इस अर्थ की सिद्धि की गई । द्रव्य का इन सर्व पर्यायो से अद्वैत दर्शाने के लिये द्रव्य पर्याय नैगम व उसके शुद्ध व अशुद्ध भेदो का जन्म हुआ ।

और इस प्रकार वस्तु मे अनेक प्रकार से धर्मो की अपेक्षा, धर्मियो की अपेक्षा, धर्म व धर्मो दोनो की अपेक्षा, तथा भूत वर्तमान व भावि कालो की अपेक्षा द्वैत उत्पन्न करके उस एक अखण्ड वस्तु को समझाने का प्रयत्न किया गया । आगे आने वाले संग्रह व व्यवहार नयो द्वारा इसी अखण्ड वस्तु का विश्लेषण करके इसकी कुछ विशेषताओं का परिचय दिया जायेगा, ताकि यह पता चल जाय कि तीनो कालो में स्थित रहने वाली वह वस्तु अपने रूप बदलती हुई किस प्रकार चित्र विचित्र दिखाई दिया करती है ।

इतना ही नही बल्कि ज्ञान की अचिन्त्य महिमा का प्रदर्शन करने के लिये सकल्प मात्र की शक्ति का परिचय भी इस ज्ञान नय मे दिया गया है । ज्ञान के द्वारा वस्तु का सकल्प करने के लिये यह आवश्यक नही कि वह संकल्प ग्राह्य वस्तु सत् स्वरूप व प्रमाणभूत ही हो । ज्ञान मे तो अनेको व्यर्थ अप्रमाणभूत बाते भी नित्य उदय हो होकर विलीन हुआ करती है, जिनकी सत्ता यद्यपि बाह्य जगत की अपेक्षा असत् है, परन्तु अन्तरग के ज्ञानात्मक जगत की अपेक्षा वह सत् है । इस सत् को ग्रहण करना नैगम नय का ही कार्य है, क्योकि यह ज्ञान नय है ।

१३

-: संग्रह व व्यवहार नय :-

१. महा सत्ता व अवान्तर सत्ता, २. सग्रह नय सामान्य, ३. सग्रह नय विशेष, ४. व्यवहार नय सामान्य, ५. व्यवहार नय विशेष, ६. सग्रह व्यवहार नय समन्वय

१ महा सत्ता व अवान्तर सत्ता

जैसा की पहिले बताया चुका है, नैगम नय द्रव्यार्थिक या ज्ञान नय होने के कारण अत्यन्त व्यापक है । सकल्प मात्र ग्राही होने के कारण सद्भाव व असद्भाव दोनो इसके विषय ह । तहा असद्भाव तो अभावात्मक होने के कारण केवल ज्ञान नय का विषय बन सकता है, पर अथ नय का नही । परन्तु सद्भाव तो सद्रूव है, अत वह ज्ञान व अथ नय दोनो का विषय बन मकता है । सग्रह व व्यवहार नय क्योकि अथ नय है, अत इनको जानने के लिये हमें सद्भाव रूप सत का विश्लेपण करके उसका विशेष परिज्ञान प्राप्त करना होगा । सत् सामाय के

दो रूप है—महासत्ता व अवान्तर सत्ता । इन दोनो के दो रूप है—सामान्य व विशेष । एक विश्वव्यापी नित्य सत्ता तो महा सत्ता सामान्य है और अवान्तर सत्ता इसके विशेष है । इसी बात का विस्तार आगे किया जाता है ।

अपने अनेक अवान्तर भेदो से अनुगत यह सत् विश्व के रगमच पर नृत्य करता हुआ कैसे कैसे रूप धारण करके सामने आता है, और जगत के दर्शको को आश्चर्य अथवा धोके मे डाल देता है, और वे कि कर्त्तव्य विमूढ से खडे उसके उन रूपो को पहिचानने मे असमर्थ यही जानने नही पाते, कि वास्तव मे इन सर्व रूपो के पीछे छुपा हुआ था कौन ? ज्योही उन रूपो मे उलझकर वे उस रूप विशिष्ट सत् से प्रेम करने लगते है, त्योही वह अपना रूप बदल कर उनको रुला देता है । वे यह जान नही पाते कि जो विनष्ट हुआ है वह वास्तव मे सत् नही था, बल्कि सत् का एक क्षणिक रूप था । सत् तो अब भी जू का तू है । अत सत् तथा उसके सर्व रूपो या भेदो का परिचय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि ऐसा किये बिना यह नित्य का-रोना व हंसना बन्द नही हो सकता । इसी प्रयोजन की सिद्धि यह सग्रह व व्यवहार नययुगल, सत् मे द्वैत व अद्वैत उत्पन्न करके करता है ।

वस्तु का यदि कोई एक सामान्य लक्षण हो सकता है, तो वह सत् है, जो चेतन व अचेतन सर्व ही वस्तुओ मे व्यापकर रहता है । अर्थात जो कुछ भी है, वह ही वस्तु है । वह सत् ही दो प्रकार से देखा जा सकता है—महा सत्ता के रूप मे और अवान्तर सत्ता के रूप मे । लोक मे चेतन व अचेतन अनेको पदार्थ है जो अपनी अपनी स्वतत्र सत्ताये रखते है, अर्थात वे सदा से है और सदा रहते रहेंगे । न उनको किसी ने कभी बनाया है और न ही उनका कभी विनाश सम्भव है । यदि दृष्टि विशेष के द्वारा उन सर्व पदार्थो को पृथक

पृथक न देखकर उनमें अनुगताकार समात्र भाव को देखे, अर्थात उनके अस्तित्व मात्र को देखें, तो लोक में 'सत्' के अतिरिक्त और है ही क्या ? क्योकि जो कुछ भी है वह सत् को उल्लघन नही कर सकता। बस इस सत् सामान्य को ही महा सत्ता कहते है, और जिन पृथक पृथक पदार्थों में वह अनुगत है वे सब उसके अवान्तर भेद ही अवान्तर सत्ता कहलाते है। इन दोनो मे अवान्तर सत्तायें तो वस्तुभूत है, क्योकि अर्थ क्रियाकारी है, जैसे जीव की अर्थ क्रिया जानना और पुद्गल की अर्थक्रिया घट पट आदि का निर्माण करना है। परन्तु महा सत्ता कोई वस्तुभूत स्वतत्र पदार्थ नही है, वह तो दृष्टि विशेष मे आने वाली एक कल्पना है, जो सब ही भिन्न भिन्न पदार्थों को एक डोरे में पिरोकर उन्हें एकाकार कर देती है। अवान्तर सत्ताओ में तो द्रव्य, गुण व पर्याय आदि के अथवा उत्पत्ति विनाश व ध्रुवता के भाव पाये जा सकते है, परन्तु महा सत्ता में इन सबकी कल्पना भी सम्भव नही है। वह तो एक सामान्य भाव मात्र है, जो वस्तुओं के अस्तित्व के प्रति सकेत करता है।

इन दोनो को ही सामान्य व विशेष रूप में देखा जा सकता है। आइये अत्यन्त व्यापक अभेद दृष्टि के द्वारा इस विश्व की सत्ता का निरीक्षण करें। समस्त चेतनाचेतनात्मक इस रगविरगे विश्व को एक अखण्ड सत के रूप मे देखिये। यह समस्त विश्व है' इसके अतिरिक्त और कुछ विकल्प करने की आवश्यकता भी क्या ? वह जड व चेतन पदार्थों का समूह है, यह विचारने की आवश्यकता भी क्या ? जैसा कुछ भी चित्र विचित्र रूप वाला वह हो, 'वह है या नहीं' इतना ही विचार कीजिये। स्पष्ट है कि वह तो है ही है। बस यही भाव तो 'महा सत्ता' शब्द का वाच्य है। यह महा सत् अद्वैत है कि द्वैत, ऐसा विचार करने पर वह दोनो ही प्रकार से प्रतिभासित होता है, केवल निर्विशेष एकरूप ही ऐसा नहीं है। अद्वैत व द्वैत रूप दर्शन के लिये चार विकल्प उत्पन्न होने है—द्रव्य की अपेक्षा

द्वैताद्वैत, क्षेत्र की अपेक्षा द्वैताद्वैत, काल की अपेक्षा द्वैताद्वैत और भाव की अपेक्षा द्वैताद्वैत ।

सर्व प्रथम चारो विकल्पो से उसकी अद्वैतता को पढ़िये, पीछे द्वैत भाव को पढा जायेगा । ऐसा करने पर वह एक, सर्वव्यापी, नित्य व एक्यरूप ही प्रतीति मे आता है। सो कैसे वही वताता हूँ । द्रव्य की अपेक्षा देखने पर, वताइये वह उपरोक्त दृष्टि मे आने वाला महासत् क्या एक है या अनेक ? अनेक पदार्थो मे अनुगत होने के कारण क्या वह खण्डित होकर अनेक रूपो मे विखर गया है ! उत्तर स्पप्ट है कि नही, वह तो एक अखण्डित सत् ही है । यह द्रव्य की अपेक्षा उसमे अद्वैत हुआ । क्षेत्र की अपेक्षा विचार करने पर वह अधो लोक, मध्य लोक व उर्ध्व लोक रूप से तीन प्रकार का कहा जाने पर भी क्या तीन भागों मे विभाजित हो गया है ? उत्तर स्पप्ट है कि नही वह तो तीनो मे अनुगत एक सर्वव्यापी भाव है । यह क्षेत्र की अपेक्षा अद्वैत हुआ । काल की अपेक्षा विचारने पर एक के पश्चात् एक रूप से होने वाला, सत्युग व कलियुग आदि कालक्रम का व्यवहार होने पर भी, क्या वह 'सत्' क्रमवर्ती अनेक भेदो मे विभाजित हो गया है ? उत्तर स्पष्ट है कि नही वे तो त्रिकाल प्रतीति मे आने वाला एक नित्य भाव है । इसी प्रकार भाव की अपेक्षा विचार करने पर, भिन्न भिन्न पदार्थो के भिन्न भिन्न गुण दिखाई देने पर भी, क्या 'सत्' अनेक गुण रूप हो गया । क्या वह भी चेतन-अचेतन या मूर्त अमूर्त हो गया है ? उत्तर स्पष्ट है कि नही, वह तो इन सर्व भावो मे अनुगत तथा इन सवसे विलक्षण जैसा है वैसा एक्यरूप ही है । जिसे शब्द द्वारा नही कहा जा सकता । यह भाव की अपेक्षा इसका अद्वैत है । इस प्रकार द्रव्यो व भावो के विकल्प से रहित, तथा क्षेत्र व काल की मर्यादा से अतीत वह तो एक, सर्वव्यापी, नित्य व एक्यरूप है । द्वैत दृष्टि से देखने पर यद्यपि वह चेतन अचेतन आदि अनेक पदार्थ रूप दिखने लगता है, पर उपरोक्त अभेद व्यापक दृष्टि मे वह इन सर्व विकल्पो

से परे कोई एक सद्ब्रह्म मात्र अद्वैत तत्व है। यही महा सत्ता शब्द का वाच्य है।

अब तनिक भेद या द्वैत दृष्टि उत्पन्न करके देखिये। "वह उपरोक्त सत् क्या सर्वथा एक है" ऐसा विचार करने पर, चेतन अचेतन पदार्थों रूप इसके अवान्तर भेद दृष्टि से ओझल नही किये जा सकते। क्योंकि निर्विशेष सामान्य खरविषाण वत् होता है' ऐसा न्याय होने के कारण इन सब अवान्तर भेदो के अभाव में, वह सत् अनुगताकार रूप से किन म रहेगा ? अवान्तर भेदो के अभाव में उसका भी अभाव हो जायेगा। जैसे आम नीबू आदि वृक्ष विशेषो के अभाव म वृक्ष सामान्य की सत्ता कोई चीज नही। यह चेतन व अचेतन सत् ही उस महा सत की अवान्तर सत्ता कहलाती है।

इन दोनो में से भी चेतन को या अचेतन को यदि पृथक पृथक ग्रहण करें, तो इन्हें भी उपरोक्त प्रकार अभेद व भेद दोनो दृष्टिया मे पढा जा सकता है। अभेद द्रव्य दृष्टि से देखने पर पूर्ववत् ही वह चेतन सत मुक्त जीव व ससारी जीव आदि अपने अवान्तर भेदो म अनुगताकार रूप से रहने वाला एक है क्योकि चेतन सामान्य की अपेक्षा क्या मुक्त व क्या ससारी सब चेतन ह। अभेद काल दृष्टि से देखने पर क्रमवर्ती मनुष्य तिर्यगादि या बालक वृद्धादि अनेको अवस्थाओ में अनुगताकार रूप से नित्य स्थायी है। अभेद भाव की दृष्टि से देखने पर वह चेतन ज्ञान व चारित्रादि अपने अनेक गुणो म अनुगताकार रूप से रहने वाला, उनके पृथक पृथक स्वरूप स विलक्षण कोई एकरूप भाव वाला है। सत्ता के अवान्तर भेदो में क्षेत्र की अपेक्षा सर्वव्यापी पना नही देखा जा सकता, क्योंकि उनका क्षेत्र अपने अपने भेदो तक ही सीमित है। इस प्रकार द्रव्य व भाव की अपेक्षा निरन्तर और काल की मर्यादा से अतीत वह एक नित्य तथा एकरूप चिद्ब्रह्म मात्र अद्वैत तत्व है। यही अवान्तर सत्ता शब्द का

वाच्य है । इसी प्रकार पृथक से अचेतन के सम्बन्ध मे भी विचारने पर, उसे एक नित्य तथा एक्य रूप जड़ब्रह्म मात्र अद्वैत तत्व के रूप मे देखा जा सकता है । यह भी अवान्तर सत्ता का विषय है ।

पुन. भेद दृष्टि करने पर चेतन सत् मुक्त व संसारी इस प्रकार से दो भेदो मे विभाजित है, और अचेतन सत् पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल इस प्रकार से पाच भेदो मे विभाजित है। इन सर्व ही चेतन व अचेतन के भेदो को यदि पृथक पृथक अभेद सत्ता के रूप मे देखे तो पूर्व वत् ही वे सब ही, अपने अवान्तर भेदो रूप द्रव्यो मे, तथा क्रमवर्ती उन द्रव्यों की पर्यायो मे तथा सहवर्ती उनके अनेक गुणों मे अनुगताकार रूप से रहते हुए, एक, नित्य व एक्यरूप अद्वैत तत्व के रूप मे देखे जा सकते है। और इसी प्रकार इनके भी आगे के सर्व अवान्तर भेद प्रभेदो को पृथक पृथक ग्रहण करकरके उन-उन की पृथक पृथक अद्वैत सत्ता को देखा जा सकता है। अभेद दृष्टि से देखे गये सर्व ही सत् अवान्तर सत्ता कहलाते है ।

अपने अपने अवान्तर भेदो मे अनुगत रूप से देखा गया प्रत्येक ही सत् अद्वैत होने के कारण सामान्य है, और उसके वे अवान्तर भेद उसके विशेप है। जैसे चेतन अचेतन रूप अवान्तर भेदो मे सादृश्य अस्तित्व रूप महा सत्ता तो सामान्य है और ये चेतन अचेतन उसके विशेप है । इसी प्रकार मुक्त व ससारी रूप अवान्तर भेदों मे अनुगत चेतन की अवान्तर सत्ता तो सामान्य है और ये मुक्त व ससारी उसके विशेष है। इस प्रकार महा सत्ता व अवान्तर सत्ताओ की सामान्य व विशेप भावो रूप यह श्रृखला तब तक चलती रहती है जब तक कि वह अन्तिम अवान्तर भेद प्राप्त नही हो जाता जिसका कि आगे भेद किया जाना सम्भव न हो । इनमे से सामान्य सत्ता को स्वीकार करने वाला सग्रह नय है और विशेष सत्ता को ग्रहण करने वाला व्यवहार नय है।

२ सग्रह नय सामान्य — उपरोक्त सब वक्तव्य व उदाहरणो पर से सग्रह नय का लक्षण निकाला जा सकता है ।

जाति या व्यक्ति रूप से दिखने वाले द्रव्यात्मक द्वैत का, अथवा गुण पर्याय आदि रूप से दीखने वाले भावात्मक द्वैत का, तथा इसी प्रकार क्षेत्र व काल की सीमा का, निरास करके, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो की अपेक्षा ही, किसी तत्व को अद्वैत देखना सग्रह नय का लक्षण है । इस दृष्टि में महा सत्ता या अवान्तर सत्ता, जिस किसी को भी देखा जाये वह द्रव्य की अपेक्षा एक काल की अपेक्षा नित्य और भाव की अपेक्षा स्व लक्षणभूत एकरूप अखण्ड रस मात्र दिखाई देता है । अपनी जाति के अनेक द्रव्यो में एकता की स्थापना करना सग्रह नय का काम है, जैसे 'गाय एक पशु है' ऐसा कहना भले ही व्यक्ति की अपेक्षा वे अनेक हो । सग्रह नय वास्तव में जाति को देखता है व्यक्ति को नहीं ।

अब इन लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण दखिये —

१ लक्षण न० १ —(शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय भूत अद्वैत सत्)

१ क पा० । १ । १८२।२१६।१ "शुद्ध द्रव्यार्थिक पर्यायकलक-रहित सद्भेद सग्रह ।"

(अर्थ —द्रव्य के अन्दर दीखने वाले गुण व पर्यायो के अनेको भेदो या अशो का सग्रह करके, पर्याय कलक रहित एक अखण्ड व अद्वैत द्रव्य की सत्ता का दर्शन कराना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।)

२ रा१ वा० ।१६।४०१ ४ आत्मजातीयाविरोधेनैकध्यमुपानीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात् सग्रह ।

अर्थ—(अभेद रूप से जो वस्तु की जाति मात्र को समूह रूप से संग्रह करके ग्रहण करे वह संग्रह नय है।)

३. ध०। ६। १७०। ५"तत्र सत्तादिना य सर्वस्यपर्यायिकलकाभावेन अद्वैतत्वमध्यवस्येति शुद्ध द्रव्यार्थिक स संग्रह."

(**अर्थ**—व्यवहार नय के द्वारा किये गये द्रव्य के भेद प्रभेदो की अपेक्षा न करके, सत्ता आदि रूप से किये गये, सर्व भेदों के कारण से लगने वाले, पर्याय रूप कलक का निरास करते हुए, उसके अद्वैत पने को जो दर्शाता है ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ही संग्रह नय है।)

४ ध० ।१३।१६६। २ "व्यवहारमनपेक्ष्य सत्तादिरुपेण सकलवस्तु-संग्रहाक· संग्रह नय है।"

अर्थ—व्यवहार नय की अपेक्षा न करके सत्तादि रूप से सकल वस्तु को संग्रह करने वाला अर्थात उस मे अद्वैत दर्शाने वाला संग्रह नय है।)"

५ध० ।१।८४।२ विधिव्यतिरिक्तप्रतिषेधानुपलम्भात विधिमात्रमेव तत्वमित्यव्यवसाय समस्तस्य ग्रहणात्संग्रह । द्रव्यव्यति-रिक्त पर्यायानुपलाम्भाद् द्रव्यमेव तत्वमित्यध्वसायो वा संग्रह ।एते त्रयोऽपि नया नित्यवादिन स्वविषये पर्यायाभावत. सामान्य विशेषकालयोरभावात् ।"

(**अर्थ**—विधि रहित प्रतिषेध कोई वस्तु नही इसलिये "विधि अर्थात सत् मात्र ही तत्व है" इस प्रकार वस्तु के अखडत्व का निश्चय करने के कारण इस नय को संग्रह नय कहते है। अथवा द्रव्य से रहित कोई पर्याय उपलब्ध नही

होती इसलिये "द्रव्य ही तत्व है' इस प्रकार का निश्चय संग्रह नय है। यह तीनों नैगम, संग्रह व व्यवहार नय नित्य वादी ह, क्योंकि अपने विषयों को यह अभेद रूप से ग्रहण करते ह। तीनों में ही अपन अपन विषय म पर्याय न होने के कारण सामान्य विशेष ज्ञान का अभाव है।

६ का अ।२७२ "य संग्रहणाति सव दश वा विविध द्रव्यपर्याय अनुगमलिंगविशिष्ट सोऽपिनय संग्रह भवति।२७२।"

जो नय सव वस्तुओं को तथा देश अर्थात एक वस्तु क भेदों को अनेक प्रकार द्रव्य पर्याय सहित अन्वय लिंग स विशिष्ट संग्रह करता है—एक स्वरूप कहता है, वह संग्रह नय है।

७ रा वा।४।४२।१७।२६१।४ 'तत्र संग्रह सत्त्वविषय, सकल वस्तुतत्व सत्वे अन्तर्भाव्य संग्रहात्।'

(अर्थ—संग्रह नय वस्तु के सत्व का विषय करता है, क्योंकि सकल वस्तु तत्वत सत्व में गर्भित हो जाती ह।

म० नि० १।३३।८०६ "द्रवति गच्छति तान्स्ता पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रह।"

(अर्थ—"उन उन पर्यायों को जो प्राप्त होता है सो द्रव्य है ऐसे लक्षण वाले जीव या अजीव पदार्थ तथा उन सबके भेद प्रभेदों को अभेद करके ग्रहण करने वाला संग्रह नय है।)

७ लक्षण न० २ (व्यक्ति भेद न करके जाति को एक कहना)

१ स. म. ।२८।३११ ।७ "सग्रहस्तु अशेषविशेषतिरोधानद्वारेण सामान्यरूपतया विश्वमुपादत्ते ।"

(अर्थ —सग्रह नय सम्पूर्ण विशेष धर्मो की अपेक्षा को छोडकर उनके तिरोधान द्वारा, सामान्य धर्म की मुख्यता लेकर जितने मे वह सामान्य धर्म रहता हो, उस सम्पूर्ण विषय को ग्रहण करता है । इस प्रकार'सत्' कहकर सर्व विश्व को, 'जीव' कह कर सम्पूर्ण जीवो को, 'घट कह कर सम्पूर्ण घटो को ग्रहण कर लेता है ।

रा वा. ।१।३३।५।६५"स्वजात्यविरोधेन एकत्वोपनयात् । केपाम् ? भेदानाम् । समस्तग्रहण सग्रहोयथा 'सत्' 'द्रव्य' 'घट' इति । 'सत्' इत्युक्ते सत्तासबन्धार्हाणा द्रव्यपर्यायिद्भे-दप्रभेदाना तद्व्यतिरेकात् तेनैकत्वेन सग्रहः । 'द्रव्यम्' इति चोक्ते जीवाजीवतभ्देदप्रभेदाना द्रव्यत्वाविरोधात्तेनैकत्वेन सग्रह । 'घट' इति चोक्ते नामादि भेदात् मृत्सुवर्णादिका-रणविशेषाद् वर्णसस्थानादिविकाराच्च भिन्नाना घटशब्द-वाच्याना तदव्यतिरेकादेकत्वेन सग्रह ।"

(अर्थ.—अपनी अपनी जाति की वस्तुओ को अविरोध रूप से उनके सर्व भेदो मे एकत्व का ग्रहण होने के कारण, समस्त भेदो को एक रूप मे ग्रहण करे सो सग्रह नय है । जैसे 'सत्' 'द्रव्य' 'घट' व इत्यादि कहना । 'सत् ऐसा कहने पर सत्ता के सम्बन्ध से जिनकी प्रसिद्धि होती है ऐसे द्रव्य पर्याय व उनके भेद प्रभेदो का, उस सत् से भेद न होने के कारण उसको एक सत् रूप से ग्रहण करना सग्रह है । 'द्रव्य' ऐसा कहने पर, जीव अजीव तथा उनके भेद प्रभेदो को द्रव्यत्व के साथ अविरोध द्वारा उसको एक द्रव्य रूप से ग्रहण करना सग्रह है । 'घट' ऐसा कहने पर, नामादि के

भेदो से अथवा मिट्टी सोने आदि कारण विशेष भेदो से, अथवा वण व आकार आदि विकारो के भेदो से भिन्न रूप तथा एक घट शब्द के वाच्य उसके सर्व भेद उस एक घट से भिन्न नही होने के कारण उसको एक घट रूप से ग्रहण करना सग्रह नय है ।

३ रा वा हि ।१ ।३३ ।२०० 'द्रव्य मे सर्व द्रव्यानि का पर्यायनि में सव पर्यायनिय का जीव मे सव जीवनि का, पुग्दल म सव पुग्दलनि का सग्रह (सो सग्रह नय है ।)

४ प का ।ता व ।७१ ।१२३ 'सवजीवसाधारण शुद्धजीव-जातिरूपेण सग्रहनयेनैकश्चैव महात्मा ।"

(अर्थ—सव जीव साधारण शुद्ध जीव जाति रूप स सग्रह नय के द्वारा एक महात्मा रूप से ही ग्रहण करने में आते ह ।)

इन सव उद्धरणा पर से यही दर्शान का प्रयत्न किया गया है कि, सग्रह नय द्रव्य के अन्तरग भेदा अर्थात गुणों व पर्यायो को तथा उसके वाह्य जाति भेदो को सग्रह करके द्रव्य के एकत्व को दर्शाता है। सव भेदो को सग्रह करके कहने के कारण यह सग्रह नय है। यह तो इस नय का कारण है । और द्रव्य के भेदो को एकत्व दशाना इस नय का प्रयोजन है । जैसे कि स्याद्वाद मञ्जरी में कहा है—

स म ।२८ ।३१५ ।श्लो २ 'सद्रूपताऽनतिक्रान्त स्वस्वभावमिद जगत उद्धत सत्तारूपया सव सगृह्णन सग्रहो यत ।२।'

अर्थ—सत्व धम को नही छोडते हुए सव पदाथ अपने अपने स्वभाव में अवस्थित ह । इस लिये सत्व धम की अपेक्षा मुख्य करके सग्रह नय सभी जगत को एक रूप ग्रहण करता है ।

सग्रह नय सामान्य के उपरोक्त लक्षण पर से यह बात स्पष्टत:

३. संग्रह नय विशेष

ग्रहण करने मे आती है कि संग्रह नय दो प्रकार की सत्ता को अद्वैत रूप से विषय करता है--- महासत्ता को तथा अवान्तर सत्ता को । विषय भेद की अपेक्षा सग्रह नय के भी इसलिये दो भेद स्वीकार किये गये हं- शुद्ध सग्रह या सामान्य सग्रह तथा अशुद्ध संग्रह या विशेष संग्रह । महासत्ता ग्राहक शुद्ध संग्रह है और अवान्तर सत्ता ग्राहक अशुद्ध सग्रह है। इन दोनो के पृथक पृथक लक्षण व उदाहरण आदि देखिये ।

१ शुद्ध संग्रह नयः-

शुद्ध संग्रह नय द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इन चारो ही अपेक्षाओं से जगद्व्यापी एक महासत्ता सामान्य को एक सर्वव्यापी नित्य अद्वैत तत्व के रूप मे ग्रहण करता है । इस दृष्टि मे उस महा सद्ब्रह्म सामान्य के अतिरिक्त इस लोक मे और कुछ है ही नही । सद्ग्राहक इस दृष्टि मे भेद है ही कहा जो कि इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई दे । अत अद्वैतवादियो का सर्व कथन ठीक ही है, क्योकि समस्त अवान्तर भेदो का समूह रूप एक अखण्ड तत्व ग्रहण कर लिया गया तब उससे अतिरिक्त उन सर्व भेद प्रभेदो की स्वतत्र सत्ता की प्रतीति को अवकाश कहा रह गया। इस दृष्टि से देखने पर सर्व चेतन व अचेतन पदार्थ एक सत् जाति मे गर्भित हो जाते है । अत. समस्त विश्व एक रूप दीखने लगता है । इस प्रकार एक सामान्य सत् से अतिरिक्त चेतन आदि अवान्तर भदो की भिन्न सत्ता कैसे देखी जा सकती है ? इसी दृष्टि को शुद्ध द्रव्यार्थिक नय भी कहते हं। सद्द्वैत वादियो के सिद्धान्त का आश्रय यही दृष्टि है । सो इस दृष्टि या नय से देखने पर उनका सिद्धात बिल्कुल सत्य है, यदि वे आगे आने वाली व्यवहार दृष्टि का निषेध न करे तो ।

अब इसी लक्षण की पुष्टि मे निम्न उद्धरण देखिये –

१ व न च २०९ "अपर परम विरोधे सवमस्तीति शुध्द संग्रहेण ।"

अर्थ–शुध्द व अशुध्द का अविरोध हो जाने पर सब अस्ति रूप है, ऐसा शुध्द संग्रह के द्वारा ग्रहण होता है।

२ नय चक्र गद्य प १४ "यदन्योन्याविरोधेन सव सवस्य वक्तिय । सामान्य संग्रह प्रोक्तश्चैकनजाति विशेषक ॥"

अथ–एक दूसरे में विरोध किये बिना जो सबको सबका कहता है अर्थात सबको मिलाकर एक अद्वैत महा सत्ता में गर्भित कर देता है, वह सामान्य या शुध्द संग्रह है। और एक जाति में रहने वाले सब व्यक्तियों को एक रूप से कहने वाला विशेष या अशुध्द संग्रह है।

आ प ।९। प ७७ "सामान्य संग्रहो यथा-सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधानि ।'

अथ -सामान्य संग्रह तो ऐसा है जैसे कि "सब द्रव्य परस्पर में अविरोधी है' ऐसा कहना। सत सामान्य में सब समा जाते हैं जड हो या चेतन ।

४ स म ।२८।३१७।७ " (श्री देवसूरिना) अविशेष विशेषेषु औदासीन्य भजमान शुद्ध द्रव्य सन्मात्रमभिमन्यमान पर-संग्रह ।विश्वमेक सद विशेषादिति यथा॥ '

अथ –श्री देव सेन सूरि के मतानुसार सामान्य व विशेषों में उदासीनता को भजन वाला अर्थात सामान्य जाति व

विशेप व्यक्तियो की अपेक्षा किये विना, शुध्द द्रव्य को सन्मात्र मानने वाला शुध्द सग्रह नय है। जैसे 'कोई भी विशेषता न होने के कारण यह सारा विश्व सत् है" ऐसा कहना।

यह इस नय के उध्दरण हुए, अव इसका कारण व प्रयोजन देखिये। विश्व मे स्थित जव सम्पूर्ण पदार्थ अस्तित्व रूप ही है, और यह वात सर्व सम्मत है, तो विश्व मे अस्तित्व सामान्य के अतिरिक्त और रह ही क्या गया। इस सामान्य अस्तित्व का प्रत्यक्ष ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है। यदि यह सामान्य अस्तित्व दृष्टि मे नही आता तो इस नय की भी कोई आवश्यकता न होती। वस्तु के अद्वैत स्वभाव को या सर्व के एक सामान्य स्वभाव को दर्शाना इसका प्रयोजन है।

२ अशुद्ध संग्रह नयः—

शुद्ध सग्रहवत् अशुध्द सग्रह भी तत्व की द्रव्य क्षेत्र काल भाव गत अद्वैतता को ही ग्रहण करता है। अन्तर केवल इतना है कि उसका विषय महा सत्ता था और इसका विषय अवान्तर सत्ता है। इस दृष्टि मे चेतन तत्व या अचेतन तत्व एक एक सत्ता वाले है, व नित्य है तथा स्वलक्षण भूत एक अद्वैत स्वभाव वाले है। इसी प्रकार ससारी व मुक्त, त्रस व स्थावर, दो इन्द्रिय आदि पचेन्द्रिय पर्यन्त क जीव अथवा पृथ्वी आदि वनस्पति पर्यन्त की धातु इत्यादि सर्व ही यद्यपि व्यक्ति की अपेक्षा अनेक अनेक है परन्तु एक जाति सामान्य की अपेक्षा वे एक एक है। भले ही व्यक्ति की अपेक्षा वे उत्पत्ति व विनाश युक्त हो पर जाति की अपेक्षा वे त्रिकाली स्थायी है। भले ही व्यक्ति की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वभाव व वर्णादि आकार वाले हो पर जाति की अपेक्षा वे एक स्वभावी है। इस प्रकार द्रव्य काल व भाव तीनो ही अपेक्षाओ से उन सर्व मे तथा अन्य भी अवानन्तर

सत्ताभत पदार्थों में अद्वैत दर्शाना इस नय का विषय है। जैस कि "गाय एक पश है" ऐसा कहने मे सब ही प्रकार की सब ही गायो का, गाय की जाति सामान्य मे सग्रह करके, उसे एक कह दिया जाता है।

जब इसकी पुष्टि के लिये कुछ आगमोक्त उध्दरण दखिये—

१ व न च ।२०६ "भवति स एव अशुध्द एक जाति विशेष ग्रहणेंन ।'

अथ—वही शुध्द सग्रह का विषय अशुध्द सग्रह का बन जाता है जब कि उसके द्वारा ग्रहण किये गये एक अद्वत सत में अवान्तर सत्ताभूत पृथक पथक एक एक जाति विशप की अद्वैतता को ग्रहण किया जाता है।

२ श्रा प ।६। प ७७ "विशेष सग्रहो, यथा-सर्वे जीवा परस्परम विरोधिन"

अथ—विशे० सग्रह नय को ऐसा जानो जैसे कि' सब जीव परस्पर में अविरोधी अर्थात एक है" ऐसा कहना।

३ स म ।२८।३१७।१० "द्रव्यत्वादीनि अवान्तर सामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेपु गजनिमीलिकामवलम्बमान पुनरपर सग्रह । धर्माधर्माकाशकालपुद्गल जीवद्रव्याणामक्य द्रव्यत्वाऽभेदात् इत्यादियथा ।"

अथ-द्रव्यत्व पर्यात्व आदि अवान्तर सामान्यो को मानकर उनके भेदो में मध्यस्थ भाव रखना अपर या अशुद्ध सग्रह नय है । जैसे द्रव्यत्व की अपेक्षा धम, अधम, आकाश, काल पुदगल, और जीव एक एक है ।

अब इस नय के कारण व प्रयोजन बताता हू । सत् रूप से एक होते हुए भी वह महा सत्ता अनेको जाति के पदार्थों रूप देखने मे आती है । इसलिये जब एक को खण्डित करके उसमे अनेक जातीयता का व्यवहार करने मे आता है, तब एक जाति की व्यक्तिगत अनेकता का निरास करके उसमे एकत्व की स्थापना करना इसका कार्य है । जाति की अपेक्षा करने पर उन सर्व व्यक्तियों मे दीखने वाला एकत्व या सग्रह ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है । यदि जाति रूप से सर्व व्यक्ति एक देखने मे न आये होते तो यह नय भी न होती । तब तो वचन व्यवहार भी असम्भव हो गया होता ।

जैसे कि 'गाय एक पशु विशेष है' ऐसा कहने का व्यवहार है । यदि लोक की सर्व गायो मे यह एक गायपने वाली एक जातीयता न होती तो गाय किसे कहते ? प्रत्येक गाय को पृथक पृथक नाम देना पडता । जब एक को गाय कहेगे तो दूसरी को गाय न कह सकेगे, क्योकि एक जातीयता के अभाव मे दोनो का नाम एक होना विरोध को प्राप्त हो जायेगा । अनन्तानन्त जड व चेतन व्यक्तियो के लिये पृथक पृथक शब्द रखकर वचन व्यवहार चलना असम्भव है । यही इस नय की उत्पत्ति का कारण है ।

वस्तुओ के व्यक्तिगत भेदो मे एक जातीयता उत्पन्न करके वचन व्यवहार को सम्भव बनाना तथा व्यक्तिगत भेदो मे एक अभेद जातीयता का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है ।

४. व्यवहार नय सामान्य

शुध्द संग्रह नय का लक्षण करते हुए यह बात बताई गई थी कि महासत्ता ग्राहक वह नय जगत को एक अद्वैत सद्ब्रह्म के रूप मे देखता है । इस दृष्टि से देखने पर सदद्वैत वादियो का सिद्धात कि "जगत मे एक सत् ही है, उससे अतिरिक्त सर्व भ्रम है" बिल्कुल सत्य है । भल है केवल यह कि

इसके सहवर्ती दूसरे व्यवहार नय का लोप करने के कारण वे लोग इस अद्वैत सत् का विश्लेषण पूर्वक कथन करने में अथवा उसे समझने व समझाने में असमर्थ हैं।

काश कि साथ में रहने वाले उस व्यवहार नय के विषय को भी यथा योग्य रूप में स्वीकार कर लेते तो वास्तव में एकान्त से किसी सर्वदा अद्वैत सत की सत्ता देखी नहीं जा सकती। वह पूर्व कथित अद्वैत सत् किसी विशेष दृष्टि से देखने पर द्वैत रूप भी दिखाई देता है। अद्वैत सत् का यह अर्थ नहीं कि कोई संख्या में एक ही पदार्थ सत नामका है, जो सकल ब्रह्माण्ड में व्याप कर रहता है, बल्कि यह है कि सकल वस्तु समूह सामान्य स्वभाव की अपेक्षा सत्स्वरूप है। अर्थात उसके जितने भी अवान्तर भेद प्रभेद हैं वे सब ही यथार्थ हैं। उन सब भेदों को भ्रम मात्र कहकर किसी एक संख्यक सत की स्थापना करना केवल कल्पना है सत्य नहीं, क्योंकि ऐसा प्रत्यक्ष विरुद्ध है। जो नित्य प्रतीति में आता है उसे स्वीकार न करना अपने को धोखा देना है। अतः सब ही शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नय के विषयों का स्वीकार करके, यथा योग्य रूप में इस अद्वैत सत् में बाह्य में दृष्ट जाति व व्यक्तिगत भेद तथा उनके अभ्यन्तर स्थित गुण पर्यायादि कृत भेद देखना न्याय संगत है। वे गौण संगत हैं। वे गौण किये जा सकते हैं पर निषिद्ध नहीं।

द्वैत के बिना अद्वैत का कोई अर्थ नहीं, अतः दोनों को वस्तु स्वरूप में स्थान देना योग्य है। सामान्य के बिना विशेष और विशेष के बिना सामान्य गधे के सींग के समान असत् है। जहां विशेष ही नहीं वहां सामान्य भी किसे कहेंगे? जहां अनेकपना नहीं वहां एकपना किसे कहेंगे। समानपने का नाम ही सामान्य है। पर अनेकता के बिना वह समानता कैसे दृष्ट हो सकेगा। अतः

व्यक्ति या व्यष्टि की अपेक्षा जो तत्व अनेको अवान्तर जातियो मे विभक्त है, तथा एक एक यह अवान्तर जाति भी अनेको व्यक्तियो मे विभाजित है, वही तत्व समष्टि की अपेक्षा एक है । इस प्रकार वस्तु स्वरूप सामान्य विशेष उभय रूप है। इनमे से सामान्य रूप को ग्रहण करने वालासग्रण नय है और विशेप रूप को करने वाला व्यवहार नय है सग्रह नय किसी भी वस्तु को वह महा सत्ता रूप हो या अवान्तर सत्ता रूप, अद्वैत रूप मे मे देखता है, और व्यवहार नय उसके द्वारा ग्रहण किये गये उसी अद्वैत महा सत्ता से व अवान्तर सत्ता मे द्वैत उत्पन्न कर देता है। अद्वैत देखने के कारण सग्रह नय शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है और द्वैत देखने के कारण व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहलाता है । अशुद्ध कहने का तात्पर्य यह नही कि उसका विपय असत् है, बल्कि यह है कि वह भेद ग्राहक है ।

सामान्य व विशेष दोनो अश वस्तु मे साथ साथ रहते है, इसलिये उनके ग्राहक सग्रह व व्यवहार नय भी सदा साथ रहते है, या यो कहिये कि वे दोनों सगे भाई है। संग्रह के बिना व्यवहार का और व्यवहार के बिना सग्रह का कोई विपय नही, जैसे कि पिता के विना पुत्र और पुत्र के बिना पिता का कोई अर्थ नही । द्वैत या भेद करने या विशेप अश को देखने का क्या तात्पर्य है इसी वात को स्पप्ट करता हू ।

एक किसी वस्तु को लेकर उसमे जाति व व्यक्तिगत भेद डाले । उन जाति या व्यक्ति गत भेदो मे से प्रत्येक को पृथक पृथक स्वतन्त्र वस्तु रूप से ग्रहण करके पु न उनमे भेद डाले । और इसी प्रकार इन प्रभेदो को भी पृथक पृथक ग्रहण करके पुन उनमे भेद डाले । और इस प्रकार वरावर भेद डालते जाये जब तक कि वह अन्तिम भेद प्राप्त न हो जाये जिस का पुन भेद न किया जा सके । यही वस्तु का विश्लेषण करने का उपाय है । इसी को विभाजन या व्यवहार

करना भी कहते है। यहा यह समझना कि जहा भेद डालने का काम हो वहा तो व्यवहार नय का व्यापार होता है, और जहा उन भेदो में से किसी एक को पथक निकाल कर एक जाति रूप स्थापित करने का काम हो, वहा सग्रह नय का व्यापार होता है। यही व्यवहार व सग्रह नय की मैत्री है।

उदाहरण के रूप में महासत्ता एक अद्वैत सद्ब्रह्म है। वह दो भेद रूप है—चेतन व अचेतन। इनमें से चिद्ब्रह्म अर्थात चेतन दो भेद रूप है—ससारी व मुक्त। इनमें से ससारी भी दो भेद रूप है—त्रस व स्थावर। स्थावर भी पाच भेद रूप है—पृथ्वि, जल, अग्नि, वायु, व वनस्पति। वनस्पती भी दो प्रकार है—साधारण व प्रत्येक। प्रत्येक नाम वाली वनस्पति अनेको प्रकार की है-घास, फल फूल, पत्र आदि। फल अनेक प्रकार के ह सतरा केला अमरूद आदि। एक अमरूद भी यद्यपि एक है परन्तु अनेको परमाणुओ का पिण्ड होने के कारण अनन्त परमाणुओ रूप से विभाजित किया जा सकता है। आगे परमाणु का भेद नही किया जा सकता। इसी प्रकार जिस किसी भी वस्तु के उत्तरोत्तर भेद प्रभेद करते हुए अन्तिम भेद तक पहुचा जा सकता है। यहा केवल इतनी वात ध्यान में रखने योग्य है कि उपरोक्त दृष्टान्त में अमरूद तक के सब भेद तो व्यवहार गत हैं अर्थात सब सम्मत ह, परन्तु अन्तिम जो परमाणु कृत भेद है वह व्यवहार गत नहीं है, क्योकि परमाणु पृथक रह कर किसी प्रत्यक्ष कार्य की सिद्धि करने मे असमर्थ है। इसलिये भेद करने की उपरोक्त प्रक्रिया में यहा अमरूद तक के व्यवहार गत भेदो का ही ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु परमाणु कृत भेद का नही।

भेद भी चार प्रकार से किया जा सकता है द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा व भाव की अपेक्षा। द्रव्य गत भेदो का कथन ऊपर किया जा चुका है। क्षेत्र कृत भेद प्रदेश भेदको कहते ह। जीव

पदार्थ असख्यात प्रदेश वाला है, अमरूद नाम का उपरोक्त फल अनन्त प्रदेश या परमाणु वाला है ऐसा क्षेत्र भेद का उदाहरण है। काल कृत भेद पर्याय भेद को कहते हैं। यद्यपि तात्विक दृष्टि से उपरोक्त द्रव्य गत भेद भी पर्यायिकृत है पर साक्षात वदलते हुए-दिखाई न देने के कारण उनमे द्रव्य पने का व्यवहार होता है। मनुष्य की वालक युवा व वृध्द अवस्थाये अथवा उपरोक्त अमरूद की खट्टी, मीठी, ताजी व वासी आदि अवस्थाये काल कृत भेद के अन्तर्गत आती है, क्योकि इनमे होने वाला परिवर्तन प्रत्यक्ष देखा जाने के कारण, इनको स्वतत्र द्रव्य स्वीकार नही किया जाता। इनका व्यवहार अवस्थाओ या पर्यायो रूप से ही करने मे आता है। भाव कृत भेद पदार्थ मे गुण गुणी विकल्प उत्पन्न करके किया जाता है, जैसे "जीव ज्ञान दर्शन आदि गुणो का आधार है, अथवा सत् उत्पाद व्यय व ध्रुव स्वभाव वाला होता है "ऐसा कहना।

अखण्ड पदार्थ मे चारों ही प्रकार से भेद डालना व्यवहार नय का काम है। उदाहरणार्थ जीव द्रव्य को ससारी मुक्त कहना द्रव्य गत व्यवहार है, जीव द्रव्य को असंख्यात प्रदेश वाला कहना क्षेत्रगत व्यवहार है, मनुष्य सामान्य को वालक युवा व वृध्द तीन अवस्थाओ वाला कहना काल गत व्यवहार है तथा जीव द्रव्य को ज्ञानादि गुणों वाला कहना भावगत व्यवहार है। इन चारों प्रकार के भेदो को तथा मुख्यत:-काल कृत भेद को आगे ऋजुसूत्र नय का विषय भी वनाया जायेगा परन्तु इन दोनो नयों के ग्रहण मे महान् अन्तर है, जो आगे यथा स्थान बताया जायेगा।

संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अभेद विषय के, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव रूप चतुष्ट की अपेक्षा, अवान्तर भेद प्रभेद या विशेष दर्शाना व्यवहार नय का लक्षण है। सत् सामान्य जीव व अजीव के भेद से द्वि रूप है या जीव द्रव्य ससारी व मुक्त के भेद से द्विरूप

है, अथवा द्रव्य गण पर्यायवान है ऐसा कहना इसका उदाहरण है। अव इसकी पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगमोक्त उध्दरण देखिये।

१ स मि ।१।३३।५१० "सग्रहनयाक्षिप्तानामर्थाना विधिपूर्वक-मवहरण व्यवहार ।"

अथ – सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अथ या पदार्थों का विधि पूवक व्यवहार करना या भेद करना व्यवहार नय है।

(ग वा ।१।३३।६६)

२ आ प १६।५०१२४ "सग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहार ।"

(अर्थ—सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अथ के भेद रूप से, जो वस्तु में व्यवहार करे अर्थात भेद उत्पन्न करे वह व्यवहार नय है।

३ स० म० ।२८।३१७।१४ "सग्रहेण गोचरीकृतानामर्थाना विधि-पूर्वकमवहरण येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहार । यथा यत् सत् तद् द्रव्य पर्यायो वेत्यादि।"

(अर्थ—सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थों या विषयों में विधि पूवक-भेद रूप व्यवहार जिस के अभिसधान द्वारा किया जाता है सो व्यवहार नय है—जैसे "जो सत् है सो द्रव्य रूप या पर्याय रूप होता है" ऐसा कहना।)

४ त० गा० ।१।४६।३८ "सग्रहेण गृहीतानामर्थाना विधिपूर्वक । व्यवहारो भवेद्यस्माद् व्यवहारनयस्तु स १४६।"

(अर्थ —संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थो में विधि पूर्वक जिस से व्यवहार या भेद किया जाता है वह व्यवहार नय है ।)

५ ध० ।१।८४।४ "संग्रहनयानिक्षिप्तानामथानां विधि पूर्वक मवहरण भेदनं व्यवहार:, व्यवहारपरतन्त्रो व्यवहार नय इत्तर्थ: ।"

(अर्थ —सग्रह नय मे निक्षिप्त अर्थो का विधि पूर्वक भेद करना व्यवहार है ! अथवा लौकिक व्यवहार का अनुसरण करने वाला व्यवहार नय है ।

६ क० पा० ।१।२२०।गा ८६ "दब्बट्ठियणयपयडी सुद्धा सगह-परूवणाविसओ । ।
पडिरूवं पुण वयणत्थणिच्छओ तस्य ववहारो ।।८९।।'

(अर्थः—द्रव्यार्थिक नय की शुद्ध प्रकृति सग्रह नय की प्ररुपणा का विषय है । उसके प्रत्येक अर्थात भेद रूप पने के वचनो का निश्चय उसका व्यवहार है ।)

७ का० अ०।२७३ "यत् सग्रहेण गृहीत विशेषरहितमपि भेदयति सततं । परमाणुपर्यन्त व्यवहारनय भवेत् सोऽपि ।२७३।"

(अर्थ —जो संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये विशेष रहित विषय मे भी सतत भेद करता हुआ परमाणु या अत्यन्त सूक्ष्मता तक पहुँच जाता है, उसे व्यवहार नय कहते है ।)

व्यवहार का अर्थ भेद करना है । सग्रह नय के द्वारा भेदों का सग्रह किया जाता है और व्यवहार नय के द्वारा उस संग्रह मे भेद डाला जाता है इसलिये डसका "व्यवहार नय" ऐसा नाम सार्थक

ही है। यह तो इस नय का कारण हुआ। और वस्तु की विशेषताओ व उसके भेद प्रभेदो का परिचय देना, अथवा सग्रह के विषय पर से कदाचित् ग्रहण कर लिये गये एक अद्वैत ब्रह्म के एकात का निरास करके, यथा योग्य रूप से विश्व की अनेकता का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है। वैशेषिको की दृष्टि का आधार यही नय है।

५ व्यवहार नय विशेप — इस नय के दो भेद है–शुद्धार्थ भेदक व्यवहार और अशुद्धाथ भेदक व्यवहार। अब उनका ही कुछ कथन किया जाता है।

१ शुद्धार्थ भेदक व्यवहार —

शुद्ध सग्रह नय के विषय मे भेद डालने वाले नय को शुद्धाथ भेदक व्यवहार नय कहते ह, जैसा कि निम्न उद्धारणा पर से विदित है। शुद्ध सग्रह का विषय एक अद्वत महा सत्ता है। उसम भेद डालकर "यह सत् जीव व अजीव के भेद से दो प्रकार का है, या जड व चेतन के भेद से द्रव्य सामान्य दो प्रकार का है' ऐसा कहना शुद्ध सग्रह भेदक या शुद्धाथ भेदक व्यवहार है। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१ न च।२१० "य सग्रहेण गृहीत भिनत्ति अथमशुद्ध शुद्ध वा। स व्यवहारो द्विविधो शुद्धाशुद्धाथ भेदकर।२१०।

(अर्थ —जो शुद्ध सग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये शुद्ध अथ को भेद रूप करता है सो शुद्धाथ भेदक व्यवहार नय है।

२ आ प।६।प ७८ "सामान्यसग्रह भेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवा जीवा।

(श्लो वा।१।३३।५९)

अर्थ—विशेष या अशुद्ध संग्रह भेदक व्यवहार नय को ऐसा जानो जैसे जीवको संसारी व मुक्त ऐसे दो प्रकार का कहना।

३ नय चक्र गद्य। पृ० १४ "विशेषसंग्रहस्यार्थो जीवादीरूपभेदत। भिनत्ति व्यवहारस्त्वशुद्धसंग्रहभेदक.।२।"

(अर्थ—जीव अजीव आदि भेद रूप जो विशेष संग्रह नय का विषय है, उसे जो विभाजित करता है वह अशुद्ध संग्रह भेदक व्यवहार नय है।

क्योकि अशुद्ध संग्रह की विषयभूत अवान्तर सत्ताओ मे भेद डालता है इसलिये "अशुद्धसंग्रह भेदक या अशुद्धार्थ भेदक व्यवहार "ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह तो इस नय का कारण है। और विश्व की चित्रता विचित्रता को दर्शाना इसका प्रयोजन है।

यद्यपि संग्रह व व्यवहार नयो मे द्वैताद्वैत का ग्रहण द्रव्यमुखेन ही करने मे आया है, परन्तु क्षेत्र, काल व भाव पर भी समान रूप से इसे लागू किया जा सकता है। जैसे कि द्रव्य या सत् सामान्य को जीव अजीव व मनुष्य तिर्यञ्च आदि भेद करते हुए परमाणु पर्यन्त भेद करना द्रव्यगत द्वैताद्वैत है। अनन्त प्रदेशों से असंख्यात व संख्यात आदि विकल्पों रूप भेद करते हुए एक प्रदेश पर्यन्त भेद करना क्षेत्र गत द्वैताद्वैत है। अनाद्यनन्त काल से लेकर युग, कल्प, वर्ष, मास, व दिन आदि प्रमाण स्थिति वाली पर्यायों रूप से भेद करते हुए एक समय प्रमाण स्थिति वाली पर्याय पर्यन्त भेद करना कालगत द्वैताद्वैत है। किसी भी एक गुण के अनन्त गुणांश या अविभागप्रतिच्छेदो से लेकर असख्यात संख्यात आदि रूप से भेद करते हुए एक गुणांश पर्यन्त भेद करना भावगत द्वैताद्वैत है। यह चारों ही प्रकार के द्वैताद्वैत इन द्रव्यार्थिक नयों के विषय है।

यहा तक सग्रह व व्यवहार इन दोनो के लक्षण व उनके भेद आदि दर्शा दिये गये । अब कुछ शकाओ का समाधान करने में आता है ।

६ सग्रह व व्यवहार नय समन्वय

१. शका –सग्रह नय को शुद्ध द्रव्यार्थिक और व्यवहार नय को अशुध्द द्रव्यार्थिक क्यो कहा जाता है ?

उत्तर –सग्रह नय सग्रह रूप प्ररूपणा को विपय करता है, क्योकि सत्ता या द्रव्य के रूप में अभेद वस्तु को ग्रहण करता है । इसलिये वह द्रव्यार्थिक अर्थात सामान्य ग्राही नय की शुध्द प्रकृति है । व्यवहार नय सत्ता भेद या द्रव्य भेद से वस्तु को ग्रहण करता है इसलिये वह द्रव्यार्थिक नय को अशुध्द प्रकृति है ।

व्यवहार नय को द्रव्यार्थिक नय की अशुध्द प्रकृति कहने का कारण यह है, कि व्यवहार नय यद्यपि सामान्य धम की प्रमुखता से वस्तु का ग्रहण करता है और इसलिये वह द्रव्यार्थिक है, परन्तु फिर भी वह सामान्य अर्थात अभेद म भेद मानकर प्रवृत्त होता है इसलिये वह द्रव्यार्थिक होते हुए भी उसकी अशुध्द प्रकृति है । इसका यह अभिप्राय है कि सत्ता सामान्य में उत्तरोत्तर भेद करने वाला व्यवहार नय है ।

२. शंका –सग्रह नय केवल सत्ता सामान्य को ही ग्रहण नही करत अपितु उत्तर या अवान्तर भेदो को भी ग्रहण करता है, फिर इसमे व व्यवहार नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर –सग्रह नय के शुध्द सग्रह व अशुध्द सग्रह दो भेद ह । शुध्द सग्रह महासत्ता को और अशुध्द सग्रह अवान्तर सत्ता को

ग्रहण करता है। वास्तव मे व्यवहार नय के विषय से इस अशुद्धसग्रह का विषय भिन्न है। क्योंकि व्यवहार का कार्य एक मे अनेकता उत्पन्न करना है, और अशुद्ध सग्रह का विषय उन अवान्तर भेदो को पृथक पृथक ग्रहण करके प्रत्येक मे एकता को ग्रहण करता है।

उदाहरण के रूप मे व्यवहार नय का कहना है कि जीव द्रव्य मनुष्य तिर्यन्चो आदि के भेद से अनेक प्रकार का है, और संग्रह नय का कहना है कि जीव द्रव्य सामान्य एक ही है। व्यवहार नय का कहना है कि पशु पक्षी आदि के भेद से तिर्यन्च अनेक प्रकार का है और सग्रह नय का कहना है कि तिर्यन्च सामान्य एक है—इत्यादि।

२ **शंका**—व्यवहार नय द्रव्यपर्यायो का आश्रय करके वस्तु मे भेद डालता है, क्योकि मनुष्य तिर्यन्च आदि द्रव्य नही बल्कि द्रव्य पर्याय है। फिर भी इसे द्रव्यार्थिक क्यो कहा, पर्यायार्थिक क्यो नही ?

उत्तर—इस श का का उत्तार आगम मे निम्न प्रकार दिया है।

ध ।१।पृ ८४।१६ "ये तीनो ही (नैगम, संग्रह और व्यवहार) नय नित्यवादी है, क्योकि, इन तीनो ही नयो का विषय पर्याय न होने के कारण इन तीनो ही नयों के विषय मे सामान्य और विशेष काल का अभाव है।

इसका तात्पर्य यह है कि व्यवहार नय के द्वारा जिन भेदों का का ग्रहण किया जाता है वे या तो द्रव्य है या द्रव्यपर्याय। एक समय वर्ती अर्थ पर्याय के भेदो को यह ग्रहण नही करता क्योकि वह प्रत्यक्ष नहीं है। द्रव्य पर्याय भी यद्यपि पर्याय है पर लौकिक व्यवहार मे उन्हे द्रव्य रूप से ही ग्रहण किया जाता है जैसे कि जन्म

से मरण पर्यन्त रहने वाला मनुष्य एक स्वतन्त्र द्रव्य समझा जाता है, परन्तु जीव द्रव्य की पर्याय नही। इसी मनुष्य मे आगे पीछे दीखने वाली बालक युवा व वृद्ध रूप अवस्थाये अवश्य लौकिक दृष्टि से पर्याय रूप में ग्रहण होती है। मनुष्य पर्याय से पहिले यह जीव किस पर्याय मे था और मृत्यु के पश्चात यह किस पर्याय में चला गया यह प्रत्यक्ष न होने के कारण उसे पदार्थ समझा जाता है। बालक युवा आदि अवस्थाओ का पूर्वोत्तर कालवर्ती पना स्पष्ट होने के कारण इन्हें पर्याय गिना जाता है। इसीलिये कहा जा सकता है कि व्यवहार नय की विषयभूत मनुष्य आदि पर्यायो में व्यवहारिक दृष्टि से सामान्य व विशेष काल का अभाव है।

४ शंका—संग्रह नय के विषय में द्रव्यादि चतुष्टयगत भेद उत्पन्न करना व्यवहार नय का, और व्यवहार नय के भेदो को पुन अद्वैत रूप मे ग्रहण करना संग्रह नय का काम है। पुन संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये उस अद्वैत पदार्थ में अवान्तर भेद करना व्यवहार का और व्यवहार गत भेदो को पुन अद्वैत रूप से ग्रहण करना संग्रह नय का काम है। इस प्रकार की व्याख्या में अनवस्था का प्रतिभास होता है ?

उत्तर—ऐसा नही है, क्योकि जैसा कि पहिले बता दिया गया है कि इस भेद प्रभेद की सीमा वहा जाकर समाप्त हो जाती है जहां कि अन्तिम भेद प्राप्त हो जाय। अन्तिम भेद से तात्पर्य यहा द्रव्य क्षेत्र काल व भाव का वह अन्तिम खण्ड है जिसका कि पुन छेद न किया जा सके। द्रव्य का अन्तिम भेद परमाणु है, क्षेत्र का अन्तिम भेद आदि मध्य अन्त रहित एक प्रदेश है, काल का

खट्टा मीठा आदि न चखना तो बताओ तो सही कि क्या यह सम्भव हो सकेगा ? ऐसा होना असम्भव है। यही कारण है कि विशेषो या भेदो रहित सामान्य को गधे के सींग वत् असत् कहा गया है। बिना विशेषो को स्वीकार किये या उनको भ्रम मात्र कहकर उनके प्रति आंख मूद लेने मे उस सामान्य सत् को कहा व कैसे खोज सकेंगे ? इन रूपो मे ही तो वह सत् बैठा हुआ है। इनसे बाहर किसी दूसरे दिव्य देश में उसका निवास हो ऐसा नही है। अतः इन रूपो को भ्रम कहने पर वह सत् भी भ्रम मात्र होकर रह जायेगा। इस लिये उस सत् का ही साक्षात कराने के लिये उसके भेद रूप इन रूपो को दर्शाने वाले इस व्यवहार को स्वीकारना योग्य ही है।

दूसरे केवल सत् नाम के पदार्थ का तो लोक मे व्यवहार चल नही सकता जिसका व्यवहार ही नही चल सकता या जो वस्तु लोक मे कुछ काम ही नही आ सकती उसका वस्तु पना भी क्या ? अतः विना इन रूपों के व्यवहार को स्वीकारे वह सामान्य सत् अवस्तु हो जायेगा अर्थात् विना व्यवहार के सत् भी अपनी सत्ता को सुरक्षित न रख सकेगा। इस लिये व्यवहार नय के विषय को यथा योग्य रूप से स्वीकारना ही चाहिये। स्याद्वाद मञ्जरी व राज वार्तिक मे यही कहा भी है।

स. म ।२८।३११।२३ "व्यवहारस्त्वेवमाह। यथा लोक ग्राहमेव वस्तु अस्तु, किमनया अदृष्टाव्यवह्रियमाण वस्तु परिकल्पन् कष्टपिष्टिकया। यद्देवच लोक व्यवहारपथमवतराति तस्यै वानुग्राहकं प्रमाणमुपलभ्यते नेतरस्य। न हि सामान्य-मनादि निधनंमेकं संग्रहाभिमत प्रमाणभूमि: तथानुभवा-भावात्। सर्वस्य सर्व दर्शित्वप्रसंगाच्च। नापि विशेषा परमाणुलक्षणाः लोकव्यापारोपयोगिनामेव वस्तुत्व तथा च वाचक मुख्य (उमास्वामी), "लौकिक सम उपचारप्रायो विस्तृतार्थो व्यवहारः "इति।

(अर्थ—'लोक में ग्रहण की जाने वाली या नित्य ही जानने व देखने मे आने वाली ही वस्तु है" ऐसा व्यवहार का लक्षण है । अदृष्ट तथा व्यवहार में न आने वाली वस्तु की कल्पना का कष्ट करने से क्या 'जो द्रव्य लोक व्यवहार पथ पर चलते है उनको ही ग्रहण करने वाले प्रमाण की उपलब्धि होती है, इसके अतिरिक्त अन्य का प्रमाण ज्ञान कुछ नही है । एक कोई अनादि निधन, सग्रह नय के द्वारा स्वीकारा गया, 'सत्' प्रमाण भूमि को स्पर्श नही करता, क्योकि (रूपो रहित) ऐसे सत् के अनुभव का अभाव है । तथा यदि एक ही सत् स्वीकारा जायेगा, तब तो प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी रूप रग आदि देख रहा है वह उस अद्वैत सत् को ही देख रहा है । सब ही सत को देखने के कारण सर्व दर्शी बन बैठेंगे, तब तो भगवान के केवल ज्ञान की या उसके सर्व दर्शी पने की क्या विचित्रता रही ? परमाणु लक्षण वाला कोई सामान्य से पृथक विशेष ही ऐसा भी नही है । लोक व्यवहार में आने वाली ही वस्तु होती है । 'वाचस्पति उमास्वामी' ने भी कहा है—

"लौकिक व्यवहार के अनुसार उपचरित अर्थ को बताने वाले विस्तृत अर्थ को व्यवहार कहते है ।'

१४

ऋजुसूत्र नय

१. ऋजुसूत्र नय का सामान्य परिचय, २. ऋजुसूत्र नय सामान्य के लक्षण, ३. ऋजुसूत्र नय के कारण व प्रयोजन, ४. ऋजुसूत्र नय के भेद प्रभेद व लक्षण, ५. ऋजुसूत्र नय सम्बन्धी शंकायें।

१ ऋजुसूत्र नय का सामान्य परिचय

वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है। अनेको भेदो या अशों मे अनुस्यूत या अनुगत एक अद्वैत भाव को सामान्य और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भेदो या अंशो को विशेष कहते है। 'सत्' सामान्य तत्व है और अनेको जातियो व व्यक्तियो मे विभक्त द्रव्यात्मक भेद, क्षेत्रात्मक प्रदेश, कलात्मक पर्याय और भावात्मक गुण उसके विशेष हे। इन विशेषो मे भी पुन पृथक पृथक सामान्य विशेष कल्पना की जा सकती है। द्र य सामान्य तत्व है और मनुष्य तिर्यंचादि परमाणु पर्यन्त के भेद

उसके विशेष है। उस द्रव्य का अनन्त प्रदेशी अखण्ड देश सामान्य क्षेत्र है और असख्यात सख्यात आदि एक प्रदेश पर्यन्त के भेद उसके विशेष है। उस द्रव्य की त्रिकाल स्थिति सामान्य काल है तथा असख्यात व सख्यात वर्ष, मास दिन आदि की स्थिति वाली स्थूल पर्यायो से एक समय प्रमाण स्थिति वाली पर्याय पर्यन्त के भेद उसके विशेष है। उस द्रव्य के ज्ञानादि गुण सामान्य भाव है, तथा उन गुणो के शक्ति अश या अविभाग प्रतिच्छेद उस के विशेष है।

इनमें से सामान्य को ग्रहण करने वाला नय द्रव्यार्थिक है और विशेष को ग्रहण करने वाला नय पर्यायार्थिक है। द्रव्यार्थिक मे भी दो विकल्प है शुद्ध व अशुद्ध या सग्रह व व्यवहार। इन दोनो नया का युगल पूर्व कथित रूप में उस सामान्य तत्व में द्वताद्वैत दर्शाता हुआ उसे उस अन्तिम विशेष पर्यन्त ले जाता है जिसमें कि आगे द्वैत किया जाना सम्भव न हो। जैसे कि द्रव्य का अन्तिम विशेष है जाति की कल्पना से रहित प्रत्येक व्यक्ति की पृथक सत्ता, क्षेत्र का अन्तिम विशेष है आदि मध्य अन्त रहित एक प्रदेश, काल का अन्तिम विशेष है एक सूक्ष्म समय प्रमाण स्थिति वाली सूक्ष्म पर्याय, और भाव का अन्तिम विशेष है गुण का एक अविभागी प्रतिच्छेद या शक्ति अश।

इन अन्तिम विशेषो में किसी भी प्रकार द्वैत सम्भव नही होने के कारण इनकी अपनी अपनी पृथक पृथक सत्ता का सम्बन्ध किसी भी प्रकार से अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव से या उसके किसी भी विशेष से नही किया जा सकता। जहा द्वैत ही सम्भव नही वहा अद्वैत दर्शन का प्रश्न ही क्या? इसलिये यद्यपि इस अन्तिम विशेष मे पूर्व के सब विशेषो को अद्वैत रूप से सग्रह नय ग्रहण कर लिया करता था, जिसमे कि व्यवहार नय आगे आगे द्वैत करता जाता था, परन्तु इस अन्तिम विशेष को अब वह सग्रह नय अपना विषय नही बना सकता और इसलिये न ही व्यवहार नय का कुछ व्यापार उसमें शेष रह जाता है।

पूर्ण एकत्व गत ये विशेष या अंश ही पर्यायार्थिक नय के विषय हैं। उसे ही ऋजुसूत्र नय कहते हैं। अद्वैत मे तो द्वैत रहता है पर एकत्व मे अनेकत्व नही रहता। इसलिये अद्वैत ग्राही संग्रह के साथ तो द्वैत ग्राही व्यवहार नय रहता है, परन्तु एकत्व ग्राही ऋजुसूत्र नय के साथ अन्य कोई नही रहता। इसलिये यद्यपि द्रव्यार्थिक अर्थ नय के दो भेद हैं, परन्तु पर्यायार्थिक अर्थ नय एक ही है, इसके भेद नही है। सामान्य मे विशेष रहता है, पर विशेष मे अन्य विशेष नही। इसीलिये द्रव्यार्थिक नय का विषय द्वैत व अद्वैत है तथा पर्याया-र्थिक नय का विषय एकत्व है।

यद्यपि अद्वैत व एकत्व दोनों ही निर्विकल्प होते है परन्तु दोनों मे कुछ अन्तर है। अद्वैत मे द्वैत रहता है, परन्तु उसका विकल्प गौण कर दिया जाता है। जबकि एकत्व मे द्वैत किया ही नही जा सकता, अत: तहा उसे गौण करने का प्रश्न ही नही। अद्वैत की चरम सीमा पर जिस प्रकार संग्रह नय ग्राहक ब्रह्माद्वैतवादी बैठा है इसी प्रकार एकत्व की चरम सीमा पर ऋजुसूत्र नय ग्राहक बौद्ध बैठा है। दोनो ही निर्विकल्प व शुद्ध दृष्टि वाले है।

एकत्व ग्राहक ऋजुसूत्र का विषय दर्शाने के लिये उदाहरण देता हूँ। सर्व परमाणु पृथक पृथक स्वतंत्र द्रव्य है। उन सबका स्वरूप भी जुदा है, अर्थात एक का स्वरूप दूसरे से नही मिलता। वह पर-माणु आदि मध्य अन्त की कल्पना से अतीत एक प्रदेशी है। अनेक परमाणुओ का परस्पर मे स्पर्श ही सम्भव नही, फिर उनके द्वारा कोई अखण्ड स्कन्ध की कल्पना करना निरर्थक है। स्थूल दृष्टि मे दीखने वाले इन स्थूल पदार्थो मे भी सर्व परमाणु अपने स्वतत्र सत्ता व भिन्न भिन्न स्वभावों मे ही स्थित है, भले ही स्थूल दृष्टि मे उनकी वह पृथकता दिखाई न दे। एक परमाणु का दूसरे परमाणु से द्रव्यात्मक क्षेत्रात्मक कालात्मक कि भावात्मक कोई भी सम्बन्ध नही है। वह

परमाणु केवल एक समय स्थायी है। एक समय के पश्चात उसका निरन्वय नाश हो जाता है, और दूसरा ही कोई परमाणु उत्पन्न होता है। इस प्रकार सत् का विनाश व असत् का उत्पाद होता है, अर्थात जो अब है वह नष्ट हो जाता है और जो नही है वह उत्पन्न हो जाता है। पहिले वाले से उस नवीन उत्पन्न होने वाले का कोई सम्बन्ध नही। रूप रस गन्ध आदि अनेक गुण परस्पर में सयोग को प्राप्त नही हो सकते, अत अनेक गुणो का कोई अखण्ड पिण्ड द्रव्य होता हो एसा नही है। वह परमाणु तो स्वलक्षणभूत किसी एक अवक्तव्य भाव स्वरूप ही है। इस प्रकार द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो में एकत्व दर्शाना इस नय का विषय है। इस नय की दृष्टि में जो बालक था वही वृद्ध नही हुआ है। बालक कोई और था जो विनिष्ट हो गया है और वृद्ध रूपेण कोई और ही उत्पन्न हुआ है। यही एकत्व का अथ है।

यद्यपि लौकिक दृष्टि में यह बात बैठनी कुछ कठिन पडेगी, क्योंकि उनकी दृष्टि व्यवहार नय प्रमुख रहती है परन्तु कभी कभी इस एकत्व दष्टि का भी प्रयोग होता हुआ दखा जाता है। जसा कि स्वण की भस्म बन जाने पर उसे स्वण कहता हुआ कोई नही देखा जाता, तब तो वह स्वण से विलक्षण कोई अन्य स्वभाव का धारी पदाथ ही दृष्टि मे आता है। सूक्ष्म दृष्टि करने पर उपरोक्त बात की सत्यता स्वत सिद्ध हो जायेगी। यह अभिप्राय ऋजुसूत्र के अनेको लक्षणो पर से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

पर्याय शब्द का अथ यद्यपि काल मुखेन ग्रहण करने की रूढि प्रसिद्ध है, परन्तु वास्तव में पर्याय शब्द का अथ अश है, वह द्रव्यात्मक हो या क्षेत्रात्मक हो या कालात्मक हो या भावात्मक हो। इन चारो प्रकार के अशो का नाम ही पर्याय शब्द का वाच्य है, अत पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र नय इन चारो ही प्रकार के अशो या विशेषो की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है।

२. ऋजुसूत्र नय सामान्य के लक्षण

अब ऋजुसूत्र नय के कुछ लक्षण करने मे आते है, जिन पर से कि उपरोक्त कथन और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा। परन्तु उसे समझने के लिये दृष्टि को अत्यन्त सूक्ष्म करना होगा। चारो प्रकार से एकत्व दर्शाने के लिये यद्यपि इस नय के अनेको लक्षण किये जायेगे, पर वास्तव मे वे सब ही ऊपर कथित एकत्व मे गर्भित हो जायेगे।

१ लक्षण न० १—ऋजु का शब्दार्थ सरल या सीधा है। जो सरल या सीधे अर्थको ग्रहण करे वह ऋजुसूत्र नय है, यह इसकी व्युत्पत्ति है। सरल का अर्थ यहा एकत्व ही है। पदार्थ म द्रव्य गुण पर्यायादि की अपेक्षा भेदाभेद करने से बुद्धि चक्कर मे पड़ जाती है, अत. द्रव्यार्थिक का विषय तो वक्र है। जो कोई भी एक है, बस वही वह है, अन्य के साथ उसका कोई नाता नही है, ऐसा जानना ही सरल व सीधा जानना है। अत: इस लक्षण के द्वारा उसी एकत्व का ग्रहण होता है।

२ लक्षण न० २—वस्तु के द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारों अपेक्षाओ से अन्तिम विशेष की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकारने वाले इस नय की दृष्टि मे विशेषो मे अनुगत सामान्य नाम की कोई वस्तु नही क्योकि उन अन्तिम एकत्वगत विशेषो मे अन्य विशेप नही रहते।

३ लक्षण न० ३:—द्रव्य की व्यक्ति ही सत्ताभूत है। दो व्यक्तियो मे किसी भी अपेक्षा समानता नही बन सकती, अत जाति नाम की लोक मे कोई वस्तु नही। दो पृथक पृथक पदार्थो का सयोग होना भी असम्भव है, और इसलिये अनेक परमाणुओं का एक स्कन्ध मानना दृष्टि का भ्रम है। तब जीव व शरीरादि के संयोग स्वरूप ससारी जीव को मानना तो कहां अवकाश पा सकता है। द्रव्य आदि मध्य अन्त रहित निरवयव ही होता है, क्योकि अवयव मानने पर तो उसमें द्वैत उत्पन्न किया जा सकता है।

४ लक्षण न० ४ –एकत्व दृष्टि में कर्ता-कम, कारण-काय, तथा आधार आधेय आदि किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही देखा जा सकता क्योकि जहा एक प्रदेशी एक क्षणवर्ती व एक भावस्वरूप पदार्थ दृष्ट हो वहा किसे द्रव्य कहें, किसे गुण कह व किसे पर्याय कहें, किसे क्षेत्र कहें, किसे काल कहें व किसे भाव कहें ? वह एक प्रदेश ही तो स्वय द्रव्य है, अत इस द्रव्य का यह क्षेत्र या प्रदेश है, ऐसा द्वैत कैसे किया जा सकता है ? क्योकि ऐसा भेद वहा ही सम्भव है जहा कि एक द्रव्य के अनेक प्रदेश हो। एक क्षण वर्ती वह वर्तमान रूप ही तो स्वय द्रव्य है अत 'यह वतमान का रूप इस द्रव्य की पर्याय है' ऐसा भेद कैसे किया जा सकता है, क्योकि ऐसा भेद वहा ही सम्भव है जबकि उस द्रव्य में उस वर्तमान रूप के अतिरिक्त उससे पहिले व पीछे वाले अन्य रूप भी देखे जाये। स्वलक्षण भूत जो एक भाव, उस स्वरूप ही तो वह द्रव्य स्वय है, अत 'यह गुण इस द्रव्य का है' ऐसा भेद कैसे किया जा सकता है, क्योकि ऐसा भेद वहा ही सम्भव है जहा कि एक द्रव्य के आश्रित अनेको धम या भाव रहते हो।

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इन चारो अपेक्षाओ से जहा एकत्व दिखाई दे रहा है, वहा किसको कर्ता कहें और किसको कर्म, किसको कारण कहें और किसको काय, किसको आधार कहे और किसको आधेय ? पदाथ स्वय एक क्षण स्थिति प्रमाण है अत उसकी पर्याय किसको कहेंगे। द्रव्य व पर्याय का भेद तो उस द्रव्यार्थिक दृष्टि में ही देखा जा सकता है, जहा कि द्रव्य त्रिकाल स्थायी है और उसके परिवतनशील रूप या अवस्थायें क्षणस्थायी हैं। परन्तु पर्यायार्थिक दृष्टि में जहा द्रव्य ही स्वय वतमान रूप स्वरूप है और वतमान रूप ही द्रव्य स्वरूप है उस क्षण के पश्चात न द्रव्य की सत्ता है और न रूप की तो बताइये पर्याय की कल्पना किस प्र करें। पहिले भी कहा जा चुका है सामान्य में विशेष रहता है पर विशेष में अन्य

विशेप नही। अतः विशेष ग्राही दृष्टि मे द्रव्य व पर्याय ये दो बाते ही दिखाई नही दे सकती।

पर्याय का नाम ही कर्म या कार्य है। पर्याय के अभाव मे किसी भी पदार्थ मे कर्म व कार्य भी कैसे देखा जा सकता है। कर्म ही नही तो कर्ता किसे कहे, क्योकि कर्ता स्वय कर्म की अपेक्षा रखकर अपना प्रकाश करता है। कार्य ही नही तो कारण किसे कहे, क्योकि कारण स्वय कार्य की अपेक्षा रखकर अपना प्रकाश करता है।

कर्ता–कर्म व कारण कार्य भाव का व्यवहार दो प्रकार से करने मे आता है–निमित्त नैमित्तिक द्वैत के रूप मे और उपादान उपादेय के रूप मे। निमित्त कर्ता या कारण पर पदार्थ को कहते है। और नैमित्तिक विवक्षित पदार्थ के कार्य या पर्याय को कहते है। जहा व्यक्तिगत प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र व एक दूसरे से निर्पेक्ष है, तथा विवक्षित पदार्थ मे 'पर्याय' की कोई कल्पना भी नही है तहां निमित्तिक भाव कैसे घटित हो सकता है ? उपादान उपादेय भाव दो प्रकार से माना जाता है–त्रिकाली वह द्रव्य कर्ता या कारण है और उसकी विवक्षित समय की एक पर्याय कार्य है, तथा उसी द्रव्य की पूर्व समय वर्ती पर्याय कारण है और उत्तर समय वर्ती पर्याय कार्य है। जिस दृष्टि मे द्रव्य व पर्याय का भेद नही उसमे पहिले प्रकार से उपादान उपादेय भाव कैसे सम्भव हो सकता है। तथा जिस दृष्टि मे पूर्व और उत्तर समय वाला काल भेद नही, जिस दृष्टि मे पूर्व समय वर्ती पदार्थ सर्वथा विनष्ट हो चुका है और उत्तर समय मे कोई नया स्वतंत्र पदार्थ ही उत्पन्न हुआ है, उसमे दूसरे प्रकार से भी उपादान उपादेय भाव कैसे सम्भव हो सकता है ? अत कर्ता–कर्म या कारण कार्य भाव रूप द्वैत को इस दृष्टि मे अवकाश नही। यहा कार्य नाम की ही कोई चीज नही है।

इसी प्रकार आधार आधेय भाव मे प्रदेशात्मक द्रव्य को आधार कहते है और उसमे आश्रित अनेको गुणो व धर्मो को उसके आधेय

कहते ह। जहा द्रव्य का प्रदेश स्वय भाव स्वरूप और भाव स्वय द्रव्य प्रदेशस्वरूप है वहा यह आधार आधेय भाव रुप द्वैत भी सम्भव नही हो सकता। इसी प्रकार क्रियमान-कृत भुज्यमान-भुक्त, वध्यामान-बाध्य, बध्य-बधक, वध्य-घातक, दाह्य दाहक, ग्राह्य-ग्राहक, वाच्य-वाचक आदि अय भी अनेको द्वैत भाव इस एकत्व दृष्टि म सम्भव नही।

५ लक्षण न ५ –इसक अतिरिक्त निर्विशेष एकत्व में द्रव्य-पर्याय द्रव्य भाव, गुण गुणी, पर्याय-पर्यायी, अश–अशी अग-अगी, विशेषण-विशेष्य, गौण-मुख्य आदि द्वैत भी स्थान नही पा सकते।

६ लक्षण न ६ –तात्पर्य यह कि इस सूक्ष्म निर्विशेष दृष्टि में भेद सूचक अनेकता को किसी भी प्रकार अवकाश नही। द्रव्य की अपेक्षा भी एकता है। क्षेत्र की अपेक्षा भी एकता है, काल की अपेक्षा भी एकता है, और भाव की अपेक्षा भी यहा एकता है। किसी भी प्रकार अनेकता को यहा अवकाश नही।

७ लक्षण न ७ –भूत व भविष्यत पर्यायो को छोड कर यह नय केवल वतमान की एक पयाय को सत्स्वरूप अगीकार करता है क्योंकि भूतकाल की पर्याय तो विनष्ट होने के कारण और भविष्यत की अभी अनुत्पन्न हान क कारण अभाव स्वरूप है। असत अर्थ क्रियाकारी नही हो सकता, अत उसको वस्तु भूत मानने से क्या लाभ ? वतमान पर्याय मात्र ही सत् है। इसीलिये कहना चाहिये कि जो चावल पक रहे ह, व वतमान में पके हुए ही ह, क्योंकि कुछ अशोमे पाक विशेष वहा मौजूद है। इसका खुलासा आगे इसके उद्धरणो पर से हो जायगा।

८ लक्षण न ८ –दूसरी बात यह भी तो है कि एकत्व ग्राहक इस दृष्टि में दो पर्यायो को परस्पर में मिलाकर कोई एक द्रव्य देखा भी

तो नही जा सकता है । अत पूर्वापर पर्यायो में कोई सम्बन्ध नही । जो बालक है वह बालक ही है बूढा नही, जो बूढा है वह बूढा ही है बालक नही । बालक ही बूढा हुआ है, ऐसा कहना इस दृष्टि मे ठीक नही, क्योकि इससे द्वैत उत्पन्न करना पडता है, जो इस नयको सहन नही । निर्विशेष एक समय गत वस्तु मे अन्य पर्याय की सत्ता दीख भी कैसे सकती है । अत वर्तमान पर्याय मात्र ही क्षण स्थायी सत् है ।

९ लक्षण न ९ –जब आगे पीछे की पर्याय का कोई सम्बन्ध नही । तब किसी पदार्थ का नाम रखते समय भी यह विवेक रखना चाहिये कि नाम रखते समय वह जैसी दिखाई दे, वही नाम उसे उस समय दिया जाये । उत्तर क्षण मे उसका रूप बदल जाने पर वास्तव मे वह वस्तु ही नष्ट हो गई, तब उसे उस पहिले वाले नाम से ही पुकारते रहना क्या युक्त होगा ? राजा पद पर अभिषिक्त को ही राजा कहा जा सकता है, राज्य भ्रष्ट को युवराज को नही ।

नोट –इस प्रकार इस नय को विशद बनाने के लिये इसके ९ लक्षण किये गये । वास्तव में इन लक्षणो मे एकत्व का प्रतिपादन किया है । इतनी बात अवश्य है कि किसी मे द्रव्यगत एकत्व का, किसी मे क्षेत्रगत एकत्व का, किसी मे भावगत एकत्व का दिग्दर्शन कराया गया है । इसका वे यह अर्थ नही कि ये सर्वलक्षण एक दूसरे से निर-पेक्ष कोई स्वतत्र लक्षण है, अतः इन मे विरोध न देखना । कथन को सरल व सम्भव बनाने के लिये ही द्रव्यादि चतुष्टय को पृथक पृथकग्रहण करके लक्षण किये है, वास्तव से ऋजुसूत्र नय के प्रत्येक विषय मे ये सर्व ही लक्षण युगपत घटित होते है, क्योकि द्रव्यादि चतुष्टय विशेषो से सहित कोई एक प्रदेशी अखण्ड क्षणिक स्वलक्षण भूत तत्व ही इसका विषय है ।

यद्यपि दृष्टि की विचित्रता के कारण सम्भवत यह सर्व कथन पहिले पहिल कुछ अटपटा ‍सा लगे पर सूक्ष्म दृष्टि से जैसे सकेत

किया जाये वसे ही देखने पर इसको समझने में कोई कठिनाई नही पड सकती । सुविधार्थ यहा उपरोक्त सब लक्षणो का सक्षेप में सग्रह कर देना चाहिये ।

१ जो सरल व सीधे विषय को सूचित करे सो ऋजुसूत्र है।

२ सामान्य रहित केवल विशेष की स्वतत्र सत्ता स्वीकार करता है ।

३ द्रव्य की व्यक्ति गत विशेष सत्ता मे सयोगादि तथा भावगत विशेष सत्ता मे अनेक स्वभावता सम्भव नही ।

४ क्षण स्थायी विशेष एक सत्ता में कर्ता-कर्म या कारण कार्य आदि भावो को अवकाश—नही ।

५ द्रव्यादि चतुष्टयात्मक एव अखण्ड निस्सामान्य सत्ता में विशेषण विशेष्य या गुण-गुणी आदि भेद सम्भव नही ।

६ सर्वथा एक अखण्ड विशेष के ग्रहण में द्रव्य की या क्षेत्र या काल की या भाव की अनेकता सम्भव नही ।

७ भूत व भविष्यत काल को छोडकर वस्तु के जन्म से मरण पर्यन्त की वर्तमान पर्याय मात्र की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करता है ।

८ एक पर्याय मात्र की सत्ता में पूर्वापर पर्यायो में सम्बन्ध स्थापित करना कैसे सम्भव हो सकता है।

९ पदार्थ का नाम भी वर्तमान पर्याय के अनुसार ही दिया जाना चाहिये।

इस प्रकार जन्म से मरण पर्यन्त स्थायी निरवयव स्वसस्थान तथा स्वलक्षणभूत एक स्वभाव स्वरूप कोई सामान्य रहित विशेष जड या चेतन व्यक्ति ही स्वतंत्र रूपेण सत् है। यह उक्त लक्षणो का सार है। अव इन सर्व लक्षणो की पुष्टि व विशदता के अर्थ कुछ आगमोक्त वाक्य उद्धृत करता हूं।

१ लक्षण नं० १ (व्युत्पत्ति):-

१ स. सि ।१।३३।५११ "ऋजु प्रगुण सूत्रयति तन्त्रयतेति ऋजुसूत्रः।"

अर्थ—सीधे और सरल विषय को सूत्रित करता है, स्वीकार करता है, ऐसा ऋजुसूत्र नय है।

(रा० व ।१।३३।७।९६)

२. आ प ।१६।पृ १२५ "ऋजु प्राजल सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः।"

अर्थ—जो सरलता पूर्वक पदार्थो को ग्रहण करे सो ऋजुसूत्र है।

३. ध ।१।पृ ८६।४ "ऋजु प्रगुणं सूत्रयति सूच्यतीति तत्सिद्धेः।"

अर्थ—सीधे व सरल विषय को सूत्रित व सूचित करता है, ऐसा ऋजुसूत्र नय है।

(क. पा.।१।६ १८५।२२३।२)

२ लक्षण नं २ (सामान्य रहित विशेष ग्राहक).-

१ श्लो. वा ।१।२।१६।१५ "सामान्य द्रव्य से रहित कोरा विशेष भी ऋजुसूत्र से कल्पित किया जाता है।"

२ ध ।१३।१९६।६ "तस्स विसए सारिच्छलक्खणसामाण्णा भावादो।"

अर्थ—सादृश्य लक्षण सामान्य ऋजुसूत्र नय का विषय नही है।

३ क पा ।१।६ २७८।३९४।४ "ण च सामाणमत्थि, विसेसेसु अणुगय अतुट्टसरूवसाण्णानुवलभादो।"

अर्थ—इस नय की दृष्टि में सामान्य है ही नही, क्योकि विशेषो में अनुगत और जिसकी सत्ता नही टूटी है एसा नही पाया जाता।

३ लक्षण न ३ (द्रव्य की व्यक्तिगत सत्ता में सयोगादि का अभाव—

१ क पा ।१।१ १९३।२३०।२ नयत्वमनापन्नयोस्तौ (सयाग समवायो वास्ति), अव्यवस्थापत्ते । तत सजातीय विजातीय निर्मुक्ता केवला परमाणव एव सन्तीति भ्रान्त स्तम्भादिस्कन्धप्रत्यय । नास्य नयस्य समानमस्ति, सर्वथा द्वयो समानत्वे एकत्वापत्ते । न कथचित्स-मानताऽपि, विरोधात् । ते च परमाणवो निरवयवा, ऊर्ध्वाधोमध्यभागाद्यवयवेषु सत्सु अनवस्थापत्ते, परमाणो-र्वाऽपरमाणुत्व प्रसगात् ।'

अर्थ—सर्वथा भिन्न दो पदार्थों में भी सयोग सम्बन्ध अथवा समवाय सम्बन्ध नहीं बन सकता, क्योकि सर्वथा भिन्न दो पदार्थों में सयोग अथवा समवाय सम्बन्ध के मानने पर अव्यवस्था प्राप्त होती है। इसलिए सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार की उपाधियो से रहित केवल शुद्ध परमाणु ही है, अत जो स्तम्भादिरूप स्कन्धो का

प्रत्यय (प्रत्यक्ष) होता है वह ऋजुसूत्र नय की दृष्टि मे भ्रान्त है ।

२ स म. ।२८।३१३।४ "यदि एक. स्वभाव· कथमनेक· अनेकश्चेत्कथमेक: एकानेकयो परस्परपरिहारेणावस्थानात् । तस्मात् स्वरूपनिमग्ना. परमाणव एव परस्परोपसर्पणद्वारेण कथञ्चिन्निचयरूपतामापन्ना निखिलकार्येषु व्यापारभाज इति त एव स्वलक्षणं न स्थूलतां धारयत् पारमार्थिकमिति । एवमस्याभिप्रायेण यदेव स्वकीय तदेव वस्तु न परकीयम्, अनुपयोगित्वात् ।"

अर्थ —एक और अनेक मे परस्पर विरोध होने से एक स्वभाव वाली वस्तु मे अनेक स्वभाव और अनेक स्वभाववाली वस्तु मे एक स्वभाव नही बन सकते । अतएव अपने स्वरूप मे स्थित परमाणु ही परस्पर के सयोग से कथाञ्चित समूह रूप होकर सम्पूर्ण कार्यो मे प्रवृत्त होते है। (अर्थात स्कन्धों मे भी प्रत्येक परमाणु स्वतत्र रहता हुआ ही निज कार्य मे प्रवृत्ति होता है ।) इसलिय ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा स्थूल रूप को धारण न करने वाले स्वरूप मे स्थित परमाणु ही यथार्थ मे सत् कहे जा सकते है। अतएव ऋजुसूत्र की अपेक्षा निजस्वरूप ही वस्तु है । परस्वरूप को अनुपयोगी होने के कारण वस्तु नही कह सकते ।

४ लक्षण नं ४ (कर्ता कर्म आदि द्वैत निरास)·–

१ रा. वा. ।१।३३।७।९७।१२ "कुम्भकाराभाव· शिवकादिपर्याय करेण तदभिधानाभावात् । कुम्भपर्यायसमये च स्वावयवेभ्य एव निर्वृत्ते. ।"

अर्थ —इस नय की दृष्टि में कुम्भकार (अर्थात कर्ता) सज्ञा भी नही दी जा सकती है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि शिवक आदि पर्यायो को करने से उनके कर्ता को 'कुम्भकार' यह सज्ञा तो नही दी जा सकती, क्योकि कुम्भ से पहिले होने वाली शिविकादि पर्यायो में कुम्भ पना नही पाया जाता। (अर्थात जिस समय शिवकादि की सत्ता थी तब तो कुम्भ उत्पन्न नही हुआ था और जब कुम्भ उत्पन्न हुआ है तब शिवकादि का अभाव हो गया है)।

(कोई यह कहे कि कुम्भ पर्याय को करते समय उसे कुम्भकार कहा जा सकता है तो ऐसा भी नही है) कुम्भ पर्याय को करते समय भी कुम्भकार नही कह सकते,क्योकि कुम्भ पर्याय की उत्पत्ति तो अपने अवयवो से ही हुई है, कुम्भकार से नही।

(क पा १।१।८६।२२५।१) (ध १६।१७३।६)

७ धा६।पृ १७४।७ "न चास्य नयस्य सामानाधिकरण्यमप्यस्ति, एकस्य पर्यायेभ्य अनन्यत्वात्।"

अर्थ —इस नय की दृष्टि में सामानाधिकरण्य (एक आधार में समान रूप से रहना) भी नही है, क्योकि, एक द्रव्य पर्यायो से भिन्न नही है।

१३ ध ।६।पृ १७५।२ "किंचन विनाशोऽयतो जायते, तस्य जाति हेतुत्वात। न च भाव अभावस्य हेतु।"

अर्थ -इस नय की अपेक्षा विनाश किसी अन्य पदार्थ के निमित्त से नही होता, क्योकि उसका हेतु उत्पत्ति ही है। भाव (स्वय) अभाव का हेतु नही हो सकता।

४ क. पा. ।१।ह १६०।२२६।८ "अस्य नयस्य निर्हेतुको विनाशः ।"
जातिरेव हि भावाना निरोधे हेतुरिष्यते ।
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत पश्चात् स केन व ।"

अर्थ-–इस नय की दृष्टि से विनाश निर्हेतुक है, अर्थात उनका कोई कारण नही । "जन्म ही पदार्थ के विनाश मे हेतु कहा गया है, क्योंकि जो पदार्थ उत्पन्न होकर अन्तर क्षण में नष्ट नही होता वह पश्चात् किससे नाश को प्राप्त हो सकता है । अर्थात जन्म से ही पदार्थ विनाश-स्वभाव है । उसके विनाश के लिये अन्य कारण की अपेक्षा नही पड़ती ।

५ क. पा ।१।ह१६२।२१८।५ "उत्पादोऽपि निर्हेतुक । तद्यथा-नोत्पद्यमान उत्पादयति, द्वितीयक्षणे त्रिभुवनाभाव-प्रसगात् । नोत्पन्न उत्पादयति, क्षणिक पक्षक्षते । न विनष्टं उत्पादयति, अभावाद्भावोत्पत्ति विरोधात् । न पूर्वविनाशोत्तरोत्पादयो समानकालतापि कार्यकारणभाव समर्थिकम् ।" संस्कृत सक्षिप्त लिखी है पर भाषा अर्थ पूरा लिखा है ।)

अर्थः—इस नय की दृष्टि मे उत्पाद भी निर्हेतुक होता है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जो वर्तमान समय मे उत्पन्न हो रहा है वह तो उत्पन्न करता नही है, क्योंकि ऐसा मानने पर दूसरे क्षण मे तीनों लोकों के अभाव का प्रसग प्राप्त होता है । अर्थात जो उत्पन्न हो रहा है वह यदि अपनी उत्पत्ति के प्रथम क्षण मे ही अपने कार्यभूत दूसरे क्षण को उत्पन्न करता है तो इसका मतलब यह हुआ कि दूसरा क्षण भी प्रथम क्षण मे ही उत्पन्न हो जायेगा । इसी प्रकार द्वितीय क्षण भी अपने कार्य भूत तृतीय क्षण

को उसी प्रथम क्षण में उत्पन्न कर देगा । इसी प्रकार आगे आगे के कार्यभूत समस्त क्षण मे ही उत्पन्न हो जायेंगा और दूसरे क्षण में नष्ट हो जायेंगे । इस प्रकार दूसरे क्षण में तीनो लोको के समस्त पदार्थों के विनाश का प्रसग प्राप्त होगा । जो उत्पन्न हो चुका है । वह उत्पन्न करता है, ऐसा कहना भी नही बनता है, क्योकि ऐसा मानने पर क्षणिक पक्ष का विनाश प्राप्त होता है । अर्थात पदाथ पहिले ही क्षण में तो उत्पन्न ही होता है, अत वह दूसरे क्षण में कार्य को करेगा, और इसलिये उसे कम से कम दो क्षण तो ठहरना ही होगा । किन्तु वस्तु को दो क्षणवर्ती मानने से ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से अभिमत क्षणिकवाद नही बन सकता । तथा जो नाश को प्राप्त हो गया है वह उत्पन्न करता है, यह कहना भी ठीक नही है, क्योकि अभाव से भाव की उत्पत्ति मानने में विरोध आता है । तथा पूव क्षण का विनाश और उत्तर क्षण का उत्पाद इन दोनो म काय कारण भाव की समयन करनेवाली समानकालता भी नही पाई जाती है ।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-अतीत पदाथ के अभाव से तो नवीन पदाथ उत्पन्न होता नही है, क्योकि भाव और अभाव इन दोनो में कार्यकारण भाव मानने में विरोध आता है । अतीत अर्थ के सद्भाव से नवीन पदाथ का उत्पाद होता है, यह कहना भी ठीक नही है, क्योंकि ऐसा मानने पर अतीत पदाथ के सद्भाव रूप काल में ही नवीन पदाथ की उत्पत्ति का प्रसग प्राप्त होता है । दूसरे चूकि पूर्व क्षण की सत्ता अपनी सन्तान म होन वाले उत्तर अर्थक्षण की सत्ता की विरोधिनी

है, इसलिये पूर्वक्षण की सत्ता उत्तार क्षण की सत्ता की उत्पादक नही हो सकती है, क्योंकि विरुद्ध दो (स्वतंत्र) सत्ताओं मे परस्पर उत्पाद्य उत्पादक भाव के मानने मे विरोध आता है। अतएव ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से उत्पाद भी निर्हेतुक होता है, यह सिद्ध हो जाता है। (इसी बात को निम्न उदाहरण पर से पढ़ने का प्रयत्न करे।)

६ ध. ।६।६।१७५।८ "किं चन पलालो दह्यते, पलालाग्नि सम्वन्धसमनन्तरमेव पलालस्य नैरात्म्यानुपलम्भात्। न द्वितीयादि क्षणेषु पलालस्य नैरात्मयकृदग्निसम्वन्ध, तस्य तत्कार्यत्वप्रसगात्।" (यद्यपि सस्कृत संक्षिप्त ही उद्धृत की है पर इसका भावार्थ पूरा है।)

(रा वा ।१।३३।७।६७।२६)

अर्थ—इस नय की दृष्टि में पलालका दाह नही होता, क्योकि पलाल और अग्नि के सम्वन्ध के अनन्तर ही पलाल की निरात्मता अर्थात शून्यता नही पाई जाती। द्वितीयादि क्षणो मे पलालकी निरात्मता को करने वाला अग्नि का सम्बन्ध नही है, क्योकि उसके होने पर पलाल की निरात्मता को उसके कार्य होने का प्रसग आवेगा। (अर्थात जिस समय पलाल व अग्नि का सयोग है तव तो पलाल ही जलकर भस्म नही बनी है,और जव भस्म है उस समय अग्नि नही रही है।)

पलाल अवयवी का दाह नही होता, क्योकि अवयवी की (इस दृष्टि मे) सत्ता ही नही है। न अवयव जलते है, क्योकि स्वय निखयव होने से उनका भी असत्व है। यदि कहा जाय कि पलालकी उत्पत्तिक्षण मे ही अग्नि

का सम्बन्ध हो जाता है, अत वह जल सकता है, सो यह भी ठीक नही है, क्योकि ऐसा मानने पर अग्नि का सम्बन्ध होने से वह उत्पन्न ही न हो सकेगा। इसलिये यदि उत्पत्ति के उत्तर क्षण मे अग्नि का सम्बन्ध स्वीकार किया जाये तो यह भी सम्भव नही, क्योकि उत्पत्ति के द्वितीय क्षण मे पलालकी सत्ता नष्ट हो जाने से असत्ता के साथ अग्नि के सम्बन्ध का विरोध है। दूसरे जो पलाल है वह नही जलता है, क्योकि उसमें अग्नि सम्बन्ध जनित अतिशयान्तर का अभाव है। अथवा यदि अतिशयान्तर है भी तो वह पलाल को प्राप्त नही है, क्योकि उसका स्वरूप पलाल से भिन्न है।

७ क पा ।१।१६१।२२८।३ "ततोऽस्य नयस्य न वध्य वधक-वध्यघातक-दाह्यदाहक-ससारादय सन्ति"।

अर्थ——इस नय से वध्य वधक, वध्य घातक, दाह्य दाहक इस प्रकार के द्वैत भाव अभाव ससार मोक्ष आदि भाव सम्भव नही है।

५ लक्षण न० ५ (विशेषण विशेष्य द्वैत का अभाव)—

१ ध ।६ १७४।१ "न कृष्ण काकोऽस्य नयस्य। कथम्? य कृष्ण कृष्णात्मकमेव, न काकात्मक, भ्रमरादीनामपि काकताप्रसगात् काकश्च काकात्मको, न कृष्णात्मक, शुल्क काकाभावप्रसगात्, तत्पित्ता स्थिररुधिरादीनामपि काष्ण्यय प्रसगात्। ततोऽत्र न विशेषणविशेष्यभाव इति सिद्धम्।"

(क पा ।१। १८८।२२६।२) (रा वा ।१।३३।७।९७)

अर्थ—कृष्णकाक इस नय का विशेष नही है। कारण कि जो कृष्ण है वह कृष्णात्मक ही है, काक स्वरूप नही है, क्योकि ऐसा मानने पर भ्रमरादिको के भी काक होने का प्रसंग आवेगा। इसी प्रकार काक भी काकात्मक ही है, कृष्णात्मक नही है, क्योकि, ऐसा मानने पर सफेद काक के अभाव का प्रसंग आवेगा, तथा उसके पित्त (शरीरस्थ धातु विशेष हड्डी) व रुधिर आदि के भी कृष्णता का प्रसग आवेगा। इसलिये इस नय की दृष्टि मे विशेषण विशेष्यभाव नही है, यह सिद्ध हुआ।

२. क. पा. ।1। १६३।२२६।६ "नास्य विशेषणविशेष्य भावोऽपि। तद्यथा—न स तावद्भिन्नयो अव्यवस्थापन्ते। नाभिन्नयोः, एकस्मिंस्ताद्विरोधात्। नाभिन्नयोरस्य नयस्य संयोग. समवायो वास्ति, सर्वथैकत्वमापन्नयो· परित्यक्त स्वरूपयोस्तद्विरोधात्।"

अर्थ—इस नय की दृष्टि से विशेपण विशेष्य भाव भी नही वनता है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—भिन्न दो पदार्थो मे तो विशेपण विशेष्य भाव बन नही सकता है, क्योकि भिन्न दो पदार्थो मे विशेषणविशेष्य भाव के मानने पर अव्यवस्था की आपत्ति प्राप्त होती है। अर्थात जिन किन्ही भी दो पदार्थो मे (वह विवक्षित) विशेषण विशेष्य भाव हो जायेगा उसी प्रकार अभिन्न दो पदार्थो मे भी विशेषणविशेष्य भाव नही वन सकता है, क्योकि अभिन्न दो पदार्थो का अर्थ एक पदार्थ ही होता है, और एक पदार्थ मे विशेपण विशेष्यभाव (रूप द्वैत) के मानने मे विरोध आता है।

तथा इस नय की दृष्टि मे सर्वथा अभिन्न दो पदार्थो मे सयोग सम्वन्ध अथवा समवाय सम्वन्ध भी

नही बनता है, क्योकि जो सवथा एकत्व को प्राप्त हो गये हैं और इसलिये जिन्होने अपने (स्वतन्त्र) स्वरूप को छोड दिया है, ऐसे दो पदार्थो में सयोग सम्बन्ध अथवा समवाय सम्बन्ध मानने मे विरोध आता है।

६ क पा १। १६५-१६६ ।२३०।८ "नास्य नयस्य ग्राह्य ग्राहक-भावोऽस्ति । न सम्बन्ध तस्यातीतत्वात् । नास्य शुद्धस्य (नयस्य) वाच्यवाचकभावोऽप्यस्ति ।"

अर्थ --उपरोक्त ही प्रकार इस नय से ग्राह्यग्राहक भाव भी सिद्ध नही हो सकता, क्योकि कोई भी सम्बन्ध होने के क्षण मे तो काय नही होता और उत्तर क्षण में काय होने पर वह सम्बन्ध वाला क्षण बीत चुकता है। इसी प्रकार इस शुद्ध नय में वाच्य वाचक भाव भी नही माना जा सकता।

१० स० म०। २८।३१३। ७ "एवमस्याभिप्रायेण यदेव स्वकीयम् तदेव वस्तु, न परकीयमनुपयोगित्वात ।"

अर्थ —इस नय के अभिप्राय से जो स्वकीय है वही वस्तु है परकीय नही, क्योकि वह दूसरी वस्तु के लिये अनुपयोगी है, अर्थात उसके लिये कोई भी अन्य सहायक या निमित्त नही हो सकता।

६ लक्षण नं ६ (अनेकता का निरास) –

१ ध पा १।२७७।३१३।५ "एगउवजोगस्स अणेगेसु दव्वेसु अक्कमेण उत्तिविरोहादो। अविरोहो वा ण सा एक्को उवजोगो, अणेगेसु अत्थेसु अक्कमेण वट्टमाणस्स एयत्त विराहादो। ण च एयस्स जीवस्स अक्कमेण अणेया उवजोगा सभवति, णिरुद्धधम्मज्झासेण जीवबहुत्तपसगादो।"

अर्थ--इस नय की अपेक्षा एक उपयोग की एक साथ अनेक द्रव्यो मे प्रवृत्ति मानने मे विरोध आता है।

यदि कहा जाय कि एक साथ एक उपयोग अनेक द्रव्यो मे प्रवृत्ति कर सकता है, इसमे कोई विरोध नही है, सो भी कहना ठीक नही है, क्योकि ऐसा मानने पर इस नय की अपेक्षा वह एक उपयोग नही हो सकता है, क्योंकि जो एक साथ अनेक अर्थो में रहता है, उसे एक मानने मे विरोध आता है।

यदि कहा जाय कि एक जीव के एक साथ अनेक उपयोग सम्भव है, सो भी कहना ठीक नही है, क्योकि विरुद्ध अनेक धर्मो का आधार हो जाने से उस एक जीव को जीववहुत्व का प्रसंग आता है । अर्थात परस्पर मे विरुद्ध अनेक अर्थो को विषय करने वाले अनेक उपयोग एक जीव मे एक साथ मानने से वह जीव एक नही रह सकता है, उसे अनेकत्व का प्रसग प्राप्त होता है ।

क्रमश. क. पा. । १ ।१७८ ।३१५ "किमट्ठमेगं चेव णाणमुप्पज्जइ, एगसत्तिसहियएयमणत्तादो । एव संते वहुअवग्गहस्स अभावो होदि चे, सच्चं; उजुसुदेसु वहुँ अवग्गहो णात्थित्ति, एयसत्तिसहियएयमणुव्वभुगमादो । अणेयसत्ति सहियमणदव्वब्भुवगमे पुण अत्थि वहुअवग्गहो; तत्थ विरोहाभावादो ।"

अर्थ--शंकाः--एक काल मे एक ही ज्ञान क्यो उत्पन्न होता है ?

उत्तरः--क्योकि एक क्षण मे एक शक्ति से युक्त एक ही मन पाया जाता है (अगले क्षण मे उत्पन्न होने वाला मन दूसरा

ही होगा)। इसलिये एक क्षण में एक ही ज्ञान उत्पन्न होता है।

शका—यदि ऐसा है तो वहु अवग्रह (नाम के मतिज्ञान) का अभाव प्राप्त होता है ?

उत्तर—यह कहना ठीक है, कि ऋजुसूत्र नयो में वहु अवग्रह नही पाया जाता है, क्योकि इस नय की दष्टि से एक क्षण में एक शक्ति से युक्त एक मन स्वीकार किया गया है। यदि अनेक शक्तियो से युक्त मन को स्वीकार कर लिया जाय तो वहु अवग्रह वन सकता है, क्योकि वहा उसके मानने मे विरोध नही आता है। (परन्तु ऋजुसूत्र की एकत्व दष्टि में ऐसा मानना सम्भव नही है। वह द्रव्यार्थिक व्यवहार दृष्टि में ही सम्भव है।)

२ ध।१२।३००।१० "सव्व पि वत्थु एगसखाविसिट्ठ अण्णहा तस्साभावाप्पसगादो। ण च एगत्तपडिग्गहिए वत्थुम्हि दुब्भावादीण सभवो अत्थि, सीदुण्हाण व तेसु सहाणवट्ठाणलक्खणविरोहदसणादो। ण च एगत्तविसिट्ठ वत्थु अत्थि जेण अणेगत्तास्स तदाहारो होज्ज। एक्कम्हि खभम्मि मूलग्ग मज्झभेएण अणेयत्त दिस्सदि त्तिभणिदे ण तत्थ एयत मोत्तूण अणेयत्तस्स अणुवलभादो। ण ताव थभगयमणेयत्त, तत्थ एयत्तुवलभादो। ण मूलगयमग्गगय मज्झगय वा, तत्थ वि एयत्तमोत्तूण अणेयत्ताणुवलभादो। ण तिण्णमेगेगवत्थूण समूहा अणेयत्तस्स आहारो, तव्वदिरेगेण तस्समूहाणुवलभादो। तम्हा णत्थि वहुत्त। तेणेव कारणेण ण चेत्थ वहवयण पि।"

अर्थ—सभी वस्तु एक सख्या से सहित ह, क्योकि इसके विना उसके अभाव का प्रसग आता है। एकत्व को स्वीकार करने

वाली वस्तु मे द्वित्वादि की सम्भावना भी नही है, क्योंकि शीत व उष्ण के समान सहानवस्थान रूप विरोध देखा जाता है । इसके अतिरिक्त एकत्व से रहित वस्तु है भी नही, जिससे कि वह अनेकत्व का आधार हो सके ।

शंका—एक खम्भे मे मूल अग्र एवं मध्य के भेद से अनेकता देखी जाती है ?

उत्तर—नही, क्योकि, उसमे एकत्व को छोडकर अनेकत्व पाया नही जाता । कारण कि स्तम्भ मे तो अनेकत्व की सम्भावना है ही नही, क्योकि उसमे एकता पाई जाती है । मूलगत अग्रगत अथवा मध्यगत अनेकता भी सम्भव नही है, क्योकि उनमे भी एकत्व को छोडकर अनेकता नही पाई जाती । यदि कहा जाय कि तीन एक एक (आदि मध्य व मूल) वस्तुओ का समूह अनेकता का आधार है, सो यह कहना भी ठीक नही है, क्योकि उससे भिन्न उनका समूह पाया नही जाता । इस कारण इन (ऋजुसूत्र आदि पर्यायार्थिक) नयों कि अपेक्षा वहुत्व सम्भव नही है । इसी लिये वहुवचन भी नही है ।

३ ध० । ६।२६६ ।१ "उजुसुदे किमिदि अणेयसंखा णत्थि । एयसद्दस्स एयपमाणस्स य एगत्थं मोत्तूण अणेगत्थेसु एक्ककाले पवुत्तिविरोहादो । ण च सद्द पमाणाणि वहु सत्तिजुत्ताणि अत्थि, एक्कम्हि विरुद्धाणेयसत्तीण सभवविरोहादो एयसख मोत्तूण अणेय सखाभावादो वा ।"

अर्थ—**शंका**—ऋजुसूत्र नय मे अनेक सख्या क्यों नही सम्भव है ?

उत्तर —चूकि इस नय की अपेक्षा एक शब्द और एक प्रमाण की एक अर्थ को छोडकर अनेक अर्थों में एक काल में प्रवृत्ति का विरोध है, अत उसमें अनेक संख्या सम्भव नही है। और शब्द व प्रमाण बहुत शक्तियो से युक्त है नही, क्योकि एक में विरुद्ध अनेक शक्तियो के होने का विरोध है, अथवा एक संख्या को छोडकर अनेक संख्याओ का वहा (उस दृष्टि में) अभाव है।

७. लक्षण नं० ७ (वर्तमान मात्र ग्राही) —

१ स सि १।३३।५१३ "पूर्वापरांस्त्रिकाल विषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयानादत्त, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमान समयमात्रम् यद्विषय पर्यायमात्रग्राह्यमयमृजुसूत्र ।"

(रा वा ।१।३३ ।७ ९६) (रा वा ।४।४२ ।१७ ।२६१ ।५)
(ध ।९ ।१७१ ।७)

अर्थ —यह नय पहिले व पश्चात होने वाले तीनो कालो के विषयो को ग्रहण न करके वर्तमान काल के विषयभूत पदार्थों को ग्रहण करता है क्योकि अतीत के विनष्ट और अनागत के उत्पन्न न होने से उनमें व्यवहार नही हो सकता। वह वर्तमानकाल एक समय मात्र है और उसके विषयभूत पर्याय मात्र को विषय करने वाला यह ऋजुसूत्र नय है।

२ का अ ।२७४ य वर्तमानकाल अर्थपर्यायपरिणतमर्थम् । सन्त साधयति सर्व तदपि नय ऋजुसूत्रनय जानीहि ।२७४।"

अर्थ —जो वर्तमान काल में एक समयवर्ती अर्थपर्याय मात्र से परिणत द्रव्य को ही सत् कुछ मानता है उसको ऋजुसूत्र नय जानो।

३ न. दी ।३।८५।१२८ "ऋजुसूत्रनयस्तु परमपर्यायार्थिक । स हि भूतत्वभविष्यत्वाभ्यामपरापृष्टं शुद्धं वर्तमानकालावच्छिन्नवस्तुस्वरूपं परामृशति । तन्नयाभिप्रायेण बौद्धमताभिमतक्षणिकत्वसिद्धि ।"

अर्थ—ऋजुसूत्र नय परम पर्यायार्थिक है । वह भूत व भविष्यत दोनो से अस्पृष्ट शुद्ध वर्तमान काल मात्र मे दीखने वाले वस्तु स्वरूप को परामर्श करता है । उसके अभिप्राय से बौद्धमत मान्य क्षणिकत्व की सिद्धि होती है ।

४ स. म. ।२८।३१२।२७ "ऋजुसूत्र पुनरिद मन्यते । वर्तमानक्षणविवत्यव वस्तुरूपम् । नातीतमनागतं च । अतीतस्य विनष्टत्वाद् अनागतस्यालब्धात्मलाभत्वात् खरविषाणादिभ्योऽविशिष्यमाणतया सकलशक्तिविरहरूपत्वात् नार्थक्रियानिर्वर्तनक्षमत्वम् तद्भावाच्च न वस्तुत्व । "यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत्" इति वचनात् । वर्तमानक्षणलिङ्गित पुनर्वस्तुरूप समस्तार्थक्रियासु व्याप्रियत इति तदेव पारमार्थिकम् ।

अर्थ—वस्तु की अतीत और अनागत पर्यायों को छोड़कर वर्तमान क्षण की पर्यायो को (स्वतंत्र सत्ता के रूप मे) जानना ऋजुसूत्र नय का विषय है । वस्तु की अतीत पर्याय नष्ट हो जाती है और अनागत पर्याय उत्पन्न नही होती, इसलिये अतीत और अनागत पर्याय खरविषाण की तरह सम्पूर्ण सामर्थ्य से रहित होकर कोई अर्थक्रिया नही कर सकती, इसलिये अवस्तु है । क्योकि "अर्थक्रिया करने वाला ही वास्तव मे सत् कहा जाता है" ऐसा आगम का वाक्य है, इसलिये वर्तमान क्षण मे विद्यमान वस्तु से ही

समस्त अर्थ क्रिया हो सकती है, इसलिये यथार्थ में वही सत् है।

नोट—इस अभिप्राय का विशेष स्पष्टीकरण निम्न उद्धरण मे प्ररूपित उदाहरण पर से भलीभाति हो सकता है।

५ ध ।६।१७१।७ "अपूर्वास्त्रिकालविषयानतिशय वर्तमानकाल विषयमादत्ते य स ऋजुसूत्र । कोऽत्र वर्तमानकाल ? आरम्भात्प्रभृत्या उपरमादेष वर्तमानकाल । एष चानेक-प्रकार, अर्थ व्यञ्जनपर्यायस्थितेरनेकविधत्वात् । तत्र तावच्छुद्धर्जुसूत्रविषय प्रदर्श्यतेपच्यमान पक्व । पक्वस्तु स्यात्पच्यमान स्यादुपरतपाक इति । पच्यमान इति वर्तमान पक्व इति अतीत, तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरुद्ध इति चेन्न, पचनप्रारम्भप्रथमसमये पाकांशानिष्पत्तौ द्वितीयादिक्षणेषु प्रथम लक्षण इव पाकांशानिष्पत्त्यभावत पाकस्य साकल्येनोत्पत्त्यभावप्रसगात् । एव द्वितीयादि-क्षणेष्वापि पाकनिष्पत्तिर्वक्तव्या । तत पच्यमान पक्व इति सिद्धम्, नान्यथा, समयस्य त्रैविध्यप्रसगात् । स एवौदन। पक्व स्यात्पच्यमान इति चोच्यते, सुविशद सुस्विन्नौदने पक्तु पक्वाभिप्रायात् । तावन्मात्रक्रिया फलनिष्पत्त्युपरमोपेक्षया स एव पक्व ओदन स्यादु-परतपाक इति कथ्यते । एव क्रियमाणकृत भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबद्ध-सिद्धयत् सिद्धादयो योज्या । तथा यदैव धान्यानि मिमीते तदैव प्रस्थ, प्रतिष्ठात्यम्मिन्निति प्रस्थव्यपदेशात् ।

(क पा ।१।१८५।२२३।३), रा० वा० ।१ ।३३ ।७ ।९७ ।३),

अर्थ -जो तीनो काल विषयक अपूर्व पर्यायों को छोडकर वर्तमान काल विषयक पर्याय को (पयक स्वतंत्र सत्ता के रूप म ।) ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय है ।

शंका–यहां वर्तमान काल का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—विवक्षित पर्याय के प्रारम्भकाल से लेकर उसका अन्त होने तक जो काल है वह वर्तमानकाल है। (जैसे जन्म से लेकर मरण पर्यन्त का काल मनुष्य का वर्तमान काल है। और इसी इतने काल स्थायी मनुष्य एक स्वतन्त्र पदार्थ है)।

अर्थ और व्यञ्जन पर्यायों की स्थिति के अनेक प्रकार होने से यह काल अनेक प्रकार का है। (अर्थ पर्याय का वर्तमान काल एक सूक्ष्म समय मात्र है, और स्थूल व्यञ्जन पर्याय का वर्तमान काल उन उन पर्यायो की हीनाधिक स्थिति प्रमाण है) उसमे पहिले (एक सूक्ष्म समय ग्राही) शुद्ध ऋजुसूत्र नय के विषय को दिखाते हैं–इस नय का विषय 'पच्यमानपक्व' है। पक्वका अर्थ कथाञ्चित पकनेवाला और कथाञ्चित्त पका हुआ है।

शंका:—चूकि 'पच्यमान' यह पचन क्रिया के चालू रहने अर्थात वर्तमान काल को और 'पक्व' यह उसके पूर्ण होने अर्थात भूतकाल को सूचित करता है, अतः उन दोनो का एक में रहना विरुद्ध है।

उत्तर:—नही, क्योकि, पचन क्रिया के प्रारम्भ होने के प्रथम समय मे पाकाश की सिद्धि न होने पर प्रथमक्षण के समान द्वितीयादि समयो मे भी पाकाश की सिद्धि का अभाव होने से, पूर्णतया पाक की उत्पत्ति के अभाव का प्रसंग आवेगा। इसी प्रकार द्वितीयादि क्षणों मे भी पाक की उत्पत्ति कहना चाहिये। इसलिये पच्यमान ओदन कुछ पके हुए अंश की अपेक्षा पक्व है, यह सिद्ध होता है, क्योकि, ऐसा न मानने से समय के तीन प्रकार मानने

अर्थ–इस नय की अपेक्षा 'शुल्क कृष्ण होता है' ऐसा भी नही। कहा जा सकता, क्योकि कृष्ण और शुल्क दोनों पर्याये भिन्न काल मे रहने वाली है, अत उत्पन्न हुई कृष्ण पर्याय मे नष्ट हुई शुल्क पर्याय का सम्वन्ध नही हो सकता इस प्रकार ऋजुसूत्र नय के स्वरूप का निरूपण किया।

६ लक्षण नं ६ (वर्तमान पर्याय के अनुसार नाम देना) —

१ ध ।६।१७३।५ "यदैव धान्यानि मिमीते तदैव प्रस्थ, प्रतिष्ठन्त्यास्मिन्निति प्रस्थवयपदेशात् ।"

(रा वा. ।१।३३।७।६७।११)

अर्थ—जब धान्यो को मापता है तभी इस नय की दृष्टि मे प्रस्थ (अनाज मापने का पात्र विशेष) हो सकता है, क्योकि जिसमे धान्यादि स्थिति रहते है, उसे निरूक्ति के अनुसार प्रस्थ कहा जाता है।

३ ऋजुसूत्र नय के कारण व प्रयोजन

यद्यपि इस प्रकार के एकत्व का ग्रहण कुछ अटपटासा प्रतीत होता है, और समस्त व्यवहार का लोप करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से तत्व का निरीक्षण करने वाले के लिये न यह अटपटा है और न व्यवहार का लोप करने वाला। उस सूक्ष्म दृष्टि वाले का लक्ष्य लौकिक व्यवहार पर है ही नही, अत. वह व्यवहार उसकी दृष्टि मे भ्रम मात्र है। अटपटा इसलिये नही दीखता कि उस प्रकार से देखने पर वस्तु वैसी ही दिखायी अवश्य देती है।

आप लोगो को भी यह बात तभी समझ मे आ सकेगी जव कि आप वस्तु के अविभागी द्रव्य क्षेत्र काल व भाव स्वरूप चतुष्टय को लक्ष्य मे लेकर इसे समझने का प्रयत्न करेगे, अन्यथा तो आप

हमन के अतिरिक्त कुछ नही कर सकते, जब कि आपको ऐसी ऐसी बात सुनने मे आयेंगी, कि कौवा काला नही होता, पलाल कभी जलती नही, सफेद वस्तु ही रग कर काली नही हुई है, वालक ही बूढा नही हुआ है इत्यादि।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तत्व उस प्रकार का दिखाई देता है, यह तो इस नय की उत्पत्ति का कारण है, और वस्तु की सूक्ष्मता को दृष्टि में रखकर निर्विकल्पता की साधना करना इसका प्रयोजन है।

४ ऋजुसूत्र के भेद प्रभेद व लक्षण

ऋजुसूत्र नय जैसा कि पहिले भलीभांति बताया जा चुका है, पर्यायार्थिक नय है। पर्याय शब्द यद्यपि परिवर्तनशील क्षणिक अवस्थाओ में रूढ है, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ अंश या वस्तु के विशेष है। यह विशेष चार प्रकार से जाने जाते हैं—द्रव्य के रूप में, क्षेत्र के रूप में, काल के रूप में और भाव के रूप में। द्रव्यात्मक विशेष का नाम द्रव्य की व्यक्ति है, क्षेत्रात्मक विशेष को उस द्रव्य के आकार जानो, कालात्मक विशेष का नाम पर्याय प्रसिद्ध है और भावात्मक विशेष को गुण या धर्म कहते हैं।

कोई भी पर्याय, वह स्थूल हो या सूक्ष्म इन चारो से समवेत होगा ही। ये चारो ही पृथक् पृथक सामान्य व विशेष के रूप में देखे जा सकते हैं। समस्त जातियो व व्यक्तियो से समवेत एक अखण्ड जीवतत्व सामान्य द्रव्य है और कोई भी व्यक्तिगत एक जीव विशेष द्रव्य है। लोक प्रमाण व्यापी उस सामान्य जीवतत्व का सामान्य क्षेत्र है तथा इस व्यक्ति का अपना वर्तमान संस्थान उस जीव विशेष द्रव्य का विशेष क्षेत्र है। जीव द्रव्य सामान्य की ओर में त्रिकाल सत्ता सामान्य जीव तत्व का सामान्य काल है और जन्म से मरण पर्यन्त उस व्यक्तिगत जीव की स्थिति उस विशेष जीव द्रव्य का विशेष काल है। अनेक गुणो से समवेत कोई एक अखण्ड भाव जीव द्रव्य

सुविधा के लिये केवल काल गत विशेप के आधार पर ही लक्षण करने मे आता है, अर्थात एक समय स्थायी अर्थ पर्याय प्रमाण ही द्रव्य की सत्ता है, ऐसा इसका लक्षण करने मे आता है। तहा इसके अतिरिक्त शेष तीन विशेपो को भी यथा योग्य रूप मे स्वत. लागू करके ऋजुसूत्र सामान्य के लक्षण की भांति इसका विस्तार कर लेना। यहा द्रव्य की सम्पूर्ण सत्ता इतनी ही है।

अव इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ निम्न उद्धरण देखिये।

१. वृ च. व. ।२११ "य एक समयवर्तिन ग्रहणाति द्रव्ये ध्रुवत्व-पर्यायम्। स ऋजुसूत्र· सूक्ष्म सर्व· शव्दो यथा क्षणिक ।२११।"

अर्थ:-जो द्रव्य मे एक समयवर्ती ध्रुवत्वपर्याय को अर्थात द्रव्य की केवल एक समय प्रमाण स्थिति को ग्रहण करता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र है, जैसे सर्व ही शब्द क्षणिक है ऐसा कहना ।

२ नय चक्र गद्य ।पृ १७ "एकस्मिन्समये वस्तुपर्यायं यस्तु पश्यति। ऋजुसूत्रे भवेत्सूक्ष्मः स्थूलो स्थूलार्थगोचर ।"

अर्थ --एक समय मे ही जो वस्तु की पर्याय को देखता है, अर्थात एक समय स्थिति प्रमाण ही वस्तु को समझता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय है।

३. आ प. ६।पृ. ७६ "सूक्ष्मऋजुसूत्रो, यथा-एकसमयावस्थायी पर्याय.।"

अर्थ -सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय को ऐसा जानो जैसे एक समयवर्ती सूक्ष्म पर्याय ।

४ ध ।६।२४४।१४ "तत्थ सुद्धो विसईक्यअत्थपज्जाओ पडि-क्खण विवट्टमाणासेसत्यो अप्पणो विसयादो ओसारिदसा रिच्छ-तब्भावलक्खणसमण्णो ।"

अर्थ—अर्थ पर्याय को विपय करने वाला शुद्ध ऋजुसूत्र नय प्रत्येक क्षण में परियामन करनेवाले समस्त पपार्थो को विपय करता हुआ, अपने विपय से सादृश्य सामान्य और तद्भावरूप सामान्य को दूर करने वाला है ।

सूक्ष्म पर्याय प्रमाण सत्ता को ग्रहण करने के कारण इस नय का सूक्ष्म ऋजुसूत्र नाम सार्थक है । क्योकि सूक्ष्म अर्थ पर्याय के एकत्व में अन्य कोई भी पर्याय का किसी प्रकार भी सम्मेल सम्भव नही इसलिये इसे ही शद्ध ऋजुसूत्र या परम पर्यायार्थिक नय भी कहते हैं । यह इस नय का कारण है ।

वतमान में जो मनुष्यादि पर्याय स्थूल दृष्टि से वदलती हुई दिखाई देती है वह वस्तुभूत नही है क्योकि स्वतन्त्र रूप से वह कोई पृथक एक पर्याय नही है, वल्कि अनेका सूक्ष्म अथ पर्यायो का एक पिण्ड है । वस्तुभूत तो वह सूक्ष्म अथ पर्याय है जो दृष्टि में नही आती, परन्तु इस स्थूल पर्याय की कारण है । यह वताना इस नय का प्रयोजन है ।

२ स्थूल या अशुद्ध ऋजुसूत्र नय –

जसा कि पहिले वताया जा चुका है, विशेष दो प्रकार के होते है–सूक्ष्म व स्थूल । कोई एकक्षण स्थायी निरवयव एक प्रदेशी स्व-लक्षणभूत एक स्वभाव स्वरूप परमाणु या जीव तो सूक्ष्म सत् है, क्योकि इसमें अन्य विशेष किसी प्रकार भी देखे नही जा सकते । अपनी उत्पत्ति से विनाश पयन्त दिन मास वर्षादि काल प्रमाण स्थायी, कुछ लम्बाई चौडाई मोटाई रूप एक अखण्ड सस्थान वाला

तथा लाल रग अथवा इन्द्रिय ज्ञान रूप स्वरूप लक्षण भूत कोई एक स्वभाव स्वरूप घट, पट अथवा मनुष्यादि पदार्थ स्थूल सत् है। यद्यपि इन स्थूल सतो को विशेप कहने को जी नही करता क्योकि ये स्वय अन्य विशेषो से सहित दीखते है, जैसे कि जन्म से मरण पर्यन्त तक की मनुष्य की एक स्थिति मे बालक, युवा व बूढापे आदि के अथवा अत्यन्त सूक्ष्म क्षण वर्ती अर्थ पर्यायो के अनेको अवान्तर विशेष पड़े है, उसके वर्तमान सस्थान मे साक्षात सावयव पने व असख्यात प्रदेशीपने के विशेप दिखाई देते है उसके इन्द्रिय ज्ञान मे भी अवग्रह ईहा आदि के अथवा सूक्ष्म अर्थ पर्यायो के अनेको विपय प्रतीति मे आ रहे है। इसलिये इन अवान्तर विशेपो की अपेक्षा देखने पर तो वह सामान्य स्वरूप वाला दिखाई देता है, और इसलिये संग्रह नय का विषय बनाया जा सकता है, परन्तु सूक्ष्म विचारणाओ व तर्कणाओ को दबाकर यदि लौकिक व्यवहार दृष्टि से देखे तो ये सर्व विशेष ओझल हो जाते है।

यदि जीव द्रव्य सामान्य को न देखे तो जन्म से मरण पर्यन्त का मनुष्य दो है या एक? उसका आकार या सस्थान अनेक है कि एक? उसकी ८० वर्ष प्रमाण स्थिति एक है कि अनेक? उसका जानने का स्वभाव एक है कि अनेक? इस प्रकार प्रश्न करने पर लौकिक जन 'एक' ऐसा ही उत्तर देते है। मनुष्य तो एक है ही, उसका सस्थान भी यद्यपि सावयव है परन्तु क्या वे अवयव पृथक पृथक रह कर संयोग को प्राप्त हुए है, या वह जैसा है वैसा अखण्ड है? यदि अवयवो को पृथक पृथक माना जायेगा तो मनुष्य को अनेकता का प्रसंग प्राप्त होगा अत उसका वह अखण्ड सस्थान एक ही है। उसकी स्थिति भी एक ही है, क्योकि उस मनुष्य का इस स्थिति से पहिले विनाश देखा नही जाता। उसका वह ज्ञान भी पूर्ण स्थिति काल पर्यन्त वह का वही रहता है। इसलिये द्रव्य से या क्षेत्र से या काल से या भाव से वह एक ही सिद्ध होता है। इस

प्रकार सब ही स्थूल विशेषो की एकता को ग्रहण करके उसकी सर्वथा स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करने वाला स्थूल ऋजुसूत्र है।

वह पहिले भव में देव था या तिर्यन्च अथवा मरण के पश्चात भी कुछ होगा यह प्रत्यक्ष न होने के कारण असिद्ध है, अत वर्तमान में जितना कुछ वह दृष्ट हो रहा है उतना ही सत है। उसके अतिरिक्त भूत व भविष्यत की पर्यायो के साथ उसका कोई सम्बन्ध जोडा नही जा सकता। ऐसा स्थूल ऋजुसूत्रनय ग्रहण करता है। व्यञ्जन पर्याय की स्वतत्र सत्ता इसका विषय है।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगमोक्त लक्षण भी उद्धृत करता हू।

१ वृ न च ।२१२ "मनुजादियपर्याय मनुष्य इति स्वक-स्थितिषु वर्तमान । यो भणति तावत्काल स स्थूलोभवति ऋजुसूत्र ।२१२।"

अर्थ –अपनी अपनी स्थिति प्रमाण काल में वर्तमान अर्थात जन्म से मरण पर्यन्त मनुष्यादि पर्यायों को जो उतने काल तक के लिये टिकने वाला एक स्वतत्र पदार्थ मानता है वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है।

२ न च वृ.नयचक्र।१४ 'एकस्मिन्समये वस्तुपर्याय यस्तु पश्यति। ऋजु सूत्रो भवेत् सूक्ष्म, स्थूलो स्थूलार्थ गोचर ।

अर्थ – एक समय मात्र काल में प्रमाण स्थायी वस्तु की पर्याय को जो स्वतत्र सत्ता के रूप में देखता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र है। इसी प्रकार वर्ष आदि स्थूल काल प्रमाण स्थायी वस्तु की पर्याय को स्वतत्र सत्ता के रूप में देखता है वह स्थूल ऋजुसूत्र है।

३ आ. प. ।६। पृ ७६ "स्थूल ऋजुसूत्रो, यथा—मनुष्यादिपर्याया-स्तदायु. प्रमाणकाल तिष्ठन्ति ।"

अर्थ—स्थूल ऋजुसूत्र नय ऐसा मानता है, जैसे कि मनुष्यादि पदार्थ स्व स्व आयु काल प्रमाण ही स्थित रहते हैं। पीछे उनका निरन्वय नाश हो जाता है।

४. ध. ।६।२२४। "असुद्धो उजुसुदणओ सो चक्खुपासियवे-जणयञ्जयविसओ। तेसि कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्क-स्सेण छम्मासा सखेज्जा वासाणि वा। कुदो? चाक्खि-दियगेज्झ वेजणपज्जायाणमप्पहाणी भूददव्वाणमेत्तियं कालमवट्ठाणुवलभादो।"

अर्थ—अशुद्ध ऋजुसूत्र नय है वह चक्षु इन्द्रिय की विषयभूत व्यञ्जन पर्यायों को विषय करने वाला है। उन पर्यायो का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से छह मास अथवा संख्यात वर्ष है, क्योकि, चक्षु इन्द्रिय से ग्राह्य व्यञ्जन पर्यायें, द्रव्य की प्रधानता से रहित होती, हुई इतने काल तक अवस्थित पाई जाती है।

स्थूल समय को बिषय करने के कारण इसका नाम स्थूल पर्यायार्थिक नय है। और वह स्थूल ममय या व्यञ्जन पर्याय वर्तमान काल रूप या एक पर्याय स्वरूप ग्रहण करने मे आती है, इसलिये ऋजुसूत्र है। अत 'स्थूल ऋजुसूत्र नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है।

क्षणिक सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्रमाण कोई भी सत् अप्रत्यक्ष होने के कारण व्यवहार कोटि मे नही आ सकता।

वह लोक में किसी भी अथ क्रिया की सिद्धि करता प्रतीत नही होता । अत व्यञ्जन पर्याय प्रमाण ही पदार्थ को स्वीकार करना योग्य है । अत स्थूल पदार्थों की एकता दर्शा कर लौकिक व्यवहार को सम्भव बनाना इस नय का प्रयोजन है ।

५ ऋजुसूत्र नय सम्बधी शकाये — इस नय सामान्य व विशेष के उपरोक्त विस्तृत कथन में उठने वाली कुछ शकाओ का समाधान यहा कर देना योग्य है ।

१ शंका – वतमान काल प्रमाण निर्विशेप ही वस्तु की सत्ता मानने से, तथा विशेपण विशेष्य व काय कारणादि भावो का सवथा अभाव मानने से तो मकल व्यवहार के लोप का प्रसग प्राप्त होता है ।

उत्तर – इस शका का समाधान आगम में निम्न प्रकार किया है ।

क पा ।१।६१९६ । २३२ ।२ "सत्येव सकल व्यवहारोच्छेद प्रसजतीति चेत, न, नय विपय प्रदशनात् ।"

अथ—शकाकार कहता है कि इस प्रकार सामान्य रहित केवल विशेप की सत्ता मानने पर तो सकल व्यवहार का उच्छेद प्राप्त होता है । इस के उत्तर में आचार्य कहते है कि नहीं, क्योकि यहा पर ऋजसूत्र नय का विषय दिखलाया गया है । (अर्थात यह कथन किसी एक दृष्टि विशेष से देखने पर सत्य प्रतीत होता है । लौकिक दृष्टि से वह दृष्टि विचित्र है, अत उस प्रकार देखने समय उस विचारक व्यक्ति विशेष को लौकिक अभिप्राय शेष रह ही नहीं जाता । और इसी प्रकार लौकिक अभिप्राय जागृत हो

जाने पर यह दृष्टि रह नही पाती, अत. उसका लोप होने को अवकाश नही)।

वस्तु वास्तव मे सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य से रहित विशेष या विशेष से रहित सामान्य खर्विसाण वत् असत् है। अत. इन दोनो कोटियो को युगपत स्पर्श करने वाला ज्ञान ही प्रमाण है। परन्तु यहां तो नय का प्रकरण है। सामान्य विशेषात्मक अखण्ड वस्तु मे से कोई से एक सामान्य या विशेष अंग को पृथक निकालकर देखने वाली दृष्टि का नाम नय है, यह पहिले समझाया जा चुका है। अत. सामान्य रहित विशेष को ग्रहण करना नय स्वरूप होने के कारण अनेकान्तवादियों के यहां विरोध को प्राप्त नही होता, क्योंकि यहा सामान्यांश ग्राही द्रव्यार्थिक दृष्टि गौण है परन्तु उसका निषेध नही है। बोद्ध मत वत एकान्त क्षणिक या विशेष वादियो वत यदि हमारा कथन भी सामान्य से सर्वथा व सर्वदा के लिये निरपेक्ष हुआ होता तो अवश्य ही आपकी शका युक्त थी।

२. शंका —सामान्य ग्राही द्रव्यार्थिक व विशेष ग्राही पर्यायार्थिक मे क्या अन्तर है ?

उत्तर —अनेक विशेषों मे अनुस्यूत या अनुगत एक अखण्ड व ध्रुव तत्व को सामान्य कहते है, जैसे बालक, युवा बुढ़ापा तीनो कलात्मक विशेषों मे अनुगत मनुष्य सामान्य तत्व है। अत. सामान्य तत्व में दृष्टि विशेष करने पर भेद भी दिखाई दे सकता है और अभेद भी। इस प्रकार अनेकों विशेषो के द्वैत मे अद्वैत करने वाला या एक

अद्वैत सामान्य में विशेष दर्शक द्वैत करने वाला द्रव्यार्थिक नय है ।

परन्तु विशेष में अन्य नही रहता, अत वहा न द्वैत दर्शाना सम्भव है और न अद्वैत । जितना कुछ वह उस समय दिखाई देता है वही सत है । उसे विशेष भी नही कहा जा सकता, क्योकि विशेष कहना सामान्य की अपेक्षा रखता है । जहा सामान्य दिखाई ही नही देता, वहा उसे विशेष भी कैसे कहा जा सकता है ? बस उतना मात्र ही एकत्वगत तत्व सत् है, ऐसा ग्रहण करना पर्यायार्थिक नय का विषय है ।

३ शंका –यदि निर्विशेष एक विशेष प्रमाण ही सत को स्वीकार करना पर्यायार्थिक या ऋजुसूत्र नय का विषय है, तो मनुष्यादि स्थूल व्यञ्जन पर्यायें इस के विषय नही बन सकते, क्योकि वे निर्विशेष नही है, बल्कि क्षेत्रात्मक अवयवो व कालात्म अनेको बालक आदि पर्यायो में अनुगत होने के कारण वे तो सामान्य तत्व है ।

उत्तर –यह कहना सत्य है–परन्तु जैसा कि स्थूल ऋजुसूत्र नय का लक्षण करते हुआ बता दिया है, लौकिक व्यवहार में स्थूल दृष्टि से देखने पर उस में एकत्व ही दिखाई देता है, क्योकि जन्म से मरण पर्यन्त वह मनुष्य वह का वह ही देखा जाता है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर अवश्य उसमें अनेक क्षेत्रात्मक विशेष या प्रदेश और कालात्मक विशेष या अन्य पर्यायें देखी जाती है, परन्तु वे सब विशेष स्थूल दृष्टि के विषय नही । जीव सामान्य के भेद प्रभेद करते हुए स्थूल दृष्टि इन व्यञ्जन पर्यायो पर आकर रुक जाती

है, इसलिये इन्हे अन्तिम स्थूल विशेष स्वीकार कर लिया गया है ।

ऋजुसूत्रनय के दो भेद है–सूक्ष्म व स्थूल । तहा सूक्ष्म ऋजुसूत्र की अपेक्षा तो इन्हें निर्विशेष कभी भी कहा नही जा सकता, क्योकि उसका विषय केवल एक प्रदेशी व एक समय स्थायी परमाणु की सूक्ष्म अर्थ पर्याय है । परन्तु स्थूल ऋजुसूत्र का विषय बनने मे इस के लिये कोई विरोध नही आता । यह अनेकान्त की ही कोई अचिन्त्य महिमा है, कि तनिक से दृष्टि के फेर से विरोध भी अविरोध हो जाता है ।

४. **शंका** –"यदि ऐसा भी पर्यायार्थिक नय है तो–

"उप्पजंति वियति य भावाणियमेण पज्जवणयस्स ।
दव्वट्ठियस्य सव्व सदा अणुप्पणगभविणट्ठं ।।९४ ।।"

(**अर्थ**—जो भाव नियम से उत्पन्न होते व विनशते रहते है वे पर्यायार्थिक नय के विषय है और जो सर्वथा व सदा अनुत्पन्न व अविनष्ट रहते है वे द्रव्यार्थिक नय के विषय है ।)

"इस सन्मति सूत्र के साथ विरोध होगा"

(अर्थात यदि उत्पन्न ध्वसि ही भाव नियम से पर्यायार्थिक का विषय है तो छः मास या सख्यात वर्ष तक टिकने वाले भाव ऋजुसूत्र का विषय न बन सकेंगे ।)

उत्तर —"(विरोध) नही होगा, क्योकि अशुद्ध ऋजुसूत्र के द्वारा व्यञ्जन पर्याय ही विषय की जाती है और शेष (अर्थ)

पर्यायें अप्रधान हैं। पूर्वापर कोटियो का अभाव होने के कारण उत्पत्ति व विनाश को छोडकर अवस्थान पाया नही जाता।" (ध० ।९।गा० ९४। पृ० २४४)

भावार्थ-सन्मति सूत्र में शुद्ध ऋजुसूत्र को दृष्टि मे रखकर बात की गई है, इस लिये उस की बात इस नय से बाधित नही होती। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वह बात ही सत्य है। क्योकि पहिली और पिछली पर्यायो में समान रूप से प्रतीति में आने वाला द्रव्य है। वही ध्रुव या स्थाई है। सो उन पर्यायो के क्षणिक उत्पाद व विनाश से रहित रहना असम्भव है। अत क्षणिक उत्पाद व व्यय रूप जा उस का अश उसे ही सूक्ष्म दृष्टि से पर्यायार्थिक का विषय बनाया जा सकता है।

शका-व्यवहार नय का विषय भी व्यञ्जन पर्याय है और स्थूल ऋजुसूत्र का भी। फिर दोनो में क्या अन्तर है जो व्यवहार नय को द्रव्यार्थिक व ऋजुसत्र को पर्यायार्थिक कहते हो?

उत्तर-व्यञ्जन पर्यायें उसी समय व्यवहार नय का विषय बन सकती है, जब कि उनमें अनुगत किसी सामान्य द्रव्य में अनेको व्यञ्जन पर्याय रूप भद दर्शाकर, 'यह पर्याय इस द्रव्य की है" ऐसा कहा जाये। परन्तु जहा वे पर्यायें एकत्व रूप से ग्रहण की जाती ह, तब पर्यायार्थिक का विषय बनती हैं।

५ शका- (ध०।९।२६५।२२) "पर्यायार्थिक ऋजु सूत्र के द्रव्य पने की सम्भावना कैसे हो सकती है?"

उत्तर-"नहीं, क्योकि अशुद्ध ऋजु सूत्र नय में द्रव्य की सम्भावना के प्रति कोई विरोध नही।"

(ध० ।१२।२९० २१) .(क० पा० ।१ह।२१३ ।२६३ ।१९)

६. शंका — (ध० । १० । ११ । १६) "तद्भव सामान्य व सादृश्य सामान्य रूप द्रव्य (व्यञ्जन पर्याय) को स्वीकार करने वाला ऋजु सूत्र द्रव्यार्थिक कैसे नही है ?"

उत्तर—"नही, क्योकि ऋजु सूत्र घट पट व स्तम्भादि स्वरूप व्यञ्जन पर्यायों से परिच्छिन्न ऐसे अपने पूर्वापर भावो से रहित वर्तमान मात्र को विषय करता है, अतः उसे द्रव्यार्थिक मानने मे विरोध आता है।"

(एक पदार्थ जो घट रूप से प्रतीति मे आता है पहिले कभी कुशूल रूप रह चुका है और आगे कपाल भी बन जाने वाला है। भूत और भविष्यत के इन रूपों से निरपेक्ष उस पदार्थ को केवल घट मात्र ही देखना। उसकी उत्पत्ति से पहिले तथा उसके विनाश के पश्चात उस पदार्थ की सत्ता का किसी भी रूप मे ग्रहण न होना ऋजुसूत्र दृष्टि है। अतः यह द्रव्य पर्याय को ग्रहण करने पर भी पर्यायार्थिक ही है द्रव्यार्थिक नही।

७ शंका —शुद्ध द्रव्यार्थिक या शुद्ध सग्रह तथा शुद्ध पर्यायार्थिक या ऋजुसूत्र दोनों मे ही भेदो का निरास करके वस्तु को निर्विकल्प सिद्ध किया गया है। तव दोनों मे क्या अन्तर रहा ?

उत्तर —निर्विकल्पता की अपेक्षा यद्यपि कोई अन्तर नही, परतु अद्वैत व एकत्व का अन्तर है। सग्रह नय शुद्ध अद्वैत को और ऋजुसूत्र शुद्ध एकत्व को सत् रूप से स्वीकार

करने ह । शुद्ध अद्वत में द्वैत रहते अवश्य हे पर उनको गोण कर दिया जाता है, जब कि शुद्ध एकत्व में द्वैत रहता ही नही । सामान्य में विशेष रहत ह पर विशेष में अन्य विशेष नही । दानो ही नय शुद्ध तत्व का निरूपण करते हैं परन्तु सग्रह उसके शुद्ध सामान्य ग्राही छोर पर बैठा है और ऋजुसूत्र उस ही तत्व के शुद्ध विशेष ग्राही छोर पर बैठा है ।

८ शंका –पर्याय द्रव्य से अभिन्न ही रहती है अर्थात सामान्य से रहित विशेष कोई वस्तु नही । फिर पथक पृथक पर्यायो को स्वतन्त्र सत्ता रूप से ऋजुसूत्र नय का विषय कैसे बनाया जा सकता है ?

उत्तर –यहा पथक सत्ता का अर्थ द्रव्य निर्पेक्ष सत्ता नही है, परन्तु द्रव्य गौण सत्ता है । पर्याय से निर्पेक्ष द्रव्य और द्रव्य से निर्पेक्ष पर्याय का ग्रहण नय नही है ।

नैगम नय के अनेको द्वैत रूप भेद है। उनको एकान्त रूप से मानने वाले न्याय वैशेषिको का नगमाभास मे अन्तर्भाव होता है । विशेषो की अपेक्षा न करके अर्थात गौण करके वस्तु के सामान्य रूप से जानने का सग्रह नय कहते ह, जैसे जीव कहने से त्रस स्थावर आदि सब प्रकार के जीवो का ज्ञान होता है । सग्रह नय पर सग्रह और अपरसग्रह के भेद से दो प्रकार की है । सत्ता द्वत को मानकर सम्पूर्ण विशेषो के निषेध करने को सग्रहाभास कहते ह । अद्वैत वेदान्तियो ओर साख्यो का सग्रहाभास में अन्तर्भाव होता है ।

सग्रह नय स जाने हुए पदार्थों के योग्य रीति से विभाग करने को व्यवहार नय कहते ह । जैसे जो 'सत' है वही द्रव्य

या पर्याय है। इसको सामान्यभेदक और विशेषभेदक के भेद से दो भेद है। द्रव्य और पर्याय के एकान्त भेद को मानना व्यवहाराभास है इसमे चार्वाक दर्शन गर्भित है।

वस्तु की अतीत और अनागत पर्याय को छोड़कर वर्तमान क्षण की पर्याय को जानना ऋजुसूत्र नय है, जैसे इस समय मै सुखी हूं या सुख की पर्याय भोग रहा हूं या इस समय मै युवा हू। सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र के भेद से ऋजुसूत्र के दो भेद है। केवल क्षण क्षण मे नाश होने वाली पर्याय को मानकर पर्याय के अश्रित द्रव्य का सर्वथा निषेध करना ऋजुसूत्र नयाभास है। बौद्ध दर्शन इसी मे गर्भित है।

इस प्रकार सर्वत्र जानना। वचनों के भाव समझने का प्रयत्न करना। जहा कही भी निरपेक्षता दिखाई दे वहां गौणता का अर्थ समझना, क्योंकि पहिले ही अध्याय नं० ९ मे नयों की मुख्य गौण व्यवस्था का परिचय दिया जा चुका है।

६ **शंका**.–ऋजुसूत्र नय केवल वर्तमान काल को विषय करता है, तव भूत व भावि सज्ञा व्यवहार किस नय का विषय है।

उत्तर:–भूत व भावि संज्ञा का व्यवहार करने मे कोई विरोध नही है। अन्तर केवल इतना पड़ता है कि यदि वह व्यवहार ऐसा किया गया हो, जिसमे कि भूत या भविष्यत पर्याय का कोई सम्वन्ध वर्तमान पर्याय के साथ दिखाई दे तो वह प्रयोग द्रव्यार्थिक अर्थात नैगम या व्यवहार नय का कहलायेगा, जैसे कि जिसे कल मन्दिर मे देखा

वह आज कलकत्ता गया है। यदि वह व्यवहार ऐसा किया गया हो, जिसमें कि भूत व भविष्यत की पर्याय का सम्बन्ध वर्तमान पर्याय से जुड़ना प्रतीत न हो तो वह प्रयोग पर्यायार्थिक या जुसूत्र नय का कहलायेगा। जैसे 'वह एक क्षात्र था' 'यह एक डाक्टर है' ऐसा कहना 'जो क्षात्र था वही यह डाक्टर है' ऐसा कहना द्रव्यार्थिक है पर्यायार्थिक नही, क्योंकि पूर्व पर्याय रूप क्षात्र और वर्तमान पर्याय रूप डाक्टर को एक व्यक्ति के अन्तर्गत देखा जा रहा है।

१५

शब्दादि तीन नय

१. व्यञ्जन नय सामान्य का परिचय, २. तीनो का विषय एकत्व, ३. तीनों में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता, ४. वचन के दो प्रकार, ५. व्यभिचार का अर्थ, ६. शब्द नय का लक्षण, ७. शब्द नय के कारण व प्रयोजन, ८. समभिरूढ़ नय का लक्षण, ९. समरूढ नय के कारण व प्रयोजन, १०. एवंभूत नय का लक्षण, ११. एवंभूत नय के कारण व प्रयोजन, १२. तीनों नयों का समन्वय।

१. व्यञ्जन नय सामान्य का परिचय

ज्ञान नय, अर्थ नय और शब्द नय ऐसे नय सामान्य के पहिले तीन भेद किये गये थे। उनमे से ज्ञान नय का व्याख्यान नैगम नय के नाम से कर दिया गया। अर्थ नय के दो भेद है—सामान्य ग्राही

द्रव्यार्थिक नय और विशेष ग्राही पर्यायार्थिक नय,। तहां द्रव्यार्थिक के अद्वैत व द्वैत भाव को ग्रहण करके संग्रह व व्यवहार नयों के नाम से उस का कथन कर दिया गया। पर्यायार्थिक नय का कथन ऋजुसूत्र के नाम से किया गया। अब तीसरा जो शब्द नय उसके कथन का अवसर प्राप्त होता है।

यद्यपि शब्द नय का विषय पूर्व कथित अन्य नयों से कोई भिन्न ही जाति का है, परन्तु इसका विषय जो शब्द, वह स्वयं एक व्यञ्जन पर्याय है द्रव्य नहीं, अतः इस नय को कदाचित पर्यायार्थिक भी कह दिया जाता है। परन्तु पर्यायार्थिक कहने का ऐसा अर्थ न समझ लेना कि यह नय किसी पदार्थ के विशेषांश को ग्रहण करके वर्तन करता होगा, क्योंकि पदार्थ के अन्तिम अंश का ग्रहण ऋजुसूत्र नय के द्वारा हो जाने के पश्चात अब उसमें कोई अवान्तर अंश शेष रह नहीं जाता, जिसको कि शब्द नय का विषय बनाया जा सके।

शब्द नय का व्यापार केवल बोले जाने वाले अथवा लिखे जाने वाले शब्द में होता है। किस शब्द में होता है। किस शब्द का प्रयोग किस स्थान पर किस रीति से किया जाना योग्य है, कौन शब्द किस अर्थ का द्योतक है, और किस समय किस पदार्थ को ठीक ठीक क्या नाम दिया जाना चाहिये, जिससे कि श्रोता या पाठक को कोई भी भ्रम उत्पन्न होने न पावे। इस प्रकार शब्द गत उत्तरोत्तर सूक्ष्मता को विषय करने वाले नय को शब्द नय कहते हैं।

इस शब्द नय के तीन भेद हैं, जो उत्तरोत्तर एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्मता का प्रतिपादन करने वाले हैं—शब्द नय, समभिरूढ नय और एवंभूत नय। इन तीनों में क्रमपूर्वक सूक्ष्मता का कथन तो आगे करेंगे, यहां तो केवल इतना ही बताना इष्ट है कि इस

पर्यायार्थिक क्यों कहा जाता है। इस सम्बन्ध मे कुछ आगम वाक्य उद्धृत करता हू ।

१. रा वा ।४।४२।१७।२६१।११ "व्यञ्जनपर्यायास्तु शब्द नया'।
अर्थ–शब्द या व्यञ्जननय व्यञ्जन पर्याय को विषय करते है ।

२ ध पु.१।पृ १३।गा ७ "मूलणिमेणं पज्जवणयस्स उजुसुद्द–वयणविच्छेदो । तस्स दुसद्दादीया साह–पसाहा सहुम भेया ।७।"

अर्थ–ऋजुसूत्र वचन का विच्छेद रूप वर्तमान काल ही पर्यायार्थिक नय का मूल आधार है, और शब्दादिक नय शाखा उपशाखा रूप उसके उत्तरोत्तर सूक्ष्म भेद है ।

यहां ऐसा तात्पर्य समझना कि वर्तमान समय वर्ती पर्याय को विषय करना ऋजुसूत्र नय है । इसलिये जव तक पूर्वोत्तर पर्यायो मे अनुगत द्रव्य गत भेदों की मुख्यता रहती है तब तक व्यवहार नय चलता है, और जब वर्तमान मात्र काल कृत भेद प्रारम्भ हो जाता है तभी से ऋजुसूत्र नय प्रारम्भ होता है । शब्द समभिरूढ और एवभूत इन तीनो नयों का विषय भी वर्तमान पर्याय मात्र है, द्रव्य नही ।

यहां यह शंका की जा सकती है कि शब्द को विषय करने वाले नाम निक्षेप को द्रव्यार्थिक नय मे गर्भित किया गया है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय मे क्षण क्षयी होने के कारण, शब्द व अर्थ की विशेषता से संकेत करना नही बन सकता । ऐसा होने पर शब्द नयों का शब्द व्यवहार कैसे सम्भव हो सकेगा ? अत· इन नयों को भी द्रव्यार्थिक स्वीकार करना चाहिये । इस शंका का समाधान आगम मे निम्न प्रकार दिया है ।

१ ध ।पु ६।पृ १८३।२४ "अर्थगत भेद की अप्रधानता और शब्द निमित्तक भेद की प्रधानता रखने वाले उक्त नयो के शब्द व्यवहार में कोई विरोध नही आता" (अर्थात इन नयो का काम केवल वाचक शब्दो में तक्षणा उत्पन्न करना है, पदार्थ में भेद या अभेद देखना नही। यही वह दूसरा कारण है, जिसका संकेत कि ऊपर किया गया है । शब्द क्योंकि स्वय पर्याय है इसलिये इसको विषय करने वाला नय भी पर्यायार्थिक होना चाहिये ।)

यहा पुन शका हो सकती है कि शब्द तो पर्याया वाची ही नही द्रव्य वाची भी होते है, फिर शब्दो का विषय करने वाला नय भी दोना रूप होनी चहिये । इसका उत्तर भी आगम में निम्न प्रकार दिया गया है।

१ ध ।पु ६।पृ १८१।८ "क्रिया और गुणादिक रूप अर्थगत भेद से अर्थ का भेद करने के कारण सग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र नय अर्थ नय है। शेष नय शब्द के पीछे अर्थ ग्रहण में तत्पर होने से शब्द नय है ।" (और वह शब्द क्योंकि पर्याय है, इसलिये इनका अन्तर्भाव मूल दो भेदा के पर्यायार्थिक नय में में ही किया जा सकता है ।)

२ ध ।पु १०।पृ १२।१० "एक तो शब्द नय की अपेक्षा दूसरी पर्याय का संक्रमण मानने में विरोध आता है। (अर्थात इनका विषय जैसे कि आगे बताया गया है एकत्व है द्वैत नहीं) । दूसरे वह शब्द भेद से अर्थ के कथन करने में व्यावृत रहता है। अत उसमें नाम निक्षेप व भाव निक्षेप की ही प्रधानता रहती है, पदार्थो के भेदा की प्रधानता नही रहती, इसलिये शब्द नय (व्यञ्जन

नय) द्रव्य निक्षेप को स्वीकार नही करता।" (अभिप्राय यह है कि वर्तमान भाव मात्र ग्राहक, भाव निक्षेप का विषय होने पर से इसको पर्यायार्थिक ही कहा जा सकता है द्रव्यार्थिक नही)।

तात्पर्य यह है कि तीनों शब्द नयो का व्यापार शब्दों के दोषो को देखना है, द्रव्य के भेद प्रभेदो को नही। 'अमुक शब्द का क्या अर्थ होना चाहिये, यदि ऐसा अर्थ किया तो यह दोप आयेगा, यदि ऐसा किया तो यह दोप आयेगा, इस प्रकार शब्द को सूक्ष्म, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम दृष्टि से देखना इनका काम है, अत इन्हे शब्द नय कहा जाता है। तीनो शब्द नयो मे 'शब्द नय' नाम की एक स्वतंत्र नय है अत. भ्रम निरवारणार्थ तीनों के समूह को बताने के लिये 'व्यञ्जन नय' यह नाम लिया जाता है। इस प्रकार इन नयों का पर्यायार्थिकपना व व्यञ्जनपना सिद्ध है।

२. तीनो का विषय एकत्व

पर्यायार्थिक सिद्ध हो जाने पर यह कहने की आवश्यकता नही रहती कि इनका विषय भी ऋजुसूत्र वत् एकत्व ग्राहक है। व्यञ्जन नयो का मुख्य व्यापार किसी पदार्थ को नाम देना है। नाम वस्तु की कोई न कोई विशेपता देख कर ही रखा जाया करता है, और विशेषता एकत्व स्वरूप होती है। विशेपता भी दो प्रकार की है—सूक्ष्म व स्थूल। तहा सूक्ष्म का तो कोई भी वाचक शब्द ही सम्भव नही है, जो भी शब्द है वे सब स्थूल विशेषता अर्थात व्यञ्जन पर्याय को लक्ष्य मे रखकर प्रगट हुए है, जैसे सत् के अस्तित्व गुण के कारण उसे 'सत्' द्रव्यत्व गुण के कारण 'द्रव्य' और वस्तुत्व गुण के कारण 'वस्तु' कहने मे आता है। अत वस्तु के विशेप को दृष्टि मे रखकर उसे अपने द्वारा वाच्य बनाने वाले सर्व शब्दो का विषय भी सूक्ष्म तर्कणा के द्वारा एकत्वगत ही प्राप्त होगा। यहा भी पूर्वापर पर्यायो

मे या पर्याय व द्रव्य में या दो भिन्न पदार्थो में काय कारण आदि सम्बन्ध उत्पन्न नही किया जा सकता । यह भी ऋजुसूत्र वत् केवल एक ही सख्या को ग्रहण करता है । कहा भी है –

१ क पा ।१।३१६।२५ "नैगम सग्रह व्यवहार और स्थूल ऋजुसूत्र इन नयो में कार्य कारण भाव सम्भव है । शब्द समभिरूढ और एव भूत इन तीनो शब्द नयो की दृष्टि में कारण के बिना ही काय की उत्पत्ति होती है ।

२ ध ।१२।२६२।२६ "तीनो शब्द नयो की अपेक्षा (निमित्त से काय की उत्पत्ति नही होती, न ही पूर्व पर्याय से होती है) क्योकि (इन नयो मे) पर्यायो से रहित सामान्य द्रव्य का अभाव है ।"

३ ध ।१२।पु १४।पृ ३०० "(तीनो) । शब्द और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना (एक) जीव के ही होती है । (नैगम व्यवहारवत् कम स्कन्ध के अथवा सग्रह नयवत् बहुत जीवो के नही होती ।"

४ ध ।१२।३००।२७ "(इन ऋजुसूत्र व तीनो शब्द नयो की अपेक्षा) सभी वस्तु एक सख्या से सहित है, क्योकि इसके बिना उसके अभाव का प्रसग आता है । एकत्व को स्वीकार करने वाली वस्तु में द्वित्व की सम्भावना भी नही है । क्योकि उनमें शीत व उष्ण के समान सहानवस्थान रूप विरोध देखा जाता है । इसके अतिरिक्त एकत्व से रहित वस्तु है भी नही, जिससे कि वह अनेकत्व का आधार हो सके ।"

५ रा वा ।१।३३।१०।६६।२ "यथा क्व भवानास्ते ? स्वात्मनीति । कुत ? वस्त्वन्तरे वृत्यभावात् ।"

अर्थ– जैसे "आप कहा रहते है" ऐसा पूछने पर इन नयो का उत्तर यही होता है कि "अपनी आतमा मे ही रहता हूँ" क्योकि एक वस्तु का दूसरी वस्तु मे वर्तन करने का अभाव है।)

६. रा वा. ।५।१२ ।५।४५४ एवभूत नयादेशात् सर्व द्रव्याणि परमार्थतयाऽऽत्मप्रतिष्ठितानि। इति आधाराधेयाभावात् कुतोऽनवस्था ?"

अर्थ.–एवंभूत नय की अपेक्षा सर्व द्रव्य परमार्थ से अपने स्वरूप मे ही रहते हे अन्य मे नही। (इस प्रकार आधार आधेय भाव का अभाव होने के कारण अन्वस्था उत्पन्न नही की जा सकती।

७. रा. वा ।१।१।२४।८ "नेमौ ज्ञानदर्शनशब्दौ करण साधनौ। कि तर्हि ? कर्तृ साधनौ। · · ·कथम् ? एवम्भूत-नयवशात् ।"

अर्थ — इन ज्ञान व दर्शन शब्दो म करण साधन पना नही है। अर्थात् कार्य कारणपना नही है। परन्तु कर्तृ साधनापना है। अर्थात दोनो स्वतत्र रूप से अपने अपने कर्ता आप है। एवभूत नय का ऐसा आदेश है।

जहा एक समय व एक पर्याय मात्र को ही स्वतत्र सत् रूपेण विषय किया गया हो, उनके अतिरिक्त जहा कोई दूसरा द्रव्य, गुण कि पर्याय दिखाई ही न देता हो, वहा कार्य कारण आदि भावो का द्वैत उत्पन्न किया ही कैसे जा सकता है ?

३. तीनो में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता

जैसा कि पहिले भी सातो नयो की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता दर्शाते हुए बता दिया गया है यह तीनो नये पहिली पहिली की अपेक्षा से अधिक अधिक सूक्ष्म है। इनमे ऋजुसूत्र के विषयभूत अर्थ के वाचक शब्दो

की मुख्यता है, इसलिये इनका विषय ऋजुसूत्र से सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम माना गया है ।

इसका कारण यह है कि पूर्व पूर्व नय आगे आगे के नय का हेतु है पूर्व पूर्व विरुद्ध महा विषय वाला और उत्तरोत्तर अल्प अनुकूल विषय वाला है। द्रव्य की अनन्त शक्ति है, इसलिये प्रत्येक शक्ति की अपेक्षा भेद को प्राप्त होकर ये अनेक विकल्प वाले हो जाते है । अर्थात पहिले नय ने जितना पदार्थ विषय कर रखा है उतने पदार्थ को आगे का नय विषय नही करता और आगे का नय जिसे विषय करता है वह विषय पहिले नय में भी गर्भित है। जैसे –

ऋजुसूत्र नय शब्द के लिंग सख्या आदि का भेद न करके वर्तमान पर्याय का प्रतिपादन करता है, परन्तु शब्द नय उस एक पर्याय में लिंग सख्या आदि के भेद से अर्थ का भेद प्रकाशन करता है। अर्थात ऋजुसूत्र नय पदार्थ की पर्याय और शब्द पर्याय सभी को विषय करता है परन्तु शब्द नय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है। इसलिये शब्द नय से ऋजुसूत्रनय का विषय अधिक है ।

शब्दनय लिंग सख्या आदि के भेद से ही उस शब्द के अर्थ में भेद मानता है, समान लिंगादि वाले पर्याय वाची शब्दो में अर्थ भेद नही मानता जब कि समभिरूढ नय इन्द्र शक्र पुरन्दर आदि समान लिंगी पर्याय वाची शब्दो को भी व्युत्पत्ति की अपेक्षा भिन्न रूप में जानता है। शब्द नय में अर्थ एक ही रहता है और उसके पर्याय स्वरूप शब्द अनेक होते है। समभिरूढ नय में यद्यपि एवभूत नय वत शब्द की प्रवृत्ति का कारण नही माना जाता, परन्तु एक शब्द के अनेको अर्थों को छोडकर यह एक ही प्रसिद्ध अर्थ ग्रहण करता है । अतएव शब्द नय से समभिरूढ नय का विषय अल्प है।

समभिरूढ नय सोना बढना आदि अनेक क्रिया युक्त पदार्थ को एक नाम से घोषित करता है, जब कि एवभूत नय जिस काल में जो

अर्थ क्रिया हो रही है उसी की अपेक्षा रखकर उसे नाम देती है। जैसे समभिरूढ नय की अपेक्षा पुरन्दर व शचीपति इन्द्र मे शब्द गम्य या व्युत्पत्ति गम्य भेद होने पर भी नगरो का विभाग करने की क्रिया न करने के समय भी पुरन्दर शब्द इन्द्र के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, परन्तु एवभूत नय की अपेक्षा नगरो का विभाग करते समय ही इन्द्र को पुरन्दर नाम से कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी समभिरूढ़ नय वर्ण भेद से पर्याय के भेद को स्वीकार नही करता, एवभूत अनेक पदो का समास और 'घ', 'ट' आदि अनेक वर्णो का समास करके शब्द बनाना स्वीकार नही करता। अत. इस अत्यन्त सूक्ष्म एवभूत नय से समभिरूढ़ नय का विषय अधिक है।

इन तीनो नयो मे एक पदार्थ के वाचक अनेक पर्याय वाची शब्दों को स्वीकार करने वाला शब्द नय कोषकार को इष्ट है। व्युत्पत्ति की अपेक्षा एकार्थ वाची शब्दों मे अर्थ भेद देखने वाला समभिरूढ नय वैयाकरणियो को इष्ट है, और तत्क्रिया परिणत पदार्थ को उस समय के योग्य एक ही नाम देने वाले एवंभूत को निरुक्तिकार पसद करता है।

४ वचन के दो प्रकार — व्यवहारिक भाषा व व्याकरण मे दो प्रकार के शब्दो का प्रयोग करने मे आता है—अभेद वाची व भेद वाची अर्थात सामान्य व विशेष। एक अर्थ के प्रति अनेक पर्यायवाची शब्द सामान्य है और अर्थ प्रति अर्थ निश्चित किये गये शब्द विशेष है। उसी का परिचय निम्न उद्धरण मे दिया गया है।

रा. वा ।४।४२।१७।२६१।११ "व्यञ्जनपर्यायास्तु शब्दनया द्विविधं वचन प्रकल्पयन्ति-अभेदेनाभिधानं भेदेन च। यथा शब्दे पर्यशब्दान्तर प्रयोगेऽपि तस्यैवार्थस्याभिधानादभेद। समभिरूढे वा प्रवृत्तिनिमित्तस्य अप्रवृत्तिनिमित्तस्य च घटस्याभिन्नस्य सामान्येनाभिधानात्। एव-

भूतेषु प्रवृत्तिनिमित्तस्य भिन्नस्यैकस्यैवार्थस्याभिधानात् भेदेनाभिधानम् ।"

अथवा अन्यथा द्वविध्यम्-एकस्मिन्नर्थेऽनेकशब्द-प्रवृत्ति प्रत्यय वा शब्दविनिवेश इति । यथाशब्दे अनेकपर्यायशब्दवाच्य एक । समभिरूढे वा नैमित्तिकत्वात् शब्दस्यैकशब्दवाच्य एक । एवंभूते वर्तमानक्रियानिमित्तशब्द एकवाच्य एक ।"

अर्थ —शब्द नय व्यञ्जन पर्यायो को विषय करता है । वे (तीनो ही शब्द नयें) अभेद तथा भेद दो प्रकार के वचन प्रयोग को सामने लाते है । तहा अभेद (अभेद वचन का प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है-अनेक पर्यायवाची शब्दो द्वारा एक ही वाच्य पदार्थ का कथन करना, तथा एक शब्द से प्रवृत्ति व अप्रवृत्ति निमित्तिक, अनेक पर्यायो से समवेत, एक ही सामान्य पदार्थ का कथन करना) जैसे –

(i) शब्दनय में पर्याय वाची विभिन्न शब्दो का प्रयोग होने पर भी उसी अर्थ का कथन होता है, अत अभेद है ।

(ii) समभिरूढनयमें घटनक्रियामें परिणत, अपरिणत, अभिन्न ही घट का निरूपण होता है, (अत अभेद है) ।

भेद –(भेद वचन का प्रयोग एक ही प्रकार से होता है) जैसे– एवभूत में प्रवृत्ति निमित्त से भिन्न एक ही अर्थ का निरूपण होता है अर्थात भिन्न भिन्न समयो में भिन्न भिन्न प्रवृत्तियो या पर्यायो से परिणत एक ही द्रव्य के भिन्न भिन्न नाम होते है ।

२. एक वस्तु की ओर सकेत करने वाला शब्द एक वचनान्त कहलाता है और इसी प्रकार दो वस्तुओं कि ओर सकेत देने वाला द्वि-वचनान्त तथा बहुत सी वस्तुओं की ओर सकेत देने वाला बहुवचनान्त कहलाता है । जैसे नक्षत्र शब्द एक वचनान्त है, पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है और शतभिषज शब्द बहुवचनान्त है । यद्यपि हिंदी व्याकरण मे एक-वचनान्त व बहुवचनान्त यह दो रूप ही समझे जाते है, परन्तु सस्कृत व्याकरण मे उपरोक्त तीनो वचन स्वीकार किये गये है । इस कथन पर से शब्द के वचन या संख्या का परिचय दिया गया ।

३. बीती हुई अवस्था का वाचक शब्द भूत काल वाचक, वर्तमान अवस्था का वाचक शब्द वर्तमान वाचक, और भविष्यत काल की अवस्था का वाचक शब्द भाविकाल वाचक कहा जाता है—जैसे 'विश्वदृशा' जिसने विश्व देख लिया है यह शब्द भूत काल वाचक है, 'सर्वज्ञ' शब्द वर्तमान काल वाचक है, 'भाविसर्वज्ञ' जो आगे जाकर सर्वज्ञ होगा ऐसा शब्द भविष्यत काल वाचक है । हिन्दी व सस्कृत दोनो ही व्याकरणों मे यह तीन काल स्वीकार किये गये हैं । इस कथन पर से शब्द के काल का परिचय दिया गया ।

४. जो काम करे सो कर्त्ता, जो कुछ काम किया जाये वह कर्म, जिस के द्वारा किया जाये वह करण, जिसके लिये किया जाये वह सम्प्रदान, जिस से पृथक करके किया जाये सो अपादान और जिस वस्तु के आधार पर किया जाये सो अधिकरण कारक है । जैसे 'सुनार ने तिजोरी मे से स्वर्ण निकाल कर हथौड़े आदि के द्वारा अपने ग्राहक के लिये जेवर बनाया' इस वाक्य म सुनार कर्त्ता कारक है, जेवर कर्म कारक है, हथौडा आदिकरण कारक है, ग्राहक सम्प्रदान कारक है, तिजोरी अपादान कारक है और सुवर्ण अधिकरण कारक है । हिन्दी तथा सस्कृत दोनो मे ही इन छः-कारकों का प्रयोग किया जाता है । अन्तर केवल इतना है कि

हिन्दी वाले प्रयोगो में तो इन कारक भावो का ग्रहण 'ने' 'को' 'के द्वारा' 'के लिये' 'में से' तथा 'में पर' इन शब्दो के द्वारा किया जाता है, और सस्कृत में उस उस शब्द के साथ उस उस विभक्ति विशेष का पयोग करके शब्द का रूप ही बदल दिया जाता है जैसे 'सुनार ने' ऐसा कहने के लिये 'स्वर्णकार' यह शब्द कहा जाता है। इस कथन परसे शब्द के कारक का परिचय दिया गया।

५ 'वह' या 'वे' या कोई भी सज्ञा वाचक शब्द प्रथम पुरुष वाला है। 'तू' या 'तुम' ये दो शब्द मध्यम पुरुष वाले है। 'मै' या 'हम' यह दो शब्द उत्तम पुरुष वाले है। उस उस पुरुष वाचक शब्द को कर्ता कारक रूप से ग्रहण करने पर, जिस जिस क्रिया (verb) का प्रयोग उसके साथ में किया जाता है उस उस क्रिया का रूप भी तदनुसार ही ग्रहण करने मे आता है। जैसे हिन्दी में तो 'वह जाता है' 'तुम जाते हो' और 'मै जाता हूँ' इस प्रकार क्रियाओ का प्रयोग होता है, और सस्कृत मे 'स गच्छामि' 'त्वम् गच्छति' 'अहम् गच्छामि' इस प्रकार क्रियाओ का प्रयोग होता। 'गच्छति' का अर्थ जाता है 'गच्छसि' का अर्थ जाते हो और 'गच्छामि' का अर्थ जाता हू, ऐसा होता है। क्रिया वाचक शब्दो के इन तीन रूपो को ही तीन पुरुष कहा जाता है। इस कथन पर से शब्द के 'पुरुष' का परिचय दिया गया।

६ किसी शब्द के साथ 'वि' 'स' 'उप' आदि उपसर्ग जोड देने पर सस्कृत व्याकरण के अनुसार उस शब्द के अनुसार उस शब्द के अर्थ में कुछ फर्क पड जाता है। आत्मन पद से परस्मैपद का अर्थ और परस्मपद से आत्मने पद का अर्थ हो जाता है जैसे 'तिष्ठति' के साथ 'स' उपसर्ग लगाने पर 'सतिष्ठति' नही कहा जा सकता, बल्कि 'सतिष्ठते' कहना होगा। इस कथन पर से उपग्रह का परिचय दिया गया।

व्याकरण की अपेक्षा किसी वाक्य में जिस स्थान पर जो लिग व सख्या आदि प्राप्त हो अर्थात जिस स्थान पर जिस लिंग आदि वाचक शब्द का प्रयोग करना युक्त हो, उस स्थान पर उसका प्रयोग न करके किसी अन्य ही लिग आदि वाचक शब्दो का प्रयोग करना शब्द व्यभिचार कहलाता है—जैसे 'अवगमो विद्या' अर्थात ज्ञान विद्या है। यहा पर 'अवगम' शब्द पुल्लिंगी और 'विद्या' शब्द स्त्रीलिगी है। वास्तव मे स्त्री लिगी विद्या शब्द का लक्ष्य या विशेष्य भी स्त्री लिगी ही ग्रहण करना चाहिये था, अथवा पुल्लिगी विशेष्य का विशेषण भी पुल्लिगी ही ग्रहण करना चाहिये था, परन्तु ऐसा न करके पुल्लिगी विशेष्य का विशेषण यहा स्त्री लिगी ग्रहण किया गया है। यही लिग व्यभिचार है। 'सरस्वती विद्या है' इस प्रयोग मे विशेष्य व विशेषण रूप सरस्वती व विद्या दोनो शब्द समान स्त्री लिगी है अत यह प्रयोग निर्दोष है। इसी प्रकार सख्या, काल, कारक, पुरुष, व उपग्रह मे भी समझना।

अन्य लिग के स्थान पर अन्य लिग का प्रयोग लिग व्यभिचार है, अन्य सख्या या वचन के स्थान पर अन्य सख्या या वचन का आयोग सख्या व्यभिचार है, अन्य काल वाचक के स्थान पर अन्य काल वाचक शब्द का प्रयोगकाल व्यभिचार है, अन्य कारक के स्थान पर अन्यकारक काप्रयोग कारक व्यभिचार है, अन्य पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का प्रयोग पुरुष व्यभिचार है। तथा अन्य उपग्रह के साथ पर अन्य उपग्रह का कथन उपग्रह व्यभिचार है।

यहा इन व्यञ्जन नयो के प्रकरण मे सस्कृत व्याकरण की अपेक्षा विचार किया जाता है, हिन्दी व्याकरण की अपेक्षा नही, क्योकि हिन्दी व्याकरण तो उसका अपभ्रंश रूप है अत शुद्ध नही है। व्यभिचार का यह विषय व्याकरण से सम्बन्ध रखता है, जिसका वस्तार करना इस पुस्तक का विषय नही। अत. सकेत मात्र

ही दिया गया है ताकि नयो को समझने के लिये कोई भूमिका तय्यार हो जाये। अगले उद्धरण इन छहो व्यभिचार दोषो का उदाहरणो द्वारा स्पष्ट प्रतिपादन करते है।

व्याकरण से अनभिज्ञ व्यक्तियो की घरेलू भाषा मे इस प्रकार के व्यभिचार दोष यत्र तत्र देखने को मिलते है। व्याकरण उनका निषेध करके नियम पूर्वक ही शब्दो का प्रयोग करने की रीति दर्शाता है। अर्थात वाक्य बोलते समय इतना विवेक रखना चाहिये कि वक्ता की भाषा में उपरोक्त व्यभिचार लगने न पायें, अन्यथा वह भाषा शुद्ध नही कहलायेगी। समान लिग, समान सख्या, उपयुक्त कारक, आदि वाले शब्दो का प्रयोग करना ही न्याय सगत है।

इतना होने पर भी सस्कृत व्याकरण में अनेको अपवादो को न्याय सगत स्वीकार कर लिया है, जसा कि निम्न उद्धरणो पर से विदित होता है।

१ लिंगव्यभिचार—

१ ध० । पु १ । प० ८७ । ६ "स्त्रीलिग के स्थान पर पुलिग का कथन करना और पुलिग के स्थान पर स्त्रीलिग का कथन करना आदि लिग व्यभिचार है। जैसे –

(1) 'तारका स्वाति' अर्थात स्वाति नक्षत्र तरका है। यहा पर तारका शब्द स्त्रीलिगी और स्वाति शब्द पुल्लिगी है। इसलिये स्त्रीलिगी के स्थान पर पुलिगी कहने से लिगव्यभिचार है।

(11) अवगमा विद्या' अर्थात ज्ञान विद्या है। यहा पर अवगम शब्द पुल्लिगी और विद्या शब्द स्त्रीलिगी है। इसलिये पुलिगी के स्थान पर स्त्रीलिगी कहने से लिगव्याभिचार है।

(iii) 'विणा आतोद्यम्' अर्थात वीणा वाजा आतोद्य कहा जाता है । यहा पर वीणा शब्द स्त्रीलिगी और आतोद्य शब्द नपुसक लिगी है । इसलिये स्त्रीलिग के स्थान पर नपुसक लिग का कथन करने से लिंग व्याभिचार है ।

(iv) 'आयुध शक्ति. अर्थात शक्ति एक आयुद्ध (हथियार) है । यहा पर आयुद्ध शब्द नपुसक लिगी और शक्ति शब्द स्त्री लिगी है । इसलिये नपुसकलिग के स्थान पर स्त्रीलिग का कथन करने से लिग व्यभिचार है ।

(v) 'पटोवस्त्रम्' अर्थात पट वस्त्र है । यहा पर पट शब्द पु ल्लिगी और वस्त्र शब्द नपुसकलिगी है । इसलिये पुल्लिग के स्थान पर नपुसकलिग का कथन करने से लिग व्यभिचार है ।

(vi) 'आयुध परशु: अर्थात फरसा आयुध है । यहां पर आयुध शब्द नपुसकलिंगी और परशु शब्द पुल्लिगी है । इसलिये नपुसकलिग के स्थान पर पुल्लिंग का कथन करने से लिग व्यभिचार है ।"

रा. वा ।१।३३।६।६८।१२। (स. सि ।१।३३।५१७) (क. पा. ।पु १।पृ. २३५) (धापु६। पृ १७६)

२. संख्या व्यभिचार —

ध.।पु१। पृ८७।२२ "एकवचन की जगह द्विवचन आदि का कथन करना सख्या व्यभिचार है जैसे—

(i) 'नक्षत्र पुनर्वसू' अर्थात पुनर्वसू नक्षत्र है । यहा पर नक्षत्र शब्द एक वचनान्त और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है ।

इसलिये एकवचन के स्थान पर द्विवचन का कथन करने से सख्या व्यभिचार है ।

(ii) 'नक्षत्र शतभिषज ' अर्थात शतभिषज नक्षत्र है । यहा पर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त और शतभिषज शब्द बहुवचनान्त है। इसलिये एकवचन के स्थान पर बहुवचन का कथन करने स सख्याव्यभिचार है ।

(iii) 'गोदौ ग्राम ' अर्थात गायो को देने वाला ग्राम है । यहा पर 'गोद' शब्द द्विवचनान्त और ग्राम शब्द एकवचनान्त है । इसलिये द्विवचन के स्थान पर एकवचन का कथन करने से सख्या व्यभिचार है ।

(iv) 'पुनवसू पचतारका ' अर्थात पुनवसू पाच तारे ह । यहा पर पुनवसू शब्द द्विवचनान्त और पचतारका शब्द बहु-वचनान्त है। इसलिये द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का कथन करने से सख्या व्यभिचार है ।

(v) 'आम्रा वनम्' अर्थात आमो के वृक्ष वन ह । यहा पर आम्र शब्द बहुवचनान्त और वन शब्द एकवचनान्त है इसलिये बहुवचन के स्थान पर एकवचन का कथन करन से सख्याव्यभिचार ह।

(vi) 'देवमनुष्या उभौराशी' अर्थात देव और मनुष्य ये दो राशि ह । यहा पर देवमनुष्य शब्द बहुवचनान्त और राशि शब्द द्विवचनान्त है। इसलिये बहुवचन के स्थान पर द्विवचन का कथन करन से सख्याव्यभिचार ह "

(रा० वा० ।१।३३।६।९८।१०) (स० सि० १।३३।५१७)
(क० पा०।पु०१।पृ ३३६), (ध ।पु६पृ१७७)

३. काल व्यभिचार –

१ ध।पु१।पृ८८।१४ "भविष्यत आदि काल के स्थान पर भूत आदि काल का प्रयोग करना कालव्यभिचार है। जैसे ––

(i) "विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' अर्थात जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा इसके पुत्र होगा। यहा पर विश्व का देखना भविष्यत काल का कार्य है, (क्योकि पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात तपश्चरणादि द्वारा सर्वज्ञ बनेगा) परन्तु उसका भूतकाल के प्रयोग द्वारा कथन किया गया है। इसलिये यहा पर भविष्यत काल का कार्य भूतकाल मे कहने से काल व्यभिचार है।

(ii) इसी तरह 'भावीकृत्यमासीत्' अर्थात आगे होने वालाकार्य हो चुका। यहा पर भी भविष्यत काल के स्थान पर भूतकाल का कथन करने से कालव्यभिचार है।"

(रा वा. ।१।३३।९।९८।२१), (स. सि ।१।३३।५२२) (क० पा० ।पु० १।पृ०।२३६), ध० ।पु० ९।पृ० १७७)

४. कारक या साधन व्यभिचार--

१. ध पु।।१।पृ ८८।२० "एक साधन अर्थात एक कारक (या विभक्ति)के स्थान पर दूसरे कारक के आयोग करने को साधन व्यभि चार कहते है। जैसे–

(i) 'ग्राममधिशेते' वह ग्राम मे शयन करता है। यहां पर सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है। इसलिये यह साधन व्यभिचार है।"

(स. सि ।१।३३।५।१८) क पा. ।पु. ।१।पृ. २३७), (ध पु. ९।पृ- १७८)

५ पुरुष व्यभिचार –

१ ध०।पु०।पृ० ८८ २३ 'उत्तम पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष और मध्यम पुरुष के स्थान पर उत्तम पुरुष आदि के कथन करने को पुरुष व्यभिचार कहते ह। जैसे —

(1) 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नही यास्यसि यातस्ते पिता' अर्थात आओ ! तुम समझते हो कि मै रथ से जाऊँगा, परतु तुम क्या जाओगे, तुम्हरा बाप भी कभी रथ में बठकर गया है ?" यहा पर 'मन्यसे' के स्थान पर 'मन्ये' यह उत्तम पुरुष का और 'यास्यामि' के स्थान पर 'यास्यसि' यह मध्यम पुरुष का प्रयोग हुआ है। इसलिये पुरुष व्यभिचार है।

(रा वा ।१।३३।६।६८।२०), (स सि ।१।३३।५१८), (क पा ।पु १।प २३७) ध० ।पु ६ ।पृ १७८)

६ उपग्रह व्यभिचार –

१ ध० ।पु० १।प० ८६।१० "उपसग के निमित्त से परस्मपद के स्थान पर आत्मनेपद और आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद के कथन कर देने को उपग्रह व्यभिचार कहते ह। जैसे —

(1) 'रमते क स्थान पर 'विरमति', 'तिष्ठति' क स्थान पर 'संतिष्ठत और 'विशति' के स्थान पर 'निविशते' का प्रयोग किया जाता है।"

(रा वा ।१।३३।६।६८।२२), (स सि ।१।३३।५२६), (क पा ।पु १।पृ २३७) ध० ।६।पृ १७८)

६. शब्द नय का लक्षण

जैसा कि पहिले परिचय देते हुए तथा व्यञ्जन नयों की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता दर्शाते हुए भलीभाति बता दिया गया है, व्यञ्जन नयो का व्यापार शब्द के अर्थ मे अथवा उसका ठीक प्रकार प्रयोग करने मे होता है, ताकि श्रोता को किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न होने पावे। व्यञ्जन नय शब्द को सूक्ष्म दृष्टि से देखता हुआ उसे वाच्य के अधिकाधिक अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता है। व्याकरण सम्बन्धी अनेको दोषों की अपेक्षा रखता हुआ बड़ी सावधानी से शब्द प्रयोग की रीति बताता है। एक मात्रा के हेर फेर से शब्द के वाच्यार्थ मे बहुत अन्तर पड जाता है। इसी को दर्शाना इन नयो का काम है। इन मे से यह पहिला शब्द नय अत्यन्त स्थूल है। यद्यपि ऋजुसूत्र की अपेक्षा सूक्ष्म है परन्तु व्यञ्जन नयो की अपेक्षा सब से स्थूल है।

ऋजुसूत्र नय के प्रतिपादन मे अनेकों शब्द गम्य दोष दिखाई देते है, कारण कि वह लौकिक व्याकरण के नियम रूप व्यवहार का अनुसरण करता है। व्याकरण यद्यपि साधारण घरेलु बाल भाषा को बहुत अश मे निर्दोष बना देता है, परन्तु शब्द गम्य सूक्ष्म दोष उसकी स्थूल दृष्टि मे दिखाई नही देते। जीवन के सूक्ष्म विकल्पो का निरीक्षण करने वाले वीतरागी जन ही उन को स्पर्श कर पाये है।

व्याकरण मे भी यद्यपि शब्द व्यवहार की शुद्धता का विचार रखते हुए अनेको नियम बनाये गये। विरोधी लिग व सख्या आदि के वाचक शब्दो का परस्पर मे सम्मेल रूप व्याभिचार यद्यपि उसकी दृष्टि मे भी अखरता है, और इसी लिये वह भी समान लिंग व समान संख्या आदि वाचक शब्दों का ही प्रयोग युक्त मानता है, परंतु लौकिक व्यवहार का सर्वथा लोप होन के भय से अपने नियमो मे यत्र तत्र अनेकों अपवाद स्वीकार करके उनको सहर्ष कलकित कर लेता है। परन्तु वीतराग वाणी को व्यवहार लोप का भय क्यो हो?

वह निभिक रूप स व्याकरण मान्य सर्व अपवादो का जार मे निषेध करती है। यही शब्द नय का मुख्य व्यापार है।

पदार्थ या व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा रखे बिना केवल शब्द मात्र क आधार पर जो वाच्य पदार्थ का परिचय दे, उसे शब्द नय कहते ह जैसे अग्नि शब्द का उच्चारण करने मात्र से अग्नि पदार्थ का ग्रहण हो जाता है, भले ही अग्नि सामने हो या न हो।

यह शब्द अनेक प्रकार के होते ह—भेद ग्राही व अभेद ग्राही, स्त्रीलिगी, पुरुषलिगी नपुसकलिगी, एक वचन, द्विवचन, बहु वचन, कर्ता आदि छ कारको के वाचक, भूतकाल वाची, वर्तमानकाल वाची, भविष्यतकाल वाची, प्रथम पुरुष वाची, मध्यम पुरुष वाची, उत्तम पुरुष वाची, परस्मैपद रूप और आत्मनेपद रूप। इन सब प्रकार के शब्दो का परिचय पहिले प्रकरण न० ४ व ५ में दिया जा चुका है।

लौकिक व्याकरण का अनुसरण करने वाला ऋजुसूत्र नय लिग सख्या आदि के व्यभिचारो को व्याकरण के नियमो के अपवाद रूप मे स्वीकार कर लेता है, पर शब्द नय को वह सहन नही होते। अत समान लिग व सख्या वाचक शब्दो को ही एकार्थ वाचक रूप से ग्रहण करता है। जिस प्रकार भिन्न स्वभावी पदार्थ भिन्न ही होते है उनम किसी प्रकार भी अभेद नही देखा जा सकता उसी प्रकार भिन्न लिग आदि वाले शब्द भी भिन्न ही होने चाहिये, उनमें किसी प्रकार भी एकार्थता घटित नही हो सकती और इस प्रकार दारा भार्या, कलत्र यह भिन्न लिग वाले तीन शब्द, अथवा नक्षत्र, पुनवसू शतभिषज यह भिन्न सख्या वाचक तीन शब्द, और इसी प्रकार अन्य भी भिन्न स्वभाव वाची शब्द, भले ही व्यवहार में या लौकिक व्याकरण में एकार्थ वाची समझे जायें परन्तु शब्द नय इनको भिन्न अर्थ का वाचक समझता है।

यहां शंका हो सकती है कि इस प्रकार तो लौकिक व्याकरण या शब्द व्यवहार का लोप हो जायेगा । सो इसका उत्तर आगमकारों ने निम्न प्रकार दिया है–

स सि ।१ ।३३ ।५३४ "लोकसमयविरोध इति चेत् ? विरुध्यताम् । तत्त्वमिह मीमास्यते, न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति ।"

शंका –इस से लोक समय का (व्याकरण शास्त्र का) विरोध हो जायेगा ?

उत्तर —यदि विरोध होता है तो होने दो, इससे हानि नही, क्योकि यहां तत्व की मीमांसा की जा रही है । दवाई कुछ पीड़ित पुरुषो की इच्छा का अनुकरण करने वाली नही होती ।

(रा वा ।१।३३।९।९८ ।२५)

अत: समान लिंग व संख्या वाले शब्दो मे ही एकार्थ वाचकता बन सकती है, जैसे इन्द्र, पुरन्दर, शक्र यह तीनों शब्द समान पुल्लिंगी होने के कारण एक 'शचीपति' के वाचक है, ऐसा शब्द नय कहता है ।

तात्पर्य यह कि काल कारक लिंग संख्या वचन और उपसर्ग के भेद से शब्द के अर्थ मे भेद मानने को शब्द नय कहते है । जैसे वभूव भवति भविष्यति अर्थात होता था, होता है, होगा । ऐसे भिन्न काल वाचक करोति, क्रियते अर्थात करता है, किया जाता है ऐसे भिन्न कारक वाची; तट, तटी, तटम् ऐसे भिन्न लिंगी; दारा कलत्रम् ऐसे भिन्न संख्यावाची 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता' अर्थात 'तुम समझते हो कि मै रथ से जाऊंगा, इत्यादि, ऐसे भिन्न पुरुष वाची; सतिष्ठते, अवतिष्ठते ऐसे भिन्न उपसर्ग वाले शब्द व्याकरण मे प्रसिद्ध है । इसका यह अर्थ भी न समझ लेना कि काल

कारक आदि के भेद से शब्द के वाच्यार्थ को भी सर्वथा अलग मानने को शब्द नय कहता है। क्योंकि ऐसा मानना तो शब्दाभास स्वीकार किया गया है। जैसे सुमेरु था सुमेरु है, और सुमेरु होगा आदि भिन्न भिन्न काल के शब्द होने से भिन्न-भिन्न अर्थों का प्रपादन करते ह ऐसा मानना ठीक नही है।

इस प्रकार शब्द नय को मुख्यत चार लक्षण ग्रहण किये जा मकते हैं।

१ व्युत्पत्ति अर्थ से निरपेक्ष केवल शब्द पर से अर्थ का ग्रहण करना।

२ भिन्न लिंग संख्या आदि वाचक शब्दो के अर्थ में भेद देखना।

३ लिंग संख्या आदि के व्यभिचार दोष को दूर करना।

४ समान स्वभावी अनेक पर्यायवाची शब्दो की एकार्थता को स्वीकार करना।

अब इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित उद्धरण देता हूँ।

१ लक्षण नं० १ (निरुक्ति-शब्द पर से अर्थ का ग्रहण)

१ रा वा० ।१ ।३३।६८ "शपत्यर्थमाह्वयति प्रत्ययतीति शब्द । उच्चरित शब्द कृत्सगीते पुरुषस्य स्वभिधये प्रत्यय मादधाति इति शब्द इत्युच्यते।"

अर्थ—जो शपति अर्थात अर्थ को बुलाता है या उसका ज्ञान कराता है वह शब्द नय है। जिस व्यक्ति ने संकेत ग्रहण किया है उसे अर्थबोध करने वाला शब्द नय होता है।

(घ ।६ ।१७६ ।५)

२. ध० ।पु० १ ।पृ० ८६ ।६ "शब्दपृष्ठतोऽर्थग्रहणप्रवण. शब्द नयः ।"

अर्थ—शब्द को ग्रहण करने के बाद अर्थ ग्रहण करने मे समर्थ शब्द नय है।

३ श्ल० वा० ।१।३३ ।७२ "कालकारकलिगसंख्यासाधनपग्रह-भेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्द नय ।"

अर्थ.—काल, कारक, लिंग, संख्या, साधन, उपग्रह, आदि के भेदो से भेद रूप शब्दो का भिन्न भिन्न अर्थ जो ग्रहण करता है वह शब्द नय है ।

(प्र. क. मा. ।पृ० २०६)

४. आ प. १६ ।पृ० १२४ "शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्यय-द्वारेण सिद्ध शब्दः शब्दनय· ।"

अर्थः—जो शब्द व्याकरण, प्रकृति प्रत्यय आदि से सिद्ध हो उसे शब्द नय कहते है ।

२. लक्षण नं० २ (भिन्न लिंगादि वाले शब्दों का भिन्न अर्थ

१ श्ल वा ।१ ३३। श्ल ६८ "कालादिभेदतोऽर्थस्य भेद य. प्रतिपादयेत् । सोऽत्र शब्दनय· शब्द प्रधानत्वादुदाहृत ।६८।"

अर्थ—काल सख्या कारक आदि के भेद से जो अर्थ के भेद का प्रतिपादन करे, शब्द प्रधान होने के कारण उसे ही यहा शब्द नय कहा गया है।

२ प्र. क. मा. ।पृ० २०६ "कालकारकलिगसख्यासाधनोपग्रह-भेदाद्भिन्नमर्थ शपतीति शब्दो नय ।"

अर्थ—काल, कारक, लिंग, सख्या, साधन और उपग्रह के भेद से जो भिन्न भिन्न अर्थों को बुलाता है अर्थात भिन्न अर्थ का ग्रहण करता है वह शब्द नय है।

(श्ल वा ।१ ।३३ । ७२)

३ स भ त । टी पृ ३१३ "विरोधिलिङ्गसख्यादिभेदाद्भिन्नस्वभावताम्। तस्यैव मन्यमानोऽय शब्द प्रत्यवतिष्ठते ॥

अर्थ–विरोधी लिंग, सख्या आदि के भेद से शब्द भी भिन्न स्वभाव वाले होते है। ऐसा ही जो मानता है वही यह शब्द नय कहलाता है।

४ श्ल ।पृ० २७२ ।२७३ "ये हि वैयाकरण व्यवहारनयानुरोधेन 'धातु सम्बन्धे प्रत्यया' इति सूत्रमारभ्य विश्वदश्वाऽस्य-पुत्रो जनिता, भावीकृत्यमासीदित्यत्र कालभेदेऽप्येकपदार्थमादृता यो विश्व दृश्यति सोऽपि पुत्रो जानितेति भविष्यत्कालेनातीतकालस्याभेदोऽभिमत्, तथाव्यवहारदर्शनादिति। तत्र य परीक्षाया मूलक्षते कालभेदोऽप्यस्याभेदेऽतिप्रसगात रावणशखचक्रवर्तिनोरप्यतीतानागतकालयोरेकत्वापत्ते। आसीद्रावणो राजा, शखचक्रवर्ती भविष्यतीति शब्दयोर्भिन्नविषयत्वात नैकार्थेति चेत् विश्वदृश्वा जनितेत्यनयोरपि माभूत तत् एव। न हि विश्वदृष्टवान इति विश्वदृशित्वेतिशब्दस्य योऽर्थोऽतीतकालस्य जनितेति शब्दस्यानागतकाल पुत्रस्य भावितोऽतीतत्वविरोधात्। अतीतकालस्याप्यनागतत्वाव्यपरोपादेकार्थताभिप्रेतेति चेत् तर्हि न परमार्थत कालभेदेप्यभिन्नार्थ व्यवस्था।

'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यमि, स यातस्ते पिता' इति साधनभेदेपि पदार्थमभिन्नमाहता

"प्रहासे मन्य वाचि युष्मन्मन्यतेरस्यदेकवच्च" इति वाचनात् । तदपि न श्रेय परीक्षाया, अहं पचामि, त्वपचसीत्यत्रापि असमद्युष्मन्साधनाभेदेऽप्येकार्थतत्वप्रसगात् ।"

क्रमश --

स० त० ।पृ० ३१३ "तथा पुरुषभेदेऽपि नैकान्तिक तद् वस्तु इति, 'एहि मन्ये' इत्यादि । इति चप्रयोगो न युक्त, अपितु 'एहि मन्य से यथाऽह रथेन यास्यामि' इत्यनेनैव परभावेनैतन्निर्देष्टव्यम् ।

क्रमश --

पा० ।१ ।४। १०६ "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एक वच्च ।'

क्रमश --

हैम ।३ ।३ । १७ 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेपिता' इति प्रहासे यथाप्राप्तमेव प्रतिपत्ति नात्र प्रसिद्धार्थविषर्यासे किञ्चिन्निवन्धनमस्ति, 'रथेन यास्यसि, इति भावगमनाभिधानात् प्रहासो गम्यते ।' 'न हि यास्यसि इति वहिर्गमन प्रतिषिध्यते । अनेकस्मिन्नपि प्रहासितरि च प्रत्येकमेव परिहास इति अभिधानवशाद् 'मन्ये' इति एकवचनमेव । लौकिकश्च प्रयोगोऽनुसर्तव्य इति न प्रकारान्तरकल्पना न्याय्या । त्रीणि त्राणि अन्य युष्मदस्यदि ।

अर्थ --यह जो व्यवहार नय के अनुरोध से वैयाकरणियो की ऐसी मान्यता है, कि 'धातु. सम्बन्धे प्रत्यया' अर्थात धातु के अर्थों के सम्बन्ध मे जिस काल मे जो प्रत्यय पूर्व सूत्रो मे बताये गये है वे प्रत्यय उस काल से अन्य काल मे भी हो जाते है, सो ठीक नही है । इस सूत्र के आधार पर

ही वे 'जिसने समस्त विश्व को देख लिया है' अथवा 'आगे होने वाला काय हो चुका है' इस प्रकार के वाक्यो का प्रयोग करके भविष्यत काल के साथ अतीत काल का अभेद मानते ह। यहा इन वाक्यो म "भूत भविष्यत काल सम्बन्धी भेद स्पष्ट देखने में आता है तो भी इस प्रकार के प्रयोगो का व्यवहार देखा जाता है" उपरोक्त प्रकार के प्रयोगो को युक्त दर्शाने के लिये वह यही हेतु दिया करते है। परीक्षा करने पर यह स्पष्ट है कि वास्तव में तो होने वाला पुन आगे जाकर विश्व को देखेगा, उत्पन्न होने से पहिले ही जिस ने विश्व को देख लिया है' ऐसा कहना न्याय सगत नही है। अत 'जो विश्व को देखेगा ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा' इस प्रकार का प्रयोग होना चाहिये था। परन्तु केवल व्यवहारिक प्रवृत्ति के आधार पर 'जिसने विश्व को देख लिया है ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा' इस प्रकार के प्रयोगो द्वारा भविष्य काल में अतीत काल का अभेद उनकी व्याकरण में न्याय माना गया है।

परीक्षा की मूल क्षति होने पर भी यदि इस प्रकार का प्रयोग ठीक मान जायेगा तो काल भेद में भी अर्थ के अभेद का प्रसग आयेगा और अतीत काल वर्ती रावण तथा अनागत काल वर्ती शखचक्रवर्ती की एकता मानने का प्रसग प्राप्त होगा। यदि इस दोष का टालने के लिये यह कहा जाये कि 'रावण राजा था, और 'शख चक्रवर्ती आगे होगा' इस प्रकार यहा विषय की भिन्नता है, अत उपरोक्त एकार्थता का दोष यहा प्राप्त नही होता, तो जिस ने विश्व को देख लिया है' और 'उत्पन्न होगा' इन दोनो में भी एकार्थता न होवे। भावि पुत्र

की अतीतपने का विरोध होने के कारण, 'जिसने विश्व को देख लिया है' ऐसे विश्वदृशिपने के भूत काल का 'उत्पन्न होगा' इस शब्द के अनागत काल के साथ, एकार्थता नही हो सकती । यदि उपचार या भूतकाल मे भविष्यत पने का आरोप करके यह एकार्थता स्वीकार की जायेगी, तो परमार्थ से काल भेद होने पर भी अभिन्न अर्थ की व्यवस्था न हो सकेगी ।

इसी प्रकार एक दूसरा प्रयोग हसी मे किया जाता है, आओ ! तुम समझते हो कि मै रथ से जाऊगा, तुम क्या जाओगे, क्या तुम्हारा पिता भी कभी रथ मे बैठकर गया है ? इस प्रकार साधन या कारक भेद मे भी पदार्थ की अभिन्नता स्वीकार की गई है, क्योकि ' प्रहासे मन्य वाचि पुष्पन्मन्यतेरस्मदेकवच्च, अर्थात हसी मे 'मन्य, धातु के प्रकृतिभूत होने पर दूसरी धातुओं मे उत्तम पुरुष के बदले मध्यम पुरुष हो जाता है और मन्यसि धातु को उत्तम पुरुष हो जाता है, जोकि एक अर्थ का वाचक है, इस प्रकार का नियमव्याकरण को मान्य है। परीक्षा करने पर यह भी ठीक प्रतीत नही होता,क्योकि ऐसा मानने पर ' मै पकाता हु ' 'तू पकाता है 'इन प्रयोगो मे भी अस्मद और युष्मद साधन का अभेद होने के कारण एकार्थ पने का प्रसंग प्राप्त हो जायेगा अर्थात यहा भी 'मे पकाता है' तु पकाता हु, ऐसा कहना पडेगा ।

पुरुष भेद मे भी एकार्थता नही की जा सकती क्योकि आओ ? मानते हूँ' ऐसा प्रयोग युक्त नही । बल्कि 'आओ ! तुम मानते हो कि मै रथ से जाऊँगा' इस प्रकार के परम भाव से ही यह निर्देश करना चाहिये ।

इसी में 'मन्य' पद अपपद में रहने पर अर्थात प्राप्त होनेपर मन्य धातु से उत्तम पुरुष में एकवत हो जाता है' ऐसा व्याकरण सूत्र है। (परन्तु यह नियम व्यभिचारी होने के कारण अयुक्त है।)

'आओ! मानता हूँ तू रथ द्वारा जायेगा, नही जायगा, तेरा पिता चला गया' इस प्रहास मे यथा प्राप्त जो प्रतिपत्ति है व प्रसिद्ध अर्थ से विपरीत अर्थ करने में कारण नही कही जा सकती। 'रथ से जायेगा' इस प्रकार भाव गमन के कहने से हसी जानी जाती है, और 'नही जायेगा' ऐसा कहना निषिद्ध होता है। अनेक हसने वालो में प्रत्येक प्रत्येक की ही हसी के प्रति संकेत करने के वश से एक वचन का प्रयोग ही युक्त है। 'लौकिक प्रयोग का अनुसरण करना चाहिये' इस तरह की प्रकारान्तर रूप कल्पना करना भी न्याय संगत नही है।

श्ला वा ।१।३।७२ "यस्तु व्यवहार नय कालादिभेदेऽपि अभिन्नमथर्मभिप्रैति तमनूद्य दूषयन्नाह ।"

अर्थ—व्यवहार नय तो कालादिभेदो के रहते हुए भी उन शब्दो का अभिन्न या एक ही अर्थ ग्रहण करता है। यह शब्द नय उसमे दोष निकालकर भिन्न लिङ्ग आदि वाचक शब्दो का भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है।

६ का अ ।२७५ "सर्वेषा वस्तूना सङ्ख्यालिंगादि बहुप्रकार । य साधयति ज्ञानत्व शब्दनय त विजानीहि ।२७५।

अर्थ—जो नय सब वस्तुओ के सख्या लिंग आदि अनेक प्रकार से अनेकत्व को सिद्ध करता है उसको शब्द नय जानना चाहिये।

७. वृ. न. च गद्य पृ. ।१७ "लक्षणस्य प्रवृत्तौ वा स्वभावाविष्टलिगित. । शब्दो लिंग स्वसंख्या चन परित्यज्य वर्तते ।"

अर्थ --किसी पदार्थ का लक्षण करते हुए जिन शब्दो का प्रयोग किया जाये, उन्हे उस पदार्थ के स्वभाव से चिन्हित लिंग व सख्या आदि को छोडकर नही वर्तना चाहिये ।

वृ. न च. ।२१४ "अथवा सिद्धे शब्दे क्रियते यात्किमपि अर्थ व्यवहरणम् । स खलु शब्दे विषय. देव शब्देन यथा देव: ।२१४।"

अर्थः—नित्य प्रयोग मे आने वाले शब्दों मे जो कुछ भी अर्थ का भेद करने मे आता है, वह ही शब्द नय का विषय है, जैसे देव शब्द द्वारा केवल 'देव' का ग्रहण होता है ।

आ. प ।६। पृ ७६ "शब्दनयो यथा दाराभार्याकलत्र, जल आप. ।"

अर्थ—शब्द नय को ऐसा जानो जैसे दारा, भार्या और कलत्र ये तीनो शब्द या जल व आप ये दो शब्द ।

(यहा ऐसा तात्पर्य समझना कि यद्यपि उपरोक्त शब्द लोक व्यवहार मे एकार्थवाची माने जाते है, परन्तु भिन्न लिगी होने के कारण इन मे अर्थ भेद अवश्य है । 'दारा' शब्द पुलिगी है, 'भार्या' स्त्री लिंगी है और 'कलत्र' शब्द नपुँसक लिगी है और इसी प्रकार 'जल' शब्द नपुँसक लिगी एक वचनान्त है और 'आय' शब्द स्त्री लिगी वहुवचनान्त है । अत. इन शब्दो का अर्थ समान नही है ।

स० म० ।२८ ।३१३ ।३० "यथा चाय पर्याय शब्दानामेकमर्थमभिप्रैति तथा, तटस्तटीतरम् विरूध्दलिगलक्षणधर्माभि-

सम्बन्धाद् वस्तुनो भेद चाभिधत्ते । नहि विरुद्धकृत भेदमनुभवतो वस्तुनो विरुद्ध धर्मायोगो युक्त । एव सख्या काल कारक पुरुषादिभेदाद् अपि भेदोऽभ्युपगन्तव्य । तत्र सख्या एकत्वादि, कालोऽतीतादि, कारक कर्त्रादि, पुरुष प्रथम । पुरुषादि ।

क्रमश —

स म २८ ।३१६ ।श्ल ५ उध्त "विरोधिलिग सख्यादिभेदाद् भिन्नस्वभावताम् । तस्यैव मन्यमानोऽय शब्द प्रत्यव-तिष्ठते ।।५।।

अर्थ–जसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर परस्पर पर्यायवाची शब्द एक अर्थ को द्योतित करते ह, वसे ही 'तट, तटी, तटम्' परस्पर विरुद्ध लिग, लक्षण, वचय वाले शब्दो से पदार्थो के भेद का ज्ञान भी होता है । भेदो को अनुभवने वाली वस्तु को विरुद्ध धर्मो से सयुक्त कहना विरुद्ध नही है । इसी प्रकार सख्या-एकत्व आदि काल-अतीत आदि, कारक-कर्त्ता आदि, और पुरुष-प्रथम, पुरुष आदि के भेद से शब्द और अर्थ में भेद समझना चाहिये । कहा भी है–

(परस्पर विरुद्ध लिग सख्या आदिक के भेद से वस्तु में भेद मानने को शब्द नय कहते ह ।)

३ लक्षण न० ३ (व्यभिचार निवृत्ति)

१ स सि ।१।३३। ४१७ "लिङ्गसख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्ति-पर शब्दनय ।"

अर्थ–लिग सख्या और साधन आदि के व्यभिचार की निवृत्ति करने वाला शब्द नय है ।

त सा १।४८।३६

२ रा. वा. ।१ ।३३ ।६ ।६८ "सच लिगसख्यासाधनादिव्यभिचार-निवृत्तिपर । . ....एवमादयो व्यभिचारा अयुक्ता । कूतः ? अन्यार्थस्यान्यार्थेन सम्बन्धाभावात् । यदि स्यात्, घट· पटो भवतु पटो वा प्रासाद इति । तस्माद्यथालिग यथासस्य यथासाधनादि च न्याय्यभमिधानम् ।"

अर्थ.—शब्दनय लिग सख्या साधनादि सम्बन्धी व्यभिचार की निवृत्ति करता है, अर्थात उसकी दृष्टि से यह व्यभिचार हो ही नही सकते । यह सब व्यभिचार अयुक्त है क्योकि अन्य अर्थ का अन्य अर्थ के साथ सम्बन्ध नही है, अन्यथा 'घट' 'पट' हो जायेगा और 'पट' 'मकान' । अत यथा लिग यथाचवन और यथासाधन प्रयोग करना ही न्याय है ।

(ध । पु १ ।पृ ८७, ८६) (ध ।पु. ६ । पृ. १७६ १। क. पा. ।पु०) पृ० २३५ ।१)

४ लक्षण नं० ४ (अनेक शब्दों से एक अर्थ का प्रतिपादन) —

१. स वा. ।४ ।४२ ।१ ।२६१ ।१२ "शब्दे पर्यायशब्दान्तरप्र-योगेऽपि तस्यैवार्थस्याभिधानाद भेद ।"

अर्थ —शब्द नय मे पर्यायवाची विभिन्न शब्दो का प्रयोग होने पर भी उसी अर्थ का कथन होता है अत अभेद है ।

२ स. म. ।२८ ।३१३ ।२४ "शब्दस्तु रूढितो मावन्तो ध्वनय कस्मिश्चिदर्थे प्रवर्तन्ते, यथाइन्द्रशक्रपुरन्दरादय सुरपतौ तेषा सर्वेषामप्येकमर्थमभिप्रेति किल, प्रतीतिवशाद् । यथा शब्दाव्यतिरेकोऽर्थस्य प्रतिपाद्यते तथैव तस्यैकत्वमनेकत्व

वा प्रतिपादनीयम् । न च इन्द्रशक्रपुरन्दरादय पर्याय-शब्दा विभिन्नार्थवाचितया कदाचन प्रतीयन्ते । तेभ्य सवदा एकाकारपरामर्शोत्पत्तेरस्खलितवृत्तितया तथैव व्यवहारदर्शनात् । तस्माद् एक एव पर्यायशब्दानामथ इति । शब्दते आहूयतेऽनेनाभिप्रायेणाथ इति निरुक्तात् एकार्थप्रतिपादनाभिप्रायेणैव पर्यायध्वनीना प्रयोगात् ।"

अथ – रूढि से सम्पूर्ण शब्दो के एक अथ मे प्रयुक्त होने को शब्द नय कहते ह । जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि सब शब्द एक 'सुरपति' अथ के द्योतक ह । जैसे शब्द अथ से अभिन्न है वैसे ही उसे एक और अनेक भी मानना चाहिये । अर्थात जिस प्रकार वाचक शब्द से पदाथ को अभिन्न मानते ह, उसी प्रकार प्रतीति गोचर होन के कारण उन सम्पूण शब्दो के अथ क (वाच्याथ वाच्यार्थो का) भी एक मान सकते ह । इन्द्र शक्र और पुरन्दर आदि पर्याय वाची शब्द कभी भिन्न अथ का प्रतिपादन नही करते, क्योकि उनसे एक ही अथ का ज्ञान होने का व्यवहार है । अतएव इन्द्र आदि पर्याय वाची शब्दा का एक ही अथ है । जिस अभिप्राय से अथ कहा जाये उसे शब्द कहते ह । अतएव सम्पूण पयाय वाची शब्दो से एक ही अथ का ज्ञान होता है ।

७ शब्द नय के कारण व प्रयोजन

लक्ष्य लक्षण आदि सयोगो मे लिगादि का व्यभिचार पड जाने पर वाक्य कुछ अटपटा सा प्रतीत होने लगता है, जैसे कि "ससारी जीव नित्य दु खो मे वतने वाली आत्मा है" इस वाक्य में स्पष्ट प्रतीति म आ रहा है । जीव की तरफ देखने पर तो "दु खो में वतने वाला आत्मा है" ऐसा कहने को जी करता है और आत्मा की तरफ देखने पर "वाली आत्मा" ही उपयुक्त प्रतीत होता है । इस उलझन को वाक्य मे से दूर करना

आवश्यक है, नही तो वाक्य दूषित दिखाई देता है। इस वाक्य मे जीव लक्ष्य है और आत्मा उसका लक्षण है। दोनों शब्द भिन्न लिग वाले हैं, यही कारण है कि यह वाक्य दूषित दिखाई दे रहा है। वाक्य मे ९ शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अवश्य ही इन मे से कोई शब्द बदलना पडेगा ताकि यह वाक्य सुन्दर सा दिखाई देने लगे। विचार करने पर पता चलता है कि 'ससारी, नित्य, दुःखो वाली इन मे से कोई भी शब्द बदल दे, पर समस्या हल नही होती। आओ जीव व आत्मा इन मे से कोई सा शब्द बदल कर देखे। "संसारी जीव नित्य दुःखो मे वर्तने वाला एक चेतन पदार्थ है" इस वाक्य मे अब कोई दोष दिखाई नही देता। 'आत्मा' के स्थान पर उसका एकार्थ वाची 'चेतन पदार्थ' शब्द डाल देने से लक्ष्य व लक्षण दोनों समान लिग वाले हो गये और वाक्य युक्त हो गया। इसी लिये शब्द नय यह नियम स्थापित करता है कि समान लिंग सख्या आदि स्वभाव वाले शब्द ही समान अर्थ के वाचक हो सकते हे। यही इस नय का कारण है। और इन व्यभिचार दोषो को दूर करके शब्द साम्य की स्थापना करना इसका प्रयोजन है। व्यभिचार दोषो को युक्त मानने से अन्य पदार्थ भी अन्य पदार्थ वन बैठेगा। कहा भी है:—

रा० वा० ।१।३३ ।९ ।९८ ।२३ "एवमादयो व्यभिचारा अयुक्ता। कुत. अन्यार्थस्याऽन्यार्थेन सम्बन्धाभावात्। यदिस्यात, घट पटोभवतु पटो वा प्रासाद इति।"

अर्थः—यह सब व्यभिचार अयुक्त है क्योकि अन्य अर्थ से अन्य अर्थ का कोई सम्बन्ध नही है। यदि ऐसा न माना जाये तो 'घट' पट बन जायेगा और 'पट' मकान। अतः यथा लिग यथा वचन और यथा साधन ही प्रयोग करना चाहिये।

वस्तु के वाचक शब्दो सम्बन्धी विवेक कराने वाले व्यज्जन नयो में से प्रथम शब्द नय ने केवल लिगादि व्यभिचार दोषा को दूर किया, अर्थात भिन्न लिग, सख्या व कारक आदि के वाचक शब्दा की एकाथता का तो विरोध अवश्य किया, परन्तु समान लिग आदि वाचक शब्दो को सवथा एक रूप स्वीकार कर लिया। उन सब शब्दों के अर्थ किसी अपेक्षा भिन्न भिन्न भी हो सकते ह यह बात उसकी स्थूल दृष्टि में न आई।

८ समभिरूढ नय का लक्षण

समभिरूढ नय सामने आकर और सूक्ष्मता से उन्ही एकाथ वाची शब्दो का निरीक्षण करता हुआ यह बताता है कि भले ही रूढि वश ये सब शब्द किसी एक पदाथ के प्रति सकेत करत हो परन्तु इन का वाच्याथ वास्तव में भिन्न भिन्न ही है। लोक में जितने पदाथ हैं उनके वाचक शब्द भी उतने ही ह। यदि अनेक शब्दो का एक ही अथ माना जायेगा तो उन के वाच्य पदार्थों का भी मिलकर एक हो जाना पड़ेगा, परन्तु ऐसा होना असम्भव है, अत प्रत्येक शब्द का भिन्न भिन्न ही अथ स्वीकारना चाहिये। और इसीलिये यह नय निरुक्ति व व्युत्पत्ति अथ करक प्रत्येक शब्द का पृथक पृथक अथ ग्रहण करता है। इस की दृष्टि में पर्याय वाची शब्दो की सत्ता नही है।

यहा पर यह शका उत्पन्न हो सकती है कि शब्द वस्तु का धम नही है, वस्तु व शब्द में आत्यतिकी पृथकता है, फिर शब्दो की एकाथता से वस्तु म अभिन्नता कैसे आ सकती है और उसके भिन्न अथ स्वीकार कर लेने मात्र से वस्तु में भिन्नता कैसे उत्पन्न हो सकती है। सो शका का समाधान पीछे कारण व प्रयोजन बताते समय देंगे, वहा से जान लेना।

यहा तो केवल इतना ही जानना पर्याप्त है कि शब्द नय के द्वारा ग्रहण किये गये समान स्वभावी अर्थात समान लिग आदि वाले

करने का व्यवहार प्रचलित हो जाये, तो आप ही समझ लीजिये कि क्या गड़वड हो जायेगी। वक्ता कुछ और श्रोता कुछ और समझ वैठेगा। जैसे वक्ता कहेगा कि 'गाय को पानी पिला दो' और श्रोता समझेगा कि पृथिवी को पानी पिलाने के लिये कहा जा रहा है। अतः वजाये गाय को पानी पिलाने के पृथिवी को पानी से गीली करके चला आयेगा और गाय वेचारी प्यासी ही मर जायेगी।

इसलिये व्यवहारिक प्रयोग मे निश्चित पदार्थ के लिये निश्चित शब्द ही वाचक रूप से स्वीकार करना चाहिये। भले ही उस शब्द के अनेको अर्थ होते हो, परन्तु सवको छोडकर उस शब्द का एक लोक प्रसिद्ध अर्थ ही ग्रहण करना समभिरूढ नय का काम है, जैसे 'गो' शब्द का प्रयोग गाय नाम के पशु के लिये ही होता है, पृथिवी या वाणी के लिये नही।

इस प्रकार समभिरूढ नय के हम निम्न तीन लक्षण कर सकते है।

१ पर्यायवाची शब्दो मे निरुक्ति या व्युत्पत्ति से अर्थ भेद करना।

२. रूढिवश अनेक पर्याय वाची शब्दो का वाच्य एक पदार्थ को मानना।

३ एक शब्द के अनेक अर्थोछोडकर एक प्रसिद्ध अर्थ ही ग्रहण करना।

अव इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये।

१ लक्षण ~ १ (पर्याय वाची शब्दों मे अर्थ भेद —)

१ स सि ।१।३३।१३७ "अथवा अथगत्यथ शब्द प्रयोग । तत्रैकस्याथस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्याय-शब्दप्रयोगोऽनथक । शब्दभेदश्चेदस्ति अथभेदेनात्यवश्य भवितव्यमिति । नानाथसमभिरोहणत्समभिरूढ । इन्दनादिन्द्र शकनाच्छत्र पूदीरणात्पुरन्दर इत्येवसवत्र ।"

अर्थ — अथवा अथ का ज्ञान कराने के लिये शब्दो का प्रयोग किया जाता है ऐसी हालत में एक अथवा एक शब्द से ज्ञान हो जाता है, इसलिये पर्यायवाची शब्दा का प्रयोग करना निष्फल है । यदि शब्दो में भेद है तो उनमें अथ भेद भी अवश्य होना चाहिये । इस प्रकार नाना अर्थों का समभिरोहण करने वाला होने से समभिरूढ नय कहलाता है । जसें इन्द्र, शक्र और पुरन्दर यह तीन भिन्न शब्दहोने से इन के अर्थ भी भिन्न भिन्न तीन ही होते हैं । इन्द्र का अथ आज्ञा व ऐश्वयवान है, शत्र का अथ समथ है और पुरन्दर का अथ नगरो का विभाजन करने वाला है । इसी प्रकार सर्वत्र पर्यायवाची शब्दो के सम्बन्ध में जानना चाहिये ।

(रा वा ।१।३३।१०।९८।३०) (स न टी पृ ३१३)

२ धा।पु१।पृ८९।४ "नानाथसमभिरोहणात्समभिरूढ । इन्दनादिन्द्र पूदीरणात्पुरन्दर शकनाच्छक्र इति भिन्नाथवाचकत्वान्नतो एकाथवर्तिन । न पर्याय शब्दा सन्ति भिन्नपदानामेकाथ वर्त्तिविरोधात् । नाविरोध पदानामेकत्वापत्तिरिति । नानाथस्यभाव नानाथता ता समभिरूढत्वात्समभिरूढ ।"

अर्थः— शब्द भेद से जो नाना अर्थ मे रूढ होता है, उसे समभिरूढ नय कहते है। जैसे 'इन्दनात्' अर्थात परमऐश्वर्य शाली होने के कारण इन्द्र 'पूदीरणात्' अर्थात नगरो का विभाग करनेवाला होने के कारण पुरन्दर, 'शकनात्' अर्थात सामर्थ्यवान होने के कारण शक्र । ये तीनो शब्द भिन्नार्थ वाचक होने से इन्हे एकार्थवर्ती नही समझना चाहिये । इस नयकी दृष्टि मे पर्यायवाची शब्द नही होते है, क्योकि भिन्न पदो का एक पदार्थ मे रहना स्वीकार करलेने मे विरोध आता है यदि भिन्न पदो मे ऐसा विरोध न हो तो समस्त पदों को एकत्व की आपत्ति आ जावेगी । नाना पदार्थों के भाव अर्थात विशेपता को नानार्थता कहते है और उस नानार्थता के प्रति जो अभिरूढ है उसे समभिरूढ नय कहते है ।

(श्ल. वा ।१।३३।७६) (ध. ।६।१७६।१) (क पा । पु १। पृ २३६-२४०)

२ स. म. ।२८।३१४।१५ "समभिरूढस्तु पर्यायशब्दानां प्रविभक्तमेवार्थभभिमन्यते । तद्यथाइन्दनात् इन्द्र: परमैश्वर्यम् इन्द्रशब्दवाच्यं परमार्थतस्तद्वत्यर्थे । अतद्वत्यर्थेपुनरुपचारतो वर्तते । नदा काश्चित् तद्वान् । सर्वशब्दाना परस्परविभक्तार्थ प्रतिपादित या आश्रयामिभावेन प्रवृत्यासिद्धे । एवं शकनात् शक्र:, पूदीरणात् पुरन्दर इत्यादिभिन्नर्थत्वं सर्वशब्दाना दर्शयति । प्रमाणयति च । पर्यायशब्दा अपि भिन्नार्थ: । प्रविभक्तव्युत्पत्तिनिमित कत्वात् । इह ये ये प्रविभक्तव्युत्पत्तिनिमित्तकास्ते ते भिन्नार्थका. । इन्द्रपशुपुरुषशब्द: । विभिन्न विभक्तिनिमित्तकाश्च पर्यायशब्दा अपि ।अतो भिन्नार्था इति ।"

अर्थ — समभिरूढ नय पर्याय शब्दो में भिन्न अर्थ को द्योतित करता है। जैसे इन्द्र, शक्र, और पुरंदर शब्दो के के पर्यायवाची होने पर भी इन्द्र से परम ऐश्वर्यवान शक्र से सामर्थ्यवान और पुरंदर से नगरो को विदारण करने वाले भिन्न भिन्न अर्थो का ज्ञान होता है। वास्तव में इन्द्र शब्द के कहने से इन्द्र शब्द का वाच्य परम ऐश्वर्य पना इन्द्र में ही मिल सकता है। जिसमें परम ऐश्वर्य नही है, उसे केवल उपचार से ही इन्द्र कहा जा सकता है। इसलिये जो वास्तव में परम ऐश्वर्य से रहित है उसे इन्द्र नही कह सकते। अतएव परस्पर भिन्न अर्थ को प्रतिपादन करने वाले शब्दो में आश्रय और आश्रयी सम्बन्ध नही बन सकता। इसी तरह भिन्न भिन्न व्युत्पत्ति के निमित्त से शक्र और पुरन्दर शब्द भी भिन्न अर्थ को द्योतित करते हैं। अतएव भिन्न व्युत्पत्ति होने से पर्यायवाची शब्द भिन्न भिन्न अर्थो के द्योतक हैं। जिन शब्दो की व्युत्पत्ति भिन्न भिन्न होती है वे शब्द भिन्न भिन्न अर्थो के द्योतक होते हैं, जैसे इन्द्र पशु और पुरुष शब्द। पर्यायवाची शब्द भी भिन्न व्युत्पत्ति होने के कारण भिन्न अर्थ को सूचित करते हैं।

४ स म।२८।३१६।श्ल ६ उद्धृत "तथाविधस्य तस्यापि वस्तुन क्षणवर्तिन। ब्रूते समभिरूढस्तु संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ।६।"

अर्थ — तथाविध उस ऋजुसूत्र की विषयभूत क्षणवर्ती वस्तु को समभिरूढ नय संज्ञा भेद के द्वारा भिन्न भिन्न जानता है।

५ स म त ।६९।४ "समभिरूढनयापेक्षया शब्दभेदाद्ध्रुवार्थभेद स्तथा अर्थभेदादपि शब्दभेदस्सिद्ध एव। अन्यथा वाच्य वाचकनियम व्यवहार विलोपात्।"

अर्थः—समभिरूढ नय की अपेक्षा से शब्दभेद के कारण निश्चित रूप से अर्थ मे भेद होता ही है। इसी प्रकार अर्थभेद से शब्दभेद भी सिद्ध ही है। अन्यथा पदार्थ व शब्दके बीच वाच्यवाचक नियम के व्यवहारका लोप हो जायेगा।

६ का अ ।२७६ "य एकैकमर्थं परिणतिभेदेन साधयतिज्ञान। मुख्यार्थं व भापयति अभिरूढत नय जानी हि ।२७६।"

अर्थ — जो नय वस्तु को परिणाम के भेद से एक एक भिन्न भिन्न भेदरूप सिद्ध करता है अथवा उनमे से मुख्य अर्थ को ग्रहण करके सिद्ध करता है उसको समभिरूढ नय जानना चाहिये।

नय चक्रगद्य पृ १८७ "शब्दभेदेन चार्थस्यभेद तथ्य करोति य । अर्थभेदात्तथा तस्य भेद समभिरूढक ।"

अर्थः- शब्दभेद के द्वारा जो अर्थ भेद को भी ग्रहण करता है, उसी प्रकार अर्थ भेद से शब्द भेद को जो ग्रहण करता है वह समभिरूढ नय है।

२ लक्षण नं० २ (रूढि वश पर्यायवाची शब्दों में एकार्थता) -

१. स म. ।२८ ।३१८ २८ "पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समाभिरोहत् समभिरूढ । इन्दनादिन्द्र. शकनाच्छक्र:, पूर्दारणात्पुरन्दर इत्यादिषु यथा । पर्यायध्वनीनामभिधेयनानात्वमेव कुक्षीकुर्वाणस्तदाभासः । यथेन्द्र शक्र पुरन्दर इत्यादय शब्दा भिन्नाभिधेया एव भिन्नशब्दत्वात् करिकुरङ्गतुरङ्ग शब्दवद् इत्यादि ।"

अर्थ—पर्यायिशब्दो म निरुक्ति के भेद से भिन्न अथ को कहना समभिरूढ नय है। जैसे ऐश्वयवान होने से इन्द्र, समर्थ होने से शक्र, और नगरो का विभाग करने वाला होने से पुरन्दर कहना। पर्यायवाची शब्दो को सवथा भिन्न मानना समभिरूढ नयाभास है। जैसे करि, कुरग व तुरग अर्थात हाथी, हिरण व घोडा परस्पर भिन्न ह, वसे ही इन्द्र, शक्र और पुरदर शब्दो को भी सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढाभास है।

२ धा प।१६।प०१२५ "परस्परेणाधिरूढा समभिरूढा शब्द भेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति। यथा शक्र इन्द्र पुरदर इत्यादय समभिरूढा।"

अर्थ—परस्पर में अभिरूढ शब्दो में भेद होते हुए भी जो उन में कथञ्चित अथ भेद स्वीकार नही करता वह समभिरूढ नय है। जैसे शक्र, इन्द्र व पुरन्दर ये तीनो शब्द यद्यपि भिन्न है, और इनका व्युत्पत्ति अथ भी भिन्न है, पर तीनो ही एक देव राज के वाचक रूप से प्रसिद्ध है।

(न्या० न० च।२१५)

३ स म।२८।३२०।/ प्रतिक्रिय विभिन्नमथ प्रति जानानाद एव भूतात् समभिरूढस्तद यथाथस्यापकत्वाद् महार्थगोचर।"

प्रमशा—

स म।२८।३१४।१६ "पर्मैश्वयम इन्द्रनाव्दवाच्य परमाथस्तद्वत्यर्थे। अनद्वत्यर्थेपुनरुपचारतो वनते।"

अर्थ—समभिरूढ से जाने हुए पदार्थों म क्रिया से भेद न वस्तु में शब्द मात्रा एव भूत है, जसे समभिरूढ की अपक्षा पुरन्दर

५. आ. प. ।९ पृ० ८० "समभिरूढ नयो यथा गौ पशुः।"

अर्थ—समभिरूढ़ नय को ऐसा जानो जैसे गौ एक पशु है, और इस शब्द का अर्थ कुछ नहीं।

६ समभिरूढ नय के कारण व प्रयोजन

एक ही शब्द के यदि अनेको अर्थ स्वीकार किये जायेगे तो शब्द के द्वारा श्रोता को निश्चित ही अर्थ का ज्ञान नही हो सकता, इस कारण एक शब्द के अनेको अर्थो को छोड़ कर एक प्रसिद्ध अर्थ मे ही प्रवृत्ति करना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा अर्थ के स्थान पर कदाचित,अनर्थ का ग्रहण हो जाना सम्भव है।

दूसरे अनेक शब्दो का भी एक ही वाच्य स्वीकार करने पर वह दोष बना रहता है अतः अनेक शब्दो का भी एक अर्थ नही होना चाहिये। जितने वाचक शब्द है उतने ही उनके वाच्य अवश्य होने चाहिये। भले ही भिन्न भिन्न गुणो की अपेक्षा से एक ही व्यक्ति के अनेक सार्थक नाम रखे जाने सम्भव हो, जैसे कि भगवान के १००८ अन्वर्थक नाम प्रसिद्ध है, पर उन सर्व शब्दो का व्युत्पत्ति अर्थ एक नही हो सकता है। यदि वाचक शब्दों को अभिन्न माना जायेगा तो वाच्य पदार्थ भी अभिन्न हो जायेगे और इस प्रकार एक पदार्थ के गुण की अन्य पदार्थ मे वृत्ति हो जायेगी। कहा भी है.—

१ स सि ।१ ।३३ ।५३९ "यो यत्राधिरूढः सतत्र समेत्याभिमुख्येना-रोहणात्समभिरूढ. यथा भवानास्ते ? अत्मनीति। कुत. ? वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्। यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति. स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीनां चाकाशे वृत्ति· स्यात्।"

अर्थ—अथवा जो जहा अधिरूढ़ है वह वहां 'सम' अर्थात होकर प्रमुखता से रूढ होने के कारण समभिरूढ नय

कहलाता है। यथा-आप कहा से आ रहे हैं ? अपने में से। क्योकि अन्य वस्तु की अ यवस्तु में वृत्ति नही हो सकती। यदि अन्य की अ य मे वृत्ति होती है ऐसा माना जाय तो ज्ञानादिक की और रूपादिक की आकाश में वत्ति होने लगे।

(रा वा १।३३।१०।६६।२)

२ ध०।पु० १ प ८६।५ "न पर्यायशब्दा सन्ति भिन्नपदानामेकार्थ वत्ति विरोधात्। नाविरोध पदानामेकत्वापत्तेरिति।"

अथ —इस नय की दृष्टि में पर्याय वाची शब्द नही होते ह, क्योकि भिन्न पदो का एक पदाथ में रहना स्वीकार कर लेने मे विरोध आता है। यदि भिन्न पदो की एक पदार्थ म वत्ति हो सकती है इसम कोई विराध नही है, ऐसा मान लिया जावे तो समस्त पदो को एकत्व की आपत्ति आ जावेगी।'

शका —यहा यह शका हो जानी सम्भव है कि शब्द वस्तु का धम नही है, क्योकि उसका वस्तु से भेद है। सो ऐसे कि

१ वस्तु वाच्य है और शब्द वाचक।

२ वस्तु भिन्न इन्द्रियो से ग्राह्य है और शब्द भिन्न इन्द्रियो से।

३ वस्तु के कारण भिन्न ह और शब्द के कारण भिन्न हैं।

४ वस्तु की अथ क्रिया भिन्न ह और शब्द की अथ क्रिया भिन्न है।

५ शब्द उपाय है और वस्तु उपेय है।

इसके अतिरिक्त इन दोनो मे अभेद मानने पर छुरा और मोदक शब्दो का उच्चारण करने पर क्रम से मुख के कटने और मीठे होने का प्रसंग आता है।

अत दोनों मे समानाधिकरण्य न होने से अभेद नही हो सकता। कदाचित शब्द और वस्तु मे विशेषण विशेष्य भाव मानकर यदि शब्द को वस्तु का धर्म स्वीकार करे तो यह भी सम्भव नही है, क्योकि विशेष्य से भिन्न विशेषण नही होता, कारण कि ऐसा मानने मे अव्यवस्था की आपत्ति आती है। अतएव शब्द वस्तु का धर्म न होने से उसके भेद से अर्थ भेद नही हो सकता है ?

इस शका का समाधान धवलाकार ने पुस्तक न० ९ के पृष्ठ न १७९ पर और कषाय पाहुड़ पुस्तक १-पृष्ठ २४१ पर निम्न प्रकार किया है –

१. ध ।पु९ ।पृ १७९

उत्तर—"यह कोई दोप नही है, क्योकि, विशेष्य से भिन्न भी वस्त्राभरणादिको के विशेषणता पाई जाती है (जैसे वह लाल कोट वाला व्यक्ति ऐसा कहने से उसी व्यक्ति विशेप का ग्रहण हो जाता है)।

और विशेष्य से विशेषण को एक मानने पर उनमे व्यवच्छेद व्यवच्छेदक (भेद्य व भेदक) भाव मानना भी योग्य नही कहा जा सकता, क्योकि, अभेद मानने पर उसका विरोध है। शब्द अपने से भिन्न समस्त पदार्थो का व्यवच्छेदक (भेद करने वाला) नही हो सकता,

क्योकि उसमें वैसी योग्यता नही है । किन्तु योग्य शब्द योग्य ही अथ का व्यवच्छेदक होता है, अतएव अतिप्रसग नही आता ।

शका —शब्द और अथ के योग्यता कहा से आती है ?

उत्तर —स्व और पर से उनके योग्यता आती है ।

इस कारण वाचक के भेद मे वाच्य भेद भी अवश्य होना चाहिये ।

२ क पा ।पु १ । प० २४१

उत्तर —जिस प्रकार प्रमाण, प्रदीप सूय, मणि और चन्द्रमा आदि पदाथ घट पट आदि प्रकाश्यभूत पदार्थो मे भिन्न रह कर ही उनके प्रकाशक देख जाते है, तथा यदि उन्हे सवथा भिन्न माना जाये तो उनमे प्रकाश्य प्रकाशक भाव नही बन सकता है, उसी प्रकार शब्द अथ से भिन्न होकर भी अथ का वाचक होता है ऐसा समझना चाहिये । इस प्रकार जब शब्द अथ का वाचक सिद्ध हो जाता है तो वाचक शब्द के भेद से उसके वाच्यभूत अथ मे भेद होना ही चाहिये ।

इस प्रकार शब्द और अथ में स्वभाविक वाच्य वाचक भाव रूप अभेद तो इस नय की उत्पत्ति का कारण है और वाचक शब्द के अथ भेद पर से वाच्य पदाथ में भेद देखना इसका प्रयोजन है ।

१० एव भूत नय का लक्षण

जैसा कि इस के नाम पर से विदित है, यह नय वस्तु को अत्यत सूक्ष्म दृष्टि से देखता हुआ ही उस का सज्ञा करण करने में प्रवृति करता है । 'एव' अर्थात जिस

प्रकार की वस्तु संज्ञा करण करते समय दिखाई देती है विल्कुल वैसा ही नाम उस समय उस वस्तु का रखा जाना चाहिये । अर्थात यह नय वस्तु की वर्तमान क्षण की एक क्रिया विशेप को देखकर ही उसे कुछ नाम देता है । इस की सूक्ष्म क्षणिक दृष्टि में उस समय उसी वस्तु की भूत व भावि काल की पर्यायो का अभाव हो जाता है। यही कारण है कि इस नय को भाव निक्षेप मे निक्षिप्त किया गया है ।

जैसा शब्द बोला जाये वैसा ही उसका वाच्च पदार्थ होना चाहिये । अर्थात व्युत्पत्ति के आधार पर जो कुछ अर्थ समभिरूढ़ नय ने उस शब्द का किया था, विल्कुल उसके अनुरूप परिणत पदार्थ ही उस शब्द का वाच्च हो सकता है, अन्य रूप से परिणत वही पदार्थ उस समय उस शब्द का वाच्य नही बन सकता, और इसी प्रकार जैसी क्रिया से विशिष्ट वह पदार्थ दिखता है उस का वाचक शब्द भी उस समय वैसी क्रिया को दर्शाना वाला ही होना चाहिये । रूढि वश बोले गये शब्दों का यहा सर्वथा लोप है। जैसे 'गो' शब्द का अर्थ 'चलने वाला' ऐसा होता है, अत चलते समय ही उस शब्द का प्रयोग करना चाहिये, बैठे या सोते समय नही ।

प्रत्येक ही चलने वाले पदार्थ मे भी इस का अर्थ नही जा सकता, क्योकि समभिरूढ नय पहिले ही इस के प्रति प्रतिवन्ध लगा चुका है । यहा एवभूत नय मे तो समभिरूढ़ नय के द्वारा स्वीकारे गये अर्थ मे भी भेद करना इष्ट है । समभिरूढ नय को दृष्टि में गाय नाम का पशु-विशेष 'गाय' है, भले चलती हो कि बैठी भले पुरो को विदारण करने मे प्रवृत्त न हो पर रूढ़ि वश इन्द्र हर समय पुरन्दर भी कहा जा सकता है। एवभूत ऐसा स्वीकार नही कर सकता । वहा तो चलती हुई गाय को ही 'गो' शब्द का वाच्च बनाता है, बैठने व सोने वाली को नही । इसी प्रकार पुरों का विदारण

करते समय ही इद्र 'पुरदर शब्द का वाच्य हो सकता है, पूजा करत समय या ऐश्वय का भोग करते समय नही। उस समय तो वह पुजारी व इद्र है। इस प्रकार क्रिया भेद पर से वाचक शब्द का भेद और वाचक शब्द के भेद पर से तत्क्रिया परिणत वाच्य पदाथ का भेद देखने वाला नय एवभूत नय है।

इतना ही नही, इस की सूक्ष्मता तो यहा तक कहने को तय्यार है कि कोई व्यक्ति जिस समय जिस पदाथ का ज्ञान कर रहा हो, उस समय उस व्यक्ति विशेष को उस पदाथ के नाम से ही पुकारना चाहिये, जैसे कि गाय को देखने मे उपयुक्त व्यक्ति उस समय 'गाय' शब्द का वाच्य है, मनुष्य या जीव शब्द का नही। कारण कि व्यक्ति तो ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान का सज्ञा करण ज्ञेय क बिना किया नही जा सकता जैसे 'घट' ग्राही ज्ञान को घट ज्ञान कहना। एवभत की एकत्व दृष्टि में घट व ज्ञान अथवा ज्ञा व ज्ञान धारी जीव ऐसा द्वत कहा? अत घट 'आदि ज्ञेय ही ज्ञान ह, और वह ज्ञान ही वह व्यक्ति है, अत घट रूप ही वह व्यक्ति है। अत व्यक्ति विशेष को 'घट' या 'गाय' कहना उस समय युक्त है।

इतना ही नही इस नय का तक तो यहा से भी आगे निकल जाता है। वह द्वत का सवथा निरास करन वाला है। अत उसकी सूक्ष्म दृष्टि मे 'ज्ञान,' 'वान' इन दो पदो का सम्मेल करके एक 'ज्ञानवान शब्द बनाना युक्त नही। अथवा 'आत्म, 'निष्ट' इन दो पदो का समास करके 'आत्मनिष्ट' शब्द बनाना युक्त नही। 'आत्मा' अकेला आत्मा ही है आत्मा में निष्ठा पाने वाला ऐसे विशेषण विशेष्य भाव की क्या आवश्यकता है? अर्थात प्रत्येक शब्द एक ही अथ का द्योतक है सयुक्त अथ का नही। जहा पदो का समास सहन नही किया जा सकता वहा अनेक शब्दो के समूह रूप वाक्य कैसे बोला जा सकता, अर्थात एव भूत नय की दृष्टि में शब्द ही शब्द है वाक्य न ी।

इतना ही नही एक असंयुक्त स्वतन्त्र शब्द या पद भी वास्तव मे कोई वस्तु नही, क्योकि वह भी 'घ,' 'ट' आदि अनेको वर्णो को मिलाने से उत्पन्न होते है। दो वर्णो को मिलाने मे तो आगे पीछे का क्रम पड़ता है, जैसे 'घट' शब्द मे 'घ' पहिले बोला गया और 'ट' पीछे। जो दृष्टि केवल एक क्षण ग्राही है वहा यह आगे पीछे का क्रम कैसे सम्भव हो सकता है। जब 'घ' बोला गया तब 'ट' नही बोला गया और जब 'ट' बोला गया तब 'घ' नही बोला गया। अत. 'घ' व 'ट' यह दोनो ही स्वतन्त्र अर्थ के प्रतिपादक रहे आवे, इन का समास या सयोग करके अर्थ ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं।

यह भी अभी दोष युक्त है, क्योकि यहा भी 'घ' इस वर्ण मे 'घ' और 'अ' इन दो स्वतन्त्र वर्णो का सयोग पडा है। घ् और अ मिल कर 'घ' बनता है। अत. 'घ' भी कोई चीज नही। 'घ' और 'अ' स्वतन्त्र रूप से रहते हुए जो कुछ भी अपने रूप के वाचक होते है वही एव-भूत नय का वाच्य है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और वहां से भी सूक्ष्मतम दृष्टि मे प्रवेश करता हुआ यह नय इस प्रकार केवल एक असयुक्त वर्ण को ही वाचक मानता है।

यहा शका की जा सकती है, कि इस प्रकार तो वाच्य वाचक भाव का अभाव हो जायेगा, और ऐसा हो जाने पर लोक व्यवहार का तो लोप हो ही जायेगा, परन्तु एवभूत नय का भी लोप हो जायेगा, क्योकि वह नय गूगा वत् बन कर रहने के कारण स्वयं अपना भी प्रतिपादन करने मे समर्थ न हो सकेगा। और ऐसी अवस्था मे वह नय नाम मात्र को ही 'नय कहलायेगा, परन्तु उस का स्वरूप कुछ न कहा जा सकेगा। इस शका का उत्तर कषाय पाहुड़ पुस्तक १ पृष्ठ २४३ पर निम्न प्रकार दिया है।

क. पा.।१।पृ२४३ **उत्तर**.—यह कोई दोष नही है, क्योकि यहा पर एवभूत नय का विषय दिखलाया गया है।

तात्पय यह वि इस नय का स्वरूप ही इतना सूक्ष्म है, ऐसा यहा शब्दो द्वारा दर्शाया गया । जिन शब्दो व वाक्यो द्वारा यह स्वरूप दर्शाया गया है वे शब्द स्वय एवभूत के विपय भले न हो पर सम-भिरूढ नय के विपय अवश्य ह । अपना स्वरूप दर्शाने के लिये अपनी लभण भत क्रिया मे ही प्रवृत्ति करना आवश्यक नही । शब्द व वाक्य व्यवहार हर विपय में लागू होने का व्यवहार प्रचलित है ।

इस प्रकार एवभूत नय के हम निम्न ४ लक्षण कर,सकते ह –

१ वाचक शब्द के अनुसार उस का वाच्य ओर वाच्य पदाथ के अनुसार उसका वाचक शब्द होना चाहिये ।

२ उस उस क्रिया से परिणत पदाथ ही उस क्रिया रूप शब्द का वाच्य हो ।

३ ज्ञेय विशेपण के ज्ञान मे परिणत आत्मा का नाम उस ज्ञेय रूप ही होना चाहिये ।

४ भिन्न भिन्न वर्णो का, भिन्न भिन्न पदो का व भिन्न भिन्न शब्दो का समास करक पदो का अथवा सयुक्त शब्दा का अथवा वाक्या का निर्माण नही किया जा सकता ।

अव इन्ही लक्षणो की पुष्टी व अभ्यास के अथ कुछ उध्दरण देखिये ।

१ लक्षण न १ (शब्द के अनुसार अर्थ और अथ के अनुसार शब्द)

१ विशेपावयकभाष्य गा १४३ "वजणमत्यणेत्य च वजणेणोभय विसेसेः । जह घटसद्द चेष्टावया तहा त पि तेणेव ।"

अर्थ—व्यञ्जन अर्थात शब्द गत वर्णो के भेद से अर्थ का, और गौ आदि अर्थ के भेद से व्यञ्जन या शब्द का भेद करने वाला एवभूत नय है । अर्थात जिस प्रकार घट शब्द चेष्टा विशेष को दर्शाता है । तव उसका वाच्य अर्थ भी उस चेष्टा विशेष वाला ही होना चाहिये ।

२. अनुयोगद्वार सूत्र १४५ "वंजण अत्थ तदुभय एवभूओ विसेसेइ ।"

अर्थ—व्यञ्जन और अर्थ अर्थात वाचक और वाच्य यह दोनो मे ही एवभूत विशेषता सहित होने चाहिये, ऐसा एव भूत नय वताता है ।

(आ० वि० ।७५८)

३. तत्वार्थाधिगमभाष्य ।१।३५ " व्यञ्जनार्थयोरेवभूत ।"

अर्थ—व्यञ्जन और अर्थ दोनो ही एवभूत है ।

४ ध. पु ६ । पृ १८० "वाचकगत वर्णभेदेनार्थस्य गवाद्यर्थभेदेन गवादिशब्दस्य च भेदक एवभूत ।":

अर्थ:—जो शब्दगत वर्णो के भेद से अर्थ का और गाय आदि अर्थ के भेद से गो आदि शब्द का भेदक है वह एवभूत नय है ।

(नय० वि० श्ल०।६४) (प्र० क० मा० ।पृ०६८०)

२ लक्षण नं २. (क्रिया परिणत पदार्थ ही शब्द का वाच्य है)—

१ स सि ।१।३३।५४२ "येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवभूत ।स्वाभिप्रेतक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो

नायदेति । यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति । यदैव गच्छति तदैव गौन स्थितो न शायित इति ।"

अर्थ—जो वस्तु जिस पर्याय को प्राप्त हुई है उसी रूप निश्चय कराने वाले नय को एवभूत कहते है । आशय यह है कि जिस शब्द का जो वाच्य है उस रूप क्रिया के परिणमन के समय ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है अन्य समय में नही । जब आज्ञा व ऐश्वय वाला हो तब ही इन्द्र है । भगवान का अभिषेक करने वाला नहीं और न पूजा करने वाला ही । जब गमन करती हो तभी गाय है ।

(रा वा ।१।३३।११।६६।५) (श्ल वा ।१।३३।७५) (प्र क मा ।प २०६) (स त टी प ३१४)

२ ध ।पु १ ।प ६०।५ "तत पदमेकमेकार्थस्य वाचकमित्यध्यवसाय एवभूतनय एतस्मिन्नये एको गोशब्दो नानार्थे न वर्तते एकस्यैकस्वभावस्य बहुपुवत्तिविरोधात् ।"

अर्थ—अत एक पद एक ही अर्थ का वाचक होता है । इस प्रकार विषय करने वाले नय को एवभूत नय कहते ह । इस की दृष्टि में एक 'गो शब्द नाना अर्थों में नही रहता है, क्योकि एक स्वभाव वाले एक पद का अनेक अर्थों में रहना विरुद्ध है ।

(ध ।पु ६ । प १८०।७) (रा वा ।४।४२।२६१।१७)

३ म म० ।२८।३१५।३ "एवभूत पुनरेवभाषते । यस्मिन्नर्थे शब्दो व्युत्पाद्यते स व्युत्पत्तिनिमित्तमर्थो यदैव

प्रवर्तते तदैव त शब्द प्रवर्तमानमभिप्रैति, न सामान्येन । यथा उदकाद्याहरणवेलाया योषिदादिमस्तकारूढो विशिष्टचेष्टावान् एव घटोऽभिधीयते न शेष । घटशब्दव्युत्पत्तिनिमित्त शून्य त्वात्, पटादिवत् इति । अतीता भाविनी वा चेष्टामङ्गीकृत्य सामेन्येनैवोच्यते इति चेत्, न । तयोर्विनष्टानुत्पन्नतया शशविषाणकल्पत्वात् । तथापि तद् द्वारेण शब्द प्रवर्तने सर्वत्र प्रवर्तयितव्य, विशेषाभावात् । किच यदि अतीतवर्त्स्यच्चेष्टापेक्षया घट शब्दोऽचेष्टावत्यपि प्रयुज्यते तदा कपालमृत्पिण्डावपि तत्प्रवर्तन दुर्निवार स्यात्, विशेषाभावात् । तस्माद् यत्रक्षणे व्युत्पत्तिनिमित्त विकल्पमस्ति तस्मिन्नेव सोऽर्थस्तच्छब्दवाच्य इति ।

क्रमश –

स म ।२८।३१६। श्ल ७ उद्धृत एकस्यापि ध्वनेर्वाच्य सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वाद् एवंभूतोऽभिमन्यते ।७।

क्रमश –

स म ।२८।३१९ शब्दानां स्वप्रवृत्ति निमित्त भूत क्रियाविशिष्टमर्थं वाच्य त्वेनाभ्युपगच्छन् एवभूत । यथेन्दनमनुभवन् इन्द्र शकनक्रियापरिणत शक्र पूर्दारणप्रवृत्त पुरन्दर इत्युच्यते ।"

अर्थः—अर्थ मे शब्द की व्युत्पत्ति होती है । जिस समय व्युत्पत्ति के निमित्त रूप अर्थ का व्यवहार होता है, उसी समय अर्थ मे शब्द का व्यवहार होता है । जैसे जल लाने के समय स्त्रियो के सिर पर रखे हुए घडे को ही 'घट' कह सकते है, दूसरी अवस्थाओ

में घडे को 'घट' नही कहा जा सकता। क्योकि जिस तरह पट को घट नही कहा जा सकता उसी तरह घडे को भी जल लाने आदि कि क्रिया रहित अवस्था म घट नही कहा जा सकता। शशविषाण की तरह अतीत और अनागत अवस्थाओ को नष्ट और अनुत्पन्न होने के कारण अतीत और अनागत अवस्थाओ को लेकर सामान्य से शब्दो का प्रयोग नही किया जा सकता। यदि अतीत और अनागत पर्यायो की अपेक्षा शब्द के वाच्यरूप पर्याय का अभाव होने पर भी घडे को घट कहा जाये, तो कपाल और मिट्टी के पिड में भी घट शब्द का व्यवहार होना चाहिये। अतएव जिस क्षण में किसी शब्द का व्युत्पत्ति का निमित्त कारण सम्पूण रूप से विद्यमान हो उसी समय उस शब्द का प्रयोग करना उचित है। यह एव-भूत नय है।

वस्तु अमुक क्रिया करने के समय ही अमुक नाम से कही जा सकती है। वह सदा एक शब्द का वाच्य नही हो सकती, इसे एवभत नय कहते ह।

जिस समय पदार्थो में जो क्रिया होती हो उस समय उस क्रिया से अनुरूप शब्दोसे अथ के प्रतिपादन करने को एवभूत नय कहते ह। जसे परम, ऐश्वय का अनुभव करते समय इन्द्र, समथ होने के समय शक्र और नगरो का विभाग करने के समय पुरदर कहना।

४ लघीयस्त्रय श्ल ४४ "इत्यम्भूत क्रियाश्रय।"

अर्थ--इत्थभत नय क्रियाश्रित है।

(प्रमाण स० श्ल० ८३), कत श्ल वा प २७४)

५ जैनतर्क भाषा पृ २३ "शब्दाना स्वप्रवृत्तिनि मित्तभूतक्रिया विष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवम्भूत ।"

अर्थ--स्वप्रवृत्ति की निमित्तभूत: क्रिया से आविष्ट अर्थ को ही वाच्यरूप से शब्द बताता है, ऐसा एवभूत नय है ।

६ विशेषावश्यक भाष्यगा २७४३ "···· । जह घट सद्द चेन्टावया तहा त पि तेणेव ।"

अर्थ—जिस प्रकार घट शब्द चेष्टा विशेष को दर्शाता है, तो उसका वाच्य अर्थ भी वैसा ही होना चाहिये ।

७ का अ ।२७७ "येन स्वभावेन यदा परिणतरूपे तन्मयत्वात् । तत्परिणाम साधयति योऽपि नय· सोऽपि परमार्थः ।२७७।

अर्थ—वस्तु जिस समय जिस स्वभाव से परिणमनरूप होती है उस समय उस परिणाम से तन्मय होती है । इसलिये उसी परिणाम रूप सिद्ध करता है, वह एवभूत नय है । यह नय परमार्थ रूप है ।

८ वृ न. च ।२१६ २१९ "यत्करोति कर्म देही मनवचनकाय-चेष्टात. । तत्ततखलु नामयुत एवंभूतो भवेत्स नय ।२१६। प्रज्ञापन भाविभूतेऽर्थे य सहि भेद पर्याय. । अथ स एवभूत सभवतो मन्यध्वमर्थेषु ।२१९।

अर्थ--जीव जो जो भी कर्म मनवचनकाय की चेष्टा से करता है, उस उस नाम वाला ही वह होता है, ऐसा एवंभूत नय कहता है ।२१६। भावि व भूत पदार्थ मे जो पर्यायो

का भेद रूप से प्रतापन करता है वह एवभूत नय में गर्भित होता है ।२१९।

६ नय चक्र गद्य पृ १८ "यस्मिन्काले त्रियाया च वस्तुजात प्रवतते। तया तन्नामवाच्य स्यादेवभूतो नयो मत ।'

अर्थ--जिस काल में जो वस्तु जिस क्रिया में वस्तु जात रूप से प्रवतती है उस समय वह वस्तु उसी नाम की वाच्य है, ऐसा एवभूत नय का मत है ।

१० रा प ।१६। पृ १२५ "एवक्रियाप्रधानत्वेनभूयन इत्येवभूत।" "एव अर्थात क्रिया की प्रधानता से जो होना है सो एवभूत है ।

११ अभिधान राजेंद्र कोष 'यत्क्रिया विशिष्ट शब्देनाच्यते, तामेव क्रिया कुव इस्त्वेवभूतमुच्यते । एवशब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिक प्रकार, तमवभूत प्राप्तमिति कृत्वा ततश्चवभूतवस्तुप्रतिपाद को नयोऽप्युपचारादेवभूत । अथवा एव शब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिक प्रकार, तद्विशिष्टम्यव वस्तुनाऽभ्युपगमात्तमेव भूत प्राप्त एवभत इत्युपचारमन्तरेणापि व्याख्यायते स एवभूतो नय ।"

अर्थ—जिस क्रियाविशिष्ट शब्द के द्वारा कही जाये, उस ही क्रिया को करती हुई वस्तु एवभूत कहलाती है । 'एव' शब्द का अर्थ चेष्टा व क्रियादिक का रूप दर्शाने वाला है । उस एवभूत क्रिया को प्राप्त करने वाली वस्तु भी एवभूत है । उस एवभूत वस्तु की प्रतिपादक होने से कारण यह नय भी उपचार से एवभूत कहलाता है ।

अथवा 'एव' शब्द के द्वारा चेष्टा क्रियादिक का प्रकार बताया जाता है। उस क्रिया से विशिष्ट वस्तु का ज्ञान करने के कारण एवंभूतपने को प्राप्त यह नय भी एवभूत है। इस प्रकार उपचार के बिना भी इसकी एवभूत सज्ञा है।

३ लक्षण नं ३ (ज्ञान परिणति के आधार पर जीव की संज्ञा) –

१ स सि ।१।३३।५४३ "अथवा येनात्मना येन ज्ञानेन भूत· परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति ।

अर्थ —अथवा जिस रूप से अर्थात जिस ज्ञान से आत्मा परिणत हो उसी रूप से उसका निश्चय कराने वाला नय एवभूत नय है यथा-इन्द्ररूप ज्ञान से परिणत आत्मा इन्द्र है और अग्नि रूप ज्ञान से परिणत आत्मा अग्नि है।

(रा वा ।१।३३।११।६६।१०)

४ लक्षण नं ४ (वर्णों का सम्मेलन होने से शब्द व वाक्य का भी अभाव है) —

१ ध ।पु १।पृ. ६०।३ "एव भेद भवनादेवभूत: । न पदाना समासोऽस्ति भिन्नकालवर्तिना भिन्नार्थवर्तिना चैकत्वविरोधात् । न परस्पर व्यपेक्षाप्यास्ति वर्णार्थसख्याकालादिभिर्भिन्नानॉ पदाना भिन्नपदायोगात् । ततोन वाक्यमत्यस्तीति सिद्धम् ।"

अर्थ —एवभेद अर्थात जिस शब्दका जो वाच्य है वह तद्रूप क्रिया से परिणत समय मे ही पाया जाता है। उसे जो विषय

करता है उसे एवभूत नय कहते ह । इस नय की दृष्टि से पदा का समास नही हो सकता, क्योकि भिन्न भिन्न काल वर्ती और भिन्न अथवाले शब्दो में एक पने का विरोध ह । इसी प्रकार शब्दो में परस्पर सापेक्षता भी नही है । क्योकि, वण अथ, सख्या और कालादिकके भेद सेभेद को प्राप्त हुए पदोके दूसरे पदो की अपेक्षा नही वन सकती है । जबकि एक पद दूसर पद की अपक्षा नही रखता है तो इस नय की दृष्टि म वाक्य भी नही वन सकता है यह बात सिद्ध हो जाती है ।

१ क पा ।पु १।प २४२।१ "एवम्भवनादेवभूत । अस्मिन्नये न पदानाममासोऽस्ति, स्वरूपत कालभेदेन च भिन्नानामेक त्वविरोधात । न पादानामेककालवृत्ति समास, क्रमोप न्नाना क्षणक्षयिणा तदनुपपत्ते । नेकार्थे वृत्ति समास, भिन्नपदानामकार्थे वृत्त्यनुपपत्ते । न वणसमासोत्यस्ति, तत्रापि पदसमासोक्तदोपप्रसगात । तत एक एववण एकाथ वाचक इति पदगतवर्णमात्राथ एकत्व इत्येवम्भूताभिप्राय- वान् एवम्भतनय ।'

अर्थ —'एवम्भूतात' अर्थात जिस शब्द का जिस क्रियारूप अथ ह तद्रूप क्रिया से परिणत समय में ही उस शब्द का प्रयाग करना युक्त है अन्य समया म नही, एसा जिस नय का अभिप्राय है उसे एवभूत कहते ह । उस नय में पदा का समास नही होता है, क्योकि जो पद स्वरूप और काल की अपेक्षा भिन्न ह, उन्हे एक मानने म विरोध आता ह । यदि कहा जाए कि पदो में एककालवृत्तिरूप समास पाया जाता है, सो कहना भी ठीक नही है क्योकि पद क्रम से ही उत्पन्न होते ह और वे जिस क्षण में उत्पन्न होते ह उसी क्षणम विनष्ट हो जाते ह इसलिये अनेक पदो का एक

कालमे रहना नही वन सकता है, पदो मे एकार्थ वृत्ति समास पाया जाता है, ऐसा कहना भी ठीक नही है,क्योकि भिन्न पदो का एक अर्थ मे रहना वन नही सकता है।

तथा इस नय मे जिसप्रकार पदो का समास नही वन सकता है, उसी प्रकार घ, ट आदि अनेक वर्णो का भी समास नहो वन सकता है, क्योकि, अनेक पदो के समास मानने मे जो दोप कह आये है वे सव दोप अनेक बर्णो के समास मानने मे भी प्राप्त होते है। इसलिये एवभूत नय की दृष्टि मे एक ही वर्ण एक अर्थ का वाचक है। अत घट आदि पदो मे रहने वाले घ्, ट्, और अ, अ, आदि वर्णमात्र अर्थ ही एकार्थ है, इसप्रकारके अभिप्राय वाला एवभूत नय समझना चाहिये।

११ एवभूत नय के कारण व प्रयोजन

एक समय मे देखने पर वस्तु वैसी ही दिखाई देती है इसलिये उसका नाम भी वैसा ही होना चाहिये। समय वदल जाने पर वस्तु भी वदल जाती है। अत समय वदल जाने पर उसका वाचक शव्द भी अवश्य वदला जाना चाहिये। जो वस्तु इस समय है वह अन्य समय नही रहती, या यों कहिये कि इस समयकी वस्तु वही है अन्य नही, इसीलिये उसके वाचक एक शव्द का अर्थ भी वही है अन्य नही। और इस प्रकार एक अर्थ का वाचक शव्द और एक शव्द का वाच्य अर्थ एक ही होना चाहिये अनेक नही। वाच्य वाचक सम्वन्ध मे क्षण प्रतिक्षण दीखने वाला यह एकत्व ही इस नय का कारण है।

यदि एक शव्द के अनेक अर्थ माने जायेगे तो उस शव्द को सुन कर श्रोता के ज्ञान मे किसी निश्चित अर्थकी सिद्धि न हो सकेगी। इसी प्रकार एक ही पदार्थ के लिए भी यदि भिन्न भिन्न समयो मे एक ही शव्द का प्रयोग करेगे तो भी श्रोता को भ्रम उत्पन्न हुए विना नही रह

सकता। यदृच्छा से कभी इन्द्र को 'इन्द्र' और 'पुरन्दर' कह देने से भी श्रोता को उस समय वह शब्द सुन कर भ्रम हो सकता है कि सम्भवतः इस समय इन्द्र के सम्बन्ध में कहा जा रहा है, वह नगर विदारण करता हुआ फिर रहा है, भले ही उस समय वह भगवान की पूजा ही कर रहा हो। इस प्रकार के भ्रम की सम्भावना को दूर करके समभिरूढ के विषय को और भी सूक्ष्म व शुद्ध बनादेना इस नय का प्रयोजन है।

१२ तीनों का समन्वय — अब इन तीनों के विषय में उठने वाली कुछ शकाओं का समाधान कर लेना योग्य है।

१ प्रश्न—ऋजुसूत्र नय व शब्द नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर—इन दोनों में सर्वथा भेद हो ऐसा नहीं है, किन्हीं अपेक्षाओं से इनमें अभेद भी है और किन्हीं अपेक्षाओं से भेद भी।

(i) ऋजुसूत्र नय का विषय भी एक समयवर्ती पर्याय है और शब्द नय का विषय भी। वहां भी एकत्व का ग्रहण है और यहां भी।

(ii) ऋजुसूत्र नय भी किसी वस्तु को जिस किस नाम से कह देता है और शब्द नय भी। दोनों में वाचक शब्दों सम्बन्धी विवेक का अभाव है।

(iii) ऋजुसूत्र भी अनेकों अन्वयक व काल्पनिक शब्दों को एकार्थ वाची स्वीकार करता है और शब्द नय भी।

इस प्रकार तो इन दोनों में अभेद है, अब भेद देखिये।

(i) ऋजुसूत्र का विषय अर्थ व शब्द दोनो पर्याय है, परन्तु शब्द नय का विषय केवल शब्द पर्याय है, अतः उसकी अपेक्षा स्वल्प विषय वाला है।

(ii) ऋजुसूत्र नय अर्थ प्रधान है और शब्द नय शब्द प्रधान है अर्थात ऋजुसूत्र तो प्रमुखत पर्याय को ही सूक्ष्म दृष्टि से जानने म प्रवृत होता है और शब्द नय उस ही पर्याय का सज्ञा करण करने मे। इसका यह अर्थ न समझना कि ऋजुसूत्र नय बिल्कुल गूगा है और शब्द नय अन्धा। यहाँ केवल प्रमुखता की बात है।

(iii) ऋजुसूत्र भी अपने विषय भूत पर्याय का प्रतिपादन करता अवश्य है पर शब्द गम्य व वाक्य गम्य दोषो की पर्वाह न करता हुआ। शब्द नय भी उसके विषय को जानकर या ग्रहण करके उसका प्रतिपादन करताहै, पर शब्द गम्य दोषो को दूर करके। ऋजुसूत्र तो लौकिक व्याकरण के नियमो का अनुसरण करता हूआ उसके द्वारा स्वीकृत सर्व अपवादो को स्वीकार कर लेता है, पर शब्द नय व्यव-हार के लोप की परवाह न करता हुआ किसी प्रकार के भी शब्द गम्य अपवाद को स्वीकार नही करता। अर्थात ऋजुसूत्र के वक्तव्य मे भिन्न लिङ्ग व सख्या आदि के वाचक पर्याय वाची शब्दो का अर्थ एक समझा जा सकता है पर शब्द नय के वक्तव्य मे ऐसा नही हो सकता। वह समान लिग आदि के वाचक पर्याय वाची शब्दो मे ही एकार्थता स्वीकार करता है पर भिन्न लिगादि वालों मे नही।

(iv) अत विषय भूत पदार्थ की अपेक्षा तो इन दोनो मे कोई अन्तर नही, वह भी पर्याय को विषय करता है और यह

भी । शब्द की अपेक्षा शब्द नय अपना एक स्वतन्त्र विषय रखता है, जिसके साथ द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक किसी भी अन्य नय का कोई प्रयोजन नही ।

२ प्रश्न —शब्द नय और समभिरूढ नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर –विषय की अपेक्षा इन में कोई भेद नही पर शब्द की अपेक्षा भेद अवश्य है ।

(i) शब्द नय का विषय भी एक अभेद शब्द पर्याय है और इसका विषय भी वही शब्द पर्याय है ।

(ii) वह भी अर्थ प्रधान नही है और यह भी अर्थ प्रधान नहीं है ।

(iii) वह भी एकत्व का ग्रहण करके कार्य कारण आदि भावो को स्वीकार नही करता, और यह भी नही करता ।

यह तो इन दोनो में अभेद है अब भेद सुनिये ।

(i) शब्द नय तो समान लिंग आदि के वाचक शब्दों में व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा भेद किये बिना उन्हें सर्वथा एकार्थ वाचक स्वीकार करता है, परन्तु समभिरूढ नय उनमें व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा अर्थ भेद मानता है ।

(ii) यद्यपि दोनो ही नय एक पदार्थ को अनेको नामो से पुकारते है अर्थात एक अर्थ के अनेक वाचक शब्द स्वीकार करते है परन्तु इनकी स्वीकृति के क्षेत्र में महान अन्तर है । शब्द नय तो उन्हे वास्तव में एकार्थवाचक मानता है पर समभिरूढ नय केवल रूढि वश ।

(iii) शब्द नय मे एक शब्द के अनेक वाच्य अर्थ होने सम्भव है पर समभिरूढ नय मे एक शब्द का कोई एक रूढ या प्रसिद्ध अर्थ ही ग्राह्य है, इसलिये यहा एक शब्द का एक ही अर्थ होता है, जैसे 'गो' शब्द का अर्थ यहा पशु विशेष ही है, और शब्द नय मे इसी का अर्थ वाणी व पृथिवी भी स्वीकृत है ।

(iv) ऋजुसूत्र के विषय मे लिङ्गादि के विषय भेद से भेद करने वाला शब्द नय है और शब्द नय से स्वीकृत समान लिङ्ग कारकादि वचन वाले उन शब्दो मे व्युत्पत्ति भेद से अर्थ भेद करने वाला समभिरूढ है । जैसे परम ऐश्वर्य का भोग करने के कारण इसे इन्द्र कहते है केवल नाम मात्र से नही । यद्यपि शब्द नय भी इसी शब्द का प्रयोग देवराज के लिए करता है पर उपरोक्त व्युत्पत्ति क भेद रखे विना नाम निक्षेप मात्र से या रूढि मात्र से कर देता है, परन्तु समभिरूढ नय इसमे निरुक्ति गम्य विवेक जागृत करके इसे सार्थक बना देता है, काल्पनिक रहने नही देता । शब्द भले वदले न वदले पर भाव आवश्य वदल जाता है ।

३ प्रश्न—ऋजु सूत्र नय व समभिरूढ नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर– विषय की अपेक्षा कोई अन्तर नही क्योकि उसकी विषय भूत व्यञ्जन पर्याय ही इसका वाच्य है । अन्तर केवल इतना है कि ऋजुसूत्र अर्थ प्रधान है और समभिरूढ नय शब्द प्रधान । अर्थात वह तो अपने विषय भूत पर्याय का सज्ञाकरण करते समय सार्थक व अनर्थक पने की अपेक्षा से रहित प्रवृति करता है, पर यह नय उसको केवल अन्वर्थक ही नाम देता है।

८ प्रश्न—समभिरूढ नय व एवंभूत नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर— विषय व शब्द दोनों की अपेक्षा ही इनमें बड़ा अन्तर है ।

(i) समभिरूढ नय का विषय क्रिया निरपेक्ष लम्बी व्यञ्जन पर्याय है और एवंभूत का विषय क्रिया सापेक्ष क्षणिक व्यञ्जन पर्याय है । अर्थात भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न क्रिया करती हुई भी वह व्यञ्जन पर्याय भूत वस्तु समभिरूढ की दृष्टि में तो एक ही बनी रहती है, परन्तु एवंभूत की दृष्टि में तो क्रिया के साथ साथ वस्तु भी भिन्न भिन्न दीखने लगती है । अर्थात समभिरूढ नय अनेक क्रियाओं में एकत्व देखता है और एवंभूत नय अनेक क्रियाओं में अनेकत्व देखकर केवल एक समय वर्ती क्रिया से समवेत एक वस्तु को ही विषय करता है ।

(ii) समभिरूढ नय में एक वस्तु में अनेक क्रियाओं की सम्भावना होने के कारण एक वस्तु के अनेक अन्वर्थक नाम सम्भव है, परन्तु एवंभूत नय में एक ही क्रिया होने के कारण उसका एक ही नाम सम्भव है ?

५ शंका— शब्द का अर्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि वह वस्तु का धर्म नहीं है तो फिर वह अर्थ का व वस्तु का वाचक कैसे हो सकता है, तथा शब्द के दोष से वस्तु कैसे दूषित हो सकती है ।

(इस प्रश्न का उत्तर क पा १।६ १९८।२३८। व पा १ ६ २१५।२१६। २६५।२६६ तथा ध ९ ।१७६।७ में निम्न प्रकार दिया है ।

उत्तर—"जैसे प्रमाण का व अर्थ का कोई सम्बन्ध न होने पर भी वह अर्थ को ग्रहण कर लेता है वैसे शब्द का अर्थ से

साथ कोई सम्बन्ध न होने पर भी शब्द अर्थ का वाचक हो जाये इसमे क्या आपत्ति है ?" और यदि शब्द व अर्थ मे यह वाच्य वाचक सम्बन्ध स्वीकार है तो शब्द मे दोष आने पर श्रोता के द्वारा ग्राह्य अर्थ मे कैसे दोष न आऐगा।

६ प्रश्न —"प्रमाण और अर्थ मे तो ज्ञायक ज्ञेय सम्बन्ध पाया जाता है ?"

उत्तर:—"नहीं, क्योकि वस्तु की शक्ति की अन्य से उत्पत्ति मानने मे विरोध आता है। अर्थात जो वस्तु जैसी है उसको उसी रूप से जानने की शक्ति को प्रमाण कहते है। वह शक्ति से उत्पन्न नही हो सकती। यदि प्रमाण और अर्थ मे स्वभाव से ही ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है तो शब्द और अर्थ मे भी स्वभाव से ही वाच्य वाचक सम्बन्ध क्यो नही मान लिया जाता" ?

७ शंका— "शब्द और अर्थ मे यदि स्वभाव से ही वाच्य वाचक सम्बन्ध है तो फिर वह पुरुष व्यापार की अपेक्षा क्यो करता है ?

उत्तर—"प्रमाण यदि स्वभाव से ही अर्थ से सम्बद्ध है तो फिर वह इन्द्रिय व्यापार या आलोक (प्रकाश) की अपेक्षा क्यो रखता है ! इस प्रकार शब्द और प्रमाण दोनो मे शका और समाधान समान है। फिर भी यदि प्रमाण को स्वभाव से ही पदार्थों का ग्रहण करने वाला माना जाता है तो शब्द को भी स्वभाव से अर्थ का वाचक मानना चाहिये।

अथवा यों भी यदि इसका समाधान किया जा सकता है कि शब्द और पदार्थ का सम्बन्ध कृत्तिम है अर्थात पुरुष के के द्वारा किया हुआ है, इसलिये वह पुरुष के व्यापार की अपेक्षा रखता है।"

शंका—शुद्ध द्रव्यार्थिक या शुद्ध सग्रह के अद्वैत में तथा इस नय के एकत्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर—इसका उत्तर ऋजुसूत्र नय के प्रकरण न ८ प्रकार न ७ म दिया जा चुका है। वहा से देख लेना।

—

मगलाचरण

शब्द ब्रह्म की उपासना द्वारा अवतरित यह पवित्र सरस्वती मेरी दृष्टि की सकीर्णता को धोकर व्यापक स्वच्छ ज्ञान प्रदान करे

– इति प्रथम भाग समाप्त –
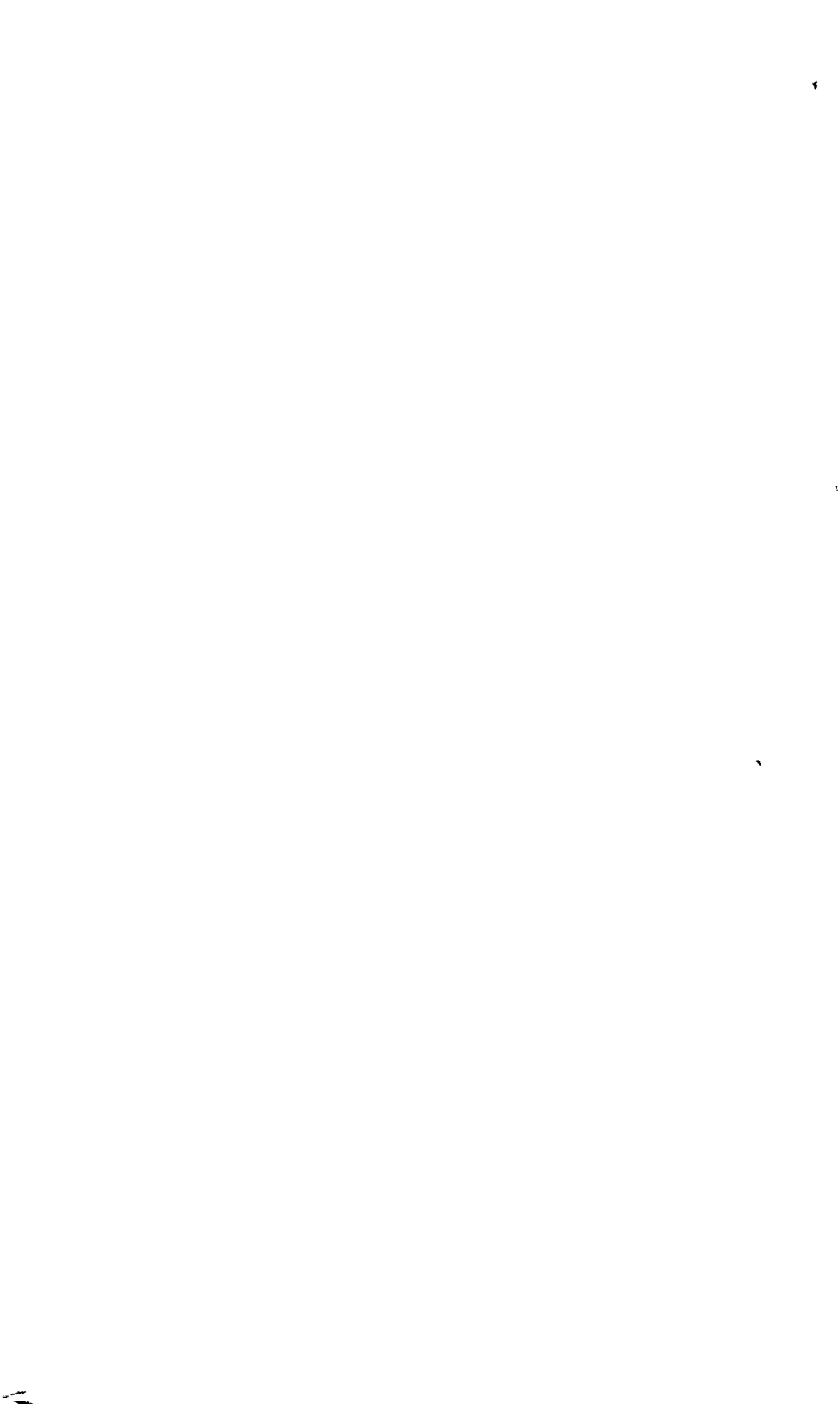
श्री वीतरागायनम

नय दर्पण

भाग २

मगलाचरण

प्रमाण नय निक्षेप स प्रत्यक्ष कर तिहुलोक सब ।
व्यापक उसी आलोक मे खो भूल जाऊ शोक सब ॥

III आगम पद्धति (वस्तुभूत)

इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध भाग मे वस्तु का सागोपाग चित्रण दर्शाकर उस के सामान्य व विशेष अगो का विशद परिचय दिया जा चुका है । एक अनेक, तत-अतत्, नित्य-अनित्य व सत् असत आदि अनको विरोधी धर्मो को युगपत धारण करने वाली उस जटिल वस्तु का शब्दो द्वारा कहना कितना कठिन है, यह बात भली भाति वहा बताई जा चुकी है । फिर भी गुरु शिष्य प्रवृत्ति के निमित्त उस को जिस किसी प्रकार भी वक्तव्य बनाना इष्ट है क्योकि अनिवचनीय या निर्विकल्प मात्र कह देने से तीथ की प्रवृत्ति चलनी असम्भव है। अत अवक्तव्य भी उस वस्तु को वक्तव्य बनाने के लिये, उसका विश्लेषण करके उसे अनेको विकल्पा म विभाजित कर दिया गया । उन में से किसी एक विकल्प को उठाकर तद्मुखेन उस वस्तु का विवेचन करना नय कहलाता है यह भी बताया जा चुका है ।

वह नय ज्ञान अथ व शब्द के भेद से तीन प्रकार का होता है । ज्ञान में ग्रहण किये गये सत् व असत् विकल्पा को आश्रय करके कुछ

कहना ज्ञान नय है। प्रमाणभूत पदार्थ के सामान्य व विशेष अंगो को आश्रय करके कुछ कहना अर्थ नय है। तथा विवेचन क्रम में प्रयुक्त शब्दो व वाक्यों मे व्याकरण की अपेक्षा दूषणों देखकर उन्हें दूर करना और ठीक ठीक शब्दों आदि का ही प्रयोग करने को कहना शब्द नय है। इन तीनो नयों का विस्तृत विवेचन पूर्वार्ध भाग में शास्त्रीय नय सप्तक के अन्तर्गत किया जा चुका है। अब इन उत्तरार्ध भाग मे नयो के अन्य अनेको भेद प्रभेदो का क्रम से कथन किया जायेगा। अनेको दृष्टियो से किये गये नय के भेद प्रभेदों का एक चार्ट उसी पूर्वार्ध भाग के अधिकार नं ९ मे दिया गया था।

दो प्रमुख पद्धतियो से वस्तु का विवेचन किया जाता है—आगम पद्धति से व अध्यात्म पद्धति मे। अज्ञान निवृत्ति के अर्थ किसी भी वस्तु का परिचय पाने के लिये जो कथन किया जाता है उसे आगम पद्धति कहते है, और जीवन या आत्म तत्व सम्बन्धित हेयोपादेयता का विवेक कराने के लिये जो कथन किया जाता है उसे अध्यात्म पद्धति कहते हैं। आगम पद्धति मे भी दो दृष्टिये है—शास्त्रीय दृष्टि और वस्तु को पढने की दृष्टि। इन दोनो मे से शास्त्रीय दृष्टि वाली आगम पद्धति का कथन पहिले किया जा चुका है, अब इस भाग में आगम पद्धति की जो दूसरी वस्तुभूत दृष्टि है उसका तथा अध्यात्म पद्धति का कथन किया जायेगा। तहां नय के भेदो के क्रमानुसार पहिले आगम पद्धति की वस्तुभूत नयो का कथन करना प्राप्त है। इस दृष्टि के अन्तर्गत द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नयो के १६ प्रमुख भेदों का ग्रहण किया गया है, जो कि चार्ट मे स्पष्टत दिखाये जा चुके है। उन्ही का कथन अब क्रम पूर्वक किया जायेगा।

१६

द्रव्यार्थिक नय

(i) द्रव्यार्थिक नय सामान्य –१. षोडश नय प्रकरण परिचय, २ द्रव्यार्थिक नय सामान्य के लक्षण, ३ द्रव्याथिक नय सामान्य के कारण व प्रयोजन,

(ii) शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नय –४. द्रव्यार्थिक नय के भेद, ५ शुध्द द्रव्यार्थिक नय, ६ अशुध्द द्रव्यार्थिक नय,

(iii) द्रव्यार्थिक नय दशक – ७. द्रव्यार्थिक नय दशक परिचय, ८ स्व चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, ९ पर चतुष्टय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १०. भेद

निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, ११. भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १२. उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १३. उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, १४. परमभाव ग्राहक शुध्द द्रव्यार्थिक नय, १५. अन्वय ग्राहक अशुध्द द्रव्यार्थिक नय, १६. कर्मोपाधि निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक नय, १७. कर्मोपाधि सापेक्ष अशुध्द द्रव्यार्थिक नय, १८, द्रव्यार्थिक के भेद प्रभेदो का समन्वय ।

१५। द्रव्यार्थिक नय सामान्य

षोडश नय प्रकरण परिचय

अधिकार न० ९ के अन्त मे जो नय के भेद प्रभेदो का चार्ट दिया है, उस मे से पहिले आगम पद्धति वाली नयो का कथन करने की प्रतिज्ञा की थी। आगम पद्धति वाली नयो की भी दो श्रेणिये वहा दिखाई गई है—शास्त्रीय नयो की श्रेणी और वस्तुभूत नयों की श्रेणी। उनमे से शास्त्रीय नय सप्तक का कथन हो गया, अब दूसरी वस्तुभूत नयो का कथन चलता है। आगम पद्धति की उपरोक्त दोनो श्रेणियो मे वास्तव मे कोई मूल सैद्धान्तिक अन्तर नही है। अन्तर है केवल उनकी व्याख्यान शैली मे। शास्त्रीय नय सप्तक तो ज्ञान नय, अर्थ नय, और शब्द नय इन तीनो मे परस्पर क्या सम्बन्ध है यह दर्शाता है, तथा साथ ही साथ नयो का आश्रयभूत जो तत्व उसका क्रम पूर्वक

विश्लेषण करता हुआ, उसे स्थूल से सूक्ष्म और फिर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर व सूक्ष्म तम अवस्था तक पहुँचा कर दर्शा देता है। वस्तुभूत आगम नयें ज्ञान व शब्द को छोड कर केवल अर्थ में प्रवृत्त होते ह। इसमें तत्व की स्थूलता व सूक्ष्मता की कोई अपेक्षा नही है। यहा तो वस्तु के सामान्य व विशेष अशो का अत्यन्त विशद परिचय देना इष्ट है।

अधिकार न० ६ मे वस्तु के अशो का व उनके सामान्य विशेष विकल्पो का परिचय दिया गया है। यद्यपि अब तक के सारे कथन का आधार भी वही रहा है, परन्तु नया प्रकरण प्रारम्भ करने स पहिले यहा पुन उसका सक्षिप्त सा परिचय दे देना योग्य है, क्योकि वस्तु के सामान्य व विशेष ये अग ही इन नयो के प्राण ह। वस्तु अनेक नित्य व अनित्य अगो का पिण्ड है। नित्य अगो को गुण और अनित्य को पर्याय कहते ह। गुणो व पर्यायो के प्रदेशात्मक अधिष्टान को द्रव्य कहते ह। द्रव्य तो द्रव्य है, उसके प्रदेश उसका क्षेत्र है, उसकी पर्याय ही उसका काल है, और गुण उसके भाव ह। इस प्रकार सब ही अग द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव इन चार विकल्पो में समा जाते ह। ये चारो वस्तु के स्वचतुष्टय कहलाते ह। वस्तु इस चतुष्टय से गुम्फित है। चार मे से एक का भी अभाव होने पर वस्तु की महासत्ता या अवान्तर सत्ता सुरक्षित नही रह सकती।

ये चारो ही सामान्य तथा विशेष के रूप में देखे जा सकते ह। जैसे कि एक व्यक्तिगत कोई द्रव्य तो विशेष है और अनेक ऐसे विशेष द्रव्यो में अनुगत एक जाति को सामान्य द्रव्य कहते हैं, एक प्रदेश तो विशेष क्षेत्र है और अनेक विशेष क्षेत्रों में अनुगत द्रव्य का एक अखण्ड सस्थान सामान्य क्षेत्र ह, इसी प्रकार एक समय स्थायी पर्याय तो विशेषकाल है और अनेक विशेष कालो म अनुगत वस्तु की त्रिकाली सत्ता सामान्य काल है, एक गुण तो विशेष भाव है और

अनेक विशेष भावो का पिण्ड कोई एक अखण्ड भाव सामान्य है, अथवा एक अविभाग प्रतिच्छेद तो विशेष भाव है और अनेक विशेष भावो मे अनुगत एक अखण्ड भाव सामान्य है। सामान्य चतुष्टय स्वरूप तत्व सामान्य तत्व कहलाता है और विशेष चतुष्ट स्वरूप तत्व विशेष तत्व कहलाता है। सामान्य और विशेष के मध्य तत्व के अनेकों अवान्तर भेद प्रभेद देखे जा सकते है। इस सर्व कथन का विशेष विस्तार वहा अधिकार न० ६ मे देखे।

तहां सामान्य चतुष्टयात्मक तत्व की ही सत्ता को स्वीकार करके विशेष तत्व की सत्ता का तिरस्कार करना द्रव्याथिक नय है और विशेष तत्व की सत्ता को ही स्वीकार करके सामान्य तत्व की सत्ता का तिरस्कार करना पर्यायार्थिक नय है। यही इस वस्तुभूत अर्थ नय के मूल दो भेद है, जिनके आगे १६ भेद कर दिये गये है— दस भेद द्रव्यार्थिक नय के और छः भेद पर्यायार्थिक नय के। इन १६ भेदो का कथन ही इस श्रेणी मे किया जायगा। इन मे भी पहिले द्रव्यार्थिक नय तथा उसके सामान्य व विशेष भेदो का कथन करना इष्ट है।

२ द्रव्यार्थिक नय सामान्य के लक्षण

उपरोक्त सकेत पर से यह वात जानी गई है कि सामान्य तत्व की सत्ता को अर्थात् महा सत्ता व अवान्तर सत्ता की भूतपूर्व कथित पदार्थो की एकता को स्वीकार करके विशेष तत्व की उनकी अनेकता का तिरस्कार करना द्रव्यार्थिक नय का विषय है। इसी वात का विशेष स्पष्टीकरण करते है। यद्यपि सामान्य तत्व तो चतुष्टयात्मक है, और इस लिये चारो (द्रव्य क्षेत्र काल व भाव) के आधार पर ही उसकी सामान्यता को ग्रहण किया जाना चाहिये, परन्तु यहा कथन क्रम को सरल वनाने के लिये उनमे से किसी भी एक या दो के आधार पर अपना अभिप्राय समझना पर्याप्त है। तहा शेष मे भी वही अभिप्राय स्वय अपनी बुद्धि से लगा लेना।

अधिकार न० ६ मे वस्तु के सामान्य व विशेप का परिचय देने के लिये जीरे के पानी का दृष्टात दिया गया है । तहा नमक मिर्च आदि तो विशेप है और उस पानी का मिश्रित एक रसरूप विजातीय स्वाद सामान्य है । दार्ष्टान्त में ज्ञान, श्रद्धा, चरित्रादि अनेक गुण या स्वभाव, तथा मतिज्ञान आदि अनेकों अर्थ पर्याये, अथवा देव मनुष्यादि अनेकों व्यञ्जन पर्याये या स्वकाल, तो विशेप ह और उन सब मे अनुस्यूत एक आत्मा नाम पदार्थ सामान्य है । सामान्य का नाम द्रव्य है जो सब गुणो व त्रिकाली पर्यायो का एक रसात्मक अखड पिण्ड है, और इसके विशेष ही पर्याय शब्द के वाच्य ह। इस पर्यायो को गौण करके या भूलकर केवल उस सामान्य द्रव्य को ही सत रूप स्वीकार करना द्रव्यार्थिक दृष्टि है ।

जीरे के पानी को चखते समय जिस प्रकार केवल एक अखण्ड स्वाद ही चखने में आता है, नमक मिर्च आदि का पृथक पृथक स्वाद उस समय कोई चीज नही है इसी प्रकार सामान्य द्रव्य से रहित पृथक पृथक गुण या पर्याय की सत्ता है ही कहा। गुण व पर्याय ही तो मिलकर द्रव्य कहलाते ह और द्रव्य गुण पर्याय मयी है, अत द्रव्य, गुण व पर्याय या द्रव्य क्षेत्र काल व भाव एसा द्वैत करके वस्तु की सत्ता को विनष्ट क्यो करते ह उसे अकेला द्रव्य या वस्तु ही रहने दीजिये । वस्तु म इस प्रकार का अद्वैत देखना ही इस दृष्टि का विषय है।

इसी भाव को और अधिक स्पष्ट करने के लिये अधिकार न० १० में प्रकरण न० ३ के अन्तगत वह जीरे के पानी वाला दृष्टान्त एक बार देख लीजिये । प्रश्नोत्तर के फलस्वरूप वहा चार बातें सामने आई थी—

१ —अभेद विजाति प्रकार का स्वाद है ।

२ –कह नहीं सकता (अवक्तव्य है) पर जानता हूँ।

३ –पृथक पृथक नमक मिर्च रूप नही है ।

४ –अकेले नमक जितना नही है ।

विचार करने पर ये चारों वाते वास्तव मे एक ही है चार नही है। न० २ का अवक्तव्यपना वास्तव मे न० १ वाले अभेद स्वाद को ही दर्शा रहा है, स्वाद के अभाव को नही। क्योकि वह जाना जाते हुए भी कहा नही जा सकता, इसलिये उसे अवक्तव्य कहा गया है। सर्वथा न कहा जा सके ऐसा भी नही है। क्योकि यदि ऐसा होने लगे तो गुरु शिष्य सम्बन्ध निरर्थक हो जाए। अत. न० ३ व ४ मे उस अवक्तव्य को जिस किसी प्रकार भी वक्तव्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। जब "अस्ति" रूप से उसका कथन किया जाना सम्भव न देखा तो 'नास्ति' के द्वारा या 'नेति' के द्वारा कथन करने का ढग अपनाया गया। "इस अंग रूप भी नही है," ऐसा कहना उन अगो का अभाव नही दर्शा रहा है बल्कि उसी नं १ वाले स्वाद की विजातीयता दर्शा रहा रहा है। तथा नं० ४ वाली वात उस एक विजातीय स्वाद की व्यापकता व अनेकता की ओर सकेत कर रही है। इस प्रकार न० २ से न० ४ नं० १ वाली यह तीन वाते वास्तव मे उस वाली वात को ही विशेष स्पष्ट कर रही है, अत: यह चार भी है।

ऊपर के कथन का तात्पर्य है कि यद्यपि द्रव्यार्थिक नय का लक्षण तो वही है जो कि पहिले दर्शा दिया गया अर्थात "विशेष को गौण करके सामान्य को ग्रहण करना द्रव्यार्थिक नय है" परन्तु इसी को विशेष स्पष्ट करने के लिए द्रव्यार्थिक नय के अनेको लक्षण किए जा सकते है, मुख्यत. ६ लक्षण यहा करने मे आते है। और भी अनेकों लक्षणों का परिचय इस नय के भेद प्रभेदों पर से हो जाएगा।

१ पर्याय या विशेषो के गौण करके जो द्रव्य या सामान्य का ग्रहण करता है, वह द्रव्यार्थिक है ।

२ —सामान्य द्रव्य ही है प्रयोजन जिसका सो द्रव्यार्थिक है ।

३ —सामान्य या अभेद द्रव्य के निश्चय को द्रव्यार्थिक कहते है ।

४ —द्रव्यार्थिक अवक्तव्य है । केवल अनुभव गम्य है ।

५ —सकल गुण गणी आदि भेदो का निषेध करना द्रव्यार्थिक का लक्षण है ।

६ —इतना ही मात्र द्रव्य नही है इसके अतिरिक्त और कुछ भी है ऐसा विकल्प द्रव्यार्थिक नय का लक्षण है ।

आओ क्रम से इन पाचो लक्षणो की आगम में खोज करें ताकि इनकी प्रमाणिकता सिद्ध हो जाए और साथ साथ लक्षण भी स्पष्टत दृष्टि म आ जाए । इन उद्धरणो को ही उपरोक्त लक्षण के उदाहरण समझना । यहा यह बात बता दनी योग्य है कि जसा कि आगे बताया जाएगा द्रव्यार्थिक नय का दूसरा नाम निश्चय नय भी है । अत यहा पर आने वाल उद्धरणो म आपको दोनो शब्द मिलगे। पहिले दो लक्षणा म तो आपको द्रव्यार्थिक शब्द का ही प्रयोग मिलेगा । पर आगे के चार लक्षणो में निश्चय का प्रयोग भी मिलेगा ।

अब इन लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये ।

<u>१ लक्षण नं० १ (पर्याय या विशेष को गौण करके द्रव्य सामान्य का ग्रहण)</u>

१. वृ न च ।१९० "पर्यायं गौणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके । स द्रव्यार्थिको भणितो विपरीतः पर्यायार्थिक. ।१९०।"

अर्थ—पर्याय या विशेष को गौण करके जो लोकमे द्रव्य या सामान्य को ग्रहण करता है, वह द्रव्यार्थिक नय है। इससे विपरीत पर्यायार्थिक है।

२ न. दी ।३ ।८२ ।१२५ "तत्र द्रव्यार्थिकनय द्रव्यपर्यायरूपमेकानेकात्मकमनेकान्त प्रमाणप्रतिपन्नमर्थ विभज्य पर्यायार्थिकनयविषयस्य भेदस्योपसर्जनभावेनावस्थानमात्रमभ्युनुजानन् स्वविषय द्रव्यमभेदमेव व्यवहारयति ।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय प्रमाण के विषयभूत द्रव्य-पर्यायात्मक, एकानेकात्मक अनेकान्तरूप अर्थका विभाग करके, पर्यायार्थिक नय के विषयभूत भेद को गौण करता हुआ, उसकी स्थिति मात्र को स्वीकार कर, अपने विषय द्रव्य को अभेद रूप व्यवहार करता है।

३ का अ ।२६९ "य· साधयति सामान्यं अविनाभूत विशेषरूपै । नानायुक्तिवलात् द्रव्यार्थ स नय. भवति ।२६९।"

अर्थः—जो नय वस्तु को विशेष रूप से अविनाभूत सामान्य स्वरूप को अनेक प्रकार की युक्ति के वल से सिद्ध करता है वह द्रव्यार्थिक नय है।

४ स. सा ।आ. १३ "द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतयानुभावयतीति द्रव्यार्थिकः ।"

अर्थ— द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु मे द्रव्य को मुख्य रूप से अनुभव करता है वह द्रव्यार्थिक नय है।

अर्थ—(पूर्वोत्तर पर्यायो में अनुगत व्यक्तिगत द्रव्य को तद्भाव सामान्य कहते है, और अनेक द्रव्यों तथा उनकी जातियो मे सदृश्य भाव से रहने वाला 'सत्' सादृश्य सामान्य कहलाता है।) ऐसा तद्भाव लक्षण सामान्य की अपेक्षा तो अभिन्न और सादृश्य लक्षण सामान्य की अपेक्षा कथचित भिन्न व कथञ्चित अभिन्न जो वस्तु, उसका स्वीकार करने वाला द्रव्यार्थिक नय है।

२ ध. ।६।१६७।१० "द्रवति द्रोप्यति अदुद्रुवत्तास्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् । एतेन तद्भावसादृशलक्षणसामान्ययोर्द्वयोः रपि ग्रहणम्, वस्तुन उभयथापि द्रवणोपलभात् ।. . .

. सदित्येक वस्तु, सर्वस्य सतोऽविशेषात् । . .अथवा सर्वं द्विविध वस्तु जीवाजीवभावाभ्या ।. . .अथवा सर्व वस्तु त्रिविधं द्रव्यगुणपर्यायै ।. . .एवमेकोत्तर क्रमेण वहिरगान्तरगधर्मिणौ विपाट्येते यावदविभागप्रतिच्छेद प्राप्तविति । एप सर्वोऽप्यनन्तरविकल्प· सग्रहप्रस्तार· नित्य वाचकभेदेनाभिन्न. द्रव्यमित्त्युच्यते । द्रव्यमेवार्थ प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिक. ।"

अर्थ—जो उन उन पर्यायो को प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ है, वह द्रव्य है। इस निरुक्ति से तद्भाव सामान्य और सादृश्य सामान्य (देखो ऊपर वाला उद्धरण) दोनो का ही ग्रहण किया गया है, क्योकि, वस्तु के दोनो प्रकार से भी उन पर्यायों को प्राप्त करना पाया जाता है ।

अब द्रव्य के भेद को कहते है—'सत्' इस प्रकार से वस्तु एक है, क्योकि, सवके सत् की अपेक्षा कोई

भेद नही है, कारण कि सत मे भिन्न कुछ नही है। अथवा सब वस्तु जीव भाव व अजीव भाव आदि के भेद से दो प्रकार है। अथवा सब वस्तु द्रव्य गुण व पर्याय मे तीन प्रकार है। इस प्रकार एक को आदि लेकर एक अधिक क्रम से बहिरग व अतरग (बहिरग धर्मी अर्थात जीव अजीव आदि द्रव्य और अन्तरग धर्मी अर्थात गुण) धर्मियो का विभाग करना चाहिये, जब तक कि अविभाग प्रतिच्छेद को प्राप्त नही होते है। इस प्रकार सभी अनन्त भेद रूप सग्रह प्रस्तार नित्य व शब्द भेद से अभिन्न होता हुआ द्रव्य कहा जाता है। ऐसा द्रव्य ही है अर्थ अर्थात प्रयोजन जिसका वह द्रव्यार्थिक नय है।

३ ध ।१।१३ गा ८ " । दव्वट्ठियस्स सव्व सदा अणुप्पण्ण-मविणट्ठ ।८।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे (द्रव्य) सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट स्वभाव वाले हैं।

४ प का ।ता व०।२७ ।५७ "द्रव्यार्थिकनयेन धर्मा धर्माकाशद्रव्याणि एकानि भवन्ति जीव पुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि ।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय से धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य एक एक है और जीव पुदगल और काल द्रव्य अनेक अनेक है। (यहा तद्भाव सामान्य की अपेक्षा अनेकता का ग्रहण समझना।)

५ स भ त० प० ३४ "कालादिभिरष्टविधाऽभेदवृत्ति पर्यायार्थिक नयस्य गुणभावेन द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यादुपपद्यते।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय के गौण होने पर द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता से काल आत्मस्वरूप तथा अर्थ आदि आठ प्रकार से घट आदि पदार्थ मे सब धर्मो की अभेद मे स्थिति रहती है ।

६ प्र सा । त प्र । परि । नय नं० १ "तत्तु द्रव्यनयेन पटमात्रवच्चिन्मात्रम् ।"

अर्थ—वह आत्मा द्रव्य नय से पटमात्र की भांति चिन्मात्र है ।

७ नय चक्र गद्य । पृ २५ "निश्चयोऽभेदविषय. ।"

अर्थः—निश्चय या द्रव्यार्थिक नय अभेद को विषय करता है ।

८ नय चक्र गद्य । पृ०३१ "निश्चयनयस्तूपनय रहितोऽभेदानुपचारैक लक्षणमर्थं निश्चिनोति ।"

अर्थ—निश्चय नय है वह उपनय से रहित अभेद व अनुपचार लक्षण वाले अर्थ का निश्चय करता है ।

९. आ. प. १९।पृ १२६ "अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयतेति निश्चय. ।"

अर्थ— अभेद और अनुपचरित रीति से जो पदार्थो का निश्चय करे सो निश्चय नय है ।

१० वृ० द्र. स. । टीका । ८ । २१ "तत्काले- तप्ताय:पिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चय ।"

अर्थः—उस समय अग्नि मे तपे हुए लोहे के गोले के समान तन्मय होने से निश्चय कहा जाता है ।

११ त अनु।२६ "अभिन्नकर्तृ कर्मादिविषयो निश्चयो नय ।"

अर्थ—जिसमें कर्ता कर्म आदि सब विषय अभिन्न हो वह निश्चय है।

(अन घ ।१।१०२।१०८)

१२ प घ ।पू० ६५ "द्रव्यादेशादवस्थित वस्तु ।"

अर्थ—वस्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अवस्थित है ।

१३ प ध पू०।६१४ "लक्षमेकस्य सतो यथाकथचिद्यथा द्विधाकरणम् । व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुन ।६१४।"

अर्थ—जिस प्रकार एक सत को जो किसी प्रकार से दो रूप करना व्यवहार का लक्षण है, उसी प्रकार उस व्यवहार नय से विपरीत अथ एक सत को दो रूप न करना निश्चयनयका लक्षण है ।

१४ स पा० ।६ में प० जयचन्द "जीव का एक नित्यादि कहना द्रव्यार्थिक का विषय है ।"

८ लक्षण न० ४ (अवक्तव्य है) —

१ प० ध ।पू०।६२६ "स्वयमपि भूतार्थत्वाद्भवति स निश्चय नयो हि सम्यक्त्वम् । अविकल्पवदतिवागिव स्यादनुभवैकगम्यवाच्यार्थ ।६२६।"

अर्थ—स्वय ही यथार्थ अर्थ को विषय करने वाला होने के कारण निश्चय से यह निश्चय नय सम्यक्त्व है । यहाँ यह

निर्विकल्प वत् और वचन अगोचरवत् एक स्वानुभव द्वारा ही गम्य है ।

२. प. ध. ।पू. ।६४१, ७४७)

२ प ध. ।उ० ।१३४ "एक: शुद्धनय: सर्वो निर्द्वन्दो निर्विकल्पक: ।····।१३४।"

अर्थ --सम्पूर्ण शुद्ध नय एक अभेद और निर्विकल्प है ।

५. लक्षण नं० ५ (सकल भेदों के व्यवहार का निषेध करना)

१. रा० वा० ।१ ।३३ ।१ ।९४।२५ "द्रव्यमस्तीति मितरस्य द्रव्य भवनमेव नातोऽन्ये भावविकारा, नाप्यभाव तद्वयतिरेकेणानुपलब्धेरिति द्रव्यास्तिक: ।"

वृ. न. च. ।२६२ "य: स्याद्भेदोपचार धर्माणा करोति एकवस्तुन । स व्यवहारो भणित: विपरीतो निश्चयो भवति ।२६२।"

अर्थ —जो एक वस्तु मे धर्मो की अपेक्षा भेद का उपचार करता है वह व्यवहार नय है । उससे विपरीत निश्चय नय होता है ।

३ प ध. ।पू।५९८,६४३ "व्यवहार. प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेव्यकश्च परमार्थ: । व्यवहारप्रतिषेध स एव निश्चयनयस्य वाच्य स्यात् ।५९८। इदमत्र समाधान व्यवहारस्य च नयस्य यद्वाच्यम् । सर्वविकल्पाभावे तदेव निश्चयनयस्य भद्वाच्यम् ।६४३।"

अर्थ —व्यवहार नय प्रतिषेध्य है, तथा उसका प्रतिषेधक निश्चय नय है, अर्थात जो व्यवहार नय का निषेध है वह

ही निश्चय नय का वाच्य है। यहा यह समाधान है कि व्यवहार नय का जो कोई वाच्य है, वह ही सम्पूर्ण विकल्पो के अभाव में निश्चय नय का वाच्य है।

६ लक्षण न ६ (इतना ही मात्र द्रव्य नहीं है) –

१ प ध ।पू।५६६ "व्यवहार स यथा स्यात्सद्द्रव्य ज्ञानवाश्च जीवोवा । नेत्येतावन्मात्रा भवति स निश्चयनयो नयाधिपति ।५९९।"

अर्थ—जैसे 'सत द्रव्य है, अथवा ज्ञानवान जीव है' इस प्रकार का जो कथन है, वह व्यवहार नय है। तथा इतना ही नही है' इस प्रकार का जो व्यवहार के निषेध पूर्वक वचन है, वही नयो का अधिपति निश्चय नय है।

३ द्रव्यार्थिक नय सामान्य के कारण व प्रयोजन

द्रव्यार्थिक नय के लक्षण व उदाहरण सम्बन्धी तो बात आ चुकी अब इन लक्षणो का कारण सुनिये। अनको शकायें चित्त में उठ रही होगी। सम्भवत विचारते हो कि एक ही लक्षण क्यो न किया, छ लक्षण करने की क्या आवश्यकता हुई। तथा अन्य भी अनेको शकाय इस स्थल पर तथा आगे आगे इन द्रव्यार्थिक नय के सबध में उठनी स्वाभाविक है। उन सब का समाधान तो अवसर आने पर यथा स्थान किया जायेगा। अत उनके सबध में तो कुछ धैर्य से काम लें, और यहा केवल इतना जाने, कि यह छ लक्षण वास्तव में छ नही है एक ही है। जैसा कि पहिले दृष्टात में अनुगत स्पष्ट कर दिया गया था यह छ वास्तव में एक अभेद की सिद्धि के लिये है। क्योकि द्रव्य वास्तव में एक रस ही होता है, सब अर्थ व व्यञ्जन पर्यायो का पिण्ड ही होता है त्रिकाली शुद्ध व अशुद्ध सकल

पर्यायें मानों उसके लम्बे इतिहास मे उत्कीर्णी ही गई हो, ऐसा होता है। इसलिये उस द्रव्य की पूर्णत देखने वाली दृष्टि भी ऐसी ही होनी चाहिये। यही कारण है कि द्रव्य को ग्रहण करने वाली इस दृष्टि को तथा इसका प्रति पादन करने वाले इन अभेद सूचक लक्षणो को द्रव्यार्थिक नय कहा जाता है। वस यही इस नय का या इस प्रकार के लक्षण करने का कारण है।

इस नय का प्रयोजन जिज्ञासु श्रोता या पाठक को वस्तु का यथार्थ या भूतार्थ परिचय दिलाना है। अर्थात् जैसी वस्तु एक रस रूप अखड है वैसा ही चित्रण ज्ञान मे आना चाहिये, इससे विपरीत नही। यह इसका प्रयोजन है। वक्ता या लेखक इस बात को भूला नही है, कि उसने वस्तु की व्याख्या करते या उसे लिखते हुये क्या क्रम अपनाया है। एक एक अग को पृथक पृथक आगे पीछे ही कहने व लिखने मे आया है। यदि इतना ही करके छोड़ दे तो श्रोता के ज्ञान पर कैसा चित्रण बना रहेगा, यह भी उसे पता है। श्रोता वेचारा बिल्कुल अनभिज्ञ है। वह उतना और उस प्रकार ही तो स्वीकार कर सकता है जितना और जिस प्रकार कि वक्ता उसे बताता है। उसके अतिरिक्त अपनी तरफ से वह उस बताये हुये मे हीनाधिकता कैसे कर सकता है। और यदि ऐसा करने का प्रयत्न भी करेगा तो वह उसकी मर्जी से किया गया ग्रहण क्या उसके लिये सदा सशय का स्थान न बना रहेगा ?

यहा यह प्रश्न हो सकता है, कि जितने भी दृष्टात अब तक देने मे आये है उन सब मे ही व्याख्या का उपरोक्त क्रम रहा है। फिर भी श्रोता या पाठक को कोई भ्रम होने नही पाया है। उष्णता, दाहकता आदि रूप से भेद करके की गई व्याख्या पर से भी श्रोता ठीक ठीक अभेद अग्नि को ही समझ पाया है, इसके स्थान पर किसी और पदार्थ का चित्रण उसके ज्ञान पट पर नही खिचा है। अभेद कहे

विना भी स्वय अभेद का ग्रहण हो गया है। जब ऐसा स्वाभाविक रूप से हो ही जाता है तो इस द्रव्यार्थिक नय को कहने की आवश्यकता ही क्या है ? यह तो केवल वाक् गौरव मात्र रहा। और तो इसका मूल्य है नही।

सो भाई। ऐसा नही है। यह वाक् गौरव मात्र नही है। तेरी शका भी ठीक है। परन्तु तू शका करते समय इतना अवश्य भूल गया है कि जिन दृष्टान्तो के आधार पर तूने यहा शका उठाई है वह उन पदार्थो सम्बन्धी है, जिन को तू पहिले से यथार्थत जानता है। अर्थात् पहिले से उनका अभेद चित्रण तेरे ज्ञान पट पर खिचा हुआ है। परन्तु यहा तो किसी अदृष्ट पदार्थ को बताना अभीष्ट है, है, जो तू पहिले से नही जानता, जिसका यथार्थ चित्रण पहिले से तेरे ज्ञान पट पर नही है। उस चित्रण के अभाव मे अखण्ड द्रव्य को स्वत कैसे समझ सकेगा ? जितना और जैसा बताया जायेगा वही तो समझेगा, उसके अतिरिक्त और कैसे समझेगा ? बताया जा रहा है खड खड करके, अत खण्डो पर से अखण्ड एक रस रूप पिण्ड को कैसे समझेगा ? खण्ड ही तो समझेगा। और यदि ऐसा हुआ तो क्या कोई भी सत्ता भूत वस्तु तू समझ पायेगा ? क्या उस तेरी समझ के अनुरूप खड लोक में तुझे कदापि देखने को मिलेंगे ? और जब ऐसा कुछ पृथक पृथक देखने को मिलेगा ही नही तो उस प्रकार का खडित ग्रहण क्या तेरे ज्ञान पर केवल भार मात्र न होगा ? उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा ?

जैसे कि आगम के उद्धरणो पर से पढ कर तथा ज्ञानी जीवो के मुख से सुन कर यह बाते शब्दो मे तो तू जान रहा है विद्वान लोग भी जान रहे है कि, कार्य उपादान कारण से होता है, कार्य निमित्त कारण से भी होता है, कार्य पुरुषार्थ के द्वारा भी होता है कार्य नियति या काल लब्धि के द्वारा भी होता है

और कार्य भवितव्य के आधीन भी है इत्यादि"। परन्तु इन को अभेद रूप से देखने मे असमर्थ वास्तव मे तुझे इस बात का पता ही नही कि कार्य किस कारण मे होता है। और इसीलिये बडे बडे विद्वान भी आज परस्पर मे इन कारणो ही की चर्चा मे उलझ कर लड़ रहे हैं। उपादान से कार्य होता सुन कर निमित्तादि शेष चार कारणो का निषेध प्रतीत होने लगता है, निमित्त कारण से होता है सुनकर उपादान व पुरुषार्थ आदि का निषेध भासने लगता है, पुरुषार्थ से होता सुन कर नियति व काल लब्धि केवल कपोल कल्पना सी दीखने लगती है, और नियति से होता सुनकर पुरुषार्थ व निमित्त को आवश्यकता ही रहती प्रतीत नही होती। जैन जगत के सर्व अध्यात्मिक पत्र विद्वानो के लिये इसी विषय पर मानो युद्ध के शस्त्र बने हुए है। जिनके द्वारा वे एक दूसरे पर बराबर प्रहार करते रहने मे ही अपनी महत्ता समझते है। वर्षो चर्चा करते बीत गये परन्तु आज तक भी समाधान न हो सका। फिर तेरी तो बात ही क्या, तू तो ठहरा मन्द बुद्धि।

इसी शान्ति पथ के अंग स्वरूप सम्यकत्व, ज्ञान व चारित्र तीनो मे से कोई तो कहता है कि सम्यकत्व पहिले होता है, जब वह होता है तो ज्ञान चारित्र नही होता। कोई कहता है कि ज्ञान पहिले होता है। कोई कहता है कि चारित्र पहले धारो। कोई आगम ज्ञान के पीछे हाथ धोकर पडा हुआ है, और कोई व्रत धारने व बाह्य के आचरण के पीछे। कोई बाह्य के आचरण को बिल्कुल बेकार बता रहा है, और कोई इसमे अपने जीवन का सार देख रहा है। इत्यादि अनेको बाते आज अध्यात्म मार्ग मे क्या तुझसे से छिपी है?

विचार तो सही कि यदि दृष्ट पदार्थो वत, यहा भी सब उपरोक्त बातों को परस्पर सम्मेल बैठाकर एक रस रूप ग्रहण कर लिया होता, तो लडाई को कहा अवकाश रह गया था। अदृष्ट विषयो को अभेद रूप से कैसे देखा जा सकता है, वही बात यह द्रव्यार्थिक नय

वताता है। इसके विना परस्पर विरोधी वाता का समन्वय वैठना असम्भव है। यदि अभेद रूप से देखने का अभ्यास हुआ होता उपरोक्त काय कारण व्यवस्था में न अकेले उपादान को देखता न अकेले निमित्त को न अकेले पुरुपाथ को और न अकेली नियति को। पाचो का मिला हुआ एक रस रूप कोई अद्वितीय विजातीय कारण ही काय व्यवस्था में साधक है जिस में उन पाचो को एक ही समय समान स्थान प्राप्त है, विल्कुल जीरे के पानी मे पडे मसालो वत्।

वास्तव में इन सव कारणो में एक अनोखा सम्मेल है। निमित्त है तहा उपादान है और उपादान है तहा निमित्त। निमित्त के विना उपादान नहो और उपादान के विना निमित्त नही। जहा पुरुपार्थ है वहा नियति अवश्य ह। पुरुपाथ के विना नियति नही और नियति के विना पुरुपाथ नही। पाचो की खिचडी जहा वन जाये वह वास्त विक रहस्याथ का ग्रहण है जो वास्तव में अवक्तव्य है। इस अवक्तव्य अभेद भाव की ओर सकेत करना ही द्रव्यायिक नय का प्रयोजन है। यदि यह अभेद द्रव्यायिक दृष्टि उत्पन हो गई होती, तो उपादान सुनकर अनुक्त भी निमित्त का ग्रहण और निमित्त सुनकर उपादान का ग्रहण, अथवा पुरुपाथ सुनकर नियति का ग्रहण और नियति सुन कर पुरुपाथ का ग्रहण ही जाना अनिवाय था जैसा कि प्रकाश सुन कर उष्णता का ग्रहण हो जाना अनिवाय है। उसको पूछने की आवश्यकता नही।

ऐसी महिमा है इस द्रव्यार्थिक नय की। वस्तु जटिल है, और द्र`यार्थिक नय का ग्रहण भी इस लिये जटिल पडता है। आज हम नया का नाम तो जानते हैं। "यह वात अमुक नय से सत्य है और यह वात अमुक नय सत्य है" ऐसा वरावर कहते भी रहते ह। परन्तु कहते हुये भी न स्वय अपने मन का सशय दूर कर पाते है और न दूसरे के मन का कारण है कि अभेद ग्रहण के अभाव में जो भी पटया सुन पाते ह,

उसे पृथक पृथक स्वतत्र सत् मान बैठते है, जैसे कि चारित्र को ज्ञान से और ज्ञान को चारित्र से पृथक मानने मे आ रहा है। वास्तव मे ज्ञान है सोई चारित्र है और चारित्र है सोई ही ज्ञान है। ज्ञान के बिना चारित्र नही और चारित्र के बिना ज्ञान नही। आगे पीछे कुछ है नही दोनो एक समय मे है। पर यह रहस्य कैसे समझा जाये। कुछ कठिन समस्या है। यहां यह समझाने का प्रकरण नही है। इस बात का कुछ स्पष्टी करण यदि देखना चाहते है तो इसी लेखक द्वारा निर्मित "शान्ति पथ प्रदर्शन" नाम के ग्रन्थ मे देखने को मिल सकता है।

यहा तो केवल इतना निर्णय करना है कि द्रव्यार्थिक नय वस्तु का रहस्यार्थ समझने के लिये कितना उपकारी है। और इसी लिये आगम मे सर्वत्र इसी पर जोर दिया गया है, इसी को भूतार्थ बताया गया है। और भेदो को प्रति पादन करने वाले व्यवहार नय को अभूतार्थ बताया है। कारण यही है कि यदि वस्तु के रहस्यार्थ को जानना है तो उसे अखण्ड रूप से एक रस करके जानने का ही प्रयत्न कीजिये। खण्डित उन अगो की सत्ता इस लोक मे है ही नही। उन सर्व अगो की स्वतत्र सत्ता आकाश पुष्पवत् है। इसी लिये उनका खण्डित ग्रहण अभूतार्थ है। द्रव्यार्थिक का महान उपकार अब तेरी दृष्टि मे आ गया होगा ऐसी आशा है। द्रव्यार्थिक नय के लक्षण पर अनेको शकाये होनी सम्भव हैं सो यथा स्थान समाधान किया जाता रहेगा।

१६ शुद्धा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

दिनाक १२-१०-६०

४ द्रव्यार्थिक नय के भेद

यद्यपि द्रव्यार्थिक नय केवल अभेद के प्रति सकेत करता है, और इसलिये इस नय के कोई भेद प्रभेद नही होने चाहिये, परन्तु इसका विशेष रूप दर्शाने के लिये आगमकारो ने इसके भी भेद कर दिये

ह । गुरु दयालु ह । उनकी दृष्टि मे केवल विज्ञजन ही नही ह, बल्कि मन्द बुद्धिजन भी ह, जो बिना विशेपताओ के जाने वस्तु का स्पष्ट ज्ञान नही कर सकते । बस अनेक अनुग्रह के अर्थ अभेद को भी कोई रूप से दर्शाने का प्रयत्न करते ह । मन्द बुद्धियो के लिये कहे गये विस्तृत कथन मे से तो विज्ञजनो का उपकार सहज हो जाता है, परन्तु विज्ञजनो के लिये कहे गये संक्षिप्त कथन में से मन्द बुद्धि जनो का उपकार नही हो पाता, इसलिये अभेद को भेद करके अनेक प्रकार मे दर्शाना कष्ट ही है । इसी प्रयोजन की सिद्धि के अर्थ अब द्रव्यार्थिक नय के कुछ भेद दर्शाते ह । इतना यहा अवश्य समझते रहना कि विशेपतायें स्पष्ट करने के लिये ही यह भेद बताये जा रहे ह इनको समझ कर भी अन्त में इन्हें फिर अभेद व एक रस करके ही देखना होगा, तब ही परिपूर्ण वस्तु के अनुरूप अपने ज्ञान को बना सकोगे, अन्यथा नही । और इसीलिये इन भेदो को कदाचित द्रव्यार्थिक नाम देना भी उपयुक्त न हो सकेगा । अब उन भेदा को सुनिये ।

यमे तो द्रव्यार्थिक के अनेको भेद प्रयोजन वश किये जा सकते ह । परन्तु यहा तो उनमें से कुछ का ही ग्रहण किया जाना सम्भव है । द्रव्यार्थिक नय द्रव्य के अनुरूप होता है । मुख्यत द्रव्य को दो प्रकार से देखा जा सकता है ।

१ उसे नित्य शुद्ध रूप से अर्थात गुण गणी आदि के भेदो से निरपेक्ष एक अखण्ड भाव रूप मे भी देखा जा सकता है और,

२ अनेको गुण व पर्यायो के भेदो के सापेक्ष उनके समुदाय रूप से भी ।

इन्ही दो को अनेक दृष्टियो से देखा व वर्णन किया जा सकता है। जैसे कि पर्याय भेदो से निरपेक्ष शुद्ध, पर्याय भेदो से सापेक्ष अशुद्ध उत्पाद व्यय निरपेक्ष शुद्ध, उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध इत्यादि। इसलिए द्रव्यार्थिक नय के पहले दो मूल भेद किये गये–शुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध द्रव्यार्थिक। तथा इनके प्रतिबिम्ब स्वरूप, आगे दस भेद किये गये–१ उत्पाद व्यय निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक २ उत्पा दव्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ३. भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक, ४ भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ५ कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक, ६ कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ७. स्व द्रव्यादि चतुष्ट ग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक, ८. परद्रव्यादि चतुष्टय विच्छेक अशुद्ध द्रव्यार्थिक, ९ परमपारिणामिक भाव ग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक, १०. गुण व त्रिकाली पर्यायो मे अनुगत पिण्ड अन्वय नामवाला अशुद्ध द्रव्यार्थिक।

इन सब भेदो के, क्रम से पृथक पृथक लक्षण उदाहरण व प्रयोजन दर्शाये जायेगे और फिर अन्त मे जाकर उन सबका परस्पर सम्मेल बैठा कर इनको एक अभेद मे गर्भित कर दिया जायेगा। अब इनके पृथक पृथक लक्षणादि सुनिये।

५ शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि वस्तु भले ही वह महासत्ता स्वरूप हो या अवान्तर स्वरूप, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चतुष्टय स्वरूप है। ये चारो ही विकल्प सामान्य व विशेष दो प्रकार से देखे जा सकते है। अनेक विशेषों या भेदो मे अनुगत एक सत्ता को सामान्य कहते है। सामान्य चतुष्टयस्वरूप द्रव्य समान्य कहलाता है। और विशेष चतुष्टयस्वरूप द्रव्य विशेषकहलाता। इन दोनों मे से विशेष द्रव्य का यहां अधिकार नही है, क्योकि वह पर्यायार्थिक नय का विषय है। सामान्य द्रव्य मे ही द्रव्यार्थिक नय का व्यापार होता है।

विशेष सर्वथा निर्विकल्प होता है क्योकि उसमें अन्य विशेष नही रहते, परन्तु सामान्य कथञ्चित सविकल्प होता है, क्योकि उसमे अनेको विशेष रहते है। इस सविकल्प सामान्य को दो प्रकार से पढा जा सकता है–विशेषो से निरपेक्ष, तथा विशेषो से सापेक्ष उदाहरणार्थ "गुण व पर्याय वाला द्रव्य होता है" द्रव्य का ऐसा लक्षण करना गुण गुणी आदि भेदो या विशेषो से सापेक्ष है, और गुण पर्याय वाला न कहकर "द्रव्य तो स्वलक्षण स्वरूप स्वय द्रव्य ही है" ऐसा कहना विशेषो से निरपेक्ष है। इन दोनो में विशेष निरपेक्ष सामान्य द्रव्य की ही सत्ता को स्वीकार करने वाली दृष्टि द्रव्यार्थिक है और विशेष सापेक्ष सामान्य द्रव्य की सत्ता की स्वीकृति अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

विशेष निरपेक्ष सामान्य द्रव्य को द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा ऐसा कहा जा सकता है –

द्रव्य की अपेक्षा उसे गुण पर्याय वान या उत्पाद व्ययध्रुव स्वरूप कहना ठीक नही है, क्योकि वह वास्तव में गुण व पर्याय के कारण द्वयात्मक अथवा उत्पादादि के कारण त्रयात्मक नही है, वह तो अनिर्वचनीय अखण्ड तथा एक है। क्षेत्र की अपेक्षा उसे अनेक प्रदेश वाला कहना युक्त नही है, क्योकि अनेक प्रदेश कल्पना मात्र है, पृथक पृथक सत् नही है, अत वह तो अखण्ड किसी निज सस्थान या आकार रूप ही है। काल की अपेक्षा उसे भूत वर्तमान भविष्य वाला कहना युक्त नही है, क्योकि इन तीनो कालो सम्बन्धी अपनी पर्यायो सहित रहने वाले किन्ही तीन पृथक द्रव्यो की सत्ता लोक में नही है, अत वह तो इन सब पर्यायो में अनुगत कोई एक त्रिकाली नित्य तत्व ही है। भाव की अपेक्षा अनेक गुणो वाला कहना युक्त नही है, क्योकि द्रव्य से पृथक अनेक गुणो की सत्ता नही है, अत वह तो स्वलक्षणभूत किसी निज अखण्ड एक भावस्वरूप

ही है । इस प्रकार एक अखण्ड नित्य स्वलक्षण स्वरूप अद्वैत तत्व विगप निरपेक्ष सामान्य द्रव्य है ।

ऐसा एक अखण्ड सामान्य द्रव्य है प्रयोजन जिसका वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है । शास्त्रीय नय सप्तक मे यह संग्रह नय मे गर्भित होता है ।

अन्य प्रकार स भी शुद्ध तत्व को पढा जा सकता है, और वह प्रकार है, उसको पारिणामिक भाव की और से पढ़ने का । पारिणामिक भाव जसा कि पहिले भली भाति समझाया जा चुका है त्रिकाली शुद्ध ही होता है । उत्पाद व व्यय आदि अपेक्षाओ से सर्वथा रहित उसमे शुद्ध या अशुद्ध पर्याय की कल्पना मात्र को भी अवकाश नही है । क्षायिक भाव की अशुद्धता और इसकी शुद्धता मे अन्तर है, क्योकि क्षायिक भावि की शुद्धता तो अशुद्धता को दूर करके प्रगट होती है, परन्तु इसकी शुद्धता, अशुद्धता से सर्वथा निरपेक्षा त्रिकाली है । ऐसे शुद्ध परिणामिक भाव स्वरूप ही द्रव्य की सत्ता को स्वीकार करना भी शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है । वास्तव मे शुद्ध नय के सर्व ही लक्षणो मे एक यही भाव ओतप्रोत है । सदा शिव वादियो की दृष्टि का आधार शुद्ध द्रव्यार्थिक का यही लक्षण है ।

स्वचतुष्टय के साथ तन्मय स्वलक्षणभूत किसी अनिर्वचनीय व अभेद त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक भाव मई वह द्रव्य स्वत. सिद्ध है । उसकी सत्ता मे अन्य किसी पदार्थ की अपेक्षा करने की क्या आवश्यकता अन्य चेतन या अचेतन समस्त पदार्थो की सहायता से रहित नि सहाय तत्व सर्वथा स्वतत्र है । अत: पर द्रव्य, पर द्रव्य का क्षेत्र, पर द्रव्य का काल या पर्याय तथा पर द्रव्य के भाव या गुणो के साथ उसका किसी भी प्रकार का सयोग सम्बन्ध या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध या कार्य कारण आदि सम्बन्ध स्वीकार नही किया जा सकता । ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

उपरोक्त वक्तव्य पर से इस नय के निम्न ६ लक्षण किये जा सकते ह।

१ द्रव्य की अपक्षा गुण गुणी आदि भेदो से निरपेक्ष वह केवल एक निर्विकल्प अद्वैत अनिवचनीय सत्ता को ही ग्रहण करता है।

२ क्षेत्र की अपेक्षा प्रदेश भेद की कल्पना से निरपेक्ष, वह केवल एक अखण्ड सस्थान को ही स्वीकार करता है।

३ काल की अपेक्षा भूत वतमान भविष्यत पर्यायो के भेद से निरपेक्ष केवल द्रव्य की त्रिकाली सामान्य सत्ता को ही देखता है।

४ भाव की अपेक्षा अनेक गुणो के समुदायपने स निरपेक्ष किसी स्वलक्षणभूत एक निर्विकल्प भाव को ही ग्रहण करता है।

५ अथवा पर्याय कलक से रहित त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक भावस्वरूप ही द्रव्य को देखता है।

६ पर चतुष्टय से निरपेक्ष स्व चतुष्टय स्वरूप उस तत्व का अन्य पदार्थो के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध सहन नही करता।

अब इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ उद्धरण देता हूँ।

१ लक्षण नं १ (द्रव्य की अपेक्षा एक है व अनिर्वचनीय है।)

१ आ प।१७।८ १२१ "शुद्ध द्रव्यमेवाथ प्रयोजनमस्यति शुद्ध द्रव्यार्थिक।"

अर्थ—शुद्ध द्रव्य ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका सो शुद्ध द्रव्यार्थिक है।

२ पं. वि ।१।१५७।८४ "शुद्धं वागतिवर्तितत्वमितरद्वाच्यं च त द्वाचकं शुद्धादेशमिति प्रभेदजनक शुद्धेतरकल्पितं।"

अर्थ—शुद्ध नय तत्व को अनिर्वचनीय व शुद्ध कहता है, तथा अशुद्ध नय उसी मे भेद उत्पन्न करने वाला है।

३. प्र. सा त. प्र ।२।२३ "शुद्ध द्रव्य निरूपणाया परद्रव्यसपर्का-संभवात्पर्यायाणां द्रव्यान्त: प्रलयाच्च शुद्ध द्रव्य एवात्मावतिष्ठते।

अर्थ—वास्तव मे शुद्ध द्रव्य के निरूपण मे पर द्रव्य के सम्पर्क का असम्भव होने से और पर्याये द्रव्य के भीतर प्रलीन हो जाने से आत्मा शुद्ध द्रव्य ही रहता है।

४. प्र सा. । त प । परि । नय न ४७ "शुद्धनयेन केवलमृण-मात्रवन्निरूपाधिस्वभावम्।"

अर्थ—आत्मा शुद्ध नय से, केवल मिट्टी मात्र की भांति, निरुपाधि स्वभाव वाला है।

५ पं. ध. । पू. । ७४७, ७५४ "तत्त्वमनिर्वचनीयं शुद्धद्रव्यार्थिक-स्य भवति मतम्। गुणपर्ययवद्द्रव्यं पर्यायार्थिकनयस्य-पक्षोऽयम् ।७४७। न द्रव्यं नापि गुणो न च पर्यायो निरंशदेशत्वात्। व्यक्त न विकल्पादपि शुद्धद्रव्यार्थिकस्य मतमेतत् ।७५४।

अर्थ—"तत्व अनिर्वचनीय है" ऐसा कहना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है। तथा "गुण पर्याय वाला द्रव्य है" ऐसा पर्यायार्थिक नय का पक्ष है ।७४७। "अखण्ड रुप होने के कारण न द्रव्य है", तथा न गुणहै, तथा न पर्याय है, तथा न वह वस्तु किसी विकल्प से व्यक्त ही हो सकती है, ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का मत है।

६ प ध ।उ०।३३।१३३ "अथ शुद्धनयादेशाच्छुद्धश्चैक विधोऽपिय । स्याद्द्विधा सोपि पर्याया मुक्तामुक्त प्रभेदत ।३३। जीव शुद्धनयादेशादस्ति शद्धोपितत्वत ।१३३।"

अर्थ—शुद्ध नय की अपेक्षा से जो जीव शुद्ध तथा एक प्रकार का है। वही जीव पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से मुक्त और ससारी जीव के भेद से दो प्रकार का भी है ।३३। वास्तव में यहा शुद्ध नय की अपेक्षा से जीव शुद्ध भी है ।१३३।

प ध ।पू० २१६ "यदि वा शद्धत्वनयान्नाप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम् । गुणश्च पयय इति वा न स्याच्च केवल सदिति ।२१६।"

अर्थ—अथवा शुद्धता को विषय करने वाले नय की अपेक्षा न उत्पाद है, न व्यय है और न ध्रौव्य है। इसी प्रकार न गुण है और न पर्याय है। केवल एक सत् ही है।

(प ध ।पू। २४७, ७४७)

२ लक्षण नं २ (क्षेत्र की अपेक्षा अखण्ड है)—

नोट—क्षेत्र की प्रमुखता से आगम में कथन साधारणत नही किया जाता, क्योकि उसका अन्तर भाव द्रव्य वाली अपेक्षा मे ही हो जाता है, कारण कि गुणो आदि का आधार होने के कारण प्रदेशों को ही द्रव्य कहा जाता है। परन्तु पाठकों को अनुक्त भी यह अपेक्षा अपनी बुद्धि से यथा योग्य रूप से लागू कर लेनी चाहिये।

३ लक्षण नं० ३ (पर्याय परिवर्तन निरपेक्ष त्रिकाली सत्ता)—

१. क० ग०।१।१८२ २१६ "शुद्धद्रव्यार्थिक: पर्यायकलकरहित वहुभेद सग्रह·।"

अर्थ—जो पर्याय कलंक से रहित होता हुआ अनेक भेद रूप संग्रह नय है वह शुद्ध द्रव्यार्थिक है। अर्थात सर्व पर्यायो का सग्रह करके द्रव्य को एक अखण्ड रूप प्रदान करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

२ प. का।ता. वृ।११।२७ "अनादिधिनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिक-नयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति।"

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय से अनादिनिधन द्रव्य की न उत्पत्ति है और न विनाश।

४ लक्षण न० ४ (भाव की अपेक्षा स्वलक्षणभूत शुद्ध स्वभावी हैं)

१. आ. प।१५।वृ १११ "शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धस्वभाव।"

अर्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से तत्व शुद्ध स्वभावी है।

२ प्र सा । त प्र । पारि। नय न ४७ "शुद्धनयेन केवलमण्मात्र वन्निरुपाधिस्वभावम् ।"

अर्थ—आत्मा द्रव्य शुद्ध नय से, केवल मिट्टी मात्र की भाति निरुपाधि स्वभाव वाला है ।

३ व द्र स ।३।११ "शुद्धनिश्चयत सकाशादुपादेयभूता शुद्धचेतना यस्य स जीव ।"

अर्थ—शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा उपादेयभूत यानी ग्रहण करने योग्य शुद्ध चेतना जिसके हो सो जीव है ।

४ स सा ।आ।१६।क १८ "परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैकक । सर्वभावान्तरध्वंसिस्वभावत्वादमेचक ।१८।"

अर्थ—शुद्ध निश्चय से प्रकट ज्ञायक ज्योतिमात्र आत्मा एक स्वरूप है । क्योंकि सभी अन्य भावों को दूर करने रूप उसका अपना स्वभाव अमेचक अर्थात शुद्ध एकाकार है ।

५ स सा ।मू।७ "ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दसण णाण । णावि णाण ण चरित्त ण दसण जाणगो सुद्धो ।७।"

अर्थ—ज्ञानी के चारित्र दर्शन ज्ञान ये तीन भाव व्यवहार द्वारा कहे जाते हैं । निश्चय नय से ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है और दर्शन भी नहीं है ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है ।

५ लक्षण नं. ५ (त्रिकाली शुद्ध परिणामिक भावस्वरूप ही द्रव्य है)

१ स. सा।म्. १४ "जो पस्सदि अप्पाण अवद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं । अविसेसमसजुत्तं त सुद्धणयं वियाणाहि ।१४।"

अर्थ – जो आत्माको वन्ध रहित और परके स्पर्शके रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशे० रहित, अन्यके सयोग रहित, ऐसे पाच भाव रूप (केवल त्रिकाली शुद्ध परिणामिक भाव स्वरूप) अवलोकन करता है, उसे शुद्ध नय जानो ।

२. मि सा. ।ता वृ। ४२ "इह हि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्य समस्तससारविकरसमुदायो न शमस्तीत्युक्तम् ।"

अर्थ — शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध जीव को समस्त ससार विकारोका समुदाय नही है, ऐसा यहा कहा है ।

(नि. सा. ।ता वृ।४७)

३. वृ. द्र. स।४८।२०६ "साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयनय स्त्रीपुरुपसयोगरहित पुत्रस्येव, तेषामुत्पत्तिखे नास्ति ।"

अर्थ – साक्षात शुद्ध निश्चय नयकी अपक्षासे, जैसे स्त्री और पुरुपके संयोग के विना पुत्रकी उत्पत्ति नही होती, इसी प्रकार जीव तथा कर्म इन दोनो के सयोग के विना राग-द्वेषादि की उत्पत्ति ही नही होती। (अर्थात जब शुद्ध निश्चयके विपयभूत पारिणामिक भाव मे कर्म सयोगादि की अपेक्षा ही नही है, तव वहां रागदि कैसे सम्भव हो सकते है ।)

४ वृ द्र स ।५७।२३६ "नच शुद्धनिश्चयनयेनेति । यस्तु शुद्धद्रव्य-शक्तिरूप शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणपरमनिश्चय-मोक्ष सच पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानी भविष्यतीत्येवन ।"

अर्थ – शुद्ध निश्चय नय से (मोक्ष) नही है । जो शुद्ध द्रव्यकी शक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक परम भाव रूप परम निश्चय मोक्ष है, वह तो जीवम पहिले ही विद्यमान है, वह परमनिश्चयमोक्ष जीवमें अब होगी ऐसा नही है ।

५ प प्र।१।१।६।१५ "शुद्धनिश्चयनयेन बन्ध मोक्षौ न स्त ।"

अर्थ — शुद्ध निश्चय नय की अपक्षा जीव को बन्ध और मोक्ष ही सम्भव नही ।

६ प्र ।१।६५।७२।६ "व्यवहारेण द्रव्यबन्ध तथैवाशुद्धनिश्चयेन भाव बन्ध तथा नयद्वयेन द्रव्यभावमोक्षमपि यद्यपि जीव करोति तथापि शुद्धपारिणामिक परमभावग्राहकेन शुद्ध-निश्चयेन न करोत्येव भणति ।"

अर्थ — व्यवहारनय से नानावर्णादि द्रव्य कर्म बन्ध और अशुद्ध निश्चय नयसे रागादि भावकर्म के बन्ध को तथा दोनो नयो से द्रव्यकर्म व भावकर्म की मुक्तिको यद्यपिजीव करता है, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभावक ग्रहण करने वाले शुद्ध निश्चय नय से नही करता है, बन्ध और मोक्ष से रहित है ।

७ प ध ।२०।४५६ "अस्त्येव पर्यायादेशाद्बन्धो मोक्षश्च तत्फलम । अथ शुद्ध नयादेशाच्छुद्ध सर्वोऽपि सर्वदा ।४५६।

अर्थ — "पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे बन्ध, मोक्ष और बन्धका फल पुण्य पाप आदि है। परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सर्व जीव सदा शुद्ध है।"

६ लक्षण नं ६. (पर संयोग का निरास)

प्र सा. . त प्र।२।३३ "शुद्ध द्रव्यनिरूपणाया परद्रव्यसंपर्कासमात ....शुद्ध द्रव्य एवात्मावतिष्ठते ।"

अर्थ – शुद्ध द्रव्यके निरूपणमे पर द्रव्यके सम्पर्कका असम्भव होने से आत्मा शुद्ध द्रव्य ही रहता है।

स सा. मू।१४ "जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियद। अविसेसमसंजुत्त त सुद्धणय वियाणीहि ।१४।"

अर्थ — जो आत्माको बन्धराहित और परके स्पर्शसे रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष अन्यके सयोग रहित, ऐसे पाच भावरूप अवलोकन करता है, उसे शुद्ध नय जानो ।

पारिणामिक भाव सम्बन्धी लक्षण न. ५ मे निम्न बाते स्पष्ट की गई है जिन को दृष्टि मे रखना अत्यन्त आवश्यक है –

१. शुद्ध निश्चय नय शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का दूसरा नाम है।

२. यह नय शुद्ध पारणामिक भाव मात्र को ग्रहण करके वर्तता है ।

३. पारणामिक भाव त्रिकाली शुद्ध होता है।

४ क्षायिक भाव की शुद्धता और उसकी शुद्धता में महान अन्तर है ।

५ उसमें शुद्ध व अशुद्धि की अपेक्षा ही पड नही सकती ।

अर्थ -- शुद्ध निश्य नय से तो मोक्ष माग कोई चीज ही नही ह । क्योकि जो शुद्ध द्रव्य शक्ति रूप[१] शुद्ध पारणामिकपरम भाव लक्षण[२] वाली, परम निश्चय मोक्ष या त्रिकाली शुद्धता है, वह तो जीव में पहिले से[३] है ही है । तो वह भविप्यत में प्राप्त होगी ऐसा प्रश्न[४] ही नही हो सकता ।)

यह तो आगम कथित उदाहरण है, अब अपना उदाहरण सुनिये जिस पर से कि इन सब उपरोक्त उदाहरणो का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा तथा जिसमें इस नय के कारण व प्रयोजन का भी अन्तर्भाव हो जायेगा । देखिये आपके कमरे में एक ओरदीपक टिम टिमा रहा है, एक आर विजली जलती है और एक ओर से सडक का प्रकाश आ रहा है। कमरा प्रकाशित है। आप वहा बैठेपढ रहे ह । आप की पुस्तक पर जो प्रकाश पड रहा है उस पर बताईये दीपक की मोहर लगी हुइ ह, या विजली की या आकाश की ? वह तो प्रकाश है । जैसा दीपक में वैसा ही बिजली में और वसा ही आकाश म । प्रश्न हो सकता है कि तीनो प्रकाश की जाति में तो भिन्नता है। ठीक है जाति मे भिन्नता अवश्य है पर पढने में सहायक बनने के लिये तीना में क्या विशेषता है । क्या दीपक के प्रकाश में बैठ कर आप पढ न सकेंगे ? न यह कि आपके अपने नेत्र ठीक होने चाहियें ।

इन तीना मे प्रकाश पना एक ही जाती का है, प्रकाश पने में तीन पना हा ही नहीं सकता । दीपक का प्रकाश अल्प है और बिजली

का अधिक, परन्तु दीपक के प्रकाश मे प्रकाश पना कुछ कम है और विजली के प्रकाश मे कुछ अधिक यह वात घटित नही हो सकती। जेसेकि एक अगूर के स्वाद मे तृप्ति कुछ कम है और एक सेर भर अगूरो के स्वाद मे तृप्ति अधिक है, पर दोनों के स्वाद की जाति मे कोई भेद नही कहा जा सकता। अत: कम प्रकाश व अधिक प्रकाश या पीला प्रकाश व सफेद प्रकाश होते हुए भी प्रकाश पने की जाति मे अन्तर पड़ा नही कहा जा सकता।

इसी प्रकार जीव की पर्याय संसारी हो या मुक्त, अशुद्ध हो कि शुद्ध, उसमे जीव पने की जाती मे कोई भेद पड़ा नही कहा जा सकता। सिद्ध जीव का जीवत्व किसी ओर प्रकार का और ससारी का किसी और प्रकार का, ऐसा नही हो सकता। जीवत्व तो जीवत्व है, उसका क्या ससारी पना और क्या मुक्त पना। जैसे ज्ञान तो ज्ञान है, अल्प हो कि अधिक, निगोदिया का तुच्छ ज्ञान हो या हो केवल ज्ञान, ज्ञान पने मे क्या हीनाधिकता। जिस जाति का पदार्थ प्रकाशन स्वरूप ज्ञान निगोद मे है वैसा ही केवली मे है। दोनों की जाति मे कोई अन्तर नही। और यदि ऐसा ही है तो जीव पने का उत्पाद व्यय भी क्या।

वस इसी प्रकार चेतन या अचेतन किसी भी पदार्थ का पदार्थ पना या वह वह जाति पना तो वह वह रूप ही है, उसमे तो हीनाधिकता आदि का प्रश्न हो नही सकता। इसलिये इस का जन्म व मरण या उत्पाद व व्यय भी क्या ? होता ही नहीं। होना शब्द ही घटित होता नही, क्योकि उसकी वहा अपेक्षा ही नही। जव उत्पाद व्यय ही घटित होते नही तो पर्याय कैसे घटित हो सकती है, और पर्यायो के अभाव मे शुद्ध और अशुद्ध कैसे कह सकते है। अत: शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विपय जो पारिणामिक भाव उसे सर्वत्र उत्पाद व्यय से निरपेक्ष, पर्याय कलको से रहित, शुद्धाशुद्ध कल्पनाओ से अतीत ही कहा

जाता रहा है। उपरोक्त सर्व उदाहरणो म यही कहा गया है, और आगे भी जहा जहा यह प्रकरण आयेगा, ऐसा ही कहा जाता रहेगा। वहा भावाथ ठीक ठीक समझ लेना ।

यद्यपि द्रव्य उत्पाद व्यय या पर्यायो से रहित कभी नही रह सकता। क्योकि उत्पाद उसका स्वभाव है, और गुणो व पर्यायो का समूह उसका स्वरूप व सवस्व है। परन्तु देखने का ढग है। पर्यायो व उत्पाद व्यय सहित को भी पर्याया व उत्पाद व्यय से रहित देखा जा सकता है। यही बात उपरोक्त उदाहरणो पर से सिद्ध की गई है। प्रत्येक वस्तु के दो पडखे या दो पहलू होने ह, एक उसका बाह्य रूप और एक उसका अन्तरग रूप। बाहर से देखने पर वस्तु के रूप बराबर बदलते हूए दिखाई देते ह, जिसके कारण उसकी जाति में भी भेद पडता दिखाई पडता हे। परन्तु वस्तु के अदर यदि दृष्टि को ले जाकर देखें तो वस्तु या उसकी जाति म कोई परिवतन दिखाइ न दे सकेगा।

जसे सागर का एक तो बाह्य रूप है, और एक अदर का वह रूप जो उसकी थाह में पडा है। ऊपर से दखने पर वह कल्लोलित दिखाई देता है, जवार भाटे रूप दिखाई देता है, तूफान वाला दिखाई देता है, प्रवाहित दिखाई देता है, जिस प्रवाह व तूफान के कारण कि बडे बडे जहाज तक उलट जाते ह। यह कल्लोलें, जवार भाट, तूफान व प्रवाह वहा न हो ऐसा नही है। वह वहा ह ही ह। वहाँ सत्य रूप ह कल्पित नही। परतु उसके अदर जाकर देखें तो न कल्लोले ह, न जवार भाटे ह, न तूफान है, न प्रवाह है। जहा जो पानी है सदा से वही है और वही रहगा। छोटे छोटे जतु भी वहा आराम से रहत ह। बाधा का प्रश्न नही सागर का यह रूप भी वहा है ही है। यह भी सत्य है कल्पित नही। यद्यपि कुछ विरोध सा दीखता है और प्रश्न उठाता है कि दो विरोधी बातें एक ही स्थान पर कसे रह

सकती है । पर भाई । शब्दो मे तर्क करने की बजाये वस्तु मे जाकर देख, कि वह वहाँ है या नही । और यदि है तो स्वीकार करते हूए डर क्यों लगता है ? देखना तो इस बात का है कि ऊपर और भीतर के यह दो रूप क्या पृथक पृथक सागर के है या एक ही के । क्या कुछ ऐसी वात वहाँ है कि उसके यह वाहर व भीतर के दो अग स्वतत्र रूप से पृथक पृथक पड़े हो ? अर्थात सागर के मध्य कोई एक छत या शामियाना तना हुआ हो, जो उससे ऊपर ऊपर के पानी मे तो कल्लोले रहे और उससे नीचे के मे नही वहा तो ऐसा कोई व्यवस्था है नही । जो पानी ऊपर है वही नीचे । ऊपर से हानी वृद्धि सहित है पर नीचे से नही । यह दोनो ही रूप एक ही अखण्ड सागर के है ।

वस इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को समझिये । उसके वाह्य रूप मे उत्पाद व्यय, पर्याय, गुण. शुद्धता, अशुद्धता, हीनता, अधिकता, सब कुछ सत्य है, पर अन्तरग रूप अर्थात् स्वभाव मे न उत्पाद है, न व्यय न गुण है न पर्याय न शुद्धता है न अशुद्धता, हीनता, न अधिकता, वह तो एक अखण्ड व निर्विकल्प भाव मात्र है, यह भी सत्य है । उसका बाह्य व अतरग रूप दो पृथक पृथक स्वतत्र पदार्थ हो या इनके बीच मे कोई दीवार या पार्टीशन हो, ऐसा भी नही है । जो स्थिर है वही आस्थिर है । कहने मे भले वाह्य व अन्तरग ऐसे दो भेद आये हो, पर वास्तव मे वहा तो वस्तु एक व अखण्ड है वस्तु का स्वरूप ही जब ऐसा है तो इसमे हम क्या करेगे अतः भाई जैसा है वैसा स्वीकार कर ।

वास्तव मे अखण्ड वस्तु के इन दो पड़खों को पृथक पृथक स्पष्ट दर्शाना ही द्रव्यार्थिक नय मे भेद डालने का प्रयोजन है । उसमे यहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रयोजन वस्तु का अन्तरग रूप, या उसका स्वभाव दर्शाना है । जैसा कि आगे आयेगा, अशुद्ध द्रव्यार्थिक का

प्रयोजन उसी वस्तु का वाह्य रूप दर्शाना है। अत यह दोनो नयें एक ही अखण्ड द्रव्यार्थिक नय के दो भेद है, पृथक पृथक स्वतन्त्र कुछ नही है।

शुद्धाशुद्ध से निरपेक्ष शुद्धता दर्शाने के कारण तथा गुण गुणी आदि में अभेद दर्शाने के कारण यह शुद्ध है। तथा द्रव्य के सामान्य पटल को दर्शाने के कारण द्रव्यार्थिक है। यही इस नय का यह नाम रखने का कारण है। और वस्तु के अन्तरग रूप अर्थात परिणामिक भाव की ओर तथा निर्विकल्प अभेद की ओर श्रोता का लक्ष्य खैंचना इस नय का प्रयोजन है। या यो कहिये कि व्यक्ति म निज वैभव देखने की या वस्तु में द्वैत देखने की जो टेव श्रोता को पडी हुई है उसका निरास करके उसका लक्ष्य शक्ति पर ले जा कर उसे वस्तु की अद्वैतता का परिचय दिलाना इसका प्रयोजन है।

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की भूमिका में यह बताया था कि वस्तु का

६ अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

सामान्य रूप दो प्रकार से देखा जा सकता है—विशेष निरपेक्ष और विशेष सापेक्ष। तहा विशेष निरपेक्ष सामान्य पदार्थ की सत्ता को देखना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है, जिसका कथन किया जा चुका है। विशेष सापेक्ष सामान्य पदार्थ की सत्ता का देखना उसी द्रव्यार्थिक की अशुद्ध प्रकृति है। अर्थात सामान्य पदार्थ में गुण गुणी आदि का भेद डालकर उसका कथन करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

इस नय का लक्षण शुद्ध द्रव्यार्थिक के लक्षण से विल्कुल उल्टा है, जैसे कि द्रव्य की अपेक्षा करने पर, जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय गुण, पर्याय आदि से निरपेक्ष एक निर्विकल्प अनिर्वचनीय तत्त्व का ही द्रव्य कहता था वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त अथवा गुण पर्याय वान कहता है। क्षेत्र की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक उसे प्रदेश कल्पना से निरपेक्ष सर्वव्यापी या निज एक

अखण्ड संस्थान रूप कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही अनेक प्रदेशों वाला कहता है। काल की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, उसे पर्यायो के परिवर्तन से निरपेक्ष नित्य कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही भूत, वर्तमान व भविष्य की अनन्तो पर्यायो का एक अखण्ड पिण्ड वताता है। भाव की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक उसे अनेक गुणों से निरपेक्ष केवल स्वलक्षण स्वरूप कहता था, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक उसे ही अनेक गुणो का समूह कहता है। पारिणामिक भाव रूप स्वभाव की अपेक्षा करने पर जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे पर्याय कलक रहित नित्य शुद्ध वताता था, वहां अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे ही अनेकों त्रिकाली पर्यायों मे अनुगत एक स्वभावी कहता है। पर पदार्थो के सयोग की अपेक्षा करने पर, जहा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उसे पर संयोग से निरपेक्ष वताता है, वहा अशुद्ध द्रव्यार्थिक उसे ही पर पदार्थ के संयोग व वियोग आदि से सापेक्ष वताता है। तात्पर्य यह कि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय सर्वत्र व सर्व अपेक्षाओ से द्रव्य को अभेद देखता है, तथा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय उस अभेद मे ही भेद देखता है। यही विशेष सापेक्ष सामान्य कहने का प्रयोजन है।

यहा प्रश्न हो सकता है कि सामान्य स्वरूप होता ही अभेद है तो उसमे भेद डाला कैसे जाता है? तो भाई! वह सर्वथा अभेद हो ऐसा नही है। उसके अनेकों पूर्वोत्तर चित्र विचित्र कार्यो या पर्यायों पर उस मे अनेक गुणो का सद्भाव भी प्रत्यक्ष होता है। गुण व पर्यायों से रहित वस्तु कोई नही है। अत यह गुण व गुणी अथवा पर्याय पर्यायी आदि का भेद भी कथञ्चित वस्तुभूत है। दृष्टि विशेष के द्वारा देखने पर वह प्रत्यक्ष है। वस उसी दृष्टि को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते है। इस नय का अन्तर्भाव शास्त्रीय नय सप्तक के व्यवहार नय मे होता है।

यहा पर ग्रहण किये गये विशेष या भेद वास्तव मे उसी सामान्य द्रव्य को वक्तव्य वनाने तथा उसकी सिद्धि के लिये ही है,

पर्यायार्थिक नय की भांति उन विशेषो की पृथक सत्ता दर्शाने के लिये नही, इसलिये भेद ग्राहक होते हुए भी इसकी द्रव्यार्थिकता विनष्ट नही होती ।

इस नय के निम्न दो प्रमुख लक्षण किये जा सकते है ।

१ द्रव्य क्षेत्र काल व भाव रूप चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य अनेक भेदो वाला एक सामान्य तत्त्व है ।

२ अनेक भिन्न द्रव्यो में सयोग अथवा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कार्यकारी है ।

अब इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ उद्धरण देखिये ।

१ लक्षण न० (चतुष्टय की अपेक्षा अनेक भेदों से सयुक्त द्रव्य)

आ प ।१७।पृ १२१ "अशुद्धद्रव्यमेवार्थ प्रयोजनमस्येति अशुद्ध-द्रव्यार्थिक ।"

अर्थ—अशुद्ध द्रव्य ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। (यहा अशुद्धता से तात्पर्य भेद ग्रहण करना)

२ व द्र स ४८।२०६ "अशुद्धनिश्चय शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव ।"

अर्थ—अशुद्ध निश्चय नय को यदि शुद्धनिश्चय की अपेक्षा देखा जाये तो वह व्यवहार नय ही है। (कारण कि शुद्ध नय का विषय अभेद है और इसका विषय भेद। शास्त्रीय व अध्यात्मिक व्यवहार नय का विषय भी भेद है। अत दोनो में समानता है।)

३. क. पा. ।१।१८२।२१६ "अशुद्धद्रव्यार्थिक: पर्यायकलङ्कित-द्रव्यविषय. व्यवहार ।"

अर्थ—जो पर्यायकलक से युक्त द्रव्य को विषय करनेवाला व्यवहार नय है वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

४. प्र सा. ।त. प्र. । परि ।नय न० ४६ "अशुद्धनयेन घटशरावविशिष्टमृण्मात्रवत्सोपाधिस्वभावम् ।"

अर्थ—आत्मद्रव्य अशुद्धनय से घट और राम पात्र से विशिष्ट मिट्टी मात्र की भाति, सोपाधि स्वभाव वाला है ।

५ आ. प ।१५ ।पृ १११ "शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभाव., अशुद्धद्रव्यार्थिककेनाशुद्धस्वभाव. ।"

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध स्वभाव है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से अशुद्ध स्वभाव है ।

६. वृ० द्र० सं. ।४५ ।१९७ "यच्चाभ्यन्तरे रागादिपरिहार स पुनरशुद्धनिश्चयेनेति ।"

अर्थ—जो अन्तरग मे रागादि का त्याग कहा जाता है वह अशुद्ध निश्चय से ही है । (क्योकि शुद्ध निश्चय मे तो रागादि को अवकाश ही नही ।)

७ स सा. ।१४ आत्मा ५ प्रकार से भेद रूप दीखता
प. जयचन्द है—कर्म पुद्गल का स्पर्श वाला, नारकादि पर्यायो मे भिन्न भिन्न स्वरूप, शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद बढे भी है और घटे भी हैं. . . .इससे नित्य नियत दीखता नही, दर्शन ज्ञानादि अनेक गुणों से विशेष रूप, मोहरागद्वेषादि

परिणामो सहित। यह सब अशुद्ध द्रव्यार्थिक रूप व्यवहार नय का विषय है।

२ लक्षण नं० २ (पर संयोग की सार्थकता)

१ वृ० द्र० स।६।२१ "अशुद्धनिश्चयस्यार्थ कथ्यते—कर्मोपाधि-समुत्पन्नत्वादशुद्ध, तत्काले तप्ताय पिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चय, इत्युभयमेलापकेनाशुद्धनिश्चयो भण्यते।"

अशुद्ध निश्चय का अर्थ यह है, कि कर्मोपाधि से उत्पन्न होने के कारण अशुद्ध कहलाता है और उस समय अग्नि में तपे हुए लोहे के गोले के समान तन्मय होने के कारण निश्चय कहा जाता है। इस रीति से अशुद्ध और निश्चय इन दोनो के मेलाप से अशुद्ध निश्चय कहा जाता है।

२ स सा।६। प० जयचन्द "अन्य सब परसयोगी भेद हैं वे सब, भेद रूप अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं।"

अब इस नय के कारण व प्रयोजन देखिये। द्रव्य में गुण व पर्याय के भेद कथञ्चित सत् है, और पर पदार्थ के संयोग से उत्पन्न होने वाले अशुद्ध औदयिक भावो के साथ भी किन्ही पर्याय विशेषो में यह तन्मय देखा जाता है। यही सत्य इस नय की उत्पत्ति का कारण है। यदि भेद सर्वथा न हुए होते तो इस नय की भी कोई आवश्यकता न होती। तहा अभेद में भी भेदो का या औदयिक भाव स्वरूप अशुद्ध पर्यायो का आश्रय लेने के कारण तो यह अशुद्ध है और उनका आश्रय लेकर भी उन पर से द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत सामान्य अखण्ड तत्व का ही परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक है। अत 'अशुद्ध द्रव्यार्थिक' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है।

शुद्ध निश्चय तो तत्व को सर्वथा निर्विकल्प व अनिर्वचनीय बताता है, परन्तु इस प्रकार तो जगत का कोई भी व्यवहार चल नही सकता। तत्व का सीखना व सिखाना भी असम्भव हो जाये, गुरु शिष्य सम्बन्ध विलुप्त हो जाये। अतः विश्लेषण द्वारा उसमें भेद डालकर कहने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही है। अवक्तव्य को इसी प्रकार वक्तव्य बनाया जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार पदार्थ खण्डित हुआ सा प्रतीत होने लगता है, परन्तु साथ साथ शुद्ध द्रव्यार्थिक पर भी लक्ष्य रखें तो, ऐसा नही हो सकता। विशेषों रहित केवल सामान्य खरविषाण वत् असत् है, भेद से निरपेक्ष अभेद असत् है। उस विशेषो सापेक्ष सामान्य तत्व को वक्तव्य बनाकर समझने व समझाने के व्यवहार को सम्भव बनाना ही इस नय का प्रयोजन है।

१५। द्रव्यार्थिक नय दशक

७. द्रव्यार्थिक नय दशक परिचय

अहो! गुरु देव की उपकारी बुद्धि, कि अदृष्ट पदार्थ को भी मानो जबरदस्ती पिला देना चाहते हैं। शब्दों की असमर्थता की पर्वाह न करते हुए, तथा अनिर्वचनीय बताकर भी, वचनो के द्वारा ही उसे वह मानो प्रत्यक्ष कराने का प्रयास कर रहे है। ऐसा अपूर्व अवसर प्राप्त करके भी यदि मैं वस्तु को पचा न सकू, तो इससे बड़ा प्रमाद और कौनसा होगा।

द्रव्यार्थिक नय का प्रकरण चलता है। पहिले वस्तु को सामान्य व विशेष दो भागों मे विभाजित करके, सामान्य सत्ता का ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है तथा विशेष सत्ता का ग्राहक पर्यायार्थिक नय है ऐसा बताया गया। वस्तु की सामान्य सत्ता के दो रूप सामने रखे–विशेष निरपेक्ष और विशेष सापेक्ष। इन दोनो रूपों पर से सामान्य वस्तु का अवलोकन करने के कारण उसको विषय

करने वाले द्रव्यार्थिक नय के भी दो भेद हो गये—शुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध द्रव्यार्थिक। तहा महा सत्ता या अवान्तर-सत्ता भूत पदार्थो में विशेप निरपेक्ष एक निविकल्प सत्ता सामान्य को ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है और विशेप सापेक्ष एक सविकल्प सत्ता समान्य को ग्रहण करने वाला अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। यद्यपि द्रव्य क्षेत्र काल व भाव इन चारो की पृथक पृथक अपेक्षा लेकर, उन दोनो ही नयो के यथा योग्य अनेको लक्षण करके, उनके विपय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु भेदा-भेदात्मक वह वस्तु अब तक भी एक समस्या ही बनी हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। अत उन्ही लक्षणो को कुछ और विशदता की आवश्यकता है। शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयो के पूर्वोक्त अनेको लक्षणो को अत्यन्त विशद बनाने के लिये ही इस नय दशक का जन्म हुआ है। 'नय सामान्य' नाम के ९ वें अधिकार के अन्त में दिये गये नय चार्ट में आगम की इन दश द्रव्यार्थिक नयो का नामोल्लेख किया जा चुका है।

वास्तव में द्रव्यार्थिक नय दशक की अपनी कोई स्वतत्र सत्ता नही है। ये दशो भेद उन्ही शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक के पूर्वोक्त लक्षणो में गभित हो जाते है। अन्तर केवल इतना है कि वहा उनका रूप सक्षिप्त था और यहा कुछ विस्तृत है। जैसाकि पहिले अनेको बार बताया जा चुका है, वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव इस चतुष्टय से गुम्फित है। बस इस नय दशक की स्थापना का मूल आधार वस्तु का यह चतुष्टय ही है। वह किस प्रकार सो ही दर्शाता हूँ।

यह नय दशक पाच युगलो में विभाजित है—'स्व चतुष्टय ग्राहक व पर चतुष्टय ग्राहक' यह प्रथम युगल है, 'भेद निरपेक्ष द्रव्य ग्राहक और भेद सापेक्ष द्रव्य ग्राहक' यह दूसरा युगल है,

उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक और उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक' यह तीसरा युगल है; 'परम भाव ग्राहक और अन्वय ग्राहक' यह चौथा युगल है; तथा 'कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्धता ग्राहक व कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्धता ग्राहक' यह पाचवा युगल है।

इनमे से प्रथम युगल तो चतुष्टय सामान्य को विषय करके केवल इतना बताता है कि यह चतुष्ट वस्तु का अपना ही वैभव है, किसी अन्य का नही। दूसरा तीसरा व चौथा युगल, उस चतुष्टय को खण्डित करके, द्रव्य, काल, व भाव इन तीनो को पृथक पृथक बिषय करते है। क्षेत्र को ग्रहण करने वाले किसी पृथक युगल का ग्रहण नही किया गया है, क्योंकि वह गुण व पर्यायों का अधिष्ठान जो द्रव्य, वह स्वय ही प्रदेशात्मक माना जाने के कारण, क्षेत्र का उसमे ही अन्तर्भाव हो जाता है। चतुष्टय का प्रथम अग जो 'द्रव्य' उसको पृथक ग्रहण करके, दूसरा नय युगल उसमे गुण गुणी का अभेद व भेद दर्शाता है। चतुष्टय का तीसरा अग जो 'काल' उसको पृथक ग्रहण करके, तीसरा नय युगल उसमे नित्या व अनित्यता का प्रदर्शन करता है। चतुष्टय का चौथा अग जो 'भाव' उसको पृथक ग्रहण करके, चोथा नय युगल द्रव्य के एक अखण्ड भाव तथा अनेक गुणो के पृथक पृथक भावो के बीच अभेद व भेद की सूचना देता है। इस प्रकार ये पहले चार युगल स्व चतुष्टय का आश्रय करके वस्तु सामान्य का स्वरूप दर्शाते है अर्थात जीव अजीव आदि सब ही द्रव्यो की सामान्य सत्ता की चित्र विचित्रता का प्रतिपादन करते है।

अब पाचवाँ युगल जो कर्मोपाधि निरपेक्ष व कर्मोपाधि सापेक्ष वाला है, वह वस्तु विशेष का प्रतिपादक है, अर्थात द्रव्य सामान्य को न बताकर केवल जीव द्रव्य की विशेषता को बताता है। शास्त्रीय नय सप्तक मे सग्रह व व्यवहार युगल का प्ररुपण करते हुए यह बताया जा चुका है कि द्रव्य या सत् सामान्य के दो

भेद है–जीव व अजीव । जीव के भी दो भेद है–मुक्त व ससारी । यद्यपि ये दोनो कोई स्वतत्र त्रिकाली द्रव्य नही है, बल्कि एक सामान्य जीव द्रव्य की दो पर्यायें है, और इसलिये इन्हें पर्यायार्थिक नय का विषय बनना चाहिये, परन्तु स्थूल दृष्टि से देखने पर जन्म से मरण पर्यन्त की यह कोई एक पर्याय नही है बल्कि मनुष्यादि अनेक पर्यायो में अनुगत सामान्य भाव है । अत इन दोनो को द्रव्य रूप से सग्रह नय ग्रहण कर लेता है । ये दोनो जीव द्रव्य की अवान्तर सत्ताय है । इनमें से मुक्त जीव कर्मोपाधि रहित होने के कारण शुद्ध है। और ससारी जीव कर्मोपाधि सहित होने के कारण अशुद्ध है। मुक्त जीव की इस शुद्धता को दर्शाना कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक का काम है और ससारी जीव की अशुद्धता को दर्शाना कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक का काम है।

इस प्रकार सामान्य वस्तु मे तो अभेद व भेद दर्शाने की अपेक्षा और विशेष वस्तु में परकी उपाधि कृत अशुद्धता व शुद्धता दर्शाने की अपेक्षा, इन पाचो ही युगलो में पहिला पहिला तो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है, और दूसरा दूसरा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है । इस प्रकार ये दोनो भेद शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यार्थिक के ही उत्तर भेद समझने चाहिये । स्व चतुष्टय ग्राहक नय शुद्ध द्रव्यार्थिक है और पर चतुष्टय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक । गुण गुणी आदि भेद निरपेक्ष द्रव्य ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक है और भेद सापेक्ष द्रव्य ग्राहक अशुद्ध, द्रव्यार्थिक । उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक है । और उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक । परम भाव ग्राहक नय शुद्ध द्रव्यार्थिक है और अन्वय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक । कर्मोपाधि निरपेक्ष क्षायिक भाव ग्राही शुद्ध शुद्ध द्रव्यार्थिक है और कर्मोपाधि सापेक्ष औदयिक भाव ग्राही अशुद्ध द्रव्यार्थिक । इस प्रकार नय दशक का सक्षिप्त परिचय दिया गया । अब इनका पृथक पृथक विस्तार देखिये ।

८ स्वचतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

वस्तु का द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव उस का स्वचतुष्टय कहलाता है। सर्व प्रथम यह देखना है कि वस्तु का यह चतुष्टय वस्तु का ही निज रूप है या किन्ही वाह्य सयोगो का फल है। इस वात का अव तक काफी खुलासा किया जा चुका है, कि वस्तु को भली भांति समझाने के लिये भले ही विश्लेपण के द्वारा उसे इन चारों अंगों मे विभाजित कर दिया गया हो, परन्तु वास्तव मे यह विभाजन केवल काल्पनिक है, वस्तुभूत नही, क्योकि वस्तु से पृथक वे चारो कोई अपनी स्वतत्र सत्ता नही रखते। उनका एक रस रूप अखण्ड द्रव्य ही सत् है। अत· यह चतुष्टय वस्तु का निज का ही रूप है, अन्य सयोगो का फल नही।

अपने अपने गुण व पर्यायो का अधिष्ठान भूत वह द्रव्य ही स्वय वस्तु या सत् है। अधिष्ठान होने के नाते उस का कोई न कोई आकार अवश्य होना ही चाहिये, क्योकि आकृति रहित कोई भी काल्पनिक तत्व वस्तुभूत गुणों आदि का आश्रय नही हो सकता। उसका वह आकार या सस्थान ही उसका स्वक्षेत्र है। वस्तु वही है जो कि कुछ अर्थ क्रियाकारी हो। अर्थ क्रिया शून्य द्रव्य कपोल कल्पना मात्र है, जैसे आकाश पुष्प है। पदार्थ मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन आय बिना अर्थ क्रिया की सिद्धि असम्भव है, अत· वस्तु स्वभाव से ही परिवर्तन शील होनी चाहिये। प्रति क्षण अवस्था या पर्याय को बदल लेना ही द्रव्य का स्वकाल है। द्रव्य है तो उसका कोई न कोई विशेप स्वभाव अवश्य होना ही चाहिये, क्योकि परिणमनशील हो जाने पर भी यदि वह किसी विशेप स्वभाव से शून्य है, तो लोक मे उसकी क्रिया किमात्मक दिखाई देगी। यह स्वभाव विशेप ही उस द्रव्य का स्वभाव कहलाता है।

इस प्रकार जैसे एक वस्तु अपने चतुष्टय के साथ तन्मय है, वैसे ही दूसरी तीसरी अन्य अन्य सर्व वस्तुये भी अपने अपने चतुष्टयों

में स्वतन्त्रता से अवस्थित है। न कोई वस्तु अपने चतुष्टय का अंश मात्र भी किसी अन्य वस्तु को दे सकती है, और न कोई किसी से कुछ ले सकती है। एक पदार्थ अपना कुछ भी दूसरे को देने में समर्थ ही नही है। अतः वस्तु सर्वदा व सर्वत्र निज चतुष्टय स्वरूप ही रहती है, अन्य चतुष्टय स्वरूप नही होती। उदाहरणार्थ 'घट' नाम का पदार्थ तभी सत्स्वरूप समझा जाता है, जब कि वह अपने ही कम्बु ग्रीवा आदि वाले संस्थान या क्षेत्र को धारण करता हो तथा अपनी ही घटन क्रिया करने के स्वभाव से स्वयं युक्त हो। ऐसा नही हो सकता कि उसका संस्थान तो 'पट' जैसा हो और उसका स्वभाव अग्नि जैसा हो। लोक में इस प्रकार का कोई पदार्थ ही उपलब्ध नही हो सकता।

अतः सिद्ध है कि वस्तु स्वयं अपने चतुष्टय स्वरूप ही होती है, अपने से अतिरिक्त अन्य किसी के भी चतुष्टय स्वरूप नही होती। यह जो उसका स्वचतुष्टय स्वरूप से अवस्थित रहनापना है वही इस प्रकृत स्वचतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु सत् है, या यह कहिये कि अस्तित्व स्वभाव वाली है। इस प्रकार स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु में अस्तित्व धर्म की स्थापना करना इस नय का लक्षण है।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देता हूँ।

१ वृ न च।१९८ 'सद्द्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्य यत् गृहणाति योहि। निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरः भवति विपरीत ।१९८।"

अर्थ—अस्तित्व भूत द्रव्यादि चतुष्टय में ही द्रव्य के अस्तित्व का जो ग्रहण करता है वह स्वचतुष्टय ग्राहक है।

२. वृ. न. च।२५४ "अस्तिस्वभाव द्रव्य सद्द्रव्यादिपु ग्राहक नयेन ।"

अर्थ—स्वद्रव्यादि चतुष्टय ग्राहक नय से द्रव्य अस्तित्व स्वभाव वाला है ।

३ आ प.।७।७१ "स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति ।"

अर्थ--स्व द्रव्यादि चतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक नय को ऐसा जानो जैसे कि यह कहना कि स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु है ही ।

इस नय का उदाहरण ऐसा समझना, जैसा कि आम नाम का पदार्थ जानते हुए, स्वत ही उसका आकार या क्षेत्र, तथा उसकी कच्ची पक्की अवस्थाये या काल तथा उसका स्वाद विशेष या भाव जानने मे आ जाते हे । इन चारो से समवेत ही आम सत् है, इनसे पृथक नही । अथवा आत्मा नाम का पदार्थ जानने के लिये उसका त्रिकाली अस्तित्व, उसके अनेको सस्थान, उसकी आगे पीछे होने वाली मनुष्यादि पर्याये तथा उसके ज्ञानादि गुण, इन सब का ही ग्रहण होना कार्य कारी है, परन्तु उसके साथ मे रहने वाला जो शरीर उसके आकार या रूप,रगादि का ग्रहण करना भ्रमोत्पादक है । क्योकि आत्मा का अस्तित्व अपने ही उपरोक्त चतुष्टय मे है, शरीर के चतुष्टय मे नही ।

क्योकि यह नय स्वचतुष्टय के आधार पर वस्तु के अस्तित्व को दर्शाता है, इसलिये स्व चतुष्टय ग्राहक है क्योकि स्वचतुष्टय ही वस्तु का निज वास्तविक स्वरूप है इसलिये इसे शुद्ध कहा है, तथा क्योकि त्रिकाली सामान्य द्रव्य का परिचय देता है इसलिये द्रव्यार्थिक है ।

अत इस नय का "स्वचतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक" ऐसा नाम सार्थक है ।

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्वभाव इन चारो से समवेत बिल्कुल पृथक व स्वच्छ तथा निरुपाधि वस्तु को दर्शाना इस नय का प्रयोजन है। या यो कहिये कि वस्तु का प्रतिपादन करते हुए जिन दृष्टान्तो का आश्रय लेकर उसे बताया जाता है, उन पर से लक्ष्य को हटाकर दार्ष्टान्त पर लक्ष्य ले जाना इस नय का प्रयोजन है । दृष्टान्त में तेरा वैभव नही है, अत भाई ! वहा से हटकर निज शक्तियो व व्यक्तियो में उसे खोजने का प्रयत्न कर, ऐसा उपदेश यह नय देता है ।

वास्तवमें स्वचतुष्टय ग्राहक व पर चतुष्टय ग्राहक एक ही बातको

६ पर चतुष्टयग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

दर्शाते है, अत ये एक ही है । परन्तु कथन पद्धतिके भेद के कारण इन दोनो का पृथक पृथक नय स्वीकार किया गया है । इन दोनो मे केवल इतना अन्तर है, कि वह तो उसी वस्तु का स्वरूप बताता है उसका निज वैभव दर्शाकर, और यह उसी वस्तु का स्व-रूप बताता है उसी पर पडे हुए आवरण को हटाकर । बिल्कुल उस प्रकार जिस प्रकार कि प्रकाश का आस्तित्व कहो या कहो अन्धकार का अभाव, दोनो का एक ही तात्पर्य है । जो प्रकाशका अस्तित्व है वही अन्धकार का अभाव है । यद्यपि वस्तु रूपसे दोनो एक है, पर कथन क्रमम प्रकाश की निष्कलकता प्रगट करने के लिये अन्धकार का अभाव बताना आवश्यक है । यह न बतायें तो, कदाचित् उन व्यक्ति-योको जिनको की प्रकाश का परिचय नही है, एक ही स्थान में प्रकाश व अन्धकार दोनो का ग्रहण हो जाना सम्भव है ।

यद्यपि यह बात कुछ असम्भवसी लगती है कि प्रकाश के साथ साथ अन्धकार का भी ग्रहण हो जाये, परन्तु इसका कारण यही है कि

प्रकाश सर्व परिचित है । परन्तु अपरिचित वस्तु को शब्दों परसे समभते हुए ऐसा प्राय हुआ ही करता है, कि इष्ट पदार्थ भी कल्पनाका विपय बन जाये। जैसे कि चैतन्य के अस्तित्व द्वारा आत्म पदार्थ को दर्शाते हुए यदि साथ साथ शरीर के सम्बन्धका निषेध न करे तो चैतन्यके साथ, अनुवृत्त भी इस शरीर का ग्रहण आत्मा रूपसे हो जाना सम्भव है । ऐसी भूल कदाचित हो जाये तो आत्म पदार्थ जाना नही जा सकता। वस इसी भूल की सम्भावना को दूर करने के लिये यह आवश्यक है, कि किसी वस्तु का स्वरूप वताया जावे तो उससे अतिरिक्त अन्य वस्तुओ के चतुष्टय को साथ साथ निपेध भी कर दिया जाये ।

अत: वस्तु के स्वरूप को दर्शाने के लिये कथन क्रम मे दो वाते आती है—वस्तु के स्वचतुष्टय की स्वीकृति या विधि तथा उससे अतिरिक्त अन्य पदार्थो के चतुष्टय का निषेध । इन मे से पहिली वात तो स्व चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विपय है और दूसरी वात पर चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यर्थिक नय का विपय है । यही इस नय का लक्षण है ।

यहां एक वात और ध्यान मे रखने योग्य है कि इस निषेध को वताने के लिये दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जा सकता है—'वस्तु मे पर चतुष्टय की नास्ति है या अभाव है ऐसा कहना पहिला प्रयोग है, और 'पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु की ही नास्ति है या अभाव है' ऐसा कहना दूसरा प्रयोग है । वहां पहिला प्रयोग तो सर्व सम्मत है, परन्तु दूसरा प्रयोग कुछ भ्रमोत्पादक है, और आगम मे मुख्यता से इसी प्रयोग को अपनाया गया है। तहां भ्रम में पढने की आवश्यकता नही, क्योंकि दोनों ही प्रयोगों का अर्थ एक है । जैसे कि या तो यह कह दीजिये कि अन्धकार मे प्रकाश नही है या यह कह दीजिये कि प्रकाश मे अन्धकार नही है । दोनो मे क्या अन्तर है,

केवल भाषा का भेद है। अथवा इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जहा प्रकाश होता है वहा अन्धकार की नास्ति या अभाव होता है। अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्रकाश की अपेक्षा अन्धकार की और अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश की नास्ति है। इसका यह अर्थ न समझिये कि प्रकाश की या अन्धकार की नास्ति कह कर उनका सर्वथा अभाव बताया जा रहा है, बल्कि यही समझिये कि अन्धकार के द्रव्य क्षेत्र काल भाव मे तन्मय प्रकाश नाम के पदार्थ का लोक मे अभाव है, परन्तु स्वद्रव्य क्षेत्र काल और भाव से तन्मय प्रकाश तो सत् ही है। जैसे कि "यहा सिंह नही है" ऐसा कहने पर यह अर्थ नही निकलता कि यहा हिरण भी नही है। इसी बात को सैद्धान्तिक भाषा में इस प्रकार कहा जाता है कि स्वचतुष्टय की अपेक्षा वस्तु अस्ति या अस्तित्व स्वभाव वाली है, और पर चतुष्टय की अपेक्षा वही वस्तु नास्ति या नास्तित्व स्वभाव वाली है। पर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु में नास्तित्व धर्म की स्थापना करना इस नय का लक्षण है।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यासार्थ कुछ उद्धरण देता हू।

१ वृ न च।१९८ "सद्द्रव्यादिचतुष्ये सद्द्रव्य खलु गृह्णाति यो हि।
निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीत १९८।"

अर्थ—अस्तित्वभूत स्वद्रव्यादि चतुष्टयमें ही द्रव्य के अस्तित्वका जो ग्रहण करता है वह स्वचतुष्टय ग्राहक है, और उससे विपरीत परचतुष्टय में द्रव्य के नास्तित्व का ग्रहण पर चतुष्टय ग्राहक है।

२ आ प ।१९६ । तदपि च नास्तिस्वभाव पर द्रव्या-दिग्राहकेण ।२५४।"

अर्थः-- पर द्रव्यादि ग्राहक नय से वही वस्तु नास्ति स्वभाव वाली है ।

३ आ. प ।७। पृ ७२ "परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिक को यथा परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्य नास्ति ।"

अर्थ --परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय को ऐसा जानो जैसे कि पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य को नास्ति कहना ।

पर चतुष्टय की अपेक्षा लेकर वस्तु का निरूपण करने के कारण यह नय पर चतुष्टय ग्राहक कहा जाता है । वस्तु का स्वरूप दर्शाते समय किसी भी प्रकार से पर पदार्थ का आश्रय लेना ही दृष्टि की अशुद्धता है, इसलिये यह नय अशुद्ध है । तथा चतुष्टयात्मक सामान्य वस्तु का स्वरूप दर्शाने के कारण द्रव्यार्थिक है । इस प्रकार "पर चतुष्टय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय" ऐसा इसका नाम सार्थक है ।

"शरीरादि की अपेक्षा आत्मा नाम का कोई पदार्थ लोक मे नही है" या "शरीर के द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप चतुष्टयकी अपेक्षा आत्मा नास्ति स्वभाव वाला है" ऐसा कहना इस नय का उदाहरण है ।

अपरिचित व्यक्ति की दृष्टि से पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अभिप्राय को निकालकर, वस्तु के स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव मई ही उस वस्तु का स्पष्ट परिचय देना इस नय का प्रयोजन है ।

१० भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

नय दशक के प्रथम युगल द्वारा वस्तु को स्वचतुष्टय के साथ तन्मय रहने का नियम दर्शाया गया । अब उसी तन्मयता को अधिक विशद बनाने के लिये, विश्लेषण द्वारा उस चतुष्टय के तीन खण्ड कर लिये गये है-- द्रव्य व क्षेत्र अर्थात प्रदेशात्मक द्रव्य, काल व भाव । इन तीनो खण्डो

को पृथक पृथक ग्रहण करके द्रव्य में अद्वैत व द्वैत दर्शाना इन अगल तीन नय युगलों का काम है। उनमें से प्रथम युगल द्रव्य व क्षेत्र अर्थात प्रदेशात्मक द्रव्य को विषय करता है।

द्रव्य का लक्षण 'गुण पर्याय वाला द्रव्य है, ऐसा किया गया है। लक्षण के शब्दों पर से ऐसा प्रतिभास होता है, कि जैसा कि गुण व पर्याय ये दो स्वतन्त्र पदार्थ है, और द्रव्य नाम का तीसरी कोई स्वतन्त्र पदार्थ है। उस द्रव्य में ये गुण व पर्याय दोनों विश्राम पाते हैं, जैसे कि कुण्डे में दही। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। भले ही शब्दों में लक्षण करने के लिये उपरोक्त तीन शब्दों का प्रयोग किया गया हो, परन्तु ये तीनों कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, एक ही है। गुण पर्यायों का समूह ही द्रव्य है। इन में पृथक उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं। 'गुण पर्यायों का समूह' ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अब भी गुण व पर्याय में भेद दृष्टिगत होता है, जो असत् है।

तब वह द्रव्य क्या है? ऐसा विचार करने पर 'पर्यायों मई ही गुण है और गुणों मई ही द्रव्य है, ऐसा कहना ही उचित जचता है। अर्थात पर्यायों से पृथक गुण व गुण से पृथक पर्याय अथवा गुण से पृथक द्रव्य और द्रव्य से पृथक गुण नहीं है। सब एक रस है। पर्याय है वही गुण है, गुण है, वही द्रव्य है, द्रव्य है वही गुण व पर्याय है। फिर गुण पर्याय आदि का भेद या द्वैत रहने से भी क्या लाभ? स्वलक्षणभूत निर्विकल्प अखण्ड द्रव्य है इस प्रकार सब ही गुण-गुणी व पर्याय-पर्यायी आदि के द्वैत भावों का लेश न निरपेक्ष एक अखण्ड द्रव्य ही सत् है, यह बताना इस नय का लक्षण है। इस नय का अन्तर्भाव पूर्वोक्त संग्रह नय में होता है।

उदाहरणार्थ अग्नि यद्यपि उष्णता व प्रकाश वाली कही जाती है पर क्या उष्णता व प्रकाश की उससे पृथक या अग्नि की उष्णता

व प्रकाश से पृथक कोई सत्ता है ? सब एक मेक है कथन मे ही केवल भेद है, अग्नि मे तो ऐसा कोई भेद है नही । अत अग्नि को उष्णता आदि के भेद से निरपेक्ष केवल अग्नि ही कहना उचित है ।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

वृ. न. च.।१९३ "गुणगुण्यादिचतुष्केऽर्थे यो न करोति खलु भेद । शुद्ध- स द्रव्यार्थिक· भेदविकल्पेन निरपेक्ष. ।१९३।"

अर्थ.— गुण–गुणी व पर्याय पर्यायी इस प्रकार चार भेद रूप पदार्थ मे जो भेद नही करता है, वह भेद विकल्पो से निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है ।

२ आ. प।७।पृ७० भेदकल्पनानिरपेक्ष. शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निज गुण पर्याय स्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ।"

अर्थ — भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय को ऐसा जानो जैसे कि निज गुण पर्याय वाले स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है ।

गुण–गुणी आदि भेद का निरास करने के कारण भेद निरपेक्ष है । भेद रहित होने के कारण ही शुद्ध है, और वस्तु का केवल सामान्य अभेद अग देखा जाने के कारण द्रव्यार्थिक है । इस प्रकार 'भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह इस नयका कारण है ।

भेदो के कथन पर से अभेद को समझना ही वास्तव मे समझना कहलाता है, भेदो में अटक कर उनकी बाते तो करना और अभेद भाव को स्पर्श न करना समझना नही है । जैसे अग्नि कहने पर उसकी ऊष्णता, प्रकाशत्व आदि सब कुछ स्वत. दृष्टि मे आ जाते है,

और इस प्रकार आ जाते है मानो उष्णता में प्रकाश और प्रकाश में अग्नि ओत प्रोत ही पडे है। वैसे ही 'आत्मा' आदि कहने पर भी उसका एक रसात्मक अभेद व सामान्य स्वरूप ग्रहण कराना इस नय का प्रयोजन है। अर्थात द्रव्य को गुण पर्याय मई दिखाना इस नय का प्रयोजन है। या या कह लीजिये कि भेदो में अभेद दर्शाना इस का प्रयोजन है।

११ भेद सापक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

भेद निरपेक्ष द्रव्यार्थिक नय के द्वारा वस्तु को गुणो आदि की कल्पना से निरपेक्ष सर्वथा एक व अखण्ड सामान्य तत्वके रूप म दर्शाया गया। यहा यह प्रश्न होता है कि क्या वस्तु निर्गुण है ? अर्थात क्या वह गुणों व पर्यायो स शून्य है ? यदि ऐसी है तो वह आकाश पुष्पवत असत् है, क्योंकि गुणो से शून्य किसी भी द्रव्य की सत्ता लोक में दिखाई नही देती। यदि द्रव्य में से गुण पृथक कर लिये जायें तो आप ही बताइये कि क्या शेष रह जायेगा। जैसे कि यदि अग्नि में से उष्णता व प्रकाश निकाल लिये जायें तो क्या वह अग्नि अपना कोई अस्तित्व रख सकेगी ? अत सिद्ध हुआ कि गुण व पर्याय मई ही वस्तु है, इन से पथक कुछ नही। विशेषो से रहित सामान्य कुछ चीज नही। इसलिये केवल निर्विकल्प सामान्य मात्र तत्व को जानना न जानने के बराबर है।

भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय उस समय तक अधूरा ही है, जब तक कि गुण व पर्यायो आदि के भेद उसमें प्रतिष्ठित हो नही जाते। यद्यपि द्रव्य गुण व पर्याय में किसी भी प्रकार का प्रदेश भेद नही है, परन्तु इन में स्वरूप भेद अवश्य है। जो द्रव्य है व गुण नही और जो गुण है वह पर्याय नही, क्योकि इनसे पृथक पृथक स्वभावकी प्रतीति होती है। जसे कि जो अग्नि है वही व उतनी ही उष्णता नही है। उष्णता अग्नि का एक स्वभाव अवश्य है पर पूर्ण स्वभाव नही। यही द्रव्य व गुण आदि में स्वभाव भेद है।

इस प्रकार प्रत्येक वस्तु मे पडे गुण व पर्याय रूप अग वस्तु से पृथक किये जाने यद्यपि तीन काल मे भी सम्भव नही, पर ज्ञान की महिमा देखिये कि अपने अन्दर विश्लेषण करके, यह उन सर्व अगो या भेदो को पृथक पृथक भी यदि चाहे तो देख सकता है। और वस्तु की विशेषताओ को जानने के लिये ऐसा किया जाना अत्यन्त आवश्यक भी है। भले ही वह ज्ञान वस्तु के अनुरूप एक रस स्वरूप न रह जाये, पर उपरोक्त प्रयोजन वश ऐसा किया अवश्य जा सकता है, और किया जाता है। यद्यपि ऐसा करने से वस्तु दूषित हो जाती है पर इससे ज्ञान दूषित नही होता, क्योंकि वहां भेदो की कल्पना करते समय भी अभेद सामान्य तत्वका चित्रण धुल नही पाया है। अत. ये सर्व भेदोके विकल्प अभेद सापेक्ष ही रहते है। परन्तु क्योंकि विचारणाओ का मुख्य आश्रय भेद है अभेद नही, अत इस विकल्पको भेद सापेक्ष ही कहना होगा।

यहा भेद के ग्रहण से तात्पर्य पृथक पृथक गुणो आदि को ग्रहण करना न समझना, वल्कि सामान्य वस्तु के अन्दर देखते हुए ही समझना जैसे अग्नि मे ऊष्णता व प्रकाशकत्व आदि। इस प्रकार गुणो व पर्यायो से विशिष्ट वस्तु को देखना इस नय का विषय है। या यो कहलीजिये कि गुण पर्याय वाला द्रव्य को वताना इस नय का लक्षण है। इसका अन्तर्भाव शास्त्रीय व्यवहार नय मे होता है। अव इसी लक्षण की पुष्टी व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ न च।१९६ "भेदे सति सम्वन्ध गुणगुण्यादिभि· करोति यो द्रव्य। सोप्यशुद्धो दृष्ट सहित: स भेद कल्पनया।१९६।"

अर्थः– द्रव्य मे जो गुण गुणी आदि के द्वारा भेद करके उनमे सम्वन्ध स्थापित करता है वही भेद कल्पना सहित अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

२ आ प।७ पृ ७१ "भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको, यथा-त्मानो दर्शनज्ञानदयो गुणा ।"

अर्थ — भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है जसे कि आत्मा के दशन ज्ञानादि गुण कहना ।

गुण पर्याय वाला द्रव्य है, या ज्ञानवान जीव है या ऊष्णता व प्रकाशकत्व गुणो वाली अग्नि है, ऐसा कहना इस नय के उदाहरण है ।

क्योकि यह वस्तु में भेद डालकर अर्थात 'गुण वाला' ऐसा कह कर उस अभेद वस्तु का परिचय देता है, इसलिये भेद सापेक्ष है। भेद देखना ही दृष्टि की अशुद्धता है, क्योकि कुण्डे में दही वत द्रव्य में गुणो का भेद वास्तव में नही है, इसलिये यह नय अशुद्ध है । और सामान्य द्रव्य को दर्शाने के कारण द्रव्यार्थिक है । इसलिये 'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' ऐसा इसका नाम साथक है । यह इस नय का कारण है । उस अभेद द्रव्य में गुण पर्याय आदि का भेद डालकर उस उनके द्वारा प्रतिष्ठित बताना अर्थात द्रव्य का गुण पर्याय वाला बताना इस नय का प्रयोजन है ।

१२ उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

सामान्य चतुष्टय के चारो अगो में से प्रथम अग जो द्रव्य' उस के आश्रय पर वस्तु में गुण-गुणी आदि का अभेद व भेद, इससे पहिले वाले नय युगल द्वारा दर्शा दिया गया । उस चतुष्टय का दूसरा अग जो 'क्षेत्र' वह स्वय द्रव्य में ही गभित हो गया क्योकि प्रदेशात्मक होकर ही द्रव्य गुणो का अधिष्ठान हो सकता है । अब उस चतुष्टय का तीसरा अग जो काल' उसके आश्रय पर वस्तु में अभेद व भेद दर्शाने के लिये यह नय युगल आगे आता है ।

'सत्' सामान्य का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त होना है । गुण-गुणी भेद वत् यहा भी यही विचारना है, कि क्या उत्पादादिक

ये तीन अग सत् से पृथक कुछ अपनी सत्ता रखते है। यद्यपि लक्षण मे कहा गया 'युक्त शब्द ऐसा ही घोपित करता है कि उत्पादादिक तीन पृथक पृथक वस्तुओं को सयोग वाला सत् है, जैसे दण्ड के सयोग वाला दण्डी है, परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। उत्पादादि मई ही सत् है, अर्थात सत् वही हो सकता है, जो नित्य परिणमन शील रहे। परिणमन शीलता ही उत्पाद व्यय अर्थात उत्पत्ति व विनाश है, और परिणमन करने वाले उस द्रव्य का जूं का तूं वने रहना ही उसका ध्रौव्यत्व है। जो द्रव्य ध्रुव या नित्य है वही अनित्य है। प्रति क्षण वदलने वाली अवस्थाओ को देखे तो वह अनिन्य दिखता है, जैसे वालक का वृद्ध हो जाना। वालक अवस्था का विनाश और वृद्ध अवस्था की उत्पत्ति, यही सत् का उत्पाद व व्यय है, सर्वथा नय सत् का उत्पाद व पुराने सत् का सर्वथा विनाश इसका अर्थ नही। परन्तु उन सव अवस्थाओं मे वह रहा तो मनुष्य का मनुप्य ही। वस यही उसका ध्रुवत्व है।

दृष्टि विशेप के द्वारा उत्पादादि उन तीनो मे से उत्पाद व व्यय को अर्थात अवस्थाओं को लक्ष्य में न लेकर केवल ध्रुवत्व या सत्ता की नित्यता को भी देखा जा सकता है, जैसे वालक वृद्धादि से निरपेक्ष मनुष्यत्व को हर अवस्था मे जूं का तूं देखना। और उत्पाद व्यय रूप परिणमन शील अवस्थाओ से विशिप्ट भी उस ध्रुवत्व को देखा जा सकता है, जैसे कि वालक व वृद्धादि अवस्थाओं से जड़ित उस मनुप्यत्व को देखना। इन दोनो मे पहिले प्रकार से देखना इस नय का विषय है। या यो कह लीजिये कि उत्पाद व्यय से निर-पेक्ष सत्ता की नित्यता को देखना 'उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' का लक्षण है इस दृप्टि मे मे उत्पाद व्यय गौण है और ध्रौव्यत्व मुख्य। इसका अन्तर्भाव संग्रह नय मे होता है।

अव इस लक्षण की पुप्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ वृ न च।१९२ "उत्पाद व्ययौ गौणौ कृत्वा यो हि गृह्णाति केवला सत्ताम् । भण्यते स शुद्धनय इह सत्ताग्राहक समय ।१९२।"

अर्थ—उत्पाद व्यय को गौण करके जो केवल सत्ता को ग्रहण करता है, उसे ही आगम में सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा गया है ।

२ आ प ।७। पृ ७० "उत्पादव्यय गौणत्वेन, सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा द्रव्य नित्य"

अर्थ—उत्पाद व्यय गौण सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है, जैसे द्रव्य को नित्य कहना ।

स्वर्ण की शक्लें कडा कुण्डल आदि रूप से बदल जाने पर भी स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहा । बाल युवा वृद्धादि रूप मे बदल जाने पर भी मनुष्य तो मनुष्य ही रहा । इसी प्रकार मनुष्य तिर्य चादि अनेक पर्यायो रूप से परिवर्तन करने वाला जीव तो जीव ही रहा । इस प्रकार उत्पाद व्यय को न देखकर केवल वस्तु की नित्य सत्ता को देखना इस नय का उदाहरण है । यह सत्ता ही उसमें होने वाली अवस्थाओ का मूल कारण है, जिसे न्याय वैशेषिक लोग समवायी कारण कहा करते हैं । क्योकि कार्य से पूर्व समयवर्ती पदार्थ को कारण कहा जाता है ।

क्योकि उत्पाद व्यय को मुख्य रूप से ग्रहण नही करता इसलिये उत्पाद व्यय निरपेक्ष है । केवल सत्ता की नित्यता को स्वीकार करने के कारण सत्ता ग्राहक है । निर्विकल्प ग्रहण होने के कारण शुद्ध है । और सामान्य द्रव्य को विषय करने के कारण

द्रव्यार्थिक है। अत: 'उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है यही इस नय का कारण है।

उत्पत्ति व विनाश पाते रहते भी वस्तु का सामान्य स्वभाव कभी भी उत्पत्ति व विनाश पाता नही। वह त्रिकाली ध्रुव है। ऐसी परिवर्तन शील वस्तु मे भी उसकी नित्य सत्ता को ही ग्रहण करना इस नय का प्रयोजन है।

१३ उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुध्द द्रव्यार्थिक नय

'काल' की अपेक्षा वस्तु का विचार करते हुए प्रकृत नय युगल के प्रथम शुद्ध अंग ने अर्थात् निरपेक्ष सत्ता ग्राहक नय ने वस्तु की एक सामान्य नित्यता का परिचय दिया। यहा विचारना यह है कि क्या वस्तु सर्वथा नित्य है? वास्तव मे कूटस्थ नित्य कोई भी वस्तु अपनी सत्ता की सिद्धि नही कर सकती है, क्योकि परिणमन के अभाव मे वह स्वय किसी प्रकार भी कार्यकारी सिद्ध नही हो सकती, और अर्थ क्रिया से शून्य वस्तु असत् है। कार्य कारण भाव की सिद्धि भी तब ही हो सकती है जब कि वस्तु को परिणमन शील माना जाये। तथा प्रत्यक्ष द्वारा भी वस्तु परिणमन शील देखी जा रही है। इस प्रकार आगम युक्ति व अनुभव तीनो से ही वस्तु परिणमनशील सिद्ध होती है। अत: सर्वथा नित्य मानना भ्रमोत्पादक है।

वस्तु मे नित्यता है अवश्य, क्योकि यदि वह न हो तो परिणमन करने पर वस्तु ही बदलकर अन्य रुप बन बैठे, अर्थात चेतन बदलकर जड बन बैठे, मनुष्य बदल कर घट बन बैठे, परन्तु ऐसा होना असम्भवहै। जिस प्रकार से बालक युवा व वृद्ध इन सर्व ही परिवर्तन शील अवस्थाओ मे मनुष्यत्व सामान्य वह का वह ही रहता है, इसी प्रकार अपनी परिवर्तनशील, सभी पर्यायों मे त्रिकाली द्रव्य-सामान्य वह का वह ही रहता है। यही उसकी नित्यता है।

तात्पर्य यह कि जो वस्तु नित्य है वही अनित्य भीहै और जो अनित्यहै वही नित्य भीहै। इस प्रकार वस्तु को सत्ता नित्यानित्यात्मक है, अर्थात उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त त्रयात्मकहै ।

उत्पाद व्यय मे निरपेक्ष सत् 'सत्' नही है, उत्पाद व्यय सापेक्ष ही सत् है । इसलिये पव नय का विषय तभी सम्यक हो सकता है जव कि वह इस अपने दूसरे अग के साथ मैत्री करके वर्ते । उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक नय वस्तु कि सत्ता मे उपरोक्त प्रकार त्रयात्मकता दखता है । ऐसा भी नहीहै कि उत्पादिक इन तीनो में कोई समय भेद हो।जिस समय नवीन पर्याय का उत्पाद ह उसी समय पूव पर्याय का व्यय है और उसी समय स्वरुप या सत्ता सामान्य मे वह ध्रुव भी है। जिस प्रकार कि जिस समय घट पर्याय की अपेक्षा विनाश होताहै उसी समय कपाल पर्याय की अपेक्षा उत्पाद देखा जाताहै और उसी समय मिटटी की सामान्य सत्ता रुप से वह ध्रुव भीहै ही। इन तीनो मे समय भेद नहीहै और फिर भी यह विरोध को प्राप्त नही होते। यह दृष्टि की ही कोई विचित्रताहै। इस प्रकार उत्पाद व्यय से विशिष्ट वस्तु की ध्रुव सत्ता को दर्शाना इस नय का लक्षणहै। एक अखण्ड सत् मे तीनपना उत्पन्न करने क कारण इसका अन्तभाव शास्त्रीय नयो के व्यवहार नय में होता है ।

अव इनो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धारण दखिये ।

१ व न च ।१६८ "उत्पादव्ययविमिश्रा सत्ता गहीत्वाभणति
ततयत्वम । द्रव्यस्यक्समये य सहि अशुद्धो द्वितीय
।१९५।"

अर्थ – उत्पाद व्यय से मिश्रित सत् को ग्रहण करके जो द्रव्य को एक समय में ही तीन पना बताता है, वह ही दूसरा

अशुद्ध नय है अर्थात उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

२ आ प ।७।पृ ७१ "उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको, यथैकास्मिन् समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ।"

अर्थ— उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है, जैसे कि एक ही समय मे द्रव्य को उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक बताना ।

उपरोक्त प्रकार से द्रव्य की ध्रुव अखण्डित सत्ता मे उत्पाद व व्यय देखने के कारण यह उत्पाद व्यय सापेक्ष है । उत्पाद व्यय मान लेने पर उसकी नित्यता कुछ कलकित सी हुई प्रतीत होती है इसलिये अशुद्ध है । उत्पाद व्यय बताकर भी सत्ता सामान्य को ही दर्शाने की मुख्यता है इसलिये सत्ता ग्राहक है । सामान्य एक नित्य द्रव्य का परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक है । अत. 'उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यही इस नय का कारण है ।

इससे पहिले वाले नय के द्वारा वस्तु को उत्पाद व्यय से निरपेक्ष केवल ध्रुव सत्ता रूप दर्शाया गया था । उसे पढकर आपको कही यह भ्रम न हो जाये, कि वस्तु तो कूटस्थ नित्य है, और यह परिवर्तन शील दृष्टि व्यक्तिमे भ्रम मात्र है, दृष्टि का विकार है, आपके इस भ्रम के शोधनार्थ ही उस नय के साथ साथ अनित्यता दर्शाने वाले इस नय का होना आवश्यक है । नित्यत्व या ध्रुवत्व तो उस वस्तु का अंग है, पर सम्पूर्ण वस्तु नही । उस के साथ साथ उत्पाद व व्यय भी उसी वस्तु के ही अंग है । ये परिवर्तनशील पर्याये भ्रम नही है, बल्कि सत् है । इन तीनों अंगो से समवेत ही वस्तु है । इस प्रकार

एकान्त नित्यवाद के छेदनार्थ ही यह नय है । यह इसका प्रयोजन जानना ।

१४ परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

द्रव्यार्थिक नय दशक मे अब तक तीन युगलो का कथन हो चुका । प्रथम युगल में वस्तु के सामान्य स्वचतुष्टय के आधार पर उसका स्वरूप दर्शाया गया । दूसरे युगल में उस चतुष्टय के प्रथम व द्वितीय अंग जो 'द्रव्य' व 'क्षेत्र' उनके आश्रय पर गुण-गुणी आदि में अभेद व भेद दर्शाकर उसका परिचय दिया गया । तीसरे युगल में उस चतुष्टय का तीसरा अंग जो 'काल' उसके आश्रय पर उसके उत्पाद व्यय व ध्रौव्यता का प्रतिपादन किया गया । अब उस चतुष्टय का चतुर्थ अंग जो 'भाव' उसके आश्रय पर उसका परिचय देना प्राप्त है ।

भाव शब्द अनेको अर्थो में प्रयुक्त होता है । त्रिकाली शुद्ध व निर्विकल्प पारिणामिक भाव भी है, और क्षायिक औदयिक आदि क्षणिक शुद्ध व अशुद्ध भाव भी भाव है । अपनी त्रिकाली पर्यायो में अनुगत गुण भी भाव है तथा उसकी सूक्ष्म व स्थूल अर्थ व व्यञ्जन पर्याये भी भाव है । रागादि विभाव भाव भी भाव है और वीत-रागता आदि स्वभाव भाव भी भाव है । वस्तु के उत्पादक व्यय ध्रुव-त्व भी उसके भाव है और द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप स्वचतुष्टय भी उसके भाव है--इत्यादि । वस्तु के इन सब भावात्मक भेदो के साथ वस्तु के स्वभाव का व्यतिरेक व अन्वय दर्शाना इस नय युगल का काम है । अर्थात उपरोक्त द्वन्दात्मक अनेक गुण पर्यायो आदि रूप भावो से व्यावृत्त कोई एक निर्द्वन्द विविक्त भाव परसे वस्तु के स्वभाव का परिचय देना परम भाव का काम है, और वस्तु के स्वचतुष्टय भूत अनेक विशेषो के साथ उस व्यावृत्त भाव का तथा उसके सामान्य चतुष्टय का अनुगताकार दर्शाकर, सब ही विशेष भावो में सामान्य भाव को ओत पोत रूप से दिखाना, इस युगल के दूसरे भेद 'अन्वय ग्राहक' का काम है ।

वस्तु का पुर्ण निर्विकल्प व निर्द्वन्द तथा उपरोक्त सर्व द्वैतरूप भावो से विविक्त वह त्रिकाली भाव क्या है, यह विचारते जाते हैं तो न गुणो मे ही वह योग्यता दिखाई देती है और न पर्यायों मे ही। पर्याय तो अनित्य होने के कारण तथा गुण अपनी पर्यायो से कलकित रहने के कारण निर्विकल्प व निर्द्वन्द नही कहे जा सकते। इसी प्रकार उत्पादादि भाव भी इस कोटिमे ग्रहण नही किये जा सकते। अब शेष रहा वस्तु का पारिणामिक भाव, सो दृष्टि वहां ही जा कर ठहरती है। क्योंकि यह भाव ही, जैसा कि पहिले भली भाति बताया जा चुका है, अत्यन्त विविक्त है। इसमे न अनेक स्वभावी पने को अवकाश है, न प्रदेशो की कोई अपेक्षा है। इसको न काल से सीमित किया जा सकता है और न भाव से इस मे न शुद्धता देखी जा सकती है और न अशुद्धता। इसमे न गुण प्रतिष्ठित हो पाते है और न पर्याये। इस मे न उत्पाद होता है न व्यय। इन सर्व विकल्पो से व्यावृत वह तो एक अखण्ड व नित्य शुद्ध भाव है, जिस मे न आदि है, न मध्य या अन्त। अर्थात गुण व पर्यायो आदि का निषेध करने के अतिरिक्त जिस का कोई विधि आत्मक लक्षण ही किया नही जा सकता, ऐसा व पारिणामिक भाव ही वस्तु के स्वभाव का असल प्रतिनिधि है।

वस्तु का वस्तु पना देखे तो क्या शुद्ध और क्या अशुद्ध। वह तो जब भी जहा भी जिस अवस्था मे भी देखो वस्तु पना ही है। जैसे स्वर्णत्व का क्या शुद्ध और क्या अशुद्ध, क्या हीन व क्या अधिक। वह तो जब देखो स्वर्णत्व ही है, जिस भी स्वर्ण के जेवर मे देखो स्वर्णत्व ही है। एक रत्ती स्वर्ण मे भी उतना तथा वह ही है और १० तोले के जेवर मे भी उतना तथा वह ही है। 'त्व' प्रत्यय ही जिसका लक्षण है, वही निर्विकल्प तथा अत्यन्त विविक्त पारिणामिक भाव है।

यदि द्रव्य सामान्य के स्वभाव को देखना है तो उसकी सम्पूर्ण शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो को अथवा गुण कृत भेदो को दृष्टि से ओझल

करके देखिये। सत् के अतिरिक्त और क्या दीखता है? इसी प्रकार जीव द्रव्य को देखें तो चिन्मात्र के अतिरिक्त और क्या दिखता है? न वहा उत्पाद को अवकाश है न व्यय को। उत्पाद व व्यय के बिना ध्रुव भी किसे कहे? अत वह मत नयात्मक है ही नही। ज्ञान चारित्र आदि गुणो का द्वैत भी उस विविक्त व अद्वैत चित् सामान्य मे कैसे सम्भव हो। अत वह तो इन सब द्वन्दो से पृथक कोई स्व लक्षण भूत एक स्वभाव वाला ही है। इसके अतिरिक्त और कहे भी क्या?

तात्पर्य यह कि इस नय के द्वारा वस्तु का केवल एक विविक्त सामान्य त्रिकाली शुद्ध भाव ही स्वभाव माना जाता है, जैसे द्रव्य सामान्य सत स्वभावी है, जीव ज्ञानस्वभावी है, कर्म व शरीर अचेतन व मूर्त स्वभावी है, कालाणु व पुद्गलाणु एक प्रदेशस्वभावी है इत्यादि। एक द्रव्य के स्वभाव में अन्य द्रव्य के कर्तृत्वादि की कोई भी अपेक्षा ग्रहण नही की जा सकती, क्योकि स्वभाव स्वत सिद्ध होता है। इसलिये कर्मो के उदय व क्षय आदि की अपेक्षा से रहित जीव का स्वभाव तो त्रिकाली शुद्ध ही है। न उसमे बन्ध था और न दूर हुआ। वह तो पहिले ही से मुक्त था और अब भी मुक्त है। मुक्ति उत्पन्न करने का प्रश्न ही क्या? अत ससार व मोक्ष का द्वैत ही दिखता नही। मोक्ष मार्ग कोई चीज नही। स्वत सिद्ध स्वभाव मे न किसी का कर्तापना है और न भोक्तापना न बन्ध है और न मोक्ष, तथा न उनका कोई कारण ही है। सांख्य मत में पुरुष तत्वको त्रिकाली शुद्ध व अपरिणामी माना है सो इसी नय की अपेक्षा समझना सर्वथा नहीं। क्योकि जीव का पारिणामिक भाव वास्तव में वैसा ही है।

इस प्रकार अन्य सब भावो को गौण करके, उन से व्यावृत्त तथा अत्यन्त विविक्त एक मात्र पारिणामिक भाव के आश्रय पर, द्रव्य का निर्विकल्प परिचय देना इस नय का लक्षण है।

अब इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१ वृ. न. च।११६। "गृहणाति द्रव्यस्वभाव अशुद्धशुद्धोपचार परित्यक्तम् । स परमभाव ग्राही ज्ञात्वय सिद्धि कामेन ।११९।

अर्थः— अशुद्ध व शुद्ध पने के उपचार से रहित जो केवल द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है, सिद्धि की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओ को उसे ही परम भाव ग्राही नय जानना चाहिये ।

२ आ. प।७।पृ ७२। "परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक को, यथा ज्ञानस्वरूपात्मा । अज्ञानेकस्वभावानांमध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः ।"

अर्थः— परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय ऐसा है जैसे कि आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहना । यहा आत्मा के अनेक स्वभावो मे ज्ञान नाम का परम स्वभाव ही ग्रहण किया गया है ।

३ आ. प. ।१५। पृ १०८ "परमभावग्राहकेण भव्या भव्यपारिणामिक स्वभावः । कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभाव ।.. कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभाव. ।.....पुद्गल विहाय इतरेषाममूर्त्तस्वभाव । . कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्व ।

अर्थ.— परमभाव ग्राहक नय से भव्य और अभव्य ये पारिणामिक स्वभाव है । कर्म व नोकर्म का अचेतन स्वभाव है। कर्म और नोकर्म का मूर्त स्वभाव है । पुद्गल को छोडकर अन्य पदार्थो का अमूर्त स्वभाव है काल और पुद्गलाणुओ का एक प्रदेश स्वभावीपना है ।

४ वृ न च ।११६ "ण खलु जीवस्वभावो नो जनितो नो क्षयेण सभूत । कमणा सजीवो भणित इह परम भावे न ।११६।'

अर्थ—जीव का जो स्वभाव न कर्मों से उत्पन्न होता है और न कर्मों के क्षय से, वही जीव है, ऐसा परमभाव ग्राही नय कहता है ।

न दी।३।८४।१२८। "परमद्रव्यार्थिक नयाभिप्रायविषय परम-द्रव्य सत्ता तदपेक्षया 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन' सद्रूपेण चतनानामचेतनाना च भेदाभावात् ।"

अर्थ — परम द्रव्यार्थिक नय के अभिप्राय का विषय परम द्रव्य सत्ता महा सामान्य है । उसकी अपेक्षा मे "एक ही अद्वि तीय ब्रह्म है, यहा नाना—अनेक कुछ नही है" इस प्रकार का प्रतिपादन किया जाता है, क्योकि सद्रूप से चेतन और अचेतन पदार्थों में भेद नही है ।

६ वृ द्र स ।५७।२३६ "यस्तु शुद्धद्रव्यशक्तिरूप शुद्ध पारिणा-मिक परम भावलक्षण परमनिश्चयमोक्ष सच पूव मेव जीवे तिष्ठतीदानी भविष्यतीत्येव न ।"

अर्थ —शुद्ध द्रव्य की शक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक परमभावरूप परम निश्चय मोक्ष है वह तो जीव में पहिले ही विधमान है । वह परम निश्चय मोक्ष अब प्रगट होगी ऐसा नही है ।

७ स सा ।ता व ।३२० "सर्वविशुद्धपारिणामिक परम भाव ग्राहकेण शुद्धोपादानभूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्व-भोक्तृत्व—बन्ध—मोक्षादिकारणपरिणामशून्यो जीव इति सूचित ।"

अर्थ — सर्व विशुद्ध पारिणामिक परमभावग्राही शुद्धोपादान-भूत द्रव्यार्थिक नय से जीव कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बन्ध तथा मोक्षादि के कारण भूत परिणामो से शून्य है ।

भले ही स्वर्ण का जेवर शुद्ध हो या अशुद्ध, परन्तु उसमे पाया जाने वाला स्वर्णत्व या स्वर्ण का सामान्य स्वभाव न शुद्ध है न अशुद्ध, न हल्का है न भारी । वह तो सब ही जेवरो मे एक का एक है । इस ही प्रकार सर्व ही द्रव्यो का स्वभाव त्रिकाली निरुपाधिक व शुद्ध ही रहता है । यह इसका उदाहरण है ।

परम अर्थात उत्कृष्ट जो पारिणामिक भाव उसको ग्रहण करने के कारण परम भाव ग्राहक है, उस भाव के त्रिकाल शुद्ध होने के कारण शुद्ध है, और उसके आश्रय पर सामान्य द्रव्य का परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक नय है । इस प्रकार "परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय" ऐसा इसका नाम सार्थक है । यही इस नय का कारण है ।

परिवर्तन पाने पर भी वस्तु जूँ की तूँ ही स्वभाव मे स्थित है । उसका कुछ भी विगाड कि सुधार हुआ नही । परिवर्तन तो ऊपर ऊपर का कुछ नृत्य मात्र, वस्तु इससे विल्कुल अछूती रहती है, ऐसी वस्तु की नित्य महिमा है । यह वताना ही इस नय का प्रयोजन है ।

१५ अन्वय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

अव इस चौथे नय युगल के दूसरे भेद अन्वय ग्राहक नय का कथन करना प्राप्त है । अन्वय का अर्थ अनुगत रूप से रहना है । जिस प्रकार माला मे डोरा सर्व ही मोतीयो मे अनुगत रूप से पिरोया रहता है, जिस के कारण उसका एक्य रूप वना रहता है और मोती बिखरने नही पाते, जिस प्रकार क्रमवर्ती बालक व वृद्धादि अनेक अवस्थाओ मे उस मनुष्य का व्यक्तित्व अनुगताकार रूप से ओतप्रोत रहता है,

जिसके कारण कि उसका एक्य रूप बना रहता है, और व बालक वृद्धादि अवस्था बिखर कर पथक पृथक व्यक्तियो के रूप में दृष्ट नहीं हो पाती। उसी प्रकार वस्तु क सम्पूर्ण ही विशेष भावों मे उसका वह वह सामान्य भाव अनुगता कार रूप से ओत प्रोत हुआ देखा जाता है, जिसके कारण उन विशेषो रूप द्वैत में भी बराबर अद्वैत व एक्य भाव बना रहता है, और व सब विशेष बिखर कर पृथक पृथक सत् नही बन बैठते ।

द्रव्य की अपेक्षा सब ही अपने अवान्तर भेद रूप विशेप व्यक्तियो में उसकी एक सामान्य जाति अनुगत रहती है, जिस के कारण वह अनेक होते हुए भी एक कहलाता है, जैसे व्यक्ति की अपेक्षा आम व नीम आदि अनेक भेदो म विभक्त उन सब का अन्तर्भाव एक वक्ष की सामान्य जाति मे हो जाता है। क्षेत्र की अपेक्षा किसी भी पदार्थ के सख्यात या असख्यात अनेक प्रदेशो में उसका एक सामान्य सस्थान अनुगत रहता है, जिसके कारण वह एक कहलाता है और उसके वे प्रदेश बिखर कर पथक पृथक होने नही पाते, जस कि अनत परमाणुओ म निर्मित भी यह शरीर एकाकार है। काल की अपेक्षा आगे पीछे प्रकट होने वाली क्रमवर्ती अनेक अर्थ वे व्यञ्जन पर्यायो म उस वस्तु के सामान्य त्रिकाली गुण तथा सामान्य त्रिकाली द्रव्य अनुगत रूप स रहत ह, जिसके कारण परिवर्तन पाते हुए भी वह ज्यू की त्यू बनी रहती है, खण्ड खण्ड होकर अनेक रूप नही हो जाती, जैसे कि बालक व वृद्धादि अवस्थाओ रूप स परिवर्तन पाता हुआ भी वह व्यक्ति ज्यू का त्यू बना रहता है। इसी प्रकार भाव की अपेक्षा वस्तु क अनक गुणो में उसका वही पूर्वोक्त विविक्त सामान्य पारिणामिक भाव अनुगत रहता ह, जिसके कारण वस्तु की एकरूपता की कोई सीमा बनी रहती है और वह उसका उल्लघन करके अन्य रूप नही बन सकती, जसे कि अनेक शरीरो म क्रम पूर्वक वास कर लने पर भी म चेतन का चेतन ही हू, जड नही बन पाया हु । इसी प्रकार सर्वत्र अनुगत या अन्वय शब्द का अर्थ जानना।

इस नय युगल के प्रथम अग परम भाव ग्राहक नय के अत्यन्त विविक्त जो पारिणामिक भाव उसको ही वस्तु के स्वभाव रूप मे देखा था, परन्तु विचार करने पर गुणो व पर्यायो से अतिरिक्त उस पारिणामिक भाव की कोई स्वतत्र सत्ता प्रतीति मे नही आती । यद्यपि दृष्टि विशेष से सर्व विकल्पों का अभाव करके एक निर्विकल्प भाव के रूप मे पढा अवश्य जा सकता है, पर गुणो आदि से पृथक उसको वस्तु मे खोजा नही जा सकता, क्योकि उत्पाद व्यय रूप उसकी कोई भी अर्थ क्रिया देखने मे नही आती, जैसे कि ज्ञान गुण की जानन क्रिया देखने मे आती है, वह परिणामिक भाव वस्तु के उन अर्थ क्रिया कारी त्रिकाली अनेक गुणो मे ही अनुगत रूप से व्यापकर रहता है, और वहा ही उसे पढा भी जा सकता है । उदाहरणार्थ जीव के ज्ञान गुण मे या श्रद्धा गुण मे या चारित्र व वेदना गुण मे यदि झुक कर देखे तो सामान्य रूप से एक चेतना शक्ति ही दिखाई देती है, इन गुणो से पृथक वह चेतना कुछ नही है ।

अनेक विशेषो मे अनुगत तथा नित्य एक रूप भाव को ही सामान्य कहते है । द्रव्य की अपेक्षा अपने अवान्तर अनेक भेदो मे रहने वाली एक जाति सामान्य द्रव्य कहलाती है । क्षेत्र की अपेक्षा अनेक प्रदेशो मे व्याप कर रहनेवाला एक सस्थान सामान्य क्षेत्र कहलाता है । काल की अपेक्षा अनेक पर्यायो मे व्याप कर रहने वाला एक सत् सामान्य काल कहलाता है । भाव की अपेक्षा अनेक गुणो व पर्यायो मे व्यापकर रहने वाला द्रव्य का एक्य भाव सामान्य भाव कहलाता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव मे इन चारो मे पृथक पृथक तथा इन के समूह रूप अभेद चतुष्टय मे व्यापकर रहने वाली वस्तु की अनुगताकार वह सामान्यता ही इस अन्वय द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

इस से पूर्व वर्ती परम ग्राहक नय मे इन सर्व भेदो से वस्तु स्वभाव की व्यावृत्ति दर्शाई गई थी, और इस अन्वय ग्राहक नय मे

इन सब भेदो के साथ वस्तु स्वभाव का अनुगताकार सम्बन्ध दर्शाया गया है। अर्थात् पूर्व नय विविक्तता दर्शाता था और यह नय अन्वय या अनुगताकारिता दर्शाता है। यही दोनो में अन्तर है। वास्तव मे यह वस्तु को अनेक दृष्टियो से पढने का अभ्यास कराया जा रहा है ताकि आगे जाकर इन सब में से किसी एक दृष्टि विशेष का आश्रय करके इष्ट साधना सम्भव हो सके।

अब इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ व न च।१९७ "नि शेषस्वभावाना अन्वयरूपेण सवद्रव्यैं। विभावनामि य सोऽन्वयद्रव्यार्थिको भणित ।१९७।"

अर्थ —सम्पूर्ण स्वभावो का अपने द्रव्यो के साथ अथवा विभावो के साथ जो अन्वयरूपसे रहना देखता है, वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय कहा गया है।

२ आ प ।७। पृ ७१ "अन्वय द्रव्यार्थिको, यथा गुणपर्यायस्वभावद्रव्यम्।"

अर्थ— अन्वय द्रव्यार्थिक ऐसा है, जैसे कि गुण पर्याय स्वभावी ही द्रव्य है।

३ आ प ।१५।पृ१०७ "अन्वयद्रव्यार्थिक नये एकस्याप्यनेक द्रव्यस्वभावत्व।"

अर्थ— अन्वय द्रव्यार्थिक नय से एक के भी (उस अखण्ड एक पारिणामिक भाव के भी) अनेक द्रव्य स्वभावपना है।

४ आ प ।१७ पृ १२१ सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्य द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिक ।"

अर्थ — सामान्य जो वस्तु के अस्तित्वादि गुण, उनको ही अनुगत रूप से जो प्राप्त हो या उन ही की अनुगत रूप से जो व्यवस्था करे वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

५ प्र सा । ता. वृ । २१६ "पूर्वोक्तोत्पादादित्रयस्य स्वसवेदनज्ञानादिपर्यायित्रयस्यत चानुगताकारेणान्वयरूपेण यदाधारभूत तदन्वय द्रव्य भण्यते, तद्विपयो यस्य स भवत्यन्वयद्रव्यार्थिकनय । सथेद ज्ञानाज्ञानपर्यायिद्वये भङ्गत्रय व्याख्यात तथापि सर्वद्रव्यपर्यायिषु यथासभव ज्ञातव्यमित्यभिप्राय ।"

अर्थ — पूर्वोक्त उत्पादि तीनो का तथा सवेदन ज्ञानादिक गुणो की उत्पत्ति विनाश व ध्रुवता रूप पर्यायत्रय का अनुगताकार रूप से जो आधारभूत है वह अन्वय द्रव्य कहलाता है। वह अन्वय द्रव्य ही है विषय जिसका वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय होता है । जिस प्रकार ज्ञान व अज्ञान इन दो पर्यायो मे उत्पादादि की अपेक्षा तीन तीन भगो का कथन किया गया है उसी प्रकार सर्व द्रव्यो की पर्यायो मे भी यथा सम्भव जानना चाहिये, ऐसा अभिप्राय है।

तहा गुणो मे सामान्य स्वभाव का अन्वय तो इस प्रकार है, जैसे कि नमक मिर्च आदि के सर्व स्वादो मे अनुगत जीरे के पानी का एक सामान्य विजातीय स्वाद; व और पर्यायो मे उसका अन्वय इस प्रकार है, जैसे कि बालक युवा व वृद्ध मे अनुगत एक सामान्य मनुष्यत्व या खट्टे मीठे कडवे आदि स्वादो मे अनुगत एक सामान्य रस । यह इस नय का उदाहरण है।

वस्तु के सामान्य स्वभाव या पारिणामिक भाव का, अपने विशेष स्वभावो के साथ अन्वय दर्शाने के कारण तो अन्वय है, तथा एक

सामान्य द्रव्य का परिचय देने के कारण द्रव्यार्थिक है, इस प्रकार 'अन्वय द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है। यही इसका कारण है। भेद ग्राहक होने के कारण यह द्रव्यार्थिक नय की अशुद्ध प्रकृति है।

परम भाव ग्राहक नय के विषय पर से जो एक भ्रम उत्पन्न हो गया था कि वस्तु तो सर्वथा एक स्वभावी है, उस भ्रम को दूर करके वस्तु की अनेक स्वभावता का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है।

द्रव्यार्थिक नय के पाच युगलो में से चार युगलो का कथन कर दिया गया, जिनके द्वारा वस्तु के स्वचतुष्टय में सामान्यपना व विशेषपना दर्शाकर त्रिकाली द्रव्य सामान्य का परिचय दिया गया। अब पाचवें युगल का कथन करना प्राप्त है।

१६ कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

लोक में छः द्रव्य है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल। इन छहो मे जीव तो चेतन द्रव्य है और अगले पाचो अचेतन। इन में से भी धर्म आदि आगे वाले चार द्रव्य तो त्रिकाली असंयोगी रहते है, अर्थात एक दूसरे के साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध को प्राप्त नही होते। परन्तु जीव व पुद्गल ये दोनो अपनी किसी विशेष शक्ति के कारण परस्पर बन्ध को प्राप्त होते रहते है और बिछुड़ते भी रहते है। लोक मे दृष्ट यह सब पसारा वास्तव में उनके बन्ध का ही फल है। शरीरादि के रूप में जड पुद्गल द्रव्य जीव के साथ बन्ध जाता है और अनेक जड परमाणु परस्पर में बन्धकर स्कन्ध पदार्थों की उत्पत्ति के कारण बनते है। इन दोनो पदार्थों का यह तांता सदा से चल रहा है, और सदा चलता रहेगा। इसलिये स्वचतुष्टय से समवेत पदार्थ का परिचय पालने के पश्चात अब पर

चतुष्टय की बद्ध अवस्थाओ मे स्थित पदार्थो का परिचय पाना भी आवश्यक है।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, वस्तु मे शुद्धता व अशुद्धता दो प्रकार से देखी जा सकती है—एक तो वस्तु मे गुण पर्याय आदि विकल्पों कृत अभेद व भेद रूप से, और दूसरी उपरोक्त बन्ध के सद्भाव य अभाव कृत विभाग व स्वभाव के रूप से। इनमे पहिले प्रकार की शुद्धता व अशुद्धता का पर्याप्त विचार चार नय युगलो द्वारा किया जा चुका है। अब दूसरे प्रकार की बद्ध द्रव्य की शुद्धता व अशुद्धता का विचार करना इस पांचवे नय युगल का काम है। क्योकि इस प्रकार का बन्ध केवल जीव व पुद्गल इन दो द्रव्यो मे ही सम्भव है, इसलिये इस नय युगल का व्यापार भी सर्व द्रव्यो मे न होकर इन दो द्रव्यों की विशेषताओं को देखने मे ही होता है।

जीव द्रव्य बन्ध की अपेक्षा दो भेदो मे विभाजित है—ससारी व मुक्त। शरीर व कर्म सयुक्त जीव ससारी है और उनसे वियुक्त मुक्त है बद्ध होने के कारण ससारी जीव अशुद्ध कहलाता है और बन्ध शून्य होने के कारण मुक्त जीव शुद्ध कहलाता है। ससारी जीव के द्रव्य क्षेत्र काल व भाव चारो ही अशुद्ध है, और मुक्त जीव के चारो ही भाव शुद्ध है तहा मुक्त जीव की शुद्धता को देखना इस प्रकृत कर्मोपाधि निरपेक्ष नय का काम है, और ससारी जीव की अशुद्धता को देखना इस के सहवर्ती कर्मोपाधि सापेक्ष नय का काम है। अशुद्धता का अर्थ यहा औदयिक भाव है; और इसी प्रकार शुद्धता का अर्थ भी पारिणामिक भाव नही है बल्कि क्षायिक भाव है। क्योकि पट सयोग व वियोग की अपेक्षा इन दोनों ही भावों मे है, पारिणामिक भाव मे नही।

भले ही ससारी जीव औदयिक भाव मे स्थित व अशुद्ध हो परन्तु उसे दृष्टि विशेष के द्वारा मुक्त जीव के क्षायिक भाव

वत् शुद्ध देखा जा सकता है। शरीर और नाम रूप कर्मों आदि को यदि दृष्टि से ओझल कर दिया जाये तो वही ससारी जीव किमात्मक दृष्ट होगा ? क्या उसका अभाव दिखाई देगा ? नही पर चतुष्टय स्वरूप सयोगी पदार्थों का तथा रागादि सयोगी भावो का अभाव होने पर भी वस्तु के स्व चतुष्टय का तीन काल में अभाव होना सम्भव नही है। शरीरादि को जला देने पर भी स्वचतुष्टय से तन्मय जीव द्रव्य की सत्ता अवश्य रहती है। यह सत्ता किमात्मक दिखाई देगी? स्पष्ट है कि शरीरादि तथा रागादि को दृष्टि से दूर करके देखें तो जीव मुक्त वत् शुद्ध दिखाई देगा। बस यही इस कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात कर्मो आदि पर पदार्थों के सयोग का निरास करके सब जीवो को मुक्त वत देखना इस नय का लक्षण है।

यद्यपि यहा केवल जीव द्रव्य पर ही इस नय का प्रयोग करके दर्शाया है, पर पुद्गल द्रव्य पर भी समान रूप से इसका प्रयोग किया जा सकता है, जसे कि स्थूल पदार्थों में भी बन्ध विशेष को दृष्टि से ओझल करके शुद्ध परमाणुओ की पृथक पृथक शुद्ध सत्ता को देखा जा सकता है।

अब इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ न च न १९१ "कर्मणा मध्यगत जीव यो गृह्णाति सिद्ध सकाश। भण्यते स शुद्ध नय खलु कर्मोपाधिनिरपेक्ष ॥१९१॥"

अर्थ— कर्मों के मध्यगत ससारी जीव को जो नय सिद्ध जीवो के सदृश ग्रहण करता है उसे कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

२. आ प. ।७।पृ.६६ "कर्मोपाधिनिरपेक्ष. शुद्ध द्रव्यार्थिक को यथा ससारी जीव सिद्धसद्दृक शुद्धात्मा ।"

अर्थः-- कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है, जैसे कि ससारी जीव को सिद्ध के सदृश्य शुद्धात्मा कहना ।

३ नि सा ।ता वृ ।१०७ कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्ध निश्चयद्रव्यार्थिकनयापेक्षया हि एभिर्नोकर्मभिर्द्रव्यकर्म-भिश्च निर्म्मुक्तम् ।"

अर्थ -- कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से जीव द्रव्य इन नो कर्मो व द्रव्य कर्मो से निर्मुक्त है ।

शरीर या कर्मो की तथा उपलक्षण से क्षेत्र धनादि की उपाधि को दूर करने के कारण यह कर्मोपाधि निरपेक्ष है, और क्षायिक भाव रूप उसकी शुद्धता को ग्रहण करने के कारण शुद्ध है । काल कृत भेद न करक जीव सामान्य मे ही उपरोक्त भाव ग्रहण करने के कारण द्रव्यार्थिक है ।अत 'कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय' ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह इस नय का कारण है। ससारी जीव मे भी शुद्धता को दर्शाकर मोक्ष मार्ग के प्रति उत्साह प्रदान करना इसका प्रयोजन है ।

द्रव्यार्थिक नय दशक के इस अन्तिम युगल मे बद्ध वस्तु का स्वरूप दर्शाना इष्ट है । तहा पहिले कर्मोपाधि निरपेक्ष नय के द्वारा समस्त सयोगो व तद्-कृत विभावो को दृष्टि से ओझल करके वस्तु या जीव को क्षायिक भाव रूप शुद्ध देखा गया । अब इस दूसरे कर्मोपाधि सापेक्ष नय द्वारा उसी वस्तु या जीव को सयोगो तथा तद्कृत भावो से विशिष्ट, औदयिक भाव स्वरूप देखा जाता है ।

१७ कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

जो कुछ भी जड व चेतन पदार्थों का यह पसारा लोक में दृष्ट हो रहा है, यह सब ही अनेक द्रव्यों के परस्पर बन्ध का फल है। कोई भी पदार्थ अन्य पदार्थों के संयोग से रहित अत्यन्त शुद्ध देखने में नहीं आता है। सब ही जीव शरीर धारी हैं वे मनुष्य हो या तिर्यंच सब ही जीव रागी द्वेषी हैं, वे मनुष्य हो या तिर्यंच। इसी प्रकार सब ही स्थूल जड पदार्थ अनेक परमाणुओं के संघात स्वरूप हैं। इन संयोगों से पृथक कोई भी शुद्ध जीव या शुद्ध परमाणु देखने में नहीं आता। अतः सिद्ध होता है कि इन सब संयोगों को धारण किये रहना ही वस्तु का स्वभाव है।

और जब उनका स्वभाव ही ऐसा है, तब उसे संयोगी भी क्या समझा जाय। संयोगों से रहित कोई असंयुक्त पदार्थ दिखाई दे तो उसके मुकाबले में इसे संयोगी कह सकते हैं। परन्तु जिस दृष्टि में असंयुक्त पदार्थ की सत्ता ही नहीं उस दृष्टि में इसे संयोगी भी कैसे कह सकते हैं? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कोई इसमें क्या करे। जीव का स्वरूप ही शरीर धारी व रागी द्वेषी है, तथा पुद्गल का स्वरूप ही इन टूटने फूटने वाले स्थूल पदार्थों स्वरूप है।

इस प्रकार की दृष्टि से देखने पर सब ही जीव तथा सब ही पुद्गल अशुद्ध ही दिखाई देते हैं। बस यही कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात सब ही जीवों को शरीर व कर्मों [illegible] रागी [illegible] स्वरूप देखना [illegible] है। इसी प्रकार सब ही पुद्गल पदार्थों को परस्पर [illegible] स्थूल [illegible] देखना [illegible] नय का लक्षण है। [illegible] जीव अधिक मुख्य है, इसलिये [illegible] मुख्य किये गये हैं। [illegible] लक्षण [illegible] प्रकार समझ लेना।

[illegible] युक्ति व अनुभव के अर्थ कुछ उदाहरण [illegible]।

१ बृ न. च. ।१९४ "भावान्रागादीन्सर्वावे यस्तु जल्पति। स हि अशुद्धोउक्त कर्मणामुपाधि सापेक्ष ।१९४।"

अर्थ -- जो सर्व ही जीवो मे रागादि भावो को ग्रहण करता है, वह कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

२. आ प।७।७० "कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको यथा क्रोधादिकर्मजभाव आत्मा ।"

अर्थ — कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय ऐसा है जैसे कि आत्मा को क्रोधादि कर्मज भावस्वरूप कहना ।

कर्मोपाधि सहित जीव को देखने के कारण कर्मोपाधि सापेक्ष है, जीवकी अशुद्धता का प्रतिपादन करने के कारण अशुद्ध है, और कालकृत भेद न करके जीव सामान्य को अशुद्ध रूपेण ग्रहण करने के कारण द्रव्यार्थिक है। अत "कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थि नय" ऐसा इसका नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है और सदा शिव पने की कल्पना का निरास करके, वर्तमान की इस अशुद्धता को दर्शा कर, इसे दूर करने तथा शुद्ध स्वरूप मे स्थिति पाने का उपदेश दना इसका प्रयोजन है ।

१८, द्रव्यार्थिक के अनेक भेदो का समन्वय

यहा इस विषय सम्बन्धी बहुत सी शकाये उठ रही है, जिनका स्पष्टीकरण होना अत्यन्त आवश्यक है । सो ही नीचे किया जाता है।

१. प्रश्न — सामान्य द्रव्यार्थिक, शुद्ध द्रव्यार्थिक अशुद्ध द्रव्यार्थिक मे क्या अन्तर है ?

उत्तर — सामान्य विशेपात्मक वस्तु मे विशेप को गौण करके सामान्य का ही मुख्य रूपेण परिचय देने वाला सामान्य

द्रव्यार्थिक नय है। सामान्य का परिचय भी दो प्रकार से दिया जा सकता है—अभेद रूप से तथा भेद रूप से। विशेषों की सर्वथा अपेक्षा ही न करके केवल सामान्य धर्मात्मक ही वस्तु का बताना अभेद विवक्षा है, जैसे सन्मात्र द्रव्य कहना या चिन्मात्र जीव कहना। यही शुद्ध द्रव्यार्थिक का लक्षण है। वस्तु में सामान्य व विशेष का भेद करके विशेष को लक्षण बना कर गौण रखना और सामान्य को विशेष्य बना कर मुख्य रखना भेद विवक्षा है। अर्थात विशेषों से विशिष्ट सामान्य को दर्शाना भेद विवक्षा है। जैसे गुण पर्याय वाला द्रव्य है या ज्ञान दर्शन वाला जीव है ऐसा कहना। यही अशुद्ध द्रव्यार्थिक का लक्षण है।

उदाहरणार्थ ज्ञानादि गुणों व मनुष्यादि पर्यायों में अनुगत निर्विकल्प दिखानी जीव सामान्य द्रव्यार्थिक नय का विषय है। उसमें से जीव का चिन्मात्र रूप रूप प्रगट हो जाना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, और उसे ज्ञानादि गुणों व मनुष्यादि पर्यायों का समूह या अधिष्ठान दर्शाकर उसका विशेष स्पष्ट परिचय देना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। यहाँ तीनों में अन्तर है।

२ प्रश्न—द्रव्यार्थिक का लक्षण तो केवल अभेद सामान्य को ग्रहण करना है, फिर इस नय के शुद्ध अशुद्ध आदि और भेद होने कैसे सम्भव है?

उत्तर—उसी अभेद वाली द्रव्यार्थिक के विषय का स्पष्ट बोध कराने के लिये।

३. प्रश्न—अभेद मे भेद हो ही नही सकता, फिर स्पष्टता दर्शाने के लिये भी भेद कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—यह वात ठीक है, कि सामान्य तत्व अभेद है, परन्तु सर्वथा अभेद हो ऐसा नही है। यदि ऐसा हुआ होता तो जीरे के पानी के अभेद स्वाद मे से नमक व मिर्च आदि की पृथक पृथक हीनाधिकता का विवेक उत्पन्न करना असम्भव हो जाता। यदि कहो कि यह दृष्टान्त तो यहा लागू नही होता, क्योकि इसमे तो यथार्थत ही नमक मिर्च आदि की पृथकता है, तव दूसरा दृष्टान्त अग्नि का लीजिये।

अग्नि आपके रसोई घर मे भी काम आती है, और आपके कमरे मे जलने वाले दीपक मे भी। रसोई-घर मे वैठकर पढने का विकल्प आपको कभी नही होता, क्या प्रकाश नही है ? और कमरे मे वैठकर दीपक पर हाथ सैकने का विचार नही आता, क्या दीपक की अग्नि मे उष्णता नही है ? रसोई घर में खाना पकाने का ही विकल्प क्यो होता है ? यदि अग्नि के प्रकशपने व ऊष्णपने मे सर्वथा भेद न हुआ होता तो उनमे भिन्न भिन्न स्थलो पर भिन्न भिन्न जाति के काम लिये जाने सम्भव नही थे।

दूसरी प्रकार से भी—अग्नि की उष्णता को तो आप शरीर के द्वारा जान पाते है और प्रकाश को नेत्र द्वारा। यदि इन दोनो मे सर्वथा भेद न हुआ होता तो आखे मीच लेने पर भी केवल शरीर से ही उष्णता व प्रकाश दोनो का ग्रहण हो गया होता और इसी प्रकार दूर बैठकर अग्नि को देखने मात्र से आख तपने लग गई होती।

इस पर से सिद्ध होता है कि भले ही उष्णता व प्रकाश अग्नि में ओत प्रोत एक रस रूप होकर पडे हो, पर इनका प्रयोग व अनुभव भिन्न भिन्न रूप में हो रहा है । जो उष्णता का प्रयोग व अनुभव है वह प्रकाश का प्रयोग व अनुभव नहीं है, और इसी प्रकार जो प्रकाश का प्रयाग है वह उष्णता का प्रयोग व अनुभव नहीं है। अत भले ही क्षेत्र या प्रदेशो की अपेक्षा वे दोनो अभेद हा, परन्तु अपने अपने भाव या स्वरूप की अपेक्षा दोनो में भेद अवश्य है। वस्तु भेदा भेदात्मक है । यही दर्शाना तो अनेकान्त की महिमा है।

४ प्रश्न—पहिले आप स्वय ऐसा कह आये ह कि भेद रूप तो वस्तु वास्तव में है ही नही, भेद का ग्रहण वस्तु के अनुरूप नही । इसलिये भेद कल्पना सापेक्ष सब ही अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयो का ज्ञान मिथ्या हो जायेगा ?

उत्तर—ठीक है भाई ! ऐसा कहा अवश्य था, पर उसका अभिप्राय समझना चाहिये, शब्द नही । वहा भेद से तात्पर्य शरीर में दीखने वाला प्रादेशिक भेद है, भावात्मक भेद नही । जैसे कि कुण्डे में दही' इस प्रकार द्रव्य में गुण नही है, फिर भी 'द्रव्य में गुण है' ऐसा कहा जाता है । 'दण्ड रखने वाला दण्डी' इस प्रकार गुणादिक रखने वाला द्रव्य नही है, फिर भी वह गुणी पर्याय वाला कहा जाता है, । 'धन वाला धनवान' इस प्रकार गुण पर्यायवान द्रव्य नही ह, फिर भी वह गुण पर्यायवान कहा जाता है । हाथ पैर आदि शरीर के अग ह उस प्रकार गुण पर्याय आदि द्रव्य के अग नही है, फिर भी द्रव्य के अगो कहा जाता है । तथा अन्य भी अनेक

प्रकार से शब्दो मे जिस जाति का भेद साधारण दृष्टि मे दिखाई देता है, उस प्रकार भेद वाली वस्तु सर्वथा नही है, ऐसा अभिप्राय रखकर ही वहा भेद का निषेध किया था। यदि इस बात का निषेध न करें तो शब्द सुनने वाले या पढने वाले को उपरोक्त प्रकार का भ्रम हुए बिना नही रह सकता, और यदि ऐसा हो जाये तो उसका ज्ञान वस्तु के अनुरूप कैसे कहा जा सकता है। तब तो वह मिथ्या ही होगा।

पर इसका यह अर्थ भी नही कि भेद सर्वथा नही है। भेद अवश्य है, परन्तु उपरोक्त प्रकार का नही, बल्कि अग्नि मे पडे उष्णता व प्रकाशकत्व रूप है। ये भेद वस्तु से कभी पृथक नही किये जा सकते है। ये पहिले पृथक पडे थे, फिर जोडे गये हो, ऐसा भी नही है। या वस्तु के एक कोने मे एक भेद या अग रहता हो और दूसरे कोने मे दूसरा, ऐसा भी नही है। वे तो सारे के सारे अंग या गुण पर्याय तो वस्तु के सर्वाग मे व्यापकर एक रस रूप रहते है। पृथक नही किये जा सकते, पर इनका पृथक पृथक कार्य दृष्टि मे आता अवश्य है—जैसे ऊष्णता का काम पकाना और प्रकाश का काम पढाना। बस इन पृथक पृथक कामो को देख-कर ही वस्तु मे पडी अनेक शक्तियो का सज्ञाकरण कर लिया गया है। द्रव्य पहिले और गुण पीछे या गुण पहिले और द्रव्य पीछे ऐसा कुछ भेद नही है।

और इस प्रकार भेद है भी और नही भी है। व्याप्य व्यापक पने की या क्षेत्र की अपेक्षा अभेद है, पर अपने अपने स्वरूप अस्तित्व या भाव की अपेक्षा भेद

है। ऐसा ही अनेकान्त वस्तु की महिमा है। उसे पढाने को अनेकान्त सिद्धान्त ही समर्थ है इस प्रकार का ज्ञान वस्तु के अनुरूप ही है, अत इस प्रकार से भेदो की सापेक्ष स्वीकृति मिथ्या नही सम्यक है।

५ प्रश्न—फिर अभेद पर ही जोर क्या दिया जा रहा है, उसे ही शुद्ध क्यो बताया जाता है ?

उत्तर—क्योकि वस्तु मे तो वास्तव में वे उपरोक्त रीति मे एक रस रूप ही है, पृथक पृथक नही। समझने और समझाने के लिये भेद डालना तो वस्तु की महिमा पर कलक लगाना है, क्योकि वस्तु ऐसी है ही नही। पृथक पृथक उन गुण और पर्यायो की स्वतन्त्र सत्ता ही इस लोक में नही है। अत इस प्रकार का भेद ज्ञान वस्तु के ठीक ठीक अनुरूप नही है। इसीलिये भेदो के द्वारा जानने का श्रम केवल अभ्यास करने तथा वस्तु की विशेषताओ से परिचय प्राप्त करने को ही है, वस्तु को वैसी पृथक पृथक भेदो वाली समझने के लिये नही। यही कारण है कि भेदो को अशुद्ध बताकर उनका निषेध किया गया है।

६ प्रश्न—अशुद्ध द्रव्यार्थिक भी विशेषों से विशिष्ट सामान्य को जानता है और प्रमाण ज्ञान भी, फिर इन दोनो म क्या अन्तर है ?

उत्तर—यद्यपि साधारण दृष्टि से तो ऐसा ही प्रतीत होता है मानो इन दोनो में कुछ अन्तर न हो, परन्तु वास्तव में इन दोनो में महान अन्तर है। प्रमाण ज्ञान में गौण मुख्य व्यवस्था नही होती, अत वह सामान्य व विशेष

दोनो को युगपत निर्विकल्प रूप से ग्रहण करता है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय मे गौण मुख्य व्यवस्था होती है, अत वह विशेप को गौण करके सामान्य को ही मुख्यत. जानता है । यद्यपि विशेपो का भी ग्रहण करता है, परन्तु ग्रहण करने के लिये नही, बल्कि सामान्य का परिचय पा लेने पर उनका त्याग कर देने के लिये।

अथवा प्रमाण मे सामान्य व विशेष एक रस रूप देखे जाते है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक मे उसे सामान्य से पृथक कल्पित करके अर्थात अभेद मे भेद डालकर, उन भेदो वाला उस सामान्य को कहा जाता है । विशेषो वाला बताने पर भी दृष्टि सामान्य की ओर ही झुकी हुई है विशेष की ओर नही, जैसे पगडी वाला कहने पर दृष्टि उस व्यक्ति को ही पकडती है, पगडी को नही ।

७ **प्रश्न**—सत्ता ग्राहक शुद्ध नय को उत्पाद व्यय रहित कसे कहा जा सकता है जबकि उत्पाद व्यय से रहित कोई वस्तु ही नही है ?

उत्तर—यह तो दृष्टि की विचित्रता है । वस्तु के दो रूप है एक बाह्य व दूसरा अन्तरग । उसका बाह्य रूप तो पर्यायो से चित्रित है, अत वह तो परिवतन शील दिखता है, परन्तु अन्तरग रूप सामान्य स्वभाव रूप है। स्वभाव त्रिकाली होता है । जैसे कुण्डल कड़े आदि का उत्पाद व व्यय होते हुए भी केवल स्वर्ण की इच्छा करने वाले को न कडा दिखाई देता है न कुण्डल। वह तो पहिले भी स्वर्ण ही दखता था अब भी स्वर्ण ही देखता है । उसी प्रकार सत् के बाह्य रूप का भले उत्पाद हो कि व्यय,

विचारना तो यह है कि वस्तु के अस्तित्व का क्या विनाश या उत्पाद हो सकता है ? उसका अस्तित्व तो पहिले भी था और अब भी है। बस इस प्रकार की दृष्टि का नाम ही उत्पाद व्यय निरपेक्ष ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि है।

८ प्रश्न—अशुद्ध पर्यायों में वर्तमान द्रव्य को भी परमभाव ग्राहक नय शुद्ध कैसे देख सकता है ?

उत्तर—जैसे कदम मिश्रित जल को, जल पने की अपेक्षा देखने पर स्वच्छ जल ही प्रतीति मे आता है, या ताम्र मिश्रित अशुद्ध स्वर्ण को स्वर्ण के मूल्य की अपेक्षा देखने पर सर्राफ को शुद्ध स्वर्ण ही दिखाई देता है, कदम या ताम्र नही, उसी प्रकार अशुद्ध भी द्रव्य को उसके त्रिकाली स्वभाव या पारिणामिक भाव की अपेक्षा देखने पर वह सदा एक रूप शुद्ध ही प्रतीति में आता है, अशुद्ध नही।

९ प्रश्न—आगम में गुणो को अन्वय तथा पर्यायों को व्यतिरेकी बताया गया है, फिर अन्वय द्रव्यार्थिक द्वारा पर्यायों का ग्रहण कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—यहां अन्वय का अर्थ गुण नहीं है, बल्कि अनुगत व अनस्यूत रूपेण सामान्य भाव है। वस्तु का अखण्ड एक स्वभाव उसके सब अंगो में चाहे व गुण हो या पर्याय अनस्यूत रूपेण व्याप्त रहता है जैसे कि जीव का चिद् स्वभाव उसके ज्ञान चारित्र आदि सब गुणो तथा रागादिक सब पर्यायों में व्याप्त है यदि ऐसा न हो तो ज्ञान मात्र ही चेतन गुण हो, उसकी पर्यायें अर्थात मति ज्ञान आदिक अचेतन हो जायें, या चारित्र आदि अन्य गुण व उनकी पर्यायें अचेतन हो जाय। परन्तु ऐसा

मे उस ही को अधिक विशेषता के साथ कहना इष्ट है । मूल भूत लक्षण की अपेक्षा ऋजुसूत्र नय व पर्यायार्थिक नय मे कोई अन्तर नही है । जिस प्रकार सामान्य चतुष्टय स्वरूप सामान्य द्रव्य की सत्ता को स्वीकार करने वाला द्रव्यार्थिक नय है, उसी प्रकार विशेष चतुष्टय स्वरूप विशेष द्रव्य की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करने वाला पर्यायार्थिक नय है । जिस प्रकार द्रव्यार्थिक नय मे विशेष चतुष्टय की स्वतत्र सत्ता अवस्तु है, उसी प्रकार पर्यायार्थिक सत मे सामान्य चतुष्टय की स्वतत्र सत्ता अवस्तु है, सामान्य व विशेष चतुष्टय का कथन पहिले अधिकार नं ६ के प्रकरण न ३ व चार मे किया गया है, वहा से जान लेना ।

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव ये वस्तु के स्व चतुष्ट कहलाते है । इन चारो का व्यापक रूप सामान्य कहलाता है और व्याप्य रूप विशेष कहलाता है । जैसे द्रव्य की अपेक्षा सर्व द्रव्यमयी, क्षेत्र की अपेक्षा सर्व व्यापी, काल की अपेक्षा त्रिकाली स्थायी और भाव की अपेक्षा सर्व भाव स्वरूप एक अद्वैत सत् सामान्य है, वही द्रव्यार्थिक नय का विषय है । और द्रव्य की अपेक्षा एक व्यक्ति, क्षेत्र की अपेक्षा एक प्रदेशी, काल की अपेक्षा केवल वर्तमान एक समय स्थायी और भाव की अपेक्षा स्वलक्षण भूत किसी एक अविभागी भाव स्वरूप, एसे पृथक पृथक अनन्त सत् विशेष हे, वही पर्यायार्थिक नय का विषय है ।

पर्यायार्थिक नय द्रव्य मे या क्षेत्र मे या काल मे या भाव मे किसी भी प्रकार का भेद करना सहन नही करता । एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यके साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकारना द्रव्यार्थिक का काम है पर्यायार्थिक का नही । इसी प्रकार एक प्रदेश के साथ अन्य किसी प्रदेश का स्पर्श भी द्रव्यार्थिक स्वीकार कर सकता है, पर पर्यायार्थिक नही । पूर्वोत्तर पर्यायो मे किसी प्रकार का सम्बन्ध मानना भी द्रव्यार्थिक का ही काम है, पर्यायार्थिक का नही । उसकी दृष्टि मे तो वर्त-

मान मे जितना व जो कुछ भी वह है उतना मात्र ही सत् है। न वह भूत काल मे था और न भविष्यत मे रहेगा। इसी प्रकार अनेक भावो या गुणो का समूह भी द्रव्यार्थिक ही मान सकता है, पर पर्यायार्थिक नही।

और इस प्रकार दो द्रव्यो के बीच निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध या जीव व शरीरादि के बीच कोई सश्लेष सम्बन्ध पर्यायार्थिक नय की दृष्टि में सम्भव नही। अनेक परमाणु बन्ध कर स्कन्ध का निर्माण नही कर सकते। किसी भी द्रव्य में एक से अधिक प्रदेश की कल्पना व्यर्थ है। एक समय वर्ती शुद्ध द्रव्य मे आगे पीछे पर्यायो का प्रगट हो होकर विनष्ट होना असम्भव है अत एक द्रव्य में अनेक पर्यायें नही देखी जा सकती। पर्याय नही बल्कि द्रव्य ही क्षण भर के बाद विनष्ट हो जाता है। एक द्रव्य में अनेक गुण या भावो का अवस्थान कल्पना मात्र है।

पर्यायार्थिक नय पूर्णत एकत्व ग्राही है। सत् में द्वित्व देखना दृष्टि का भ्रम है, क्योकि दो मिल कर तीन काल म एक नही हो सकते। दो है तो दो ही रहेंगे। और यदि एसा ही है तो द्वित्व में एक सत्ता कैसे देखी जा सकती है? भले ही स्थूल दृष्टि में अनेक द्रव्यो का अनेक प्रदेशो का सयोग अनेक पर्यायो की अटूट श्रृंखला और अनेक भाव परस्पर मे मिलकर अखण्ड व एक प्रतीत होते हो, पर वास्तव में तो उन सबकी सत्ता पृथक पृथक है, अन्यथा उनमें अनेकता देखी जानी असम्भव थी।

यह पर्यायार्थिक नय का सामान्य परिचय है जिसका विस्तार ऋजुसूत्र नय के अन्तर्गत किया गया है। इसी का विशद स्पष्टीकरण करने के लिये निम्न में इसके अनेको पृथक पृथक लक्षण किये गये है।

१ लक्षण न० १ – निर्विशेष किसी एक विशेष चतुष्टय की ही सत् स्वीकार करके सामान्य चतुष्टय की सत्ता म इन्कार करना

इसका व्यापक लक्षण है । जैसे कि वर्तमान काल वर्ती कोई आदि मध्य अन्तरहित एक प्रदेशी स्वलक्षण भाव स्वरूप परमाणु ही एक सत् है, यह दीखने वाले लम्बे काल स्थायी अनेक प्रदेशी अनेक भाव स्वरूप स्थूल पदार्थ वास्तव मे एक नही अनेक है । इसी लक्षण मे इस के सर्व अन्य लक्षण गर्भित है। केवल स्पष्टीकरण करने के अर्थ ही अनेक लक्षण किये गये है। विशेष का नाम पर्याय है । यद्यपि पर्याय शब्द द्रव्य के कालाँश अर्थात परिवर्तन पाने वाली अवस्थाओं या अंशोका नाम प्रसिद्ध है, परन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। पर्याय शब्द का साधारण अर्थ है अंश या विशेष, वह द्रव्य की अतेक्षा हो या क्षेत्र की अपेक्षा हो या काल की अपेक्षा हो या भाव की अपेक्षा हो ऐसा चतुष्टयात्मक विशेष या पर्याय ही है प्रयोजन जिसका वह पर्यायार्थिक नय है । फिर भी कथन को सरल बनाने के लिये पर्यायार्थिक का कथन कालाश रूप पर्याय मुखेन ही करने मे आता है। तहा शेष बचे द्रव्याश क्षेत्राश व भावाश को स्वय लागू कर लेना चाहिये ।

२ लक्षण नं २ – उपरोक्त प्रकार चतुष्टय विशेष की ही स्वतत्रता को ग्रहण करने के कारण इसकी दृष्टि मे कोई एक द्रव्य—एक ही प्रदेश तथा एक ही समय व एक ही भाव की सत्ता वाला होना चाहिये । यहा द्वित्व को अवकाश नही । आगे पीछे की पर्यायो मे परस्पर कोई सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता । उसे पर्याय या विशेष क्यो कहते हो, वह तो एक स्वतत्र सत् है । विशेष या पर्याय नाम उसी समय धरा जा सकता है जब कि अनेको मे अनुस्यूत कोई एक सामान्य दृष्टि मे आ रहा हो । सामान्य के अभाव मे विशेष किसे कहे ? अत जिसे हम पर्याय कहते है वही तो सत् या द्रव्य है। पूर्व समय की पर्याय पूर्व समय का द्रव्य था जो विनष्ट हो चुका है। उस का सम्बन्ध इस वर्तमान के द्रव्य से क्या है ? इसी प्रकार भविष्य का द्रव्य कुछ अन्य ही होगा । कुत्ते मनुष्य व देव इन तीन पर्यायो में अनुगत कोई एक जीव सामान्य नाम का द्रव्य लोक मे नही है । कुत्ता

एक स्वतन्त्र द्रव्य था जो विनष्ट हो गया। मनुष्य एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो वर्तमान मे हमारे सामने है और देव एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो आगे उत्पन्न होगा। इसी प्रकार गुण व गुणी अथवा विशेषण व विशेष्य भाव रूप द्वैत भी कैसे सम्भव है ? वह द्रव्य भाव या गुण मात्र ही तो है। गुण है वही द्रव्य है और द्रव्य है वही गुण है। अत दो नाम देने व्यर्थ है। यह गुण इस द्रव्य का है, ऐसा नही कह सकते। इसी प्रकार क्षेत्र में भी समझना।

लक्षण न० २ — अन्य पर्यायो को अत्यन्त निरस्त करके उत्पन्न होने वाली यह एकत्व दृष्टि जब द्वैत देखती ही नही तो कारण–कार्य अथवा कर्ता–कर्म आदि वाले द्वैत को यहा अवकाश ही कैसे हो सकता है ? अत इस दृष्टि में कोई भी कार्य बिना किसी कारण के स्वत उत्पन्न होता है। उस को किसी अन्तरङ्ग या बाह्य कारण की अथवा कर्ता की अवश्यकता नही। अत निमित्त या उपादान कारण इन दोनो का ही इस दृष्टि में अभाव है। यह भाव स्वीकार करते हुए कुछ बाधा अवश्य होती है पर एकत्व दृष्टि में होता ऐसा ही है।

उस की सिद्धि भी इस युक्ति पर से की जा सकती है। कार्य नाम पर्याय का है और कारण नाम द्रव्य गुण व पर्याय तीनो का। 'यह न होता तो कार्य कैसे होता' इस प्रकार के तर्क द्वारा जिस की सत्ता दिखाई दे उसे ही कारण कहते है। द्रव्य रूप कारण दो होते है–एक उपादान दूसरा निमित्त। सयोग विशेष को प्राप्त दूसरा द्रव्य निमित्त कारण कहलाता है। उपादान कारण उसे कहते है जिस में से कि कार्य या पर्याय प्रगट हो, अर्थात द्रव्य को उपादान कारण कहते है, क्योकि पर्याय–द्रव्य में ही प्रगट होती है, इससे बाहर नही। 'वह न हो तो पर्याय कहा प्रगट होगी' ऐसे तर्क द्वारा इस के कारण पने की सिद्धि हो जाती है।

दूसर प्रकार से भी कदाचित उपादान कारण कहा जा सकता है, और वह यह कि जिस पूर्व की पर्याय ने हट कर उस अगली पर्याय को द्रव्य मे प्रवेश करने की आज्ञा दी, वह पूर्व की पर्याय भी अपने से अगली पर्याय के लिए कारण कही जा सकती है, क्योंकि 'वह व्यय न होती तो अगली पर्याय कैसे उत्पन्न होती' इस तर्क के द्वारा इस कि सिद्धि होती है। जैसे अन्धकार का विनाश न होता तो, यहा अन्धकार का विनाश भी प्रकाश होने मे कारण अवश्य है।

इस प्रकार त्रिकाली द्रव्य, और पूर्व समय की एक पर्याय तो कारण कोटी मे आते है और एक वह पर्याय जो कि विचारणा या कथन का विषय बनी हुई है, कार्य कोटी मे आती है। जिस पर्यायार्थिक दृष्टि मे केवल एक ही द्रव्य तथा केवल एक ही पर्याय की पृथक सत्ता का ग्रहण हो रहा है, उस दृष्टि मे अन्य द्रव्य कौन और पूर्व की पर्याय भी कौन ? दोनो ही का वहा तो अभाव है। फिर कारण किसे कहे ? क्या अभाव को ? सो तो सम्भव नही है, क्योकि अभाव का विचार भी क्या ? अकेला कार्य ही कार्य है। अत इस दृष्टि मे कारन के बिना ही कार्य की उत्पत्ति होती है।

यहा ऐसा तर्क उत्पन्न हो सकता है कि कारण के अभाव मे कार्य का भी अभाव हो जायेगा, तो वह दृष्टि तुरन्त पुकार उठती है कि ऐसा नही हो सकता, क्योकि जो बात वर्तमान विचारणा का विषय बनी हुई है, जो इस समय मुझे स्पष्ट दीख रही है उस का अभाव मै स्वीकार ही कर सकता। फिर प्रश्न होता है कि कोई न न कोई तो कारण होना ही चाहिये, तब उत्तर यही आता है कि जब न द्रव्य कारण है, और न पूर्व की अन्य पर्याय कारण है, तो परिशेष न्याय से वह एक क्षणवर्ती द्रव्य अकेला ही स्वय कार्य रूप है और स्वय अपना कारण भी है। पर्यायार्थिक दृष्टि के इस एकत्व भाव को कही क्षणिक उपादान भी कहने मे आता है। तात्पर्य यह कि पर्यायार्थिक

लक्षण नं० ५ -- यद्यपि उत्पन्न और विनष्ट होने वाली पर्याय है द्रव्य नही परन्तु जिस दृष्टि मे उस पर्याय के अतिरिक्त अन्य की सत्ता ही दीखती नही उस मे तो उस पर्याय का विनाश होने पर सत्ता का ही विनाश हो जाना स्वभाविक है । जैसे कि नित्य कहने मे आता है कि मनुष्य जन्मा और मर गया, जीव उत्पन्न हुए और विनष्ट हो गए, एटम बौम्ब से असख्यात प्राणियो का सहार हो जाता है । अत इस दृष्टि मे द्रव्य ही उत्पन्न ध्वंसी है ।

उपरोक्त प्रकार पर्यायार्थिक नय के निम्न प्रकार पांच मुख्य लक्षण किये जा सकते हैं --

१. पर्याय ही है प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक नय है ।

२ निर्विशेष चतुष्टय मे किसी प्रकार भी गुण-गुणी आदि द्वित्व या द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अनेकता सम्भव नही ।

३. क्षण स्थायी विशेष एक सत्ता मे कर्ता कर्म या कारण-कार्य आदि भावो को अवकाश नही ।

४. द्रव्य को गौण करके पर्याय को ही मुख्य रूपेण ग्रहण करना पर्यायार्थिक नय है ।

५. द्रव्य को ही उत्पन्न ध्वसी या क्षणिक मानना पर्यायार्थिक दृष्टि है ।

पर्यायार्थिक नय सम्बन्धी उदाहरणो के लिये देखिये आगे द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय समन्वय । अब इन लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथित लक्षण भी उद्धृत करता हूं ।

१ लक्षण नं० १ (पर्याय ही है प्रयोजन जिसका) —

१ स सि ।१।६।५८ "पर्यायोऽर्थ प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिक ।"

अर्थ —पर्याय ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक है।

(नि सा । ता व । १६) (स सि ।१।३३।५०२) (आ प ।१८ ।प १२२)

२ रा वा १।३३।१।६५।६ "पर्यायोऽर्थ प्रयोजनमस्य वाग्विज्ञानव्यावर्तिनिबन्धन व्यवहार प्रसिद्धे रीति पर्यायार्थिक ।"

अर्थ—शब्द और ज्ञान इन दोनो के व्यावर्ति निबन्धन व्यवहार की प्रसिद्धि रूप जिस नय का प्रयोजन पर्याय है वह पर्यायार्थिक नय है।

३ ध ।१।८४।१। "पर्याय एवार्थ प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिक ।" (ध ।९।१७०।३)

अर्थ—पर्याय ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक है ।

२ लक्षण न० २ (गुण गुणी आदि द्वित्व का निरास) –

१ रा वा १।३३।१।६५।३ "पर्याय एवार्थो रूपाद्युत्क्षेपणादि लक्षणो न ततोऽन्यद् द्रव्यमिति पर्यायार्थिक ।"

अर्थ —रूपादि कोई एक गुण ही है लक्षण जिसका, अथवा उत्क्षेपण अवक्षेपण (ऊपर या नीचे फेंकना) आदि क्रिया ही है लक्षण जिसका ऐसी पर्याय या वस्तु का विशेष

अर्थ—ऋजुसूत्र नय के प्रतिपादक वचनो का विच्छेद जिस काल में होता है वह (काल) जिन नयो का मूल आधार है वे पर्यायार्थिक नय है। विच्छेद अथवा अन्त जिस काल में होता है उस काल को विच्छेद कहते है। वर्तमान वचन को ऋजुसूत्र वचन कहते है, और उसके विच्छेद को ऋजुसूत्र वचन विच्छेद कहते है। वह ऋजुसूत्र के प्रतिपादक वचनो का विच्छेद रूप काल जिन नयो का मूल आधार है उन्हे पर्यायार्थिक नय कहते है। अर्थात ऋजुसूत्र के प्रतिपादक (वर्तमान) वचनो के विच्छेद से लेकर एक समय पर्यन्त वस्तु की स्थिति का निश्चय करने वाला पर्यायार्थिक नय है। (अर्थात जिस समय उस क्षणिक पदार्थ का प्रतिपादन समाप्त करने में आये उस समय से आगे की एक समय मात्र वस्तु की स्थिति उस नय का विषय है)

२ लक्षण ३ (कार्य कारण भाव का अभाव) —

रा वा ।१।३३।१।६५।४ "अथवा अर्यते गम्यते निष्पद्यत इत्यर्थ कार्यम । द्रवति गच्छतीति द्रव्य कारणम । द्रव्यमेवार्थो ऽस्य कारणमेव कार्य नार्थान्तरम, न च कार्यकारणयो कश्चिद्रूपभेद तदुभयमेकाकारमेव पर्वाङ्गुलि द्रव्यवदिति द्रव्यार्थिक परि समन्तादाय पर्याय । पर्याय एवार्थ कार्यमस्य न द्रव्यम् अतीतानागतयोविनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात्, स एवैक कार्यकारणव्यपदेश भागिति पर्यायार्थिक ।"

अर्थ—जो गमन करे या निष्पन्न हो उसे कार्य कहते है। जो द्रवण करे या गमन करे उसे द्रव्य कहते है। वह द्रव्य

ही कारण है। इस प्रकार द्रव्य ही जिसका अर्थ है ऐसा वह कारण ही स्वयं कार्य है। कार्य उस कारण से पृथक कुछ नही है। इसलिये कार्य और कारण इन दोनो मे किसी भी प्रकार का भेद नही है। "वे दोनो एकाकार ही है, जिस प्रकार कि अगुलि व उसके पर्व एक ही वस्तु है, पृथक पृथक नही। इस प्रकार कार्य व कारण मे अद्वैत देखना तो द्रव्यार्थिक नय है।

सब ओर से ग्रहण की जाये सो पर्याय है। वह पर्याय ही स्वय कार्य है, द्रव्य नहीं, क्योंकि अतीत पर्याय वाला द्रव्य तो विनष्ट हो चुका है और अनागत पर्याय वाला द्रव्य अभी उत्पन्न नही हुआ है, इसलिये इन दोनो के व्यव्हार का अभाव है। वह वर्तमान पर्याय वाला द्रव्य ही कार्य व कारण दोनो संज्ञाओ को धारण करता है।" ऐसा है अर्थ या प्रयोजन जिसका वह पर्यायार्थिक नय है।

नोटः—(इस लक्षण सम्वन्धी अन्य अनेको उद्धरण ऋजुसूत्र नय के प्रकारण न. २ मे लक्षण नं. ४ के अन्तर्गत देखिये।)

४ लक्षण नं० ४ (द्रव्य गौण पर्याय मुख्य):—

१ वृ. न च।१९० "पर्याये गौणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हिगृह्णाति लोके। सद्रव्यार्थिको मणि तो विपरीतः पर्यायार्थिक नयः।१९०।"

अर्थ—पर्याय को गौण करके द्रव्य को ही अर्थात सामान्य अद्वैत द्रव्य की सत्ता को ही लोक मे जो ग्रहण करता है वह

द्रव्यार्थिक नय है। इससे विपरीत पर्यायार्थिक नय है। अर्थात द्रव्य को गौण करके पर्याय की सत्ता को ही लोक में जो ग्रहण करता है, वह पर्यायार्थिक नय है।

२ का अ। २७०"य साधयति विशेषान बहुविध सामान्य सयुतान् सर्वान्। साधन लिङ्गवशादो पर्याय विषयनयो भवति ।२७०।"

अर्थ—जो नय अनेक प्रकार सामान्य सहित (उसे मात्र गौण करके) सब विशेष का उनके साधन के लिंग के वश से सिद्ध करता है, वह पर्यायार्थिक नय है।

३ स सा आ।१३ "द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि पर्याय मुख्यत यानुभावयतीति पर्यायार्थिक ।"

अर्थ—द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु में पर्याय को ही मुख्य रूप से जो अनुभव करता है, सो पर्यायार्थिक नय है।

४ पं पा।५१६ "अंशा पर्याया इति तन्मध्ये विवक्षितोऽशो स। अर्थोयस्येति मत पर्यायार्थिक नयस्त्वनेकश्च ।५१९।"

अर्थ—अंश नाम पर्याय का है। इसलिये इन अंशो में विवक्षित जो अंश है, वही एक अंश या पर्याय ही है प्रयोजन जिसका ऐसा यह पर्यायार्थिक नय माननें में आया है तथा वह अनेक प्रकार का है।

५ क पा।१।१३१४।२१३।२ 'सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्न च द्रव्यार्थिकाणां विषय मृजुसूत्रवचनाविच्छेदेन पाटयन् पर्यायार्थिक इत्यवगन्तव्य ।"

अर्थ —सादृश्य लक्षण सामान्य से (द्रव्य से) भिन्न और अभिन्न रूप जो द्रव्यार्थिक नय का समस्त विषय है, ऋजुसूत्र वचन के विच्छेदरूप काल के द्वारा (वर्तमान काल के द्वारा) उसका विभाग करने वाला पर्यायार्थिकनय है, यह उक्त कथन का तात्पर्य जानना चाहिये।

५. लक्षण नं ५. (द्रव्य उत्पन्न ध्वंसी है) —

ध ।१।१३।गा ८ "उप्पजंति वियंति य भावाणियमेण पज्जव णयस्स । ।८।"

अर्थ —पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ नियम से उत्पन्न होते है और नाश को प्राप्त होते है ।

२ ध ।६।४२०।५ पज्जवट्टियणयावलंवणेण पडिसमय पुध पुध सम्मत्तभावे जीविददुचरिमसमओ त्ति पडिवज्जतस्य तदुवलभा ।"

अर्थ—पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से प्रत्येक समय पृथक पृथक सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने पर जीवन के द्विचरम समय तक भी सम्यक्त्व की उत्पत्ति पाई जाती है ।

३. प. ध ।पू।२४७ "पर्यायादेशत्वात्स्त्युत्पादो व्ययोऽस्ति च ध्रौव्यम्। द्रव्यार्थादेशत्वान्नाप्युत्पादोव्ययोऽपि न ध्रौव्यम् ।।२४७।।"

अर्थ —पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से द्रव्य का उत्पाद भी है, व्यय भी है, और ध्रुव भी है। परन्तु द्रव्यार्थिकनय से उसका न उत्पाद है, न व्यय है और न ध्रुव है ।

२ पर्यायार्थिक का कारण व प्रयोजन

कोई भी नय वाक्य परे के परे द्रव्य का प्रतिनिधित्व करता हुआ ही प्रगट हुआ करता है। भ्रम निवाणार्थ उन वाक्यों को नयों के नाम वाले शीर्षक प्रदान किये गये है। यहा 'पर्यायार्थिक' ऐसे शीर्षक वाले वाक्यों का प्रकरण है। अत यहा वस्तु की पर्याय को अर्थात किसी एक विशेष को सम्पूर्ण पदार्थ के रूप मे स्वीकार करने वाले वाक्यों का परिचय दिलाना अभीष्ट है।

यही कारण है कि इस नय के पाच लक्षण किये गये, जिनके आधार पर यह ही दर्शाया गया है कि अभेद रूप से एक अखण्ड वस्तु का प्रतिपादन न करके, अथवा उसे गौण करके, किसी एक भेद या विशेष को ही उसका प्रतिनिधि बना कर अर्थात एक पर्याय को ही मुख्य करके पुरी वस्तु के प्रतिपादन करने की शैली को पर्यायार्थिक नय कहते है। जब एक पर्याय को ही पूरा द्रव्य कहा जायेगा तो द्रव्य ही बदलता हुआ कहा जाना अनिवार्य हो जायेगा, क्योंकि पर्यायें बराबर बदलती है। बदलने वाली पर्याय जब वस्तु का प्रतिनिधित्व करेगी तो वस्तु ही बदलती हुई दिखाई । इसलिये पर्यायार्थिक नय से वस्तु ध्रुव न होकर उत्पन्न ध्वंसी बन बैठती है।

उत्पन्न ध्वंसी दीखने पर ही कार्य कारण भाव जागृत हो जाते है, क्योंकि कार्य क्षणिक पर्याय को कहते है। जब पूरा द्रव्य एक पर्याय रूप ही कहा जा रहा है तो वही कार्य रहा और वही कारण।

इस तो एक पर्याय को ही लक्ष्य में लेकर कहने मे यह पाचो बातें क्योंकि वस्तु में दीख रही है, अत पाचो ही लक्षण पर्यायार्थिक के कहे जाने ठीक ही है। दूसरे इस का 'पर्यायार्थिक' एेसा नाम भी पर्याय रूप से द्रव्य के प्रतिपादन का कथन करता हुआ अपनी सार्थकता स्वय दर्शा रहा है। यह इस नय का कारण हुआ।

अब प्रयोजन सुनिये। अभेद वस्तु भले ही जानी जा सके पर न तो कह कर श्रोता को समझाई जा सकती है और नहीं स्वय उस पर विशेष विचार किया जा सकता है, न ही तर्क आदि द्वारा उसकी सिद्धि की जा सकती है। अभेद को दर्शाने का या विशेष्य को दर्शाने का एक मात्र साधन विशेषणों की व्याख्या करना है, जैसा कि अमेरिका के फल को दर्शाने का एक मात्र साधन उसके रूप रस गन्ध आदिक को समझाना ही है। विशेषण कहो या पर्याय एक ही बात है। अतः पर्यायो को पृथक पृथक रूप से वस्तु का प्रतिनिधि बना कर श्रोता के लिये तथा वस्तु की विशेषताये जानने के लिये अत्यन्त उपकारी है। इस प्रकार के उपकार की सिद्धि न हुई होती तो अखण्ड वस्तु को खण्डित करने की मूर्खता कौन करता किसी भी बात को समझने व समझाने का सकल लौकिक व्यवहार इसी नय के आश्रय पर चल रहा है, यह न हो तो समझने व समझाने का व्यवहार ही समाप्त हो जाये, गुरु शिष्य सम्बन्ध भी रहने न पाये, मोक्ष व मोक्ष मार्ग का भी लोप हो जाये, बड़ा अनर्थ हो जाये, तीर्थ की प्रवृत्ति रूक जाये, और न जाने क्या क्या हो जाये। अतः इस का उपकार स्वीकार करने योग्य है, विशेषत वर्तमान की इस निकृष्ट अवस्था मे जब कि जीवन मे कल्याण की प्राप्ति करना अभीष्ट है। एक अदृष्ट पदार्थ सम्बन्धी परिचय प्राप्त करना है जो बिना पर्यायार्थिक की सहायता के होना असम्भव है, यही इस नय का प्रयोजन है। अर्थात वस्तु की विशेषताओ या अगो का पृथक पृथक परिचय दिलाना इस का प्रयोजन है।

इस प्रकार पर्यायार्थिक समान्य का कथन समाप्त हुआ, अब इसी की विशेषता दर्शाने के लिये इसके कुछ भेद प्रभेदो का कथन किया जायेगा। यह बात अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिये कि ये सर्व ही भेद काल मुखेन कहे जायेगे। द्रव्य क्षेत्र व भाव पर भी यथा योग्य रीतयः स्वय लागू कर लेना।

३ पर्यायार्थिक नय के भेद प्रभेद

पर्यायार्थिक नय का आधार पर्याय है वह व्यञ्जन पर्याय हो कि अर्थ पर्याय, स्थूल पर्याय हो कि सूक्ष्म पर्याय, लम्बे समय तक दीखने वाली पर्याय हो या अल्प समय तक दीखने वाली पर्याय, शुद्ध पर्याय हो या अशुद्ध पर्याय। इन सब पर्यायो को हम स्थूल रूप से चार कोटियो में विभाजित कर सकते है। अनादि अनन्त पर्याय अनादि सान्त पर्याय, सादि अनन्त पर्याय, और सादि सान्त पर्याय।

यद्यपि पर्याय सादि सान्त ही होती है परन्तु अनेक पर्यायो के समूह रूप व्यञ्जन पर्याय की अपेक्षा उपरोक्त चारो भेद देखे जा सकते है। उसमे अनादि पर्याय तो पुद्गल द्रव्य की उस व्यञ्जन पर्याय को कहते है, जो सूक्ष्म रूप से परिणमन शील रहने पर भी बाह्य में सदा ज्यू की त्यू दिखाई देती रहती है। इस स्थूल पर्याय का प्रत्येक क्षणिक परिणमन पूर्व पूर्व के सदश ही रहते रहने के कारण इसमे कोई स्थूल विसदृशता दिखाई नही देती, और इसीलिये अनादि से अनन्त काल तक एक की एक ही बनी रहती है इसी से अनादि अनन्त पर्याय कहलाती है—जसे अकृत्रिम स्कन्धो रूप, सुमेरु, चन्द्र, सूर्य, चैत्यालय व प्रतिमा आदि, जिनमें चन्द्र सूर्य की नित्यता तो प्रत्यक्ष है, पर अन्य पदार्थों की केवल आगम गम्य है। जीव पदार्थ में ऐसी कोई अनादि अनन्त पर्याय देखने में नही आती, क्योकि ससार दशा में उसमें कभी भी सदृश परिणमन नही होता।

अनादि सान्त पर्याय जीव के औदयिक भाव को कहते है। क्योकि प्रत्येक प्राणी सदा से अशान्त है। यह कब पहिले पहिल अशान्त या अशुद्ध हुआ था यह कहना असम्भव है। जीव की अशुद्धता या आदि खोज निकालना असम्भव होने के कारण वह अनादि है। परन्तु यदि भव्य है तो किसी न किसी दिन इस अशुद्धता का अन्त करके शुद्ध व शान्त हो सकता है। ऐसे जीव की अशुद्धता

का अन्त दिखाई देता है अत. वह सान्त है । इस प्रकार एक साधारण ससारी जीव की अशुद्धता, वह ही है उसका औदयिक भाव, वह अनादि सान्त है। जड़ या पुद्गल की अनादि सान्त कोई पर्याय प्रतीति म नही आती, क्योकि परमाणु पृथक हो होकर पुन पुन बन्धता रहता है ।

सादि अनन्त पर्याय क्षायिक भाव को कहते है, जो उत्पन्न होने के पश्चात फिर विनष्ट नही होता । जैसे सिद्ध भगवान की पूर्ण शुद्ध पर्याय किसी विशेष समय मे उनके तपश्चरण आदि के द्वारा प्रगट तो अवश्य हुई थी पर उसका विनाश कभी नही होता । अर्थात उसका आदि तो है पर अन्त नही । इसलिये वह सादि अनन्त पर्याय है पुद्गल मे यह भी दिखाई नही देती, क्योंकि परमाणु शुद्ध होने के पश्चात् पुन. अशुद्ध हो जाता है ।

सादि सान्त पर्याय दो प्रकार की होती है—क्षण मात्र को रह कर समाप्त हो जाने वाली तथा अधिक काल तक रह कर समाप्त होने वाली । क्षण मात्र स्थायी भी दो प्रकार की है—एक समय मात्र स्थिति को रखने वाली तथा ७।८ (सैकेन्ड) टिकने वाली । एक समय मात्र टिकने वाली पर्याय तो प्रत्येक गुण के प्रतिक्षण के स्वाभाविक परिवर्तन को कहते है, जो स्थूल ज्ञानियो की दृष्टि मे नही आ सकता । यह तो केवल ज्ञान के ही गम्य है । इसे षट् गुण हानि वृद्धि रूप स्वाभाविक क्षणिक पर्याय या सूक्ष्म अर्थ पर्याय कहते है । कुछ क्षण स्थायी पर्याय औपशमिक भाव रूप है । श्रद्धा व चरित्र मे यह वात कदाचित सम्भव है कि यह पूर्ण निर्मल दशा मे सात या आठ क्षण के लिये रहकर पुन. मलिनता को प्राप्त हो जाते है । यह औपशमिक भाव भी इतने थोडे समय के लिये रहता है कि हम स्थूल ज्ञानी उसे नहीपकड़ सकते, अवधि ज्ञान के द्वारा कदाचित वह पकड़ी जानी सम्भव है । पुद्गल मे भी यह अवश्य

देखी जा सकती, क्योंकि कोई परमाणु अल्पकाल मात्र रह कर पुन बन्ध जाता है ।

अधिक काल स्थायी सादि सान्त पर्याय भी दो प्रकार की है—एक पूर्ण अशुद्ध औदयिक भाव रूप और एक शुद्धाशुद्ध क्षायोपशमिक भाव रूप औपशमिक रूप में शुद्धता को प्राप्त होकर पुन औदयिक भाव में प्रवेश करके इसका प्रारम्भ करता है, और फिर बडे लम्बे काल पश्चात अर्थात कई भवो पश्चात पुन औपशमिक भाव को प्राप्त होकर उसका अन्त करता है । एक तो ऐसा औपशमिक भाव के साथ लगा हुआ औदयिक भाव सादि सान्त है । दूसरा क्षायोपशमिक भाव से भी च्युत होकर औदयिक भाव में प्रवेश पाता हुआ उसका प्रारम्भ करता है, और यथा योग्य हीनाधिक समय तक वहा रह कर पुन क्षायोपशमिक भाव में प्रवेश पाता हुआ उसका अन्त करता है । इस प्रकार दूसरा क्षायोपशमिक के साथ लगा हुआ औदयिक भाव है । तथा स्वय क्षायोपशमिक भाव भी क्योंकि औदयिक का अन्त करके क्षायोपशमिक और क्षायोपशमिक का अन्त करके औदयिक बराबर कुछ कुछ काल पश्चात उदय होते रहा करते है । इनके काल का कोई नियम नही । दोनो ही के सम्बन्ध में अनेक विकल्प हो सकते है । दो चार क्षण रह कर समाप्त हो जाये, कुछ मिनिट, कुछ घन्टे कुछ दिन, महिने या वर्ष रह कर समाप्त हो जाय अथवा कुछ भव तक बराबर बना रह कर समाप्त हो जाये । इस प्रकार सादि सान्त पर्याय औपशमिक भाव क्षायोपशमिक भाव और औदयिक भाव तीन रूप है । इनका काल यथा योग्य रीति से स्वय जान लेना । ये सब विकल्प पुद्गलात्मक जड पदार्थ में भी यथा योग्य रूप से देखे जा सकते है, क्योंकि वहा बराबर परमाणु से स्कन्ध और स्कन्ध से परमाणु बनते रहते है ।

औपशमिक भाव तो सादि सान्त शुद्ध भाव है, क्षायोपशमिक भाव सादि सान्त शुद्धाशुद्ध भाव है और औदयिक भाव सादि सान्त अशुद्ध भाव है ।

इन चारो प्रकार की पर्यायो को निम्न चार्ट पर से पढा जा सकता है ।
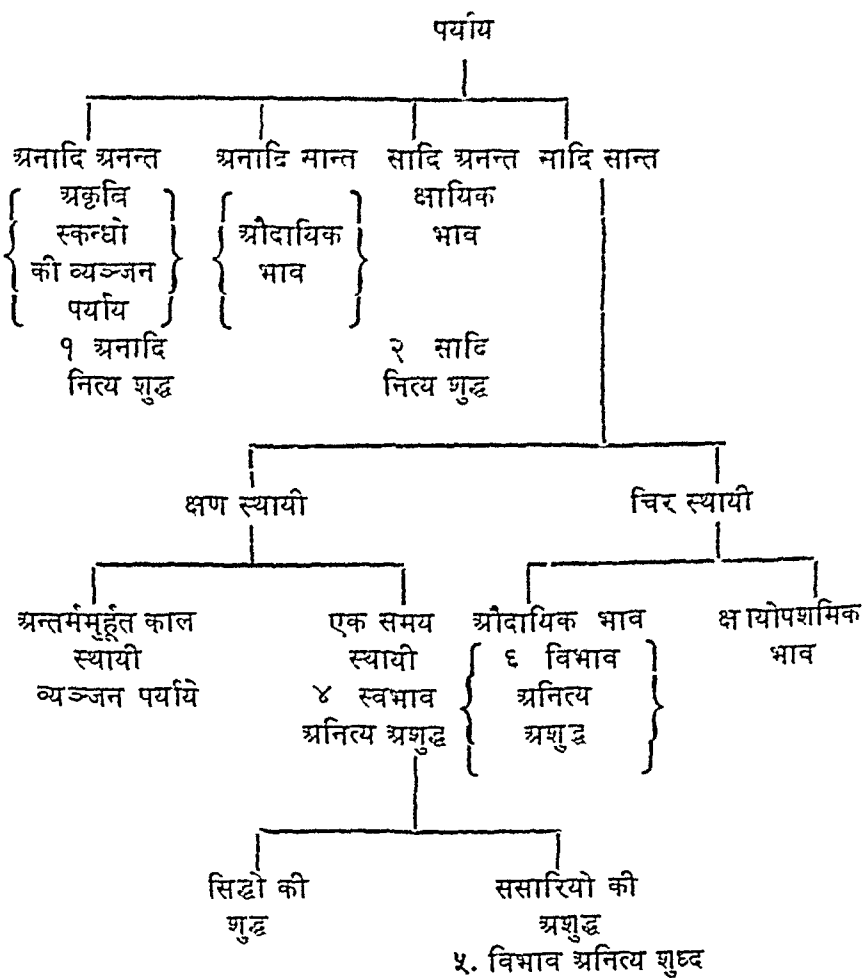
इस प्रकार यद्यपि पर्यायो को और भी अनेको भेदो मे विभाजित किया जा सकता है, परन्तु सबका अन्तर्भाव इन ही मे हो जायेगा । आगम मे इन्ही को निम्न नामो के द्वारा कहा गया है ।

१ अनादि नित्य शुद्ध, २ सादि नित्य शुद्ध.
३. स्वभाव अनित्य शुद्ध, ४. स्वभाव अनित्य अशुद्ध.
५. विभाव अनित्य शुद्ध, ६. विभाव अनित्य अशुद्ध

(अर्थ — अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय चन्द्रमा सूर्य मेरु पृथिवी पर्वत लोक आदि का प्रतिपादक है ।)

अनादि नित्य दीखने के कारण यह अनादि नित्य है । सदृश है इस लिये ध्रुव है और इसीलिये यह शुद्ध कहा जा सकता है । क्योकि पर्याय को ग्रहण करता है इसलिये पर्यायार्थिक है। अत. "अनादि नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय" ऐसा इस का नाम सार्थक है। यह तो इस का कारण हुआ । सदृश परिणमन का परिचय देना इस का प्रयोजन है ।

२ सादि नित्य (शुद्ध) पर्यायार्थिक नय—

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, क्षायिक भाव सादि अनन्त या सादि नित्य पर्याय होती है, क्योकि यह पर्याय जीव मे कभी उत्पन्न तो अवश्य होती है पर इस का विनाश कभी नही होता है— जैसे सिद्ध भगवान । यह पर्याय जीव मे ही होनी सम्भव है, पुद्गल मे नही क्योकि पुद्गल की पूर्ण शुद्ध पर्याय या उस का क्षायिक भाव स्कन्ध से परमाणु बनना है स्कन्ध से परमाणु पृथक हो कर शुद्ध बन तो जाता है पर वह सदा परमाणु ही रूप से पड़ा रहेगा यह निश्चिय नही । आगे पीछे वह पुनः स्कन्ध बनकर अशुद्धता को प्राप्त हो जाता है । अत पुद्गल मे यह सादि नित्य पर्याय देखने को नही मिलती । इस क्षायिक भाव रूप सादि अनन्त पर्याय को ग्रहण करने वाले नय को सादि नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है । इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम कथिक उद्धरण देखिये ।

१. वृ न. च।२०१ "कर्मक्षयादुत्पन्नोऽविनाशी यो हि कारणाभावे । इदमेवमुच्चरन् भण्यते स सादि नित्य नयः ।२०१।"

(अर्थ— कर्मों के क्षय से उत्पन्न तथा कारण का अभाव हो जाने पर सदा रहने वाली ऐसी जो क्षायिक भाव रूप पर्याय है, उस को विषय करने वाले नय को सादि नित्य नय कहते ह ।)

२ आ प ।८।प ७३ "सादि नित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्ध पर्यायो नित्य ।"

(अर्थ — सादि नित्य पर्यायार्थिक ऐसे है जैसे कि "सिद्ध पर्याय नित्य है" ऐसा कहना ।)

नय चक्र गद्य प ६ "पर्यायार्थो भवेत्सादि "व्यये सवस्य कमण ।
उत्पन्न सिद्ध पर्याय ग्राहको नित्य रूपक ।२।"

(अर्थ— सादि नित्य रूपक पर्यायार्थिक नय सब कर्मों के क्षय से प्रगट होने वाली सिद्ध पर्याय का ग्राहक है ।)

क्योंकि सादि नित्य पर्याय को ग्रहण करता है इसलिये इसका "सादि नित्य" ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इसका कारण है । जीव के पूर्ण शुद्ध क्षायिक भाव का परिचय देना इस नय का प्रयोजन है ।

३ स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय—

वस्तु नित्यानित्यात्मक स्वभाव वाली है । स्वभाव अन्य पदार्थ की सहायता आदि की अपेक्षा नही रखा करता, इसलिये वस्तु स्वय तथा स्वत सिद्ध ऐसी ही है । स्वभाव का नाम ही पारिणामिक भाव है, जिसका विस्तृत परिचय कि पहले दिया जा चुका है । स्वभाव होने के नाते उसे भी नित्यानित्य माना गया है । उसके नित्य रूप का परिचय ही पहिले अधिकार न ७ मे दिया गया है, तथा परम

प्रकार वस्तु में ध्रुवता सर्वदा पाई जाती है, उसी प्रकार उसमें परिणमन भी सर्वदा पाया जाता है। जिस प्रकार नित्यता उसका स्वभाव है उसी प्रकार अनित्यता भी उसका स्वभाव है ।

उदाहरणार्थ एक ऐसी अग्नि शिखा को देखिये जो अत्यन्त प्रचंड है, तथा धधक रही है। इसे स्थिर कहोगे या अस्थिर? स्पष्ट है कि स्थिर भी है और अस्थिर भी। इसकी लपटे बराबर ऊपर की ओर ही उठ रही है, दायें बायें को नही जाती, तथा ऊपर भी हानि वृद्धि रहित सदा उतनी ही ऊंची दिखाई दे रही है, कभी वह लपट छोटी हो जाये और कभी बडी ऐसा दिखाई नही देता। इसलिये तो वह स्थिर है। परन्तु उतनी तथा वैसी की वैसी रहते हुए भी वह चित्र लिखितवत कूटस्थ नही है, बल्कि बराबर लहरा रही है, धधक रही है, इसलिए अस्थिर है। यहां इसकी अस्थिरता वायु से ताडित दीपक की चंचल लौवत नही है, बल्कि समान धाराप्रवाही लहरोंवत है, इसीलिये इस अस्थिरता को नित्य भी कहा जा सकता है। (इसी प्रकार त्रिकाली ध्रुव व निर्विकल्प व अखण्ड पारिणामिक भाव) परिणमन स्वभावी होने के कारण बराबर धधक रहा है, चमचमा रहा है। बस पारिणामिक भाव का यही त्रिकाली अनित्य स्वभाव ही प्रकृत नयका विषय है।

अर्थात त्रिकाली द्रव्य सामान्य की ध्रुवसत्ता से निरपेक्ष, केवल उत्पाद व्यय की एक धाराप्रवाही सन्तति के रूप मे वस्तु को देखना, स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। या यो कह लीजिये कि यह नय सत्ता सामान्य के नित्य अंश को गौण करके उसके अनित्य अंश को ही लक्ष्य में रखता है।

इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ आगम रचित लक्षण उद्धृत करता हू ।

१ वृ. न. च । २०२ "सत्ताऽ मुख्य रूपे उत्पादव्ययौ हि ग्रहणाति यो हि । स हि स्वभावानित्योग्राही खलु शुद्ध पर्यायार्थिक । २०२"

अर्थ—सत्ता को गौण करके जो केवल उत्पाद व्यय को ग्रहण करता वह ही निश्चय से स्वभाव अनित्य ग्राही शुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

२. नय चक्र गद्य । पृ ६ "स्वभावागुरुलघुत्वादि द्रव्याणा क्षय भंगिना । ब्रूतेऽनित्य स्वभावोऽसौ पर्यायार्थिक निर्मल: ।३"

अर्थ—अगुरुलघुत्वादि ही क्षणभगी द्रव्योका स्वभाव है, ऐसा जो कहता है वह स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

अर्थ पर्याय रूप से प्रतिक्षण सूक्ष्म उत्पाद व्यय होते रहना, अर्थात प्रत्येक क्षण सूक्ष्म अर्थ पर्याय का प्रगट करते रहना वस्तु का स्वभाव है, क्योकि अन्य निमित्त कारणों की अपेक्षा न करके यह स्वत ही होता है । वस्तु के इस स्वभाव को ग्रहण करने वाला होने के कारण इस नय के नाम के साथ स्वभाव विशेषण लगाया गया । वस्तु का अखण्ड स्वभाव या सत् सामान्य यद्यपि नित्यानित्यात्मक है, परन्तु उसके नित्य अंश को छोड़कर केवल अनित्य अश को ग्रहण करता है, इसलिये यह नय अनित्य कहलाता है । क्योकि अन्य से निरपेक्ष केवल अपने अगुरुलघुत्व गुण के ही कारण से उत्पन्न होता है इसलिये यह स्वभाव तथा उसे ग्रहण करने वाला नय शुद्ध है । सामान्य से रहित विशेप अश को पर्याय कहते है, अत. ध्रुव निरपेक्ष यह उपरोक्त अनित्यता का अंश पर्याय शब्द का वाच्य है, इसलिये इसका ग्राहक यह नय भी पर्यायार्थिक है । अत इस

नय का 'स्वभाव अनित्य शुद्ध पायार्यार्थिक' ऐसा नाम सार्थक है। यह इस नय का कारण है। और वस्तु के सहज त्रिकाली परिणाम स्वभाव का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

४ स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय—

स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक वत् ही इसका लक्षण समझना। दोनो में सूक्ष्म सा ही अन्तर है। जिस प्रकार स्वभाव अनित्य शुद्ध नय वस्तु के सहज अनित्य स्वभाव को बताता है उसी प्रकार स्वभाव अनित्य अशुद्ध नय किसी भी एक पथक पर्याय का अनित्य दर्शाता है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्', सत का लक्षण ही उत्पादव्यय ध्रुव रूप है, फिर चाहे वह सत् त्रिकाली हो या क्षणिक। जिस प्रकार वस्तु का त्रिकाली सत् प्रतिक्षण एक पर्याय से उत्पन्न होता है, पूर्व पर्याय से विनाश पाता है, और 'उत्पत्ति व विनाश पाने वाला यही वह है' ऐसी एक अनुस्यूति रूप द्रव्य की प्रतीति से ध्रुव रहता है, उसी प्रकार एक पर्याय का क्षणिक सत् भी उस पर्याय रूप से उत्पन्न होता हुआ, एक क्षण पश्चात् उसी पर्याय रूप से विनष्ट होता हुआ और एक क्षण के लिये उसी पर्याय रूप से ध्रुव टिका रहता हुआ दिखाई देता है। अत द्रव्य व पर्याय दोनों ही सत् है, दोनों के सत् में एक ही लक्षण घटित होता है।

द्रव्य का सत् तो सम्पूर्ण पर्यायों में अनुस्यूत रहने के कारण शुद्ध कहा जाता है परन्तु पर्याय का एक क्षण मात्र को ही दर्शन देकर विलुप्त हो जाने के कारण अशुद्ध कहा जाता है। जिस प्रकार त्रिकाली सत् द्रव्य का स्वभाव है उसी प्रकार क्षणिक सत पर्याय का स्वभाव है। यह क्षणिक सत् ही इस नय का विषय है अर्थात एक पृथक पर्याय में उत्पादव्यय और ध्रुव ये तीनों दर्शाना ही स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय का लक्षण है। इसी का दूसरा नाम

सद्भाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक भी है। सर्व ही द्रव्यों मे इसे लागू किया जा सकता है। आग पर रखे ओदन कुछ पक रहे है और कुछ पक चुके हैं' ऐसा कहना इसका उदाहरण है। इसीकी पुष्टि व अभ्यास के लिये निम्न उद्धरण देखिये।

१ बृ.न. च।२०३ "यो गृहणात्येकसमये उत्पादव्ययध्रुवत्व संयुक्तम् स सद्भावानित्योऽशुद्ध: पर्यायार्थिक नयः।२०३।

अर्थ—जो एक समय मे ही वस्तु को उत्पादव्यय ध्रुवत्व तीनो से युक्त ग्रहण करता है, वह सद्भाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

२. आ.प।८।पृ.७४ "सत्तासापेक्षस्वभावो ऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा एकस्मिन्समये त्रयात्मक पर्याय।"

अर्थ— सत्ता सापेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक को ऐसा जानो जैसा कि पर्याय एक समय मे ही उत्पाद व्यय ध्रुव रूप त्रयात्मक है ऐसा कहना।

३. नय चक्र गद्य पृ ६ स्वभावाऽनित्यकोऽशुद्ध पर्यायार्थो भवेदल ध्रौव्योत्पत्ति व्ययाधीनं द्रव्य स्वीकुरुतेऽध्रुव।४।"

अर्थ—स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक उत्पत्ति व्यय व ध्रुव इन तीनो के आधीन रहने वाले द्रव्य को अध्रुव स्वीकार करता है।

द्रव्य के त्रिकाली सत् की भांति ही पर्याय का यह क्षणिक सत् अनित्य है। क्षणिक कारण ही अशुद्ध है। पर्याय रूप होने के कारण पर्यायार्थिक का विषय है। अन्य निमित्त कारणो की अपेक्षा नही

रखता इसलिए स्वभाव है। अत स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय ऐसा नाम साथक है। यह इसका कारण है। प्रत्येक पयाय का जुदा भी सत् देखा जा सकता है, यह बताना इसका प्रयोजन है।

स्वभाव अनित्य शुद्ध व स्वभाव अनित्य अशुद्ध में क्या अतर है, यह आगे शका समाधान में बताया जाएगा।

५ विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय —

विभाव भी और शुद्ध भी, इन दोनो का मेल कैसा ? विभाव तो सवथा अशुद्ध ही होता है ? ऐसा नही है भाई ! दृष्टि की विचित्रता है। विभाव म में भी कथञ्चित शुद्धता देखी जा सकती है। यद्यपि रसात्मक भाव को ग्रहण करने पर तो वह अशुद्ध ही प्रतीत होगी परन्तु पयाय का सामान्य एक अनित्य स्वभाव ग्रहण करने पर उसमें शुद्ध व अशुद्ध के विशेषण की कोई आवश्यकता नही रह जाती। शुद्ध शब्द का दो अर्थों में प्रयोग होता है—अशुद्धता को टालकर शुद्धता का व्यक्त होना पहिली शुद्धता है, और वस्तु का सामान्य स्वभाव शुद्ध व अशुद्ध दोना से निरपेक्ष दूसरी शुद्धता है। सो यहा पहिली शुद्धता से नहीं बल्कि दूसरी मे प्रयोजन है। सो कैसे वही दर्शाता हू।

पयाय शुद्ध हो या अशुद्ध, क्षायिक हो या औदयिक है तो पयाय ही, है तो क्षणिक ही, है तो उत्पाद व्यय स्वरूप ही। पयाय का पयायपना किसमें कम है और किसमें अधिक ? पयाय तो उत्पन्न ध्वसी भाव को कहते हैं। सो हर पयाय ही उत्पन्न ध्वसी है। अत पयाय के इस उत्पन्न ध्वसी सामान्य स्वभाव की अपेक्षा क्षायिक व औदयिक दोना ही पर्यायें समान हैं, शुद्ध व अशुध्दता की कल्पना से निरपेक्ष शुध्द है।

इस दृष्टि से देखने पर ससारी व सिध्द दोनों ही दशाओ मे जो कोई भी पर्याय लब्ध होती है वह शुध्द ही है। फिर भी दोनों मे कुछ विवेक उत्पन्न कराने के लिये या लक्ष्य लक्षण भाव दर्शाने के लिए विभाव विशेषण लगा दिया है । जिसका यह तात्पर्य है कि इस दृष्टि से देखने पर संसारी जीवों को पर्याय भी जो कि विभाव कहलाती है, सिध्दो की पर्यायों वत् ही शुध्द है । यहां संसारियों की विभाव पर्याय लक्ष्य है और सिध्दों की पर्याय की शुध्दता लक्षण है।

अव इसी लक्षण की पुष्टि के अर्थ कुछ आगम कथित उध्दरण देखिये ।

१ वृ.न.च ।२०४ "देहिनां पर्यायान् शुध्दान् सिध्दानां भणति सदृशान् । य. सोऽनित्य शुध्द: पर्यायग्राही भवेत्स नयः २०४ ।"

अर्थ— ससारी जीवो की पर्यायों को अर्थात विभाव पर्यायो को जो सिध्दो की शुध्द पर्यायो के सहश कहता है वह अनित्य शुध्द पर्यायग्राही नय है ।

२. आ प ।८।पृ ७४ "कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वभावोऽनित्य शुध्द पर्यायार्थिको यथा सिध्द पर्यायसदृशा: शुध्दा: ससारिणा पर्याया: ।".

अर्थ— कर्मोपाधि निरपेक्ष स्वभाव अनित्य शुध्द पर्यायार्थिक नय को ऐसा जानना जैसे कि सिध्द पर्याय के सदृश ही ससारियो की भी पर्याय शुध्द ही होती है ऐसा कहना ।

३.नय चक्र गद्य ।पृ. ६ "विभावेऽनित्य शुध्दोऽयं पर्यायार्थो भवेदल संसारी जीवनिकायेषु सिध्दसदृशपर्ययः ।५।

अर्थ – विभाव अनित्य अशुध्द यह पर्यायार्थिक नय ऐसा होता है, जैसे कि ससारी जीवो में भी सिध्दो के सदृश ही पर्याय का होना ।

ससारी जीवो को लक्ष्य बनाकर लक्षण किया जा रहा है, इस–लिये विभाव विशेषण लगाया । पर्याय ग्राही होने के कारण अनित्य तथा पर्यायार्थिक है । तथा शुध्दता व अशुध्दता से निरपेक्ष सामान्य पर्यायपने को ग्रहण करने के कारण शुध्द है । अत इसका विभाव अनित्य शुध्द पर्यायार्थिक नय ऐसा नाम सार्थक है । यह तो इस नय का कारण है । और शुध्द व अशुध्द दोनों द्रव्यो में पर्याय के क्षणिक-पने की अपेक्षा समानता को दर्शाना इसका प्रयोजन है ।

६ विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय —

जीव या पुद्गल का औदयिक भाव विभाव भाव कहलाता है । वह औदयिक भाव या तो सादि सान्त होता है या अनादि सान्त इस लिये वह अनित्य ही होता है । कर्मोपाधि के निमित्त से ही उत्पन्न होता है इसलिये अशुद्ध कहा जाता है । ऐसी विभाव अनित्य पर्याय को ग्रहण करने वाले नय को विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है । चारो गति के जीव तथा पुद्गल स्कन्ध अशुद्ध द्रव्य है । उनकी व्यञ्जन व अर्थ सब पर्यायें अशुद्ध व विभाव रूप होती है । क्योंकि वे दूसरे के सयोग की अपेक्षा रखती है । अत यह नय इन दोनो प्रकार की अशुद्ध पर्यायो को लक्ष्य करता है ।

इस प्रकार की अशुद्ध पर्यायें जीव व पुद्गल दोनो में सम्भव है । जीव के औदयिक भाव का परिचय पहिले दे दिया जा चुका है । उसकी वे रागादि रूप पर्यायें ही अशुद्ध है । पुद्गल स्कन्ध पुद्गल का विभाव अनित्य अशुद्ध पर्याय है । इस पर्याय को विषय करने वाला नय विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ अब आगम कथित उद्धरण देखिये ।

१. वृ न.च ।२०५ "भगत्यशुद्धाँश्चतुर्गतिजीवानां पर्यायान्यो हि । भवति विभावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिक नय. ।२०५।"

अर्थ— चतुर्गति के जीवों की अशुद्ध देव नारक आदि या अन्य स्थूल व्यञ्जन पर्यायो को ग्रहण करने वाले नय को विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है ।

२. आ. प ।८।पृ ७५ "कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा संसारिणामुत्पत्ति मरणेस्तः ।"

अर्थ—कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव अर्थात विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय ससारी जीवों के जन्म मरण से प्रकट होने वाली पर्यायों को अर्थात स्थूल व्यञ्जन पर्यायो को ग्रहण करता है ।

३ नय चक्र गद्य। प ६ "विभावो ऽनित्याशुद्धोन्य: पर्यायार्थो गदेत्पर देवादीना च पर्यायमनित्याशुद्धकं यथा ।६।"

अर्थ— विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय उस शुध्द पर्यायार्थिक से अन्य है । देवादिको की पर्याये अनित्य व अशुध्द है ऐसा यह नय बताता है ।

स्वभाव से विपरीत होने के कारण अर्थात संसारियो के या पुद्गल स्कन्धो के औदयिक भाव रूप होने के कारण विभाव है । सादि सान्त होने के कारण अथवा पर्याय होने के कारण अनित्य है ।

कर्मोपाधि सापेक्ष होने के कारण अथवा अनुभवात्मक विभाव रस स्वरूप होने के कारण अशुद्ध है। अत इसका विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय ऐसा नाम सार्थक है। यह इसका कारण है। जीव व पुद्गल क दृष्ट व औदयिक भावो का परिचय देना इसका प्रयोजन है।

५ पर्यायार्थिक नय समन्वय — यहा तक पर्यायार्थिक नय के लक्षणादि दर्शाये गये, अब कुछ शकाओ का समाधान कर देना योग्य है।

१ प्रश्न—उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक में क्या अन्तर है ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक में तो उत्पाद व्यय विशिष्ट वस्तु की त्रिकाली ध्रुव सत्ता का ग्रहण मुख्य है और उसका परिणमन गौण है, तथा पर्यायार्थिक में उस त्रिकाली ध्रुव सत्ता से निरपेक्ष वस्तु का त्रिकाली परिणमनशील स्वभाव मुख्य है।

२ प्रश्न—उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय व स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक में उत्पाद व्यय से विशिष्ट त्रिकाल सत्ता प्रधान है और उसका परिणमन गौण है तथा पर्यायार्थिक में उत्पाद व्यय से विशिष्ट एक पर्याय की क्षणिक सत्ता प्रधान है। अर्थात द्रव्यार्थिक तो त्रिकाल वस्तु को उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त कहता है और पर्यायार्थिक एक समय की पर्याय का कथञ्चित उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त कहता है।

३ प्रश्न—स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय व स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय तो वस्तु सामान्य के त्रिकाली परिणमन स्वभाव को दर्शाता है, जिस की धारा कि एक क्षण को भी कभी भंग होने नही पाती, और स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय उस वस्तु की किसी एक क्षणिक पर्याय के परिणमन स्वभाव को दर्शाता है। अनादि से अनन्त काल तक प्रतिक्षण वस्तु मे पर्यायो का उत्पाद व्यय होते रहना तो उसका परिणमन स्वभाव है, और एक पृथक पर्याय का उत्पाद, उसी की एक समय स्थिति और तत्पश्चात उसी का व्यय यह पर्याय का परिणमन स्वभाव है ।

४ प्रश्न—त्रिकाली स्वभाव को ग्रहण करने के कारण स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक का अन्तर्भाव द्रव्यार्थिक मे हो जायेगा ?

उत्तर—नही, क्योकि पर्यायार्थिक का विषय वस्तु की पर्यायो का निरन्तर पना है, कोई एक सामान्य तत्व नही, तथा इसके विपरीत द्रव्यार्थिक नय का विषय उस पर्याय सन्तति मे अनुस्यूत एक सामान्य तत्व है, वे पर्याये नही । उदाहरणार्थ एक माला लीजिये, जिसमें अनेक मोतियो की पक्ति एक डोरे मे पिरो कर एक बनादी गई है । तहा माला तो द्रव्य है, मोतियों की पक्ति उसकी त्रिकाल पर्याय संतति है, और डोरा उन पर्यायो मे अनुस्यूत सामान्य तत्व है । पर्यायार्थिक का विषय यहा मोतियो की पक्ति है और द्रव्यार्थिक का विषय उन मोतियो की

नय है, जैसे 'यह भील उन्ही भगवान वीर का जीव है, जो आज सिद्धालय मे विराजित है, ऐसा कहना द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योकि इसमे पूर्वोत्तर पर्यायो का परस्पर मे सम्बन्ध देखा जाता है। तथा 'भगवान वीर तो भगवान ही है, कौन कहता है कि वह भील है या भील थे' ऐसा कहना पर्यायार्थिक नय का विषय है, क्योकि भगवान की वर्तमान पर्याय को ही सत् रूप से देखते हुए, पूर्वोत्तर पर्यायो के सम्बन्ध का निरास किया जा रहा है। यही दोनो मे अन्तर है।

६. प्रश्न—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक नयो व प्रमाण के विषयो को दृष्टान्त द्वारा कुछ स्पष्ट करे ?

उत्तर—यद्यपि निर्विकल्प होने के कारण प्रमाण ज्ञान का कोई उदाहरण नही हो सकता परन्तु स्थूलरूपेन एक दृष्टान्त देता हू, जिस पर से इन तीनो के अन्तर का कुछ आभास हो सकता है।

देखो कल्पना करो कि एक दिन अजायबघर (Museum) देखने गये। हाल के द्वार मे प्रवेश करते ही आपने वहा पर फैली सर्व वस्तुओ को सामान्य रूप से एक ही दृष्टि मे देखा। एक सामान्य सा चित्रण आपके हृदय पट पर अकित हो गया, पर उन्हे 'पृथक पृथक तथा कहां कहां क्या क्या रखा है' ऐसी विशेषता न जान सके, और सहसा ही कह उठे कि यहा तो बहुत कुछ देखने को है। पर क्या है, ऐसा देखने की इच्छा है।

अब आप हाल मे एक सिरे से घूमकर नम्बर वार एक एक वस्तु को पृथक पृथक देखने लगे। और इस प्रकार

ही तीन रूप तथा तीन रूपो वाला वह अकेला एक विशेष मनुष्य है ।

इस प्रकार एक ही मनुष्य को अनेको रूप से देखा गया । मुनि आदि रूप अवस्थाओ के बहुमान रहित केवल मनुष्य सामान्य का ग्रहण द्रव्यार्थिक नय रूप समझो, पृथक पृथक गृहस्थ, मुनि व अर्हन्त रूप से उसका ग्रहण पर्यायार्थिक नय रूप समझो, और तीनो अवस्थाओ में ओत प्रोत उसका अद्वैत रूप से ग्रहण प्रमाण का विषय समझो ।

इनमें से पहिला विशेष गौण सामान्य का ग्रहण है, दूसरा सामान्य गौण विशेष का ग्रहण है और तीसरा सामान्य विशेष का युगपत ग्रहण है। यही तीनो में अन्तर है । पहिला ग्रहण द्रव्यार्थिक नय रूप है और दूसरा ग्रहण पर्यायार्थिक रूप है और तीसरा ग्रहण प्रमाण रूप है ।

७ प्रश्न —इसी द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक व प्रमाण की परस्पर मैत्री को किसी आगम विषय पर लागू करके दिखाइये ?

उत्तर —बहुत सुन्दर बात है । देखो कार्य व्यवस्था सम्बन्धी बात जो शान्ति पथ प्रदर्शन व अन्यत्र सर्वत्र की जाती है, उसमें पांच समवाय बताये गये—स्वभाव निमित्त, पुरुषार्थ, नियति व भवितव्य । इनका निम्न प्रकार से नयों में गर्भित किया जा सकता है ।

स्वभाव से अन्यत्र यह बताया है कि वस्तु परिणमनशील है । अतः स्वभाव का यहां उत्पाद व्यय

सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विपय कहना होगा इस नय की अपेक्षा वस्तु उत्पन्न ध्वसी है ।

पुरुषार्थ वस्तु का क्षण क्षण नया नया प्रयत्न विशेष है । सो पर्यायार्थिक का विषय है । इस नय की अपेक्षा जो पुरुषार्थ अव है वह अगले क्षण मे नही है ।

भवितव्य पुरुपार्थ का फल है अर्थात वस्तु की प्रत्येक क्षण का नया नया कार्य या पर्याय है अत यह भी पर्यायार्थिक नय का विषय है, क्योकि, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु अब कुछ और पर्याय वाली है और अगले क्षण किसी और पर्याय वाली है ।

नियति मे तीनो काल की सम्पूर्ण पर्यायो का यथा स्थान जड़ित एक अखण्ड रूप ग्रहण किया गया है, जो टकोत्कीर्ण वत निश्चित है, आगे पीछे नहीं किया जा सकता है, केवल साक्षी भाव मात्र से देखा जा सकता है । इसे भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय कहना होगा, क्योकि इस नय की अपेक्षा वस्तु त्रिकाली पर्यायो की विचित्रताओं से तन्मय दीखती है ।

निमित्त को यहा स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि वह सयोग है । यहा आगम पद्धति मे वस्तु का निज वैभव मात्र ही दर्शाना अभीष्ट है । अत यहा तो उसका निषेध ही किया जाता है, जिसका ग्रहण परचुष्टय विच्छेदक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय करता है । हां अध्यात्म पद्धति के अन्तर्गत अवश्य उसका ग्रहण कर लिया गया है । वहां उसे विषय करने वाला नय का नाम असद्भूत व्यवहार है, क्योकि, उस नय की दृष्टि से एक द्रव्य अन्य के कार्य मे सहायक होता है ।

(अर्थ —अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से आत्मा देह से भिन्न है ।)

तात्पय यह कि जहा पर शरीर व कर्मों सहित य रहित की, उनके कर्ता पन या विनाशकपने की, उनको भोगने या उनका त्यागने आदि की कोई भी अपेक्षा हो वहा अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय का विषय समझना ।

शरीर व कर्मो का जीव के साथ या परमाणु का स्कन्ध के साथ या इसी प्रकार अन्यत्र भी एक पदाथ का दूसर के साथ दीखने वाला सश्लेष सम्बन्ध ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है । यदि सश्लेष सम्बन्ध कोई वस्तुभूत विषय न हुआ होतातो यह नय भी न हाता । सश्लेष सम्बन्ध को या निकट सम्बन्ध को दर्शाने के कारण ही यह अनुपचार है, तथा भिन्न पदार्थों में एकत्व दर्शाने के कारण असद्भूत व्यवहार है । यह इस नय का कारण है ।

कर्मोदय से उत्पन्न होने वाली सब पर्याय वास्तव मे हेय है । उन की अपेक्षा से दूर निज शुद्ध द्रव्य का निश्चय करना ही सम्यक्त्व है । इस प्रकार परम तत्व में अचलित वति कराना इस नय का प्रयोजन है ।

शंका —फिर एक परमाथ या निश्चय नय का ही कथन करना था, व्यवहार नय का कथन क्यो किया ?

उत्तर —क्योंकि प्रथम भूमिका मे किसी अनिष्णात व्यक्ति को वस्तु स्वरूप समझाने का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही । तथा ज्ञानी के लिये भी वस्तु को अधिकाधिक विशेष रूप से देखने या दर्शाने में इसका उपकार

भुलाया नही जा सकता। निश्चय नय का विषय अभेद या निर्विकल्प है, अत: वह केवल अनुभव में देखा जा सकता है, पर अधिकाधिक विशेषताओ का परिचय पाने के लिये विचारा नही जा सकता। उस अभेद विषय का परिचय इस व्यवहार के द्वारा ही प्राप्त होता है, अत. प्राथमिक जनों के लिये यह अत्यन्त उपकारी है।

चारित्र की अपेक्षा भी प्राथमिक भूमिकाओ मे पूर्ण वीतराग अभेद चारित्र के अंग भूत विशेष भेदों के आधार पर से ही अभ्यास पथ पर आगे बढा जाना सम्भव है। अत. ज्ञान व चारित्र दोनो दिशाओ मे ही यह साधन है और निश्चय साध्य। व्यवहार मे ही निश्चय ज्ञान या निश्चय चारित्र की सिद्धि होती है।

शंका —व्यवहार व निश्चय दोनो का विषय परस्पर विरोधी हैं अत. दोनो मे परस्पर सापेक्षता रखते हुए उनका ग्रहण कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—दोनो नयो के विषय को बारी बारी निर्णय करके, वस्तु को माध्यस्थ भाव से भेद व अभेद रूप युगपत देखना ही दोनो नियों का युगपात ग्रहण है। ऐसे वस्तु के ग्रहण मे विधि निषेध नही होता, साम्यता होती है। इसीलिये निश्चय या वयवहार दोनो के पक्ष ही साधक के लिये निषिद्ध हैं। वस्तु का निर्णय हो जाने पर दोनो का ही आश्रय छोडकर पक्षातिक्रान्त हो जाना योग्य है। यही दोनो का यथार्थ ग्रहण है। क्योकि अखण्ड वस्तु अब साम्य भाव से देखी जा रही है, उसमे व्यवहार के विषय भूत भेद भी दिखाई दे रहे हैं, और निश्चय का

विषय भूत अभेद भी दिखाई दे रहा है । वहाँ किसी का भी निषेध या मुख्यता नही है। जैसे अग्नि को देखने पर उसी समय बिना विकल्प उठाये भी स्वत उसके उष्णता आदि सब अगो का ग्रहण हो जाता है ।

१८ व्यवहार नय सम्बन्धी शका समाधान — अब व्यवहार नय के सम्बन्ध में उठने वाली कुछ शकाओ का समाधान कर देना योग्य है।

शका –आगम पद्धति की सात नयो में ग्रहण की गई व्यवहारनय व इस व्यवहार नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर –पहली व्यवहार नय का विषय केवल द्रव्यार्थिक था और इसका विषय द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक दोनो। कारण कि पहिली का व्यापार तो सग्रह नय के अभेद विषय में भेद कर देना मात्र था परन्तु उनमें व भेदो में से किसी को भी पृथक सत्ता रूप से स्वीकार करना नही । और इस दूसरी का व्यापार अभेद द्रव्य में उसकी द्रव्य पर्यायो की अपेक्षा अथवा गुण गुणी आदि की अपेक्षा भेद करना भी है और भिन्न भिन्न पर्यायो की पृथक सत्ता देख कर उन्हे एक दूसरी मे निरपेक्ष स्वतन्त्र पदार्थ स्वीकार करना भी । जैसे 'जीव दर्शन ज्ञान आदि गुण वाला है' ऐसा कहना भी व्यवहार का विषय है और 'मनुष्य कोई और जाति का पदार्थ है और कीडा कोई और जाति का पदार्थ है' ऐसा कहना भी व्यवहार है।

पहले व्यवहार का क्षेत्र केवल वस्तु व उसके अग थे और इस व्यवहार का क्षेत्र वस्तु व उसके अगो के अतिरिक्त पर सयोग भी है, अर्थात भिन्न द्रव्यो में कर्ता भोक्ता आदि भावो को देखना भी इसका विषय है।

शंका–सद्भूत व्यवहार नय व निश्चय नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर–सद्भूत व्यवहार नय वस्तु के अद्वैत भाव मे गुण गुणी आदि रूप द्वैत उत्पन्न करके उनके मध्य लक्ष्य लक्षण भाव दर्शाता है जैसे 'जीव ज्ञानवान है' और निश्चय नय सम्पूर्ण अगो से तन्मय अखण्ड द्रव्य को देखते हुए किसी एक अंग, गुण या पर्याय मात्र ही द्रव्य को वताकर लक्ष्य व लक्षण मे अभेद करता है। जैसे जीव ज्ञान मात्र है अथवा केवल ज्ञान ही जीव है,"।

शंका–व्यवहार नय को असत्यार्थ कहकर छोड़ने के लिये क्यो कहा जाता है ?

उत्तर–क्योकि यह वस्तु को जैसी है वैसी निरूपण नही करता। या तो उसको खण्डित करके उसमे द्वैत उत्पन्न कर देता है या भिन्न भिन्न पदार्थों को एकमेक मान लेता है। ऐसी मान्यता से भ्रम दूर होने नही पाता। वह लौकिक रूढ़ि का प्रदर्शन करता है। परमार्थ इससे दूर रहता है।

२०

विशुद्ध अध्यात्म नय

१ विशुद्ध अध्यात्म परिचय, २ निश्चय नय, ३ व्यवहार नय सामान्य,

४ सद्भूत व्यवहार नय सामान्य, ५ उपचरित अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय,

६ असद्भूत व्यवहार नय सामान्य, ७ उपचरित अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय,

८ शंका समाधान

अब तक जिस प्रकार अध्यात्म का परिचय दिया गया वह विशुद्ध अध्यात्म अत्यन्त स्थूल है, क्योंकि उसमें सर्वत्र उपचारों का परिचय ग्रहण करना कोई दोष नहीं। संसारी व मुक्त जीव यद्यपि जीव द्रव्य नहीं हैं जीव की द्रव्य पर्याय हैं फिर भी उन्हें यहां द्रव्य स्वीकार कर लिया गया है। इसी प्रकार केवल ज्ञान व मति ज्ञान यद्यपि ज्ञान गुण नहीं हैं ज्ञान की व्यञ्जन पर्यायें हैं, फिर भी उन्हें यहां गुण स्वीकार कर लिया गया है। ग्रन्थाधिराज समयसार की अत्यन्त विशुद्ध अध्यात्म दृष्टि इस उपचार को सहन नहीं करती। यहां द्रव्य का अर्थ अपना सम्पूर्ण त्रिकाली या क्षणिक भावों से तन्मय एक अखण्ड वस्तु है। भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय में ग्रहण किये

गए अखण्ड तत्व को ही द्रव्य कहना न्याय है। इस दृष्टि में जीव को मनुष्य व तिर्यञ्च आदि कहना अथवा ससारी या मुक्त आदि कहना सम्भव नही। जीव त्रिकाली जीव ही है इससे अतिरिक्त कुछ नही। वही निर्विकल्प द्रव्य यहा अभेद ग्राही निश्चय नय का विषय है।

गुण शब्द भी यहा पर्याय के प्रति सकेत नही करता बल्कि त्रिकाल एक सामान्य भाव को ही ग्रहण करता है। 'ज्ञान' ज्ञान ही है मति ज्ञान व केवल ज्ञान नही। ज्ञान कभी हीन या अधिक भी नही होता 'ज्ञान' ज्ञान को ही जानता है। ज्ञेय को जानता है ऐसा कहना भी युक्त नही। ऐसा निर्विकल्प गुण सामान्य ही निर्विकल्प द्रव्य का लक्षण बनाया जा सकता है। अत व्यवहार नय मे गुण गुणी भेद ही यहां ग्रहण किया जाता है, पर्याय पर्यायी भेद नही।

पहले वाली अध्यात्म पद्धति स्थूल है क्योकि वहा की असद्भूत व्यवहार नय भिन्न सत्ताधारी द्रव्यो मे स्व व पर का विवेक उत्पन्न कराती है। पर यह सूक्ष्म दृष्टि एक ही पदार्थ के दो भिन्न भावो में स्व व पर का विवेक कराती है। वहा द्रव्यो की पृथकता सग्रह व व्यवहार नय का विषय है और यहा दो भावो की पृथकता ऋजुसूत्र नय का विषय है। यह दृष्टि पदार्थ के अपने अन्दर पडी उस सूक्ष्म सन्धि को देखती है जो लौकिक स्थूल दृष्टि मे आनी असम्भव है। प्रज्ञाछैनी के द्वारा ही उस सूक्ष्म सन्धि का साक्षात्कार किया जा सकता है।

पदार्थ के स्वभाव अर्थात पारिणामिक भाव को लक्ष्य मे लेकर पदार्थ का विचार करने पर ही यह रहस्य समझा जा सकता है, उसकी शुद्ध व अशुद्ध व्यञ्जन पर्यायो को लक्ष्य मे लेने से नही। अतः विशुद्ध अध्यात्म का परिचय पाने के लिये अत्यन्त स्थिर दृष्टि

की आवश्यकता है । चचल दृष्टि में उसका प्रवेश नही, क्योंकि प्रसग आने पर वह दृष्टि अपने लक्ष्य से बहक जाती है । 'ज्ञान' से तन्मय होने के कारण आत्मा का काम जानने के अतिरिक्त और कुछ नही' इस बात को स्वीकार कर लेने पर भी, 'घट बनाना कुम्हार का काम नहीं' जब ऐसा समझाने का अवसर आता है तो तुरन्त वह दृष्टि अपने पूर्व के लक्ष्य पर से बहक कर इस चिन्ता में पड जाती है कि 'कुम्हार के बनाये बिना घट कैसे बना ।' अर्जुन को लक्ष्य साधते समय जिस प्रकार चीवे की आख के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न देता था, भले ही वहा वृक्षादि अनेको पदार्थ पड़े हो, इसी प्रकार पदार्थ का लक्ष्य साधते हुए तुम्हें भी उसके पारिणामिक भाव के अतिरिक्त कुछ भी अन्य दिखाई न देना चाहिये, भले ही वहा निमित्त नैमित्तिक अनेक संयोग पडे हो । ऐसे स्थिर लक्ष्य में निमित्त नैमित्तिक भाव भी अभेद द्रव्य के अपने अन्दर ही देखा जाता है, जैसे कि समयसार की १०० वी गाथा में बताया गया है कि 'ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी घट बना नही सकता । उपादान रूप मे तो नही पर निमित्त रूप में भी नही बना सकता । अज्ञानी निमित्त रूप से यदि कुछ कर सकता है तो केवल घट बनाने का विकल्प कर सकता है, इसके आगे कुछ नही ।' अत इस सूक्ष्म दृष्टि को समझने के लिये अब लक्ष्य को स्थिर कीजिये ।

लोक में छ द्रव्य है । इन में से धर्म, अधर्म, आकाश व काल य चारो तो त्रिकाली शुद्ध हैं, परन्तु जीव व पुद्गल किसी विशेष शक्ति से युक्त है, जिसके कारण यह अपने स्वभाव के अनुरूप भी कार्य कर सकते हैं और इसके विपरीत किसी भिन्न जाति रूप भी । इस शक्ति को आगम भाषा में 'वैभाविक शक्ति' नाम से कहा गया है । यहा 'वैभाविक शक्ति' इस शब्द का अर्थ पर्याय न समझ लेना । क्योंकि शक्ति त्रिकाली भाव को कहते हैं ।

त्रिकाली भाव दो प्रकार के होते हैं—गुण रूप शक्ति रूप । गुण

को हम शक्ति कह सकते है, पर शक्ति को गुण नही क्योकि गुण प्रतिक्षण कोई न कोई कार्य करता ही रहता है, परन्तु शक्ति वस्तु मे पडी रहती है, यदि अनुकूल सामग्री मिली तो वह अपना असर दिखा देती है, नही तो पडी रहती है। उदाहरणार्थ ईन्धन मे उसका भूरा आदि रग व उसकी कठोरता आदि स्पर्श तो गुण है, क्योकि इनका कोई न कोई कार्य अर्थात पर्याय हर समय उसमे देखने को मिलती है, और अग्नि के द्वारा जल जाने की शक्ति है, क्योकि उसका काम हर समय दिखाई नही देता। अग्नि का सयोग मिला तो जल गया, नही मिला तो नही जला। न जलने वाली हालत मे क्या उसकी शक्ति कही चली गई ? नही उसमे ही है। इसी प्रकार जीव व पुग्द्रल मे चलाने व फिरने की शक्ति है, पर इसका यह अर्थ नही कि वह हर समय चलते ही रहे। चाहे तो चले और चाहे तो न चले। उन्हे प्रत्येक समय चलना ही पड़े ऐसा नही है। इसी कारण उसे आगम मे क्रियावती नाम की शक्ति कहा गया है, गुण नही।

जीव मे ज्ञान तो गुण है क्योकि हर समय–निगोद या सिद्ध दोनो अवस्थाओ मे यह जानता है। उसका जानने का कार्य एक समय को भी रूकता नही। पर क्रोध करने का उसमे गुण नही है शक्ति है, क्योकि चाहे तो क्रोध करे चाहे तो न करे। क्रोध न करते समय उसकी वह शक्ति कही चली नही जाती, शक्ति होने का यह अर्थ भी नही की हर समय उसे क्रोध करना ही पड़े। सिद्ध भगवान मे वह शक्ति केवल शक्ति रूप से पडी है भले ही उन्हे कभी क्रोध करने का अवसर प्राप्त न हो, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि ससारी जीव मे भव्यत्व शक्ति 'शक्ति' रूप से पडी है भले उसे सिद्ध बनने का अवसर भी प्राप्त न हो।

इस शक्ति को 'स्वभाव' या 'धर्म' इस नाम से भी कहा जाता जाता है। 'गुण' को हम शक्ति, स्वभाव या धर्म कुछ भी कह

सकते । जीव में रागद्वेषादि रूप परिणमने की शक्ति है और पुद्गल में स्कन्ध रूप परिणमने की । इन दोनो द्रव्यो में इस प्रकार से परिणमने की शक्ति का नाम वैभाविक शक्ति है । इसके कारण ही ये दोनों द्रव्य शेष चार द्रव्यो की अपेक्षा कुछ विचित्रता रखते हैं वास्तव में यही शक्ति इस लोक के मूल पसारे का कारण है । यदि यह न होती तो सब ही द्रव्य अपनी स्वभाविक अवस्था में रहते । पुदगल भी इन्द्रियो का विषय न बना होता । सब अदृष्ट रहते । इसी प्रकार जीव भी बन्ध को प्राप्त न हुआ होता । अत ससार व मोक्ष न होता ।

इस शक्ति विशेष के कारण जीव व पुद्गल दोनो द्रव्यो में दो प्रकार के क्षणिक भाव या पर्याय देखने को मिलती है—स्वभाव पर्याय व विभाव पर्याय । अकेला परमाणु व उसके स्पर्शादि गुण पुद्गल के स्वभाव भाव है और स्कन्ध व उसके स्पर्शादि गुण विभाव भाव है । सिद्ध भगवान व उनके केवल ज्ञानादि गुण जीव के स्वभाव भाव है और ससारी जीव व उसके क्रोधादि गुण विभाव भाव है । 'स्वभाव भाव' निज भाव या स्वभाव कहलाते है और 'विभाव भाव' पर भाव कहलाते है । इस प्रकार एक ही द्रव्य के अपने भावो में स्व व पर का विभाजन इस सूक्ष्म दृष्टि का कार्य है ।

इन स्व व पर भावों के कारण उनसे तन्मय द्रव्य में भी किञ्चित विजातीयता का आभास होने लगता है । यहा पुदगल को छोड कर जीव द्रव्य में ही उस विजातीयता की सिद्धि करते है । पुदगल में यथा योग्य स्वय लगा लेना । जीव द्रव्य एक विचित्र पदार्थ है क्योकि स्व व पर दोनो को जानने में समर्थ है । जानना मात्र ही हुआ होता तो कोई दोष न होता । यहा जानने के साथ साथ कुछ और भाव भी पैदा होता है । स्व को जानते हुए तो इसे स्व व पर दोनों ही दिखाई देते हैं किन्तु पर को जानते हुए इसे स्व दिखाई

नहीं देना। स्व को जानते समय यह स्व स्वरूप के साथ तन्मय होता है और पर को जानते हुए यह उसके साथ तन्मय सा हो जाता है। तन्मय का अर्थ यहा उस पदार्थ रूप वन जाना नहीं है, वल्कि अपने को भूलकर केवल उस पदार्थ की सत्ता को देखना मात्र है। अथवा ज्ञेय पदार्थ मे परिवर्तन होने पर अपने भावो मे भी तदनुसार परिवर्तन करना इसका अर्थ, जैसे कि फूल खिल जाने पर कुछ हर्ष व उसके मुरझा जाने पर कुछ विषाद सा होना। इस कारण चेतन रहते हुए भी उसमे चेतन भाव व जड भाव दोनो देखे जा सकते हैं। बात बढी विचित्र है पर दृष्टि विशेष सी समझी अवश्य जा सकती है।

जीव पदार्थ मे ज्ञान गुण ही प्रमुख है, अन्य सब उसका विस्तार है। चेतन के सब गुण चेतन है अर्थात ज्ञानात्मक व अनुभवात्मक है। ज्ञान तो ज्ञान है ही, श्रद्धा भी ज्ञानात्मक है और चारित्र भी, क्योंकि ज्ञान के ही निःसशय रूप को श्रद्धा और उसी के स्थित रूप को चारित्र कहते हैं। सुख भी ज्ञानात्मक है क्योकि अनुभाव नाम ज्ञान का ही है। इसी कारण आत्मा को चित्पिण्ड कहा जाता है। या यों कहिये कि ज्ञान मात्र ही आत्मा है। अत ज्ञान के कार्यो को ही ज्ञान का विषय बनाना अभीष्ट है।

यद्यपि ज्ञान का कार्य जानना है, पर इसके साथ कुछ और भाव भी सलग्न है। जानना दो प्रकार का होता है–एक केवल जानना और दूसरा कल्पना विशेष के साथ जानना। अजायबघर मे रखी वस्तुओ को जानना केवल जानने का उदाहरण है। और घर मे पडी वस्तुओ को जानना कल्पना सहित जानने का उदाहरण है। अजायब घर मे प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्थान पर सुन्दर लगती है। और घर की वस्तुओ मे कोई सुन्दर और कोई असुन्दर लगती है। अजायब घर

म नोई वस्तु इष्ट अनिष्ट या तेरी मेरी नही । पर घर की वस्तुओ में कोई इष्ट ह और कोई अनिष्ट, कोई मेरी है और कोई तेरी। अजायब घर की वस्तुए न ग्राह्य है और न त्याज्य न कोई बनाने योग्य ह और न बिगाडने योग्य । पर घर की वस्तुओ में कोई ग्राह्य है और कोई त्याज्य, कोई बनाने योग्य है और कोई बिगाडने योग्य । इसी लिये अजायब घर की वस्तुओ का जानना तो कर्ता भोक्ता की कल्पनाओ से अतीत जानना मात्र है और घर की वस्तुओ को जानना कर्ता भोक्ता की कल्पनाओ सहित होने के कारण जानन के साथ साथ कुछ और भी है । ज्ञान के पहले जाति के काय को ज्ञान क्रिया कहते ह और दूसरी जाती के जानने की क्रिया को कर्ता क्रिया कहते हैं । पारि भाषिक शब्द याद रखना । ज्ञान क्रिया ज्ञाता दृष्टा भाव रूप है और कर्ता क्रिया क्रोधादि विकारा रूप । ज्ञान क्रिया ज्ञान के पारिणामिक भाव के साथ या चेतन के साथ तन्मय होने के कारण चेतन भाव है और कर्ता क्रिया जड पदार्थों के करने धरने के विकल्पो से तन्मय होने के कारण जड भाव है।

इन दोनो जाति] की क्रियाओ में ज्ञान एक समय मे एक ही काय कर सकता है, क्योंकि उपयोग ज्ञान की क्षणिक पर्याय है, और एक समय मे एक ही ज्ञान की दो पर्याय हो नही सकती है । इसलिये ज्ञान क्रिया के सद्भाव में कर्ता क्रिया और कर्ता क्रिया के सद्भाव में ज्ञान क्रिया होनी असम्भव है । अर्थात क्रोध के समय ज्ञाता दृष्टा पने की साम्यता और साम्यता के समय क्रोधादि होने असम्भव है ।

ज्ञान क्रिया में तन्मय चेतन ज्ञाता कहलाता है और कर्ता क्रिया से तन्मय चेतन कर्ता कहलाता है । इसका कारण भी यह है कि ज्ञान का अपने पारिणामिक भाव के अनुरूप काय ही ज्ञान की जाति का काय कह जा सकता है । कर्ता भोक्ता की

कल्पनाये ज्ञान के पारिणामिक भाव की जाति की नही होने के कारण उन्हे ज्ञान की जाति का कार्य नही कहा जा सकता । ज्ञान भाव से तन्मय ज्ञान का कार्य ज्ञान कहलाता है और कल्पनाओ या विकल्पो से तन्मय ज्ञात का कार्य विकल्प कहलाता है । इस प्रकार एक ज्ञान के दो भेद कर दिये गए एक ज्ञान व दूसरा विकल्प ।

पहले भेद अर्थात ज्ञान क्रिया से तो मै ज्ञाता इस ज्ञेय को जानता हू, ऐसा भाव बना रहता है, परन्तु कर्ता क्रिया मे ज्ञान स्वय ज्ञाय के साथ तन्मय होकर यह भूल जाता है कि मै जानने वाला भी कोई हूं । उसको ज्ञेय पदार्थ या उसकी पर्याय ही दिखाई देती है, ज्ञाया–ज्ञेय का भेद नही रहता । यद्यपि ज्ञेय सम्बन्धी विकल्प से तन्मय है, ज्ञेय से नही, परन्तु 'यह विकल्प है और ज्ञेय मुझ से भिन्न है, उसके परिवर्तन पाने से मुझे कुछ हानि लाभ नही, ऐसा भी ज्ञान उस समय नही होता । स्व पर का विवेक सर्वथा लुप्त हो जाता है । इसलिये उस ज्ञान की स्व पदार्थ के साथ तन्मय होने के कारण स्वभाव है और कर्ता क्रिया पर पदार्थ के साथ तन्मय होने के कारण परभाव है ।

यही विशुद्ध अध्यात्म का भेद विज्ञान है, जिसको ग्रहण करना अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि मे ही सम्भव है । एक ज्ञान मे ही विवक्षा वश स्व व पर का द्वैत उत्पन्न कराया गया है । साधारण अध्यात्म मे स्व व पर की कल्पना स्थूल थी, पर यहा स्व पर की व्याख्या अत्यन्त सूक्ष्म है । वह द्रव्यार्थिक का विषय था और यह पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र का विषय है, कारण कि ज्ञान क्रिया के साथ तन्मय रहने वाला ज्ञाता व्यक्ति कोई और है, और कर्ता क्रिया से तन्मय रहने वाला कर्ता व्यक्ति कोई और । जो ज्ञाता है वह कर्ता नही और जो कर्ता है वह ज्ञाता नही । इस विशुद्ध दृष्टि मे स्व पदार्थ का क्या

अथ है और पर पदाथ का क्या अर्थ है यह समझने के पश्चात अब मूल विषय पर आइये। यहा भी मूल नयें दो ही है–निश्चय व व्यवहार। व्यवहार नय के भेद भी वही है–उपचरित अनुपचरित सदभूत व असद्भूत। उनके लक्षण भी वही हैं। अतर कवल इतना है कि यहा द्रव्य शब्द का अथ त्रिकाली सामान्य द्रव्य है, और गण शब्द का अर्थ भी त्रिकाली सामान्य गुण है, उनकी शुद्ध व अशुद्ध पर्याय नही। इसी कारण निश्चय नय के यहा कोई उत्तर भेद नहा हैं। स्व पदाथ व पर पदाथ की व्याख्या में भी यहा उपरोक्त प्रकार अन्तर है। अब क्रम पूवक इन नयों के लक्षण आदि दर्शाने में आते ह।

२ निश्चय नय

यहा भी निश्चय नय का वही लक्षण है, जो कि पहल वाली अध्यात्म पद्धति में कर आये है, अर्थात अपने सम्पूर्ण गुणो व पर्याय से तन्मय द्र यमे अभेद देखना निश्चय नय का लक्षण है। इतना विशेष है कि आगम पद्धति की द्रव्यार्थिक नय वत् यहा द्रव्य को शुद्ध व अशुद्ध में विभाजित नही किया जा सकता, और इसीलिये यहा इस नय के शुद्ध निश्चय व अशुद्ध निश्चय ऐसे दो भेद नही किय जा सकते। जबकि पहले वाला निश्चय नय, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य पर्यायो को द्रव्य रूप से और गुणो की शुद्ध या अशुद्ध पर्यायो को गुण रूप से स्वीकार करके, उसके साथ तन्मय द्रव्य को ग्रहण करने के कारण, दो भेद रूप कर दिया गया है। विशुद्ध अध्यात्म के इस प्रकरण में द्रव्य शब्द का अथ भेद निरपेक्ष त्रिकाली द्रव्य सामान्य है और गुण शब्द का अथ शुद्ध व अशुद्ध पर्यायो से निरपेक्ष त्रिकाली गुण सामान्य है। अत यहा न तो गुण की व्याख्या पर्यायों पर से की जा सकती है, और न द्रव्य की व्याख्या गुण पर से। इसका विषय पूर्ण निर्विकल्प है।

निर्विकल्पता 'में गुण से तन्मय द्रव्य' इतना कहने को भी अवकाश नही, क्योकि अभेद प्रदशन होते हुए भी इस वाक्य में गुण

व द्रव्य का द्वैत देखा जाता है 'सत् मात्र द्रव्य है, या ज्ञान 'न मात्र जीव है' ऐसा कहना इस पद्धति मे व्यवहार समझा जाता है । लक्ष्य लक्षण भेद के विना भेद ही नही किया जा सकता फिर इस निश्चय नय का लक्षण कैसे करे ? 'द्रव्य जैसा है वैसा ही है' वस ऐसा कहना ही इस नय का लक्षण है । इसी को और अधिक स्पष्ट करना हो तो 'व्यवहार गत विकल्पो का निषेध करना ही इसका लक्षण है' ऐसा समझ लीजिये ।

तात्पर्य यह है कि 'ज्ञान जीव का लक्षण है' ऐसा कहना व्यवहार है, तव 'ज्ञान मात्र ही जीव नही है, ऐसा कहना निश्चय है । 'ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणो का पिण्ड जीव है' ऐसा कहना व्यवहार है, तव 'ज्ञान दर्शन चारित्र ऐसा त्रयात्मक जीव नही है वह तो इन सव भेदो से निरपेक्ष है, ऐसा कहना निश्चय है । अर्थात द्रव्य का परिचय देते समय जो कोई भी विकल्प व्यवहार नय उत्पन्न करे उसका निषेध कर देना मात्र इसका लक्षण किया जा सकता है । भेद ग्रहण के विना विधि आत्मक लक्षण होना असम्भव होने के कारण निषेधात्मक लक्षण किया गया है । इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१. प.ध. ।५९८–६४४ "व्यवहार. प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेधकश्च परमार्थ । व्यवहार प्रतिपेध स एव निश्चय नयस्य वाच्य. स्यात् । ५९८, । व्यवहार. स यथा स्यात्सद्द्रवय ज्ञान वाच्य जीवो वा नेत्येतन्मात्तो भवति स निश्चयनयो नयाधिपति । ५९९. लक्षण मेकस्य सतो यथाकथचिद्यथा द्विधाकरणम् । व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुनः । ६१४। इदमत्र निदान किल गुण व द्रवय यदुक्त मिह सूत्रे। अस्ति गुणस्ति द्रवय तद्योगादिह लव्धामित्यर्थात । ६३४।

तदसत् गुणास्ति यतो न द्रव्य नोभय न तद्योग ।
केवल मद्वैतसत् भवतु गुणो व तदव सद्द्रव्यम् ।
८३५ । नैव यतास्ति भेदोऽनिवचनीये नय स
परमाथ तस्मात्तीथस्थितये श्रेयान् कचित्स स
वावदूकोऽपि । ६८१ । इदमत्र समाधान व्यवहारस्य
त्र नयस्य यद्वाच्यम । सवविकल्पाभावत तदेव निश्चय
नयस्य यद्वाच्यम् । ६८३ ।"

श्रमण त प । ३ १३४ "एक शुद्ध नय सर्वोनिद्वन्दो
निविकल्पक । १३४ ।"

अर्थ —व्यवहार नय प्रतिषेध्य है ,तथा उसका प्रतिपेधक निश्चय नय है । अर्थात व्यवहार नय,का निपेध करना ही निश्चय नय का वाच्य है । ५९८ । जस 'सत् द्रव्य है' अथवा 'ज्ञानवान जीव है' इस प्रकार का कथन करना वयवहार नय है । तथा 'इतना ही मात्र नही है' इस प्रकार का व्यवहार का प्रतिपेध करन वाला जो कथन है वही नयो का अधिपाति निश्चय नय है । ५९९ । जिस प्रकार एक सत को किसी भाति अर्थात गुण पर्याय आदि वाला वतला कर द्वैत रूप करना व्यवहार नय का लक्षण ह उसी प्रकार व्यवहार नय से विपरीत अर्थात अद्वत सत में द्वत न करना निश्चय नय का लक्षण है । ६०८ ।

निश्चय में यवहार नय अभूतार्थ है । इसका कारण यह है कि सूत्र में द्रव्य को जो गुण वाला कहा है, उसका अर्थ करने से ऐसा प्रतीत होता है, माना पहले गुण जुदा थे द्रव्य जुदा, पीछे से द्रव्य के साथ गुण का योग हुआ, इसलिये वह गुण वाला

कहलाने लगा । ६३४ । परन्तु यह बात ठीक नही, क्योकि न तो अकेले गुण की कोई सत्ता है, न अकेले द्रव्य की सत्ता है न सयोग सम्बन्ध वाले इन दोनो की सत्ता है । केवल एक अद्वैत सत् है । इस सत् को चाहे गुण कहो अथवा द्रव्य एक ही बात है क्योकि वे भिन्न नही है । ६३५ ।

इस प्रकार शुद्ध नय सर्वत. निर्द्वन्द व निर्वकल्प है । १३४ ।

परमार्थ नय तो अनिर्वचनीय है इसलिये तीर्थ की स्थिति के लिये भेद ग्राहक व्यवहार नय को किसी समय कार्यकारीमाना जाता है । ६४१ । यहा यह तात्पर्य है कि व्यवहार नय का जो कोई भी वाच्य है, वही सम्पूर्ण विकल्पो का अभाव होने पर निश्चय नय का वाच्य बन जाता है । ६४३ ।

भले ही समझने व समझाने के लिए लक्ष्य लक्षण व गुण गुणी आदि भेद करके कथन करने मे आये परन्तु वस्तु वास्तव मे अभेद व निर्विकल्प ही है, जो वचन के गोचर नही हो सकती । यदि यह नय सामने आकर व्यवहारिक द्वैत का निरास न करे तो उसके द्वारा स्थापित किये गये द्रव्य गुण व पर्याय आदि भेदो की पृथक सत्ता की स्वीकृत्ति को कौन रोक सकता है ? यह तो इस नय का कारण है और कर्म कलक से रहित ज्ञानात्मक निर्विकल्प आत्म तत्व की सिद्धि द्वारा सम्पूर्ण विकल्पो का अभाव करके ज्ञाता दृष्टा भाव मे स्थिति पाना इस नय का प्रयोजन है ।

जैसा कि पहले नैगमादि नयो के अन्तर्गत वयवहार नय के ३. व्यवहार नय प्रकरण मे बताया जा चुका है, व्यवहार का लक्षण सामान्य भेद करना है । विधि पूर्वक द्रव्य मे गुण—गुणी तथा लक्ष्य लक्षण आदि रूप भेद या द्वैत उत्पन्न करना इस नय का लक्षण है । यही लक्षण पहले भी सर्वत्र ग्रहण करने मे आया है । यहा इतना विशेप है कि द्रव्य की शुद्ध व अशुद्ध पर्यायों से निरपेक्ष

त्रिकाली द्रव्य सामान्य को ही यहा द्रव्य समझा जाता है । और इसी प्रकार व्यञ्जन पर्यायो से निरपेक्ष गुण सामान्य के त्रिकाली स्वभाव को ही यहा गुण समझा जाता है । इसी कारण पर्याय पर्यायी भेद को यहा अवकाश नही । गुण सामान्य पर से द्रव्य सामान्य का परिचय देना ही इसका काम है ।

द्रव्यो में जीव पुदगलादि भेद करके द्रव्य सामान्य का लक्षण करना अथवा जीव द्रव्य मे ससारी मुक्त आदि जाति भेद न करके जीव–सामान्य का लक्षण करना अथवा पुदगल द्रव्य मे परमाणु स्कन्ध आदि जाति भेद न करके पुदगल सामान्य का लक्षण करना ही इस नय का व्यापार है । अत उन उन द्रव्यो के सामान्य गुणो को ही यहा लक्षण रूप से ग्रहण करने में आता है । जैसे 'द्रव्य का लक्षण सत् है' अथवा 'जीव का लक्षण ज्ञान है । अथवा 'पुदगल का लक्षण स्पर्श है' इत्यादि ।

इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ अब कुछ उद्धरण देखिये–

१ प ध । पू । ५२२–५२३ "व्यवहारण व्यवहार स्यातिति शब्दार्थतो न परमार्थ । स यथा गुण गुणिनो रिह सदभेदे भेद करण स्यात् ५२२ साधारण गुण इति यदि वाऽसा धारण सतस्तस्य । भवति विवक्ष्यो हियदा व्यवहार-नयास्तदा श्रेयान । ५२३ ।" व्यवहार मयया स्यात्सद्द्व्य नानवाँश्च जीदो वा । । ५९९ ।"

अर्थ —विधि पूर्वक भेद करने का नाम व्यवहार है । यह लक्षण शब्दार्थ रूप समझना परमार्थ रूप नही । अर्थात सत्ता, सख्या, लक्षण प्रयोजन की अपेक्षा ही इस प्रकार का भेद किया जाना सम्भव है, द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव,

की अपेक्षा नही। क्योकि यहा गुण व गुणी मे सत् रूप से अभेद होते हुए भी भेद करने को व्यवहार नय कहते है। ५२३। जिस समय इस सत् के साधारण या सामान्य गुण अथवा असाधारण या विशेष गुण इन दोनो मे से कोई एक गुण भी विवक्षित होता है उस समय निश्चय से व्यवहार नय ठीक कहलाता है।५२३। इसका उदाहरण ऐसे समझो जैसे 'द्रव्य सत है' अथवा 'ज्ञानवान जीव है' ऐसा कहना। ५९१।

अभेद वस्तु मे भी, उसको भिन्न भिन्न कार्यो पर से, गुणो रूप इन भेदो का कथञ्चित ग्रहण अवश्य हो रहा है। यदि सर्वथा न हुआ होता तो गुण–गुणी का विकल्प भी होना असम्भव था। वस्तु मे इस प्रकार के कथञ्चित भेद का सद्भाव ही इस नय की उत्पत्ति का कारण है। परिचित भेदो के आधार पर उनसे तन्मय अभेद तथा यथार्थ द्रव्य सामान्य का परिचय देना इसका प्रयोजन है। या यो कहिये कि अनन्त धर्मात्मक एक धर्मीके अस्तित्व की प्रतिति करना इसका प्रयोजन है।

वस्तु मे दो प्रकार भेद देखे जा सकते है–स्वभाविक अगो अर्थात गुणों व उनके स्वभाविक कार्यो के आधार पर तथा विभाविक अगो के अर्थात पर सयोगी निज भावो के आधार पर। इस प्रकार विषय भेद से इस नय के भी दो भेद हो जाते है–सद्भूत व असद्भूत। इनके लक्षण व भेदादि ही अब आगे दिखाये जायेगे।

४ सद्भूत व्यवहार नय सामान्य

व्यवहार नय सामान्य वत् सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण भी वस्तु मे गुण गुणी भेद करना है। यहा भी पर्याय पर्यायी को अवकाश नही। अन्तर केवल इतना है। कि यहां द्रव्य सामान्य मे जाति भेद दर्शाना अभीष्ट है। इस-लिये पृथक पृथक द्रव्यों के विशेष गुणो को यहा लक्षण रूप से ग्रहण

किया जाता है, सामान्य गुणो को नही । कारण यह है कि सामान्य गुणा पर से द्रव्य सामान्य के स्वभाव का परिचय पाया जा सकता है। परन्तु एक द्रव्य मे दूसरें द्रव्य की पृथकता नही दिखाई जा सकती। जसे कि 'द्रव्य सत है' ऐसा कहने से 'जीव होकि पुद्गल मत्र ही सत् ह। इनमें जाति भेद नही है' इस प्रकार का ग्रहण होता है। और यदि ऐसा हो जाये तो सव सकर दोष का प्रसग आये अर्थात सब द्रव्य मिलकर एक हो जायें, तब बन्ध व मोक्ष भी किसे कह।

'सत' या अस्तित्व द्रव्य का साधारण या सामान्य गुण है। अर्थात प्रत्येक द्रव्य सत् रूप ता है ही, परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ और भी है। जैसे जीव सत होते हुए भी ज्ञान वान जड नही या रूप रस गन्ध वाला नही और इसी प्रकार पुद्गल सत् होते हुए भी जड या रूप, रस, गन्ध वाला हे ज्ञानवान नही,। इसी भाति लोकम जाति भेद से छ द्रव्यो की सत्ता आगम सिद्ध है—जीव, पुद्गल, धम, अधम, आकाश व काल। छहो ही सत है। परतु भिन्न भिन्न स्वभाव को धरने वाले ह। उनके काम भी भिन्न भिन्न जाति के है—जीव का काम जान ना है, पुद्गल का काम जीव के शरीरो का निर्माण करना है, धम द्रव्य का काम जीव पुद्गल को गमन करने में सहायता देना तथा अधम द्रव्य का काम उन्हें रुकने में सहायता देना, आकाश द्रव्य का काम सब द्रव्यो को रहने के लिये स्थान देना ह और काल द्रव्य का काम सब द्रव्यो को परिवतन करने म सहायता देना है। इस प्रकार एक द्रव्य का काम दूसरे की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न जाति का है, इसी पर से उन द्रव्यो की भिन्न जातीयता का निणय होता है। द्रव्य के इस प्रकार के भिन्न जातीय स्वभावा को ही असाधारण या विशेष गुण कहते है।

इन गुणो के आधार पर पृथक पृथक द्रव्यो का परिचय देकर उनम विभिन्नता दर्शाना इस नय का काम है अर्थात एक अद्वैत सत् को खण्डित कर देना इसका काम है। इसी की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

१ प ध । पू । ५२५–५२६ "व्यवहारनयो द्वेधा: सद्भूतस्त्वत्य भवेदसद्भूत । सद्भूतस्तमुङ्गुण इति व्यवहारस्त त्प्रवृत्तिमात्रत्वात् । ५२५ । अत्र निंदानच यथा सद्साधारण गुणो विवक्ष्य: स्यात् । अविवक्षितोऽथवापि चसत्सा-धारण गुणो न चान्यतरात् । ५२६ ।"

अर्थः—सद्भूत तथा असद्भूत इस भांति व्यवहार नय दो प्रकार का है। उसमे से विवक्षित वस्तु के गुण का नाम सद्भूत है तथा इन गुणो की प्रवृत्तिमात्र का नाम व्यवहार है। प्रवृत्ति का अर्थ यहा सज्ञा सख्यादि की अपेक्षा कथन मे भेद डालना समझना, वस्तु मे नही, । ५२५ । इस प्रवृति मे कारण यह है कि जिस प्रकार यहां 'सत्' अर्थात द्रव्य सामान्य के किसी असाधारण या विशेष गुण की विवक्षा करने मे आती है उस प्रकार सत् के किसी साधारण या सामान्य गुण की विवक्षा करने मे नही आती। और इसी प्रकार अन्य भी कोई पर्याय आदि की विवक्षा करने मे नही आती। तात्पर्य है कि व्यवहार सामान्य मे तो सामान्य व विशेष दोनो गुणो का ग्रहण होता था पर सद्भूत मे केवल विशेष गुणो का ही ग्रहण करके द्रव्य विशेष का परिचय दिया जाता है। ५२६ ।

द्रव्यों मे प्रत्यक्ष होने वाली उपरोक्त विजातीयता इस नय की उत्पत्तिका कारण है। क्योकि यह विजातीयता न होती तो इस नय का कोई विषय भी न होता। विपय के अभाव मे नय का भी अभाव होता। द्रव्य मे रहने वाले यह विशेष गुण सद्भूत है अर्थात

वस्तु के वास्तविक अग है काल्पनिक नही। इसलिये इस नय का नाम सद्भूत है और गुण गुणी भेद करने के कारण व्यवहार है। स्वभाव भेद पर से द्रव्यो की भिन्न जातीयता का निर्णय करके पर द्रव्यो का निषेध तथा स्व द्रव्य में प्रवृत्ति करना ही योग्य है। यही बताना इस नय का प्रयोजन है।

५ उपचरित अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय

जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है यह विशुद्ध अध्यात्म पद्धति पर्याय पर्यायी भेद नही करती। गुण सामान्य पर से द्रव्य सामान्य का और गुण विशेष पर से द्रव्य विशेष का परिचय देती है। 'ज्ञान वाला जीव है' ऐसा कहना सद्भूत सामान्य का विषय है क्योंकि ज्ञान जीव का विशेष गुण है सामान्य नही। ज्ञान गुण में किसी भी प्रकार का विकल्प विशेष उत्पन्न न करके ज्ञान सामान्य को ही जीव का लक्षण कहना तो अनुपचरित सद्भूत व्यवहार समझना। ज्ञान गुण में ज्ञेय सम्बन्धी कुछ उपचार कर देने पर यही लक्षण उपचरित सद्भूत व्यवहार का कहलायेगा। सो कैसे वही बताता हू।

जिस प्रकार गुणो के आधार पर द्रव्य की विशेषता दर्शाये बिना द्रव्य का परिचय देना असम्भव है, इसी प्रकार किसी भी गुण की विशेषता दर्शाये बिना गुण का परिचय देना असम्भव है। गुण का परिचय प्राप्त किये बिना श्रोता उसके आधार पर द्रव्य का परिचय भी कैसे पा सकेगा ? अत ऐसी अवस्था में उपरोक्त अनुपचरित लक्षण अपने प्रयोजनादि की सिद्धि करने में समर्थ न हो सकेगा। जिस प्रकार निश्चय नय के वाच्यभूत निर्विकल्प का परिचय देने मे पहिले द्रव्य की विशेषता दर्शाने वाले व्यवहार नय का आश्रय लेना आवश्यक है, इसी प्रकार गुण के आधार पर द्रव्य का परिचय देने से पहिले गुण की विशेषता को दर्शाना अत्यन्त आवश्यक है।

यहा जीव द्रव्य की मुख्यता से कथन चलता है। उसका परिचय देने के लिये अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय ने उसके विशेष गुण 'ज्ञान' को आधार बनाया है। इस ज्ञान गुण की विशेषता दर्शाना ही उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। ज्ञान नाम जानन स्वभाव का है। जानना किसी ज्ञेय का होता है। ज्ञेय को जाने बिना ज्ञान किसको कहे? 'ज्ञान तो ज्ञान ही है' ऐसा कहने से कोई क्या समझे? 'जो घट पट आदि को जानता है उसे ज्ञान कहते है' ऐसा बताने पर ही ज्ञान शब्द का अर्थ प्रतिति मे आता है। अर्थात ज्ञान का लक्षण करने के लिये या ज्ञान की विशेषता दर्शाने के लिये आवश्यक ही ज्ञेय का अवलम्बन लेना पडता है। ज्ञेय को जानते हुए भी 'ज्ञान' ज्ञान रूप ही है ज्ञेय रूप नही, परन्तु ज्ञेय के प्रतिबिम्ब के बिना ज्ञान का कोई अर्थ भी नही है। इस प्रकार यद्यपि ज्ञान व ज्ञेय पृथक पृथक पदार्थ है परन्तु प्रयोजन वश ज्ञेय का उपचार ज्ञान मे करके इस मे घट या पट रूप ज्ञेयो की उपाधि लगाई जाती है अर्थात ज्ञान सामान्य को 'घट ज्ञान' या 'पट ज्ञान' कहा जाता है। इसी का नाम उपचार है।

ज्ञेयो को जानने वाला ज्ञान या ज्ञेयाकार रूप से प्रतीति मे आने वाला जो यह ज्ञान है, वही जीव द्रव्य का लक्षण है' ऐसा कथन करना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। इसी लक्षण को पुदग्लादि अन्य द्रव्यो पर भी यथा योग्य रीतय. लागू किया जा सकता है—जैसे "यह जो स्पर्श, रस, गन्ध, आदि भाव नित्य ज्ञान के अनुभव करने मे आते है वही पुदग्ल का लक्षण है" ऐसा कहा जा सकता है। इसी लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये।

प ध । पू । ५३५ ५४० 'स्यादादिमो यथा तर्लीना या शक्तिरस्ति यस्य सत । तत्तत्सामायतया निरूप्यते चेद्विशेषनिरपेक्षम् । ५३५। इदमत्रोदाहरण ज्ञान जीवोपजीवि जीवगुण । ज्ञयालम्बनकाले न तथा ज्ञेयोपजीवि स्यात । ५३६ । घटसदभावे हि यथा घटनिरपेक्ष चिदेव जीवगुण । अस्ति घटाभावेऽपि च घट निरपेक्ष चिदेव जीवगुण ।५३७। उपचरित सद्भूतो व्यवहार स्यान्नयो यथा नाम् । अविरुद्ध हेतुवशात्परतोऽप्युचयते यत स्वगुण " । ५४० ।

अर्थ — जिम प्रकार जिस पदाथ की जो अन्तर्लीन शक्ति है, उसका जाति के सामायपने से अर्थात किसी भी विशेषता का आवलम्बन न लेकर उसके द्वारा पदाथ का जो मामान्य निरूपण करने म आता है वह अनपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है ।५३५ । जसे कि ज्ञान जीव का जीवोपजीवी अर्थात चतन गुण है । ज्ञेय को विपय करते हुए भी वह जीवोपजीवी ही रहता है, ज्ञेयोपजीवी नही हो जाता ।५३६ । क्योकि जिस प्रकार घट के सदभाव में घट की अपक्षा न करके कवल चैतय ज्ञान ही जीव का गुणहै, इसी प्रकार घट के अभाव मे भी घट की अपेक्षा न करके मात्र ज्ञान ही जीव का गुण है । ५३७ । अर्थात ज्ञान का सदा ज्ञान ही कहत रहना, ज्ञेय का उपचार न करना अनुपचरित सदभूत व्यवहार नय का विषय है ।

परन्तु अविरोध पूवक किसी हेतु वश से अपने गुणो में भी पर सज्ञा वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का विषय है । ५४० ।

ज्ञेय के उपचार के विना ज्ञान को ही ज्ञान कहना है इसलिये अनुपचार है। ज्ञान जीव का अपना गुण है इसलिये सद्भूत है और गुण-गुणी का भेद ग्रहण करता है इसलिये व्यवहार है। इस प्रकार 'अनुतचरित सद्भुत व्यवहार नय' यह नाम सार्थक है। ज्ञेय के अवलम्बन के विना ज्ञान का स्वरुप दर्शाना अशक्य है इसलिये ज्ञान मे ज्ञेय का उपचार करने मे आता है। क्योंकि ज्ञेय को जानते हुए भी ज्ञान ज्ञान ही रहता है ज्ञेय नही हो जाता, फिर भी उसे ज्ञेय का ज्ञान कहने मे आता है इसलिये यह नय उपचरित है। ज्ञान जीव द्रव्य का अपना गुण है इसलिये सद्भूत है और गुण-गुणी का भेद ग्रहण करने के कारण व्यवहार है। इस प्रकार 'उपचरित सद्भुत व्यवहार नय' यह नाम सार्थक है। यह तो इस नय का कारण है। द्रव्य के अस्तित्व की प्रतीति करना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार का प्रयोजन है और ज्ञान ज्ञेय के सकर दोष का निवारण करते हुए दोनो का अविनाभावीपना दर्शाना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का प्रयोजन है अथवा ज्ञेय का अवलम्बन छुडा कर ज्ञान मात्र का अवलम्बन कराना अर्थात ज्ञाता दृष्टा भाव मात्र जागृत कराना इन दोनो नयो का एक प्रयोजन है।

६ असद्भूत व्यवहार नय सामान्य

जैसा कि पहले ही विशुद्ध अध्यात्म पद्धति का परिचय देते समय बताया जा चुका है जीव पुगद्ल इन दो द्रव्यो मे वैभाविक नाम की विशेष शक्ति है जिसके कारण इनका परिणामन कथञ्चित निज पारिणामिक भाव के साथ तन्मय उसके अनुरूप भी होता है और कथञ्चित पर पदार्थो के साथ तन्मय उनके अनुरूप भी होता है। पहले वाले परिणमन को स्वभाविक और दूसरे वाले को विभाविक कहा जाता है। ज्ञान की 'ज्ञान क्रिया' जीव का स्वभाविक भाव है और उसकी क्रोध आदि भाव रूप या राग द्वेषादि रूप 'कर्त्ता क्रिया' विभाविक भाव है। इसीप्रकार परमाणु व उसकी शुद्ध पर्याये पुगद्ल के स्वभाविक भाव है और स्कन्ध व उसकी

अशुद्ध पर्याय विभाविक भाव है। यहा जीव की प्रमुखता से ही कथन करने म आयेगा। तहा पुद्गल पर यथा योग्य रूप से स्वय लागू कर लेना।

पहिली अध्यात्म पद्धति के अन्तगत भी असद्भुत व्यवहार नय का कथन आ चुका है। अन्य पदाथ का अन्य पदाथ के साथ निमित्त नमित्तिक भावो या कर्त्ता कर्मादि भावो का उपचार करना वहा इस नय का लक्षण बताया गया है। यहा भी वही लक्षण समझना। अन्तर केवल स्व व पर पदार्थो की व्याख्या में है। वहा स्व व पर पदाथ द्रव्याथिक नय की दृष्टि का विपय था और यहा उसी का विचार पर्यायार्थिक दृष्टि से किया जाता है। अर्थात वहा तो भिन्न जातीय गुणा म तन्मय द्रव्य 'पर पदाथ' का वाच्य था और यहा भिन्न जातीय पर्याय से तन्मय द्रव्य 'पर पदाथ' का वाच्य है। वहा पर पदाथ का अथ था शरीर व घट पट आदि पदाथ, और यहा पर पदाथ का अथ क्रोधादि विभाविक भाव क्योकि ये ज्ञान का जो वास्तविक स्वाय ज्ञाता दृष्टा पना है, उससे भिन्न जाति के है। इस बात का खुलासा पहले ही इस पद्धति का परिचय देते समय किया जा चुका है।

जिस प्रकार वहा 'घट' 'पट' आदि पर पदार्थो का स्वामी या कर्त्ता आदि जीव का कहना असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण था उसी प्रकार यहा भी क्रोधादि विभाव भाव रूप पर पर्यायो का स्वामी व कर्त्ता आदि जीव को कहना असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। इसी की पुष्टि व अभ्यास के अथ कुछ उद्धरण देखिये।

१ प ध । प । ५२६ ५३० अपि चासद्भुतादि व्यवहारान्तो यथान्वर्थो यथा। अन्य द्रव्यस्य गुणा संजायन्ते बलात्तदन्यत्र ।५२९। स यथा वर्णादिमतो मूर्तद्रव्यस्य कर्म किल मूर्तम्। तत्संयोगत्वादिह मूर्ता क्रोधादयोऽपि जीवभावा।५३०।"

अर्थ :— अन्य द्रव्य के गुण वल पूर्वक अर्थात उपचार सामर्थ्य से उससे भिन्न द्रव्य के कहने मे आते है अर्थात अन्य द्रव्य मे आरोपित करने मे आते है वही सद्भुत व्यवहार नय का लक्षण है । ५२९ । उदाहरणार्थ वर्णादिमान होने के कारण अर्थात पुद्गल द्रव्य से निर्मित होने के कारण अष्ट कर्म तो ठीक ही मूर्त है । परन्तु जीव मे उत्पन्न होने वाले क्रोधादि भाव यद्यपि मूर्त नही है भिर भी उन मूर्त कर्मो के सयोग सम्बन्ध की विशेपता से उन्हे मूर्त कहने मे आता है । ५३० ।

विभाव भाव कभी भी विना पर सयोग के उत्पन्न नही होते । वह वस्तु के स्वभाव के अनुरुप नही होते । इसलिये उन्हे वस्तुभूत नही माना जा सकता । जिस प्रकार चान्दी से मिश्रित स्वर्ण सफेद दिखाई देता है तब वह सफैदी सोने की ही कहने मे आती है । पर यह व्यवहार वस्तु भूत सत्य नही है, असद्भूत है, क्योकि स्वर्ण अब भी सफेद नही है पीला ही है। इसी प्रकार क्रोधादि भाव ज्ञान जाति के दिखाई न देने के कारण पुदग्ल के कहने आते है, पुदग्ल कर्मो को इनका कर्ता भी कहा जाता है । परन्तु वह व्यवहार वस्तुभूत सत्य नही है, असद्भूत है, क्योकि वे अब भी चेतन के है कर्मो के नही । जीव व इनमे क्षणिक तन्मयता होते हुए भी इनमे भेद ग्रहण किया जा रहा है इसलिये व्यवहार है। अत. इस नय का 'असद्भूत व्यवहार नय' यह नाम सार्थक है ।

जीव व पुद्गल मे अन्तर्लीन वैभाविक शक्ति विशेष इस नय की उत्पत्ति का कारण है। क्योकि यदि यह न होती तो आकाश वत् यह द्रव्य भी त्रिकाल स्वभाव मे स्थित रहते । तब यह नय किसको–विषय करता । इस प्रकार के व्यवहार को असत्य व असद्भूत स्वीकार करके जिस प्रकार कोई व्यक्ति उस स्वर्ण को शोध कर शुद्ध

स्वण की प्राप्ति कर सकता है, उसी प्रकार क्रोधादि भावो को अपने स्वभाव की अपेक्षा असत्य स्वीकार करके कोई व्यक्ति इनके लक्षण का त्याग कर सम्यग्दृष्टि हो सकता है। विभाव भाव को असत्य या असद्भूत समझे बिना उन्हें कैसे त्यागे? यही इस नय का प्रयोजन है, अर्थात 'कर्ता क्रिया' को छुडा कर 'ज्ञान क्रिया' का आलम्बन कराना इस नय का प्रयोजन है।

इस नय के भी पववत उपचरित व अनुपचरित दो भेद हो जाते हैं, क्योंकि यह क्रोधादि भाव भी सूक्ष्म व स्थूल दो प्रकार के हैं।

७ उपचरित व अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय — स्थूल अध्यात्म पद्धति में अन्य द्रव्यों का अन्य द्रव्य के साथ कर्ता कर्म या स्वामित्व आदि सम्बन्ध जोडना असद्भूत व्यवहार नय का विषय बताया गया है। परन्तु यहा पर एक ज्ञान में ही स्व व पर भावों का विभाग करके जीव ज्ञान का क्रोधादि भावों के साथ कर्ता कर्म या स्वामित्व सम्बन्ध जोडना असद्भूत व्यवहार नय का विषय बताया गया है। वे क्रोधादि भाव दो प्रकार के अनुभव करने में आते हैं—बुद्धि गोचर व अबुद्धि गोचर। तहा बुद्धि गोचर भाव तो स्थूल हैं अत उनका ग्रहण करना तो स्थूल व्यवहार है या उपचरित है, और अबुद्धि गोचर भाव सूक्ष्म है, अत उनका ग्रहण करना सूक्ष्म व्यवहार है या इषत् उपचार है। इसी से बुद्धि गोचर क्रोधादि रूप पर भावों को जीव का कहना उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है और अबुद्धि गोचर उन्ही भावों को जीव का कहना अनुपचरित असद्भूत व्यवहार है।

१ प ध।पू।५४६ ५४९ उपचरितोऽसद्भूतो यवहारस्यो नय स भवति यथा।
क्रोधाद्या औदयिकाच्चितश्चेद् बुद्धिजा विवक्षया स्यु ।५४९।

अपि वाऽसद्भूतो योऽनुपचरिताख्यो नयः
स भवति यथा ।
क्रोधाद्या जीवस्य हि विवक्षिताज्येद
वृद्धि भवा. ।५४६।"

अर्थ –उपचरित असद्भूत व्यवहार इस नाम से कहा जाने वाला नय इस प्रकार है, जैसे कि जीव के वुद्धि गम्य क्रोधादि औदयिक भावो की विवक्षा होती है। ।५४९। और जो यह अनुपचरित असद्भूत इस नाम का वाच्य नय है वह इस प्रकार है जैसे कि जीव के अवुद्धि गम्य क्रोधादि भावो को जीव का कहना ।५४६।

२. प ध. ।३०।६०६। विमृश्यैतत्परं केज्यिदसद्भूतोपचारत ।
राग व ज्ञानमात्रास्ति सम्यक्त्व तद्वदीरितम ।९०९।

अर्थ—कोई कोई आचार्य मात्र ऐसा विचार करके जिस प्रकार असद्भूत उपचार नय से ज्ञान को राग वाला कहत है उसी प्रकार सम्यक्त्व को भी राग वाला कह देते है।

३ वृ द्र स ।६।१८ "कुमति कुश्रुत विभंगत्रये पुनरुपचरितासद्भूत व्यवहार ।"

अर्थ —कुमति कुश्रुत और विभग इन तीनो को ज्ञान कहना उपचरित सद्भूत व्यवहार है।

क्रोधादि पर भावो को जीव का कहने के कारण असद्भूत है। स्थूल भावो को ग्रहण करने के कारण उपचार और सूक्ष्म भावो को ग्रहण करने के कारण अनुपचार है। भेद करने के कारण व्यवहार है। अत 'उपचरित व अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय' यह

नाम नाथक है। असद्भूत सामान्य वत जीव पुदगल मे अन्तर्लीन स्वाभाविक शक्ति विशेष ही इन नयो की उत्पत्ति का कारण है। वाह्य सयोगो के अभाव में भी उस शक्ति का कार्य प्रतिक्षण जीव में उस समय तक बराबर चलता रहता है जिस समय तक मोह का सर्वथा अभाव नही हो जाता। अर्थात दसवे गुण स्थान के अन्त समय तक वह बराबर अपना असर दिखाती रहती है। ध्यानस्थ दशा तक मे भी भले क्रोधादि भाव व्यक्त न होने पावें पर इतने मात्र पर से यह नही समझा जा सकता कि उस शक्ति का विनाश हो चुका है। यदि ऐसा समझले तो साधना पूरी करने के प्रति उत्साह समाप्त हो जाये। बस यही अनुपचरित असदभूत व्यवहार नय का कारण है। और सूक्ष्म से सूक्ष्म उन विभाव भावो के प्रति सावधान रहते हुए उनके त्याग के प्रति, समय प्रति समय उद्यमशील बने रहना इस नय को जानने का प्रयोजन है।

स्थूल क्रोधादि भाव बाह्य सयोग के बिना तीन काल मे होते नही। पर सयोग के बिना अकेली वैभाविक शक्ति वैसे भाव उत्पन्न करने में असमर्थ है। अत बाह्य पदार्थो का सयोग स्थूल विभाव सहित उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का कारण है। बुद्धि गोचर स्थूल क्रोधादि के आधार पर बुद्धि के अगोचर सूक्ष्म क्रोधादि भावो के अस्तित्व की प्रतीति होती है। यही इस नय का प्रयोजन है। अथवा क्रोधादि भावो से हट कर 'ज्ञान क्रिया' में स्थिति पाना इन दोनो भेदो को जानने का प्रयोजन है।

८ शंका समाधान—इस विषय सम्बन्धी कुछ शकाओ का समाधान भी यहा कर लेना योग्य है।

१ शंका—दोनो अध्यात्म पद्धतियो में क्या अन्तर है?
उत्तर—देखो इसी अधिकार का प्रकरण न १

२ शका –नय का लक्षण ज्ञान का विकल्प है और प्रमाण का लक्षण निर्विकल्प ज्ञान। इस प्रकार निश्चय नय को निर्विकल्प कहने से उसे प्रमाणपने का प्रसग प्राप्त होगा ?

उत्तर –ऐसा नही है, क्योकि निर्विकल्प भी यह निश्चय कथञ्चित विकल्पात्मक है। विकल्प दो प्रकार के होते है–विधि-रूप व निषेधरूप। यहा विधिरूप विकल्प भले न हो पर निषेध रूप विकल्प अवश्य है। 'जीवज्ञानवान है' यह विकल्प तो विधिरूप है और 'जीव ज्ञान मात्र ही नही है' यह विकल्प निषेध रूप है। व्यवहार नय मे विधि रूप विकल्प होता है और निश्चय नय मे व्यवहार के प्रतिषेध रूप विकल्प होता है। प्रमाण मे विधि व निषेध दोनो प्रकार के विकल्प को अवकाश नहीं। वह तो रसास्वादन रूप है। अतः निश्चय नय को प्रमाणपना प्राप्त नही हो सकता।

३ शका –व्यवहार नय सामान्य व सद्भूत व्यवहार इन दोनो मे क्या अन्तर है ?

उत्तर –व्यवहार नय सामान्य का काम तो द्रव्य सामान्य अथवा द्रव्य विशेष के अस्तित्व की प्रतीति कराना मात्र है, उन मे परस्पर भेद दर्शाना नही। परन्तु सद्भूत व्यवहार नय उसके विषय मे द्वैत उत्पन्न कर के एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से पृथक दर्शाता है। यदि सद्भूत व्यवहार नय न हो तो सर्व द्रव्यो मे जाति भेद व व्यक्ति भेद करना सभव न हो सके। सर्व संकर दोष का प्रसग आये। एक अद्वैत ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ भ्रम दीखने लगे। या तो एक सर्व व्यापी चेतन हो या एक

सर्व व्यापी अचेतन। इसलिये दोनो के विषय में अन्तर है।

८ शंका –सद्भूत व्यवहार नय व असद्भूत व्यवहार नय में क्या अन्तर है ?

उत्तर – सद्भूत व्यवहार की प्रवृत्ति तो त्रिकाली भाव सामान्य पर से अर्थात गुणो पर से छहो द्रव्यों की विशेषता का परिचय देने में होती है, और असभुद्त व्यवहार नय की प्रवृत्ति जीव व पुद्गल इन दो ही द्रव्यो की वैभाविक शक्ति का परिचय देने में होती है। या यो कहिये कि सभुदत व्यवहार नय द्रव्यार्थिक है और असभुदत व्यवहार नय पर्यायार्थिक है, क्योंकि वह त्रिकाली भाव को ग्रहण करता है और यह क्षणिक भाव को। वह ज्ञान सामान्य पर से जीव के ज्ञाता दृष्टा पने के स्वभाव का परिचय देता है और यह कर्ता क्रिया पर से उस के विभाव का परिचय देता है। वह ग्राह्य अंग का परिचय देता है और यह त्याज्य अंग का।

परिशिष्ट

अन्य अनेकों नय

१. नयो के असख्यात भेद, २. नयो के भेद प्रभेदो का प्रदशक चर्ट
३. सर्व नयों का मूल नयों मे अन्तर्भाव ।

१ नयो के असख्याते भेद — आगम व अध्यात्म पद्धति के आधार पर द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक तथा निश्चय व व्यवहार यही दो मूल नये होती है । वास्तव मे वस्तु का पूर्ण स्वरूप इन दो भेदो मे समाप्त हो जाता है, फिर भी उन का विशेष स्पष्टी करण करने के लिये उनके अनेको भेद प्रभेद करके दर्शाये गये है । परन्तु नय इतनी ही हो ऐसा नही है । प्रकृत ग्रन्थ मे जो नाम दिये है वे सग्रह नय की अपेक्षा समझना, अर्थात एक एक नय के अन्तर्गत वस्तु के अनक विभिन्न अगो का ग्रहण हो जाता है। वैसे तो नयो की सख्या नही की जा सकती, क्योकि नय वस्तु के अगो के ज्ञान को कहते है और वस्तु अनन्त धर्मात्मक है । अत नय भी अनन्त ही है । परन्तु ज्ञान मे जाने गये वे सम्पूर्ण अग वचन के विषय नही बनाये जा सकते, क्योकि वचन सख्यात मात्र है । अत कथन को अपेक्षा भी नयो के सख्याते भद किये जा सकते है । वचन यद्यपि सख्यात ही है, परन्तु मानसिक विकल्प असख्यात तक सम्भव है । जितने तरह के वचन विकल्प उतने ही नय हो सकते है इसलिये नय के उत्कृष्ट भेद असख्यात तक हो सकते है । इसलिये विस्तार से नयो का प्ररूपण नही किया जा सकता । एक से लेकर नयो के अनेको भेद किये गये है । जैसे :--

१　सामान्य से शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा नय एक भेद है।

श्ल वा ।१।३६।२ "सामान्यादेशतस्तावदेक एव नय स्थित ।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थ विशेष व्यञ्जनात्मक ॥

अर्थ—सामान्य प्ररूपणा की अपेक्षा नय एक ही है।

२　सामान्य और विशेष की अपेक्षा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये नय के दो भेद है। सामान्य और विशेष को छोड कर नय का कोई दूसरा विषय नही होता। अत सम्पूर्ण नैगमादिनयो का इन्ही दो नयो में अन्तर्भाव हो जाता है।

श्ल वा ।१।३३।३ "सक्षेपाद् द्वौ विशेषेण द्रव्यपर्याय गोचरौ।"

अर्थ—सक्षेप से नयो के दो भेद है–द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक।

सन्मति तर्क ।१।३ की अभयदेव सूरि कृत टीका "परस्पर विभक्त सामान्य विशेष विषयत्वात द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकावेव नयौ,
न च तृतीय प्रकारान्तरमस्ति यद्विषयो ऽन्यस्ताभ्या व्यतिरिक्तो नय स्यात्।"

अर्थ—परस्पर भेद करके सामान्य और विशेष को विषय करने के कारण द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक यह दो ही नय होते है। तीसरा कोई भी ऐसा प्रकार नही है, जो कि उन दो के अतिरिक्त अन्य किसी नय का विषय बन सके।

३　सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र इन तीन अर्थनयो में एक शब्द नय को मिला कर नय के चार भेद होते है।

समवायाग टीका "नैगमनयो द्विविध सामान्यग्राही विशेष ग्राही च। तत्रान्य सामान्यग्राही स सग्रहेऽन्तर्भूत विशेष ग्राही तु व्यवहारे। तदेव सग्रहव्यवहार ऋजुसूत्र शब्दादिनय चैक इति चत्वारो नय।"

अर्थः--नैगम नय दो प्रकार की है---सामान्य ग्राही और विशेष ग्राही । तहा जो सामान्य ग्राही है वह तो सग्रह नय मे अन्तर्भूत है और जो विशेष-ग्राही है वह व्यवहार नय मे अन्तर्भूत है । इस प्रकार सग्रह, व्यवहार व ऋजुसूत्र तथा तथा शब्दादि तीनो मिल कर एक व्यञ्जन नय इस प्रकार नय चार है ।

४. नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द नय के भेद से नय पाच प्रकार के होते है ।

तत्वार्थाधिगम भाष्य १।३४ "नैगम संग्रह व्यवहारजूॅसूत्र शब्दा नया ।"

अथ--नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द ये पाच नय है । (यहा भाष्यकार ने साप्रत, समभिरूढ और एवभूत को शब्द नय के भेद स्वीकार किये है ।)

५. जिस समय नैगम नय सामान्य को विपय करता है उस समय वह संग्रह नय मे गर्भित होता है, और जिस समय विशेप को विपय करता है उस समय व्यवहार मे गर्भित होता है, अतएव नैगम-नय का सग्रह और व्यवहार मे अन्तर्भाव करके सिद्धसेन दिवाकर ने छ नयों को माना है । ---सग्रह, व्यवहार ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ व एवभूत ।

विशेपावश्यक भाष्य ।४५य "सिद्धसेनीया. पुन षडेव नयानभ्युपगन्तव्य । नैगमस्य सग्रह व्यवहारयोस्तर्भाव विवक्षणात् ।"

अर्थ.—सिद्ध सेन द्विवाकर ने नैगम नय का संग्रह व व्यवहार नयों मे अन्तर्भाव करके छः नय माने हैं ।

६ नगम, सग्रह, व्यवहार, ऋज्युसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत के भेद से नय के सात भेद होते है। यह मान्यता श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनो को मान्य है।

त सू ।१।३३ "नगम सग्रह व्यवहारर्जु सूत्र शब्द समभिरूढव भूता नया ।३३।

अर्थ—नगम, सग्रह, व्यवहार, ऋज्यू सूत्र, शब्द समभिरूढ और एवभूत इस प्रकार यह सात नय है।

स्थानागसूत्र ।४६६। "गाक्तिणए ? सत्तमूलणया पणत्ता । त जहा णेगम सगहे ववहारे उज्जुसुए सद्दे समभिरूढे एवभूए।"

अर्थ—वे नय कौनसे है। सात मूल नय बताए गये है। यथा नगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत।

(भगवती सूत्र ।४६६)

७ इसी प्रकार तत्त्वार्थाधिगम भाष्य ।१।३४,३५ मे नगम, सग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र, तथा साप्रत, समभिरूढ और एवभूत वे शब्द के तीन विभाग करने से नयो के आठ भेद होते है।

८ द्रव्यानुयोगतर्कणा ।८।११ मे नगम सग्रह आदि सात प्रसिद्ध नयो मे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय मिला देने से नयो की सख्या नौ हो जाती है। इन नवो के मानने वाले आचार्यो का खण्डन द्रव्यानुयोग तर्कणा मे मिलता है।

९. नैगम के नौ भेद करके सग्रह आदि छ. नयो को मिलाने से इलावा ।१।३३।४८ मे नयो के १५ भेद बताये हैं ।

१०. नय चक्र ।१८६-१८८ मे निश्चय नय के २८ और व्यवहार नय के ८ भेद मिलाकर नयो के ३६ भेद होते है—द्रव्यार्थिक के दश, पर्यायार्थिक के छ., नैगम के तीन, सग्रह के दो, व्यवहार के दो, ऋजुसूत्र के दो, शब्द, समभिरूढ व एवभूत ।

११. विशेषावश्यक भाष्य ।२२६४। मे प्रत्येक नय के सौ सौ भेद करने पर नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द इन पाच नयो के मानने से नयो के ५०० और सात नयों के मानने से सात सौ भेद होते है ।

१२ प्रवचन सार तत्व प्रदीपिका टीका परिशिष्ट मे निम्न ४७ नयो का उल्लेख है, जिनक अन्तर्भाव मूल नयो मे ही किया जा सकता है ।

१. द्रव्य नय, २ पर्याय नय, ३ अस्तित्व नय, ४. नास्तित्व, ५ अस्तित्व-नास्तित्व नय, ६ अवक्तव्य नय, ७. अस्तित्व अवक्तव्य नय। ८. नास्तित्व अवक्त्तव्य नय, ९. अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य नय, १०. विकल्प नय, ११. अविकल्प नय, १२. नाम नय, १३ स्थापना नय, १४. द्रव्य नय, १५. भाव नय, १६. सामान्य नय, १७. विशेष नय, १८. नित्य नय, १९. अनित्य नय, २०. सर्वगत नय, २१. असर्वगत नय, २२ शून्य नय, २३. अशून्य नय, २४ ज्ञानज्ञेय द्वैत नय, २५. ज्ञानज्ञेय अद्वैत नय, २६. नियति नय, २७. अनियति नय, २८. स्वभाव नय, २९. अस्वभाव नय, ३० काल नय, ३१. अकाल नय, ३२. पुरुषाकार नय, ३३. दैव नय, ३४. ईश्वर नय, ३५. अनीश्वर नय, ३६. गुणी नय, ३७. अगुणी नय, ३८. कर्तृ नय,

१ नयों अनन्यात भेद
एक देश
शुद्ध
सद्भूत
असद्भूत
उपचरित
अनुपचरित
उपचरित
अनुपचरित

२१ अन्य अनेको नय

(चार्ट न २) –

१ नयों के असख्याते भेद

३९ अक्तृ नय, ४० भोक्तृ नय, ४१ अभोक्तृ नय, ४२ क्रिया नय, ४३ ज्ञान नय, ४४ व्यवहार नय, ४५ निश्चय नय, ४६ अशुद्ध नय, ४७ शुद्ध नय ।

१३ वास्तव में जितन प्रकार के वचन विकल्प है उतने ही नय हो सकते ह । वचन यद्यपि सख्यात मात्र ही ह परन्तु उन वचनो सम्बन्धी मानसिक विकल्प असख्यात तक होन सम्भव है। अत नय के भी असख्यात पयन्त भेद किये जा सकते ह ।

ध ।पु १।पु ।१६ "एवमेतेन सक्षेपेण नया सप्त विधा । अवान्तर भेदेन पुनरसख्येया ।"

अर्थ —इस प्रकार सक्षेप से यह सात प्रकार । अवान्तर भेद से यही असख्यात होते है ।

ध ।पु१।१८०। "जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होति णयवादा ।।६७ जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होति पर समया ।।"
अथ —जितने भी वचन पथ है उतने ही नय वाद होते है, और

जितने नयवाद है उतने ही परसमय या मिथ्यात्व होते ह ।

(गो का।मू।८६४) (वृ न च।१८४) (क पा ।पु5।पृ२४८।गा ६३) (धापु ६९।१८२।गा ८)

इन सब भेद प्रभेदो का परस्पर सयोग अगले चार्टों पर स पढा जा सकता है ।

२. सर्व नयो का मूल नयो को अन्तर्भाव

जैसा कि पहिले वताया गया है, मूल नय तो दो ही है —द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक। इनका विशेप विस्तृत परिचय आगम व अध्यात्म दोनो पद्धतियो की अपेक्षा दिया जा चुका है। अव आगे जितने कुछ भी अन्य अन्य नाम वाले नय सामाने आते है, उन सव का पृथक पृथक विस्तार करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती। यदि पूर्वोक्त मूल नयो को भलीभाति समझ लिया गया है तो जितने कुछ भी अभिप्राय या नय लोक में हो सकते है, उन सव का किसी न किसी प्रकार इन्ही मूल भेदो मे अन्तर्भाव करके उनका विशेप भाव समझा जा सकता है। उन मूल भेदों से वाहर कोई भी नय हो नही सकता, क्योकि सामान्य व विशेप तथा शुद्ध व अशुद्ध, द्रव्य क्षेत्र काल व भाव से वाहर लोक मे कुछ भी शेष नही रहता, जो कि इन से पृथक अपनी कोई स्वतत्र सत्ता रखता हो।

इसीलिये यहा पुर्वोक्त असख्याते भेदो मे से न. १२ मे वताये गये प्रवचनसार के ४७ नयो को उन मूल नयो मे गर्भित करके दर्शाया जाता है, ताकि किसी भी नय को गर्भित करने का अभ्यास भी हो जाये, और नयो के भाव समझ लेने की परीक्षा भी हो जाये। इन नयो मे नं. ३ से लेकर न. ९ तक के अस्तित्व आदि ७ नये पुर्व कथित सप्त भगी का ग्रहण करके उत्पन्न हुए है। नं. १२ से न. १५ तक के नाम, स्थापना आदि चार नये अगले अधिकार मे प्ररूपित निक्षेपो का ग्रहण करके प्रगट हुए है। और न. २८ से न. ३३ तक के स्वभाव आदि छ नये वस्तु की स्वतंत्र कार्य व्यवस्था के पाच समवायो का आश्रय करके कहे गये ह, जिनका विस्तृत विवेचन 'शान्ति-पथ-प्रदर्शन' नाम ग्रन्थ मे किया गया है।

१ द्रव्य नय

"आत्म द्रव्य द्रव्य नय से पट मात्र की भांति केवल चिन्मात्र है" ऐसा द्रव्य नय का लक्षण किया है। लक्षण स्वयं वोल कर वता रहा

है कि यहा द्रव्य नय से तात्पय 'आगम पद्धति का शुध्द द्रव्यार्थिक व सग्रह नय तथा अध्यात्म पद्धति का 'शुद्ध निश्चय नय है, क्योकि द्रव्य को त्रिकाली पारिणामिक भाव स्वभावी दर्शाया जा रहा है।

२ पर्याय नय—

"आत्मा पर्याप नय से वस्त्र के पृथक् पृथक तन्तुओ वत दर्शन ज्ञान चरित्र रूप है" इस लक्षण पर से निर्णय यह पता चलता है कि यहा पर्याय नय का लक्ष्य आगम पद्धति की 'अशुध्द द्रव्यार्थिक या व्यवहार' नय के प्रति और अध्यात्म पद्धति के 'सदभूत व्यवहार' नय के प्रति है। क्योकि यहा गुण गुणी भेद का ग्रहण है।

३ अस्तित्व नय—

"आत्मद्रव्य अस्तित्व नय से स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्तित्व वाला है। जिस प्रकार कि लोह द्रव्यमई बाण स्वक्षेत्र स कमान के बीच म रखा गया तथा स्वकाल से धनुप पर खेचा गया तथा स्व भाव से लक्ष्योन्मुख है।" स्व चतुष्टय से अद्वैतता दर्शाने के कारण आगम पद्धति के 'स्व चतुष्ट ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह नय मे' तथा अध्यात्म पद्धति के 'निश्चय नय' मे इस लक्षण का अन्तर्भाव होता है।

४ नास्तित्व नय—

"आत्मद्रव्य नास्तित्व नय से पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नास्तित्व वाला है। जिस प्रकार पहिले वाला तीर अन्य तीर के द्रव्य की अपेक्षा से लोहमई नही है अर्थात उस लोह का नही है जिस लोहे का कि अन्य तीर है, अन्य तीर के क्षेत्र की अपेक्षा से डोरी और कमान के बीच में रखा हुआ नही है अर्थात जिस कमान के बीच में अन्य तीर रखा है उसी कमान में यह नही रखा है, अन्य

तीर के काल की अपेक्षा से खेंची गई स्थिति में नही है अर्थात जिस समय वह अन्य तीर खेंचा गया था उसी समय यह खेंचा हुआ नही है, और अन्य तीर के भाव की अपेक्षा से लक्ष्योन्मुख नही है अर्थात जिस प्रकार से वह अन्य तीर लक्ष्योन्मुख है उसी प्रकार से यह नही है, वैसे ही आत्मा नास्तित्व नय की अपेक्षा परचतुष्टय से नास्तित्व वाला है"। पर चतुष्टय का निषेध रूप द्वैत करने के कारण आगम पद्धति को 'पर चतुष्ट ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक व व्यवहार नय' में तथा अध्यात्म पद्धति के 'असद्भूत व्यवहार' नय मे इस लक्षण का अन्तर्भाव होता है। क्योकि पर चतुष्टय का संयोग व वियोग दोनो को ही वह नय ग्रहण करता है।

५. अस्तित्व नास्ति नय ---

"आत्मद्रव्य अस्तित्व नास्तित्व नय से क्रमश: स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्तित्वनास्तित्व वाला है---लोहमई तथा अलोहमई, कमान और डोरी के बीच मे रखा हुआ तथा कमान और डोरी के बीच में नही रखा हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ तथा साधित अवस्था मे नही रहा हुआ और लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले तीर की भाती।" यह लक्षण अस्तित्व व नास्तित्व दोनो के विधि निषेधात्मक द्वैत रूप है इसलिये आगम पद्धति के 'नैगम नय या' "सामान्य द्रव्यार्थिकनय" मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'सामान्य निश्चय' नय मे गर्भित होता है।

६. अवक्तव्य नय —

"आत्म द्रव्य अवक्तव्य नय से युगपत स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अवक्तव्य है— लोहमई तथा अलोहमई, डोरी व कमान के बीच मे रखा हुआ तथा डोरी व कमान के बीच में नही रखा हुआ, साधित अवस्था मे रहा हुआ तथा साधित अवस्था मे नही रहा हुआ,

लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले तीर की भांति।" यह लक्षण द्रव्य के अनिर्वचनीय अखण्ड भाव का प्रदर्शन करता है इसलिये आगम पद्धति के 'शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध निश्चय' नय में गर्भित होता है।

७ अस्तित्व अवक्तव्य नय —

"आत्म द्रव्य अस्तित्व अवक्तव्य नय की अपेक्षा स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव से तथा युगपत स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अस्तित्व वाला अवक्तव्य है। –(स्व चतुष्टय से) लोहमई, डोरी और कमान के बीच में रखा हुआ, साधित अवस्था में रहा हुआ और लक्ष्योन्मुख ऐसा, तथा (युगपत स्वपर चतुष्टय से) लोहमई तथा अलोहमई, डोरी और कमान के बीच में रखा हुआ तथा डोरी और कमान के बीच में नहीं रखा हुआ, साधित अवस्था में रहा हुआ तथा साधित अवस्था में नहीं रहा हुआ, लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले तीर की भांति।" यह लक्षण भी आगम पद्धति के तो 'सामान्य द्रव्यार्थिक अथवा नैगम नयों में तथा अध्यात्म पद्धति के 'सामान्य निश्चय' में गर्भित होता है, क्योंकि नय नं० ३ व ६ का संयोगी रूप होने के कारण द्वैताद्वैत का ग्राहक है।

८ नास्तित्व अवक्तव्य नय —

'आत्मद्रव्य नास्तित्व अवक्तव्य नय की अपेक्षा पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से तथा युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नास्तित्व वाला अवक्तव्य है–(पर चतुष्टय से) अलोहमई, डोरी व कमान के बीच में नहीं रखा हुआ, साधित अवस्था में नहीं रहा हुआ तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे, तथा (युगपत स्वपर चतुष्टय से) लोहमई तथा अलोहमई, डोरी व कमान के बीच में रखा हुआ तथा डोरी और कमान के बीच में नहीं रखा हुआ, साधित अवस्था में रहा हुआ तथा

साधिन अवस्था मे नही रहा हुआ, लक्ष्यन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले वाले तीर की भांति।" पूर्ववत् ही यह लक्षण भी आगम पद्धति के **'सामान्य द्रव्यार्थिक अथवा नैगम'** नयो मे तथा अध्यात्म पद्धति के **'सामान्य निश्चय,** नय मे गर्भित होता है।

९ अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य नय –

"आत्मद्रव्य अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य नय की अपेक्षा क्रमश स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव से, पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से तथा युगपत स्वपर द्रव्यक्षेत्र काल भाव से अस्तित्ववाला नास्तित्ववाला अवक्तव्य है–(स्वचतुष्टय से) लोह मई, डोरी व कमान के बीच मे रखे हुए, साधित अवस्था मे रहे हुए, तथा लक्ष्योन्मुख ऐसे, (और पर चतुष्टय से) अलोह मई, डोरी व कमान के बीच मे नही रखे हुए, साधित अवस्था मे नही रहे हुए तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे, (और युगपत स्वपर चतुष्टय से) लोह मई तथा अलोह मई, डोरी व कमान के बीच मे रखे हूए तथा डोरी व कमान के बीच मे नही रखे हूए, साधित अवस्था मे रहे हूए तथा साधित अवस्था मे नही रहे हुए, लक्ष्योन्मुख तथा अलक्ष्योन्मुख ऐसे पहिले वाले तीर की भांति। "पूर्व नय न० ७ वत ही यह लक्षण भी आगम मे पद्धति के **'सामान्य द्रव्यार्थिक अथवा नैगम'** नयो मे तथा अध्यात्म पद्धति के **सामान्य निश्चय'** नय मे गर्भित होता है।

१० विकल्प नय —

"आत्मद्रव्य विकल्प नय से बालक कुमार और वृद्ध ऐसे एक पुरुष की भांति सविकल्प है।" अभेद द्रव्य मे द्वैत उत्पन्न करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व व्यवहार'** नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के सद्भूत व्हवहार नय मे गर्भित होता है।

११ अविकल्प नय —

"आत्मद्रव्य अविकल्प नय से एक पुरुष मात्र की भाति अविकल्प है। यह लक्षण अभेद द्रव्य को ग्रहण करने के कारण आगम पद्धति के 'भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के शुद्ध निश्चय नय म गभित होता है।

१२ नाम नय —

"आत्मद्रव्य नाम नय से नाम वाले की भाति शब्द ब्रह्म का स्पर्श करने वाला है।" यह लक्षण, वाच्य वाचक द्वैत को ग्रहण करने के कारण आगम पद्धति के अशुद्ध द्रव्यार्थिक व्यवहार नय में तथा अध्यातम पद्धति के व्यवहार सामान्य नय में गभित होता है। पर्याय रूप शब्द को विषय करने के कारण आगम पद्धति के 'पर्यायार्थिक व शब्द नय' में तथा अध्यात्म पद्धति के 'व्यवहार' नय म गर्भित होता है। (देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१३ स्थापना नय —

"आत्मद्रव्य स्थापना नय से मूर्तिमान की भाति सब पुद्गलों का अवलम्बन करने वाला है।" दो द्रव्यो में अद्वैत करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'अशुद्ध द्रव्यार्थिक व व्यवहार नय म तथा अध्यात्म पद्धति के असद्भूत व्यवहार' नय में गर्भित होता है। (देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१४. द्रव्य नय —

"आत्मद्रव्य नय से बालक सेठ की भाति और श्रमण राजा की भाति अनागत व अतीत पर्याय प्रतिभासी है।" आगे पीछे की पर्यायों में एकत्व का ग्रहण करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के

'अशुध्द द्रव्यार्थिक व भूत भावि नैगम' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के निश्चय नय' सामान्य मे गर्भित होता है। द्रव्य पर्याय का ग्रहण करने के कारण कथञ्चित पर्यायार्थिक नय व स्थूल ऋजु सूत्र' मे भी गर्भित किया जा सकता है। (देखो अध्याय न० २२ प्रकरण न० ८)

१५ भाव नय:—

"आत्मद्रव्य भावनय से पुरुप के समान प्रवर्तती स्त्री की भाति, तत्काल की पर्याय रूप से उल्लसित प्रकाशित व प्रतिभासित होता है।" किसी एक पर्याय विशेषसे तन्मयद्रव्य की उतनी ही सत्ता देखने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'पर्यायार्थिक व एवंभूत' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'अशुद्ध निश्चय नय' मे गर्भित होता है। द्रव्य पर्याय को विपय करने की अपेक्षा आगम पद्धति के 'अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुध्द संग्रह' मे भी गर्भित किया जा सकता है।
(देखो अध्याय न० २२ प्रकरग न० ८)

१६ सामान्य नय:—

"आत्मद्रव्य सामान्य नय से हार, माला या कण्ठी के डोरे की भाति व्यापक है।" अनेक पर्यायो मे अनुस्यूत एक त्रिकाली द्रव्य को विपय करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुध्द निश्चय' नय मे गर्भित होता है।

१७ विशेष नय:—

"आत्मद्रव्य विशेष नय से उस माला के एक मोती की भाति अव्यापक है।" पृथक पृथक पर्यायो की स्वतंत्र सत्ता स्वीकारने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'पर्यायार्थिक व ऋजुसुत्र' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के 'व्यवहार नय' मे गर्भित होता है।

१८ नित्य नय—

"आत्मद्रव्य नित्यनय से नट की भांति अवस्थायी है।" राम रावण आदि रूप अनेक स्वांगों में एक ही नट की प्रतीति होती है, इस प्रकार से अनेक पर्यायों में अनुस्यूत एक त्रिकाली द्रव्य को विषय करने के कारण नय नं १६ वत् यह लक्षण आगम पद्धति के 'सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध निश्चय' नय में गर्भित होता है।

१९ अनित्य नय —

'आत्मद्रव्य अनित्यनय से राम रावण की भांति (नट) अनवस्थायी है।" पृथक पृथक पर्यायों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकारने के कारण यह लक्षण भी नय नं १७ वत् आगम पद्धति के 'पर्यायार्थिक व ऋजुसूत्र' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के 'व्यवहार नय' में गर्भित होता है।

२० सर्वगत नय —

"आत्मद्रव्य सर्वगत नय से खुली हुई आंख की भांति सर्व वर्ती है।" ज्ञान की परपदार्थों में व्यापकता दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नहीं। अध्यात्म पद्धति में यह 'असद्भूत व्यवहार' नय में शामिल होता है।

२१ असर्वगत नय—

आत्मद्रव्य असर्वगत नय से मिची हुई आंख की भांति आत्मवर्ती है। आत्म द्रव्य के साथ ही ज्ञान की तन्मयता दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'भेद निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह' नय में तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध निश्चय' नय में गर्भित होता है।

३० काल नय —

"आत्मद्रव्य कालनय से, जिसकी सिद्धि समय पर आधारित है ऐसा है—जैसे कि गर्मी के दिनो के अनुसार स्वत. पकने वाला आम्र-फल ।" प्रत्येक पर्याय के स्वतत्र उत्पाद व व्यय स्वभाव को ग्रहण करने के कारण यह लक्षण 'उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध सद्भूत व्यवहार' नय मे गर्भित होता है ।

२१ अकाल नय —

"आत्मद्रव्य अकाल नय से, जिस की सिद्धि समय पर आधारित नही है ऐसा है—समय से पहले ही कृत्रिम गर्मी से पकाये गये आम्रफल वत् ।" 'जब निमित्त मिले तभी कार्य हो जाये' ऐसा पर पदार्थो के साथ कर्ता कर्म भाव जोड देने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नही है । अध्यात्म पद्धति मे यह 'असदभूत व्यवहार' नय मे गर्भित होता है ।

३२ पुरुषाकार नय —

"आत्मद्रव्य पुरुषाकार नय से, जिसकी सिद्धि यत्न साध्य है ऐसा है—पुरुषार्थ करके सगतरे के वृक्ष को प्राप्त करने वाले पुरुषार्थ वादी वत् ।" द्रव्य की पूर्वा पर पर्यायो मे ही कर्ता कर्म रूप द्वैत उत्पन्न करने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'भेद सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक तथा व्यवहार नय' मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'सदभूत व्यवहार नय' मे गर्भित होता है ।

३३ दैव नय —

"आत्मद्रव्य दैवनय से, जिसकी सिद्धि अयत्न साध्य है—पुरुषाकार वादी के द्वारा प्राप्त किये गये सगतरे के वृक्ष मे से जिस को भाग्य वश रत्न प्राप्त हो गया है ऐसे दैववादी की भाति ।" कर्मो को अर्थात्

पर द्रव्य को कार्य की सिद्धि में कारण मानने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नही। अध्यात्म पद्धति मे यह 'अनुपचरित असद्भुत व्यवहार' नय में गर्भित होता है।

३४ ईश्वर नय —

'आत्मद्रव्य ईश्वर नय से परतन्त्रता भोगने वाला है– धाय के आधीन खानपान आदि क्रिया करते हुए पथी बालक की भांति।" पर पदार्थ का आश्रय दर्शाने के कारण यह लक्षण भी आगम पद्धति का विषय नही। अध्यात्म पद्धति में यह 'असद्भुत व्यवहार' नय का विषय है।

३५ अनश्वर नय —

"आत्मद्रव्य अनश्विर नय से स्वतन्त्रता भोगने वाला है–हिरण को स्वच्छन्दता स फाड कर खाने वाले सिह की भांति।" द्रव्य के निज भावो में ही कर्ता कर्म रूप द्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के स्व चतुष्टय ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक व संग्रह नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के निश्चय नय सामान्य' में गर्भित होता है।

३६ गुणी नय —

"आत्मद्रव्य गुणी नय से गुणग्राही है–शिक्षक क द्वारा जिसको शिक्षा देने में आती है ऐस कुमार की भांति।" एक द्रव्य के गुण को दूसरे में उपचार होने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का विषय नही। अध्यात्म पद्धति म यह 'असद्भूत व्यवहार' नय मे गर्भित होता है।

३७ अगुणी नय—

"आत्मद्रव्य अगुणी नय से केवल साक्षी ही है–शिक्षक के द्वारा शिक्षण प्राप्त करनेवाले कुमार के प्रेक्षक अर्थात देखनेवाले की भांति।"

निज शुद्ध पारिणामिक भाव दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय व शुद्ध संग्रह नय' मे तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुद्ध निश्चय' नय मे गर्भित होता है।

३८ कर्तृ नय —

"आत्म द्रव्य कर्तृ नय से रगरेज की भाति रागादि परिणाम का करने वाला है।" निज अशुद्ध परिणामो का कर्ता कर्म रूप अद्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के '**कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय व अशुद्ध संग्रह**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**अशुद्ध निश्चय**' नय मे गर्भित होता है।

३६. अकर्तृ नय —

"आत्मद्रव्य अकर्तृ नय से केवल साक्षी ही है—अपने कार्य मे प्रवृत्त रगरेज के प्रेक्षक अर्थात देखने वाले किसी व्यक्ति वत्।" नय नं ३७ वत् यह लक्षण भी आगम पद्धति के '**परम भाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय व शुद्ध संग्रह नय**' मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**शुद्ध निश्चय**' नय मे गर्भित होता है।

४० भोक्तृ नय —

"आत्मद्रव्य भोक्तृ नय से (इन्द्रिय जन्य) सुख दुख आदि को भोगने वाला है—हितकारी व अहितकार अन्न को खाने वाले रोगी वत्।" विपय जनित अशुद्ध भावो का भोक्ता वताने के कारण नय न. ३८ वत् यह लक्षण भी आगम पद्धति के '**कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध संग्रह**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**अशुद्ध निश्चय**' नय मे गर्भित होता है।

४१ अभोक्तृ नय —

"अत्मद्रव्य अभोक्तृ नय से केवल साक्षी ही है—हितकारी व अहितकारी अन्न को खाने वाले रोगी के प्रेक्षक अर्थात देखने वाले

वत् ।" लक्षण न ३७ यत् यह भी आगम पद्धति के 'परम भाव ग्राहक शुध्द द्रव्यार्थिक नय व शुध्द समह नय' में तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुध्द निश्चय' नय में गर्भित होता है ।

४२ क्रिया नय —

"आत्मद्रव्य क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि प्राप्त करने वाला है—स्तम्भ के द्वारा सर फूट जाने पर दृष्टि रूपी निधान को प्राप्त करने वाले अंधे वत् ।" पर पदाथ के निमित्त से काय की सध्दि दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पध्दति का विषय नही है । अध्यात्म पद्धति की 'असद्भुत व्यवहार' नय में इसका अन्तर्भाव होता है ।

४३ ज्ञान नय —

"आत्मद्रव्य ज्ञाननय से विवेककी प्रधानता से सिद्धि प्राप्त करने-वाला है—चने की मुट्ठी देकर चिन्तामणि खरीदने वाले ऐसे किसी घर के कोने में बठे हुए व्यापारी वत् ।" निज शुध्द भावो का कर्ता कम भाव दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के 'भेद सापेक्ष अशद्ध द्रव्यार्थिक व अशध्द संग्रह' नय, में तथा अध्यात्म पद्धति के 'शुध्द निश्चय' नय में गर्भित होता है । क्योकि यहा शुद्ध भाव का कर्ता पना है ।

४४ व्यवहार नय —

"आत्म द्रव्य व्यवहार नय से बध और मोक्ष के विषै द्वैत का अनुसरण करने वाला है—बाधने व छोडने वाल ऐसे अन्य परमाणु के साथ सयुक्त व वियुक्त होने वाले अन्य परमाणु वत् ।" दो भिन्न पदार्थो का सयोग दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति का

विषय नही । अध्यात्म पद्धति मे यह '**अनुपचरित असद्भुत व्यवहार**' नय मे गर्भित होता है ।

४५. निश्चय नय—

"आत्मद्रव्य निश्चय नय से बन्ध और मोक्ष के विषै अद्वैत का अनुसरण करने वाला है–अकेले ही बन्धने व छूटने वाले ऐसे बन्ध-मोक्षोचित स्निग्धरूक्षत्व गुण से परिणत परमाणु वत् ।" निज औदायिक व क्षायिक भावों के साथ द्रव्य का अद्वैत दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के '**शुध्द द्रव्यार्थिक व संग्रह नय**' मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**शुध्द निश्चय नय**' सामान्य मे गर्भित होता है ।

४६. अशुध्द नय—

"आत्मद्रव्य अशुद्ध नय से घट और रामपात्र से विशिष्ट मिट्टी मात्र वत् सोपाधि स्वभाव वाला है ।" औदयिक आदि भावो के साथ द्रव्य का स्पर्श दर्शाने के कारण यह लक्षण आगम पद्धति के **कर्म सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुध्द संग्रह**' नय मे तथा अध्यात्म पद्धति के '**अशुध्द निश्चय नय**' मे गर्भित होता है ।

४७. शुध्द नय—

"आत्मद्रव्य शुध्द से केवल मिट्टी मात्र वत् निरुपाधिस्वभाव वाला है ।" औदायिकादि भावो से निरपेक्ष क्षायिक भाव के साथ द्रव्य का स्पर्श कराने के कारण यह लक्षण आगम पध्दति के '**कर्म निरपेक्ष शुध्द द्रव्यार्थिक व शुध्द संग्रह**' नय मे तथा अध्यात्म पध्दति के '**शुध्द निश्चय**' नय मे गर्भित होता है ।

सविपक्ष तो नय होता है और मात्र गुण का आक्षेप निक्षेप कहलाता है। तात्पर्य यह कि जहां कोई पदार्थ सामने हो और उस में गुण पर्याये आदि देख कर, उनकी अपेक्षा रखते हुए उसका प्रतिपादन किया जा रहा हो वहां तो नय का व्यापार समझना, परन्तु जहा कोई पदार्थ ही सामने न हो और केवल कल्पनाओ द्वारा, वस्तुभूत गुणो की अपेक्षा न करके उस का प्रतिपादन किया जा रहा हो वहा निक्षेप का व्यापार समझना, जैसे कल्पना मात्र से ही किसी को इन्द्र कह देना, भले ही वह भूखा मरता हो । कहा भी है–

प ध ।५।७४० "सत्यं गुणसापेक्षो सविपक्ष. सच नयं स्वय क्षिपति ।
य इह गुणाक्षेप. स्पादुचरित केवल स निक्षेप ।७४० ।"

अर्थ—गुणो की अपेक्षा से उत्पन्न होने वाला तथा विपक्ष की अपेक्षा रखने वाला तो नय है । और जो यहा उपचार से 'इस प्रकार का यह है' ऐसा केवल गुणो का आक्षेप करने वाला है, वह निक्षेप है, जिसकी व्युत्पत्ति स्वय क्षिपति होती है ।

२. निक्षेप सामान्य इस प्रकार नय व निक्षेप मे क्या अन्तर है यह दर्शाकर अव निक्षेप का सामान्य लक्षण कहते है । नि उपसर्ग पूर्वक क्षिप धातु से निक्षेप शब्द वनता है । इसका व्युत्पत्ति अर्थ होता है 'निश्चय मे क्षेपण करना या डालना' । अर्थात किसी वस्तु को निश्चय मे या निर्णयात्मक ज्ञान मे स्थापित करना या क्षेपण करना ही निक्षेप कहलाता है । या यो कह लीजिये कि किसी भी वस्तु का निश्चय करने या कराने के लिये जो कुछ भी उपाय प्रयोग मे आते है वे ही निक्षेप शब्द के वाच्य है । अथवा वस्तु का जिस जिस प्रकार से लोक मे व्यवहार किया जाता है वह सव निक्षेप कहलाता है ।

वह व्यवहार तीन प्रकार से करने मे आता है—वस्तु के वाचक शब्द के रूप मे, ज्ञान मे उस वस्तुकी की गई कल्पना के रूप मे

तथा अर्थ या पदाथ के रूप में । अर्थात वस्तु का व्यवहार तीन प्रकार का है–शब्द, ज्ञान व अर्थ । अथ या पदाथ भी दो प्रकार का है–अवतमान व वर्तमान । वस्तु की भूत व भावि पर्यायें अवतमान अर्थ है और वतमान पर्याय से विशिष्ट वह वस्तु वतमान अथ है । इस प्रकार वस्तुगत व्यवहार चार प्रकार का हो जाता है–शब्द, ज्ञान, अवतमान पदार्थ व वतमान पदाथ । किसी शब्द या नाम के द्वारा उस वस्तु की कल्पना मात्र कर लेना जसे किशतरञ्ज की गोटो में हाथी घोडे आदि की कल्पना कर लेना, यह दूसरा ज्ञान गत व्यवहार है । किसी अवतमान वस्तु में ही उस वस्तु का व्यवहार कर लेन तीसरा व्यवहार है जैसे कि युवराज को राजा कहना अथवा वतमान में जो मुनि हैं उस राजा कहना । किसी वतमान या सदभावात्मक वस्तु को ही वस्तु कहना यह चौथा व्यवहार है, जैसे कि राजा को ही राजा कहना । वस्तु को जानने या जानने के लिये ये चार ही प्रकार के व्यवहार प्रयुक्त होते है । इन में ,से शब्द गत पहिला व्यवहार नाम निक्षेप कहलाता है, कल्पना या ज्ञान-गत दूसरा व्यवहार स्थापना निक्षेप कहलाता है, अवतमान अथ-गत तीसरा व्यवहार द्रव्य निक्षेप कहलाता है और वतमान अथ-गत चौथा व्यवहार भाव निक्षेप कह लाता है । इन का विशेष विस्तार आगे किया जायेगा ।

दूसरे प्रकार से निक्षेप का लक्षण या भी किया जा सकता है, कि वक्ता व श्रोता के बीच वस्तु का व्यवहार शब्द के आधीन है । शब्द वास्तव में किसी वास्तु का सज्ञा कारण मात्र है अर्थात किसी वस्तु का वाचक होता है । वस्तु व शब्द के बीच वाच्य वाचक भाव का व्यवहार सव सम्मत है । इसलिये कहा जा सकता है कि शब्द वस्तु का प्रतिनिधि है, या यो कह लाजिये कि शब्द में वह वस्तु निक्षिप्त कर दी गई है । अत वस्तु को बतलाने के उपाय स्वरूप शब्द व्यवहार को ही यहा निक्षेप नाम से कहा गया समझ लेना । पहिल भी कहा जा चुका है कि निक्षेप शाब्दिक विषय विभाग का प्रयोजक

है । शब्द प्रयोग का वह व्यवहार चार प्रकार से करने मे आता है– अतद्गुण मे, अतदाकार में, अतत्काल मे तथा इन तीनो से विपरीत तद्गुण तदाकार व तत्काल मे । गुण आदि की अपेक्षा किये विना भी वस्तु का अपनी इच्छा से जो कुछ भी नाम रख देना अतद्गुण वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे निर्धन व काले कलूटे व्यक्ति का नाम इन्द्र चन्द्र रख देना, अथवा किसी व्यक्ति के फोटो या प्रतिमा मे ही उस व्यक्ति के नाम का व्यवहार करना । वस्तु के आकार की पर्वाह न करके उसमे किसी अन्य वस्तु के नाम का व्यवहार करना अतदाकार वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे कि शतरञ्ज की गोटो को हाथी घोड़ा आदि कहने का व्यवहार प्रचलित है । वस्तु की वर्तमान पर्याय की पर्वाह न करके उसे उसके भूत या भावि रूप से कह देना अतत्काल वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे कि युवराज को राजा कहना या राज्य त्यक्त मुनि को राजा कहना । वर्तमान मे सद्भाव स्वरूप किसी पदार्थ को उसके गुण तथा आकार तथा काल के अनुरूप ही नाम देना, तुद्गुण तदाकार व तत्काल वस्तु मे शब्द व्यवहार करना है, जैसे कि राजा को ही राजा कहना । इन चार प्रकार के शाब्दिक व्यवहारों के अतिरिक्त पाचवा कोई व्यवहार नही है । इन्ही चार के अनेको उत्तर भेद हो जाते हे, जिनका परिचय आगे दिया जायेगा । यह सर्व शाब्दिक विषय विभाग ही निक्षेप कहलाता है । इन मे से पहिला व्यवहार नाम निक्षेप है, दूसरा स्थापना निक्षेप, तीसरा द्रव्य निक्षेप और चौथा भाव निक्षेप । इन चारो का विशेष विस्तार आगे किया जायेगा ।

अव निक्षेप के लक्षण की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ कुछ उद्धरण देखिये ।

१०. स. सि.।१।१।३५ "निक्षिप्यतेति निक्षेप. स्थापना ।"

अर्थ.—जिसके जो निक्षिप्त किया जाय ऐसी स्थापना ही निक्षेप कहलाती है ।

अव इन निक्षेप के अनेको भेद प्रभेदो का प्रदशन करता हू ।
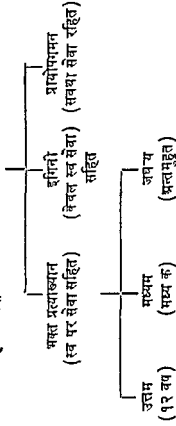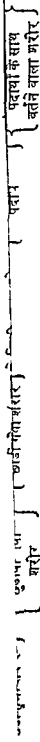
२ नय चक्र गद्य। प ४८ "वस्तु नामादिषु क्षिपतीति निक्षेप ।"

अर्थ —वस्तु का नामादिको में क्षेपण करे सो निक्षेप है ।

३ ध पू १। श्ल २। पृ १० "जो किसी एक निश्चय या निणय मे क्षेपण करे, अर्थात अनिर्णीत वस्तु का उसके नामादिक द्वारा निणय करावे, उसे निक्षेप कहते हैं ।"

(धापु१३ ।पृ ३ ।१५)

४ धापु६।पृ १७ "नामादिके द्वारा वस्तु में भेद करने के उपाय को निक्षेप कहते है ।"
(धापू ३।१७)

५ धापु १।श्ल१२।पृ १७ "ज्ञान प्रमाण इत्याहुरूपायो न्यासित्युच्यत।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽथ परिग्रह ।।११।"

अर्थ —सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते ह, नामादिके द्वारा वस्तु में भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते ह, और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते ह । इस प्रकार युवित से अर्थात प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा पदाथ का ग्रहण अथवा निणय करना चाहिये ।

(ति प ।१।८३) (ध ।पु ३।गा १५।पृ १८)

६ ध ।पू ४।पृ २ "सशय विपयय व अनध्यवसाय में अवस्थित वस्तु को उनसे निकाल कर जो निश्चय में क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते है । अथवा वाहरी पदार्थ के विकल्प को निक्षेप कहते ह । अथवा अप्रकृत का निराकरण करके प्रकृत का प्ररूपण करने वाला निक्षेप है ।
(ध ।पु १३।पृ १९८) (ध ।पु ६। पृ १४०।१३)

इन्ही सब भेद प्रभेदो के लक्षण आदि करने मे आते है।

४ नाम निक्षेप गुणो आदि की अपेक्षा किए विना किसी व्यक्ति या किसी वस्तु को अपनी मर्जी से जो कोई भी नाम दे देना नाम निक्षेप कहलाता है, क्योकि उस शब्द को सुनकर श्रोता उस वस्तु का ग्रहण ज्ञान मे कर लेता है। ऐसे शब्दो के, व्याकरण के आधार पर निरूक्ति अर्थ नही किए जा सकते, जैसे किसी अन्धे का नाम नैन सुख रख देना। इस शब्द का अर्थ यद्यपि नेत्रवान है परन्तु यहां इसका अर्थ ग्रहण नही होता, बल्कि उस नाम वाले व्यक्ति विशेष का ही ग्रहण होता है, भले ही वह अन्धा क्यों न हो। हमारे और आपके सब नाम नाम–निक्षेप से रखे गये है। अत. नाम निक्षेप केवल कल्पना है सत्य नही।

द्रव्य वाची, पर्याय वाची, गुण वाची इत्यादि अनेको प्रकार के शब्द या नाम होने सम्भव हैं, इसीलिये नाम निक्षेप के भी अनेको अन्तर भेद हो जाते है, जैसे जाति वाचक नाम, सयोग वाचक नाम, समवाय द्रव्य वाचक नाम, गुण वाचक नाम, क्रिया वाचक नाम, प्रत्यय वाचक नाम, अभिधान वाचक नाम। इन सब के पृथक पृथक लक्षण निम्न उद्धरणो पर से जानना।

१. नाम निक्षेप सामान्य–

१ स. सि।१।५।४५ "अतदगुणे वस्तुनि संव्यवहारार्थं पुरुषकारात्रियुज्यमानं सज्ञाकर्म नाम।"

अर्थः—संज्ञा के अनुसार गुण रहित वस्तु मे व्यवहार के लिये अपनी इच्छा से की गई संज्ञा को नाम कहते है।

२. रा. वा।१।५।१।२८ "निमित्तादन्यत्रिमित्तं निमित्तान्तरम्, तदनपेक्ष्य क्रियमाणा संज्ञा नामेत्युच्यते। यथा परमैश्वर्य

लक्षणेदन क्रियानिमित्तान्तरानपेक्ष कस्यचित 'इन्द्र' इति नाम।"

अर्थ—शब्द प्रयोग के जाति गुण क्रिया आदि निमित्तो की अपेक्षा न करके की जाने वाली सज्ञा 'नाम' है। जैसे परम ऐश्वय रूप इन्दन क्रिया की अपेक्षा न करके किसी का भी इन्द्र नाम रख देना नाम निक्षेप है।

(स सा।१३।आ कलश ८ की टीका) (त सा।१।१०।११) (गो क।मु।५२) (श्ल वा।पु २।प २६१) (प्र सा।त प्र।परि नय न १२) (वृ न च।२७२।)

२. अब नाम निक्षेप के उत्तर भेदो के लक्षण देखिये:-

१ ध।पु १।प १७।१७ १ जाति नाम—तद्भाव और सादृश्य लक्षण वाले सामान्य को जाति कहते है।—जैसे 'गो', 'मनुष्य', 'घट', 'पट', 'स्तम्भ' और 'वेत' इत्यादि जाति निमित्तक नाम है। क्योकि ये सज्ञायें गौ मनुष्यादि जाति में उत्पन्न होने से प्रचलित ह।

२ सयोग द्रव्य नाम—अलग अलग सत्ता रखने वाले द्रव्यो के मेल से जो पैदा हो उसे सयोग द्रव्य कहते है।—जैसे दण्डी छत्री, मौली इत्यादि सयोग द्रव्य निमित्तक नाम है, क्योकि दडा, छतरी, मुकुट इत्यादि स्वतत्र सत्ता वाले पदाथ है, और इन के सयोग से दण्डी, छत्री, मौली इत्यादि नाम व्यवहार में आते ह।

३ समवाय द्रव्य नाम—जो द्रव्य में समवेत हो अर्थात कथचित तादात्म्य रखता हो उसे समवाय द्रव्य कहते ह।—जैसे गलगण्ड, काना, कुवडा इत्यादि समवाय द्रव्य निमित्तक नाम है। क्योकि जिस के लिये 'गलगण्ड' इस नाम का उपयोग किया है उससे गले का गण्ड

मित्र सत्ता वाला नही है । इसी प्रकार काना कुबडा आदि नाम समझ लेना चाहिये ।

४ **गुण वाचक नाम**—जो पर्याय आदिक से परस्पर विरूद्ध हो अथवा अविरूद्ध हो उसे गुण कहते है ।—जैसे कृष्ण, रूधिर इत्यादि गुण निमित्ताक नाम है, क्योंकि कृष्ण आदि गुणों के निमित्त से उन गुण वाले द्रव्यो मे ये नाम व्यवहार मे आते है ।

५. **क्रिया नाम**—परिस्पन्द अर्थात हलन चलन रूप अवस्था को क्रिया कहते है ।—जैसे गायक नर्तक इत्यादि क्रिया निमित्तक नाम है, क्योंकि गाना, नाचना इत्यादि क्रियाओ के निमित्त से गायक नर्तक आदि नाम व्यवहार मे आते है ।

६. **अर्थ नाम**—एक व बहुत जीव तथा अजीव से उत्पन्न प्रत्येक व संयोगी भगो के भेद से 'अर्थ' आठ प्रकार का है । अर्थात एक जीव, नाना जीव, एक अजीव, नाना अजीव, एक जीव एक अजीव, नाना जीव नाना अजीव, एक जीव नाना अजीव, एक अजीव नाना जीव इस प्रकार अर्थ नाम आठ प्रकार से कहा जा सकता है ।

७. **प्रत्यय निबन्ध नाम**—इन आठ अर्थो मे उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यय निवन्धन नाम कहलाता है ।

८. **अभिधान निबन्ध नाम**—जो संज्ञा शब्द-प्रवृत्त होकर अपने आपको जतलाता है वह अभिधान निवन्धन कहा जाता है ।

५. स्थापना निक्षेप गुणो आदि की अपेक्षा किये विना किसी अन्य वस्तु को कल्पना मात्र से किसी अन्य वस्तुरूप मानकर उसे वह नाम देदेना स्थापना निक्षेप है, क्योकि यहां अन्य वस्तु मे अन्य वस्तु की स्थापना की गई है । जैसे कि खेल खेलते हुए बच्चे किसी लडके में

तो चोर की स्थापना करके उसे चोर स्वीकार कर लेते ह और किसी में सिपाही की कल्पना करके उसे सिपाही स्वीकार करलेते हैं। जब तक खेल खेलते ह तब तक बराबर चोर सिपाही ही समझते रहते हैं। वास्तव में वे चोर सिपाही नही है, पर कल्पना मात्र से ही उनमें चोर सिपाही की स्थापना की गई है। स्थापना निक्षेप से उन्हे चोर सिपाही कहना ठीक है पर नाम निक्षेप से नही।

यद्यपि दोनो ही दशाओ में अर्थात नाम व स्थापना निक्षेपा में गुणो से निरपेक्ष नाम लिये गये ह परन्तु फिर भी दोनो में अन्तर है। नाम निक्षेप में पूज्य पूजक व निद्य निन्दक भाव उत्पन्न नही हो सकता, पर स्थापना निक्षेप म होता है। जैसे किसी का नाम 'राजा' रख देने से उसकी राजा वत् विनय नही की जाती, परन्तु नाटक में किसी को राजा मान लेने पर उसकी राजा वत विनय की जाती है। दूसरे नाम निक्षेप की प्रवृति केवल शब्द में होती है और स्थापना निक्षेप की प्रवत्तिअसली पदाथ के अनुरूप दूसरे पदाथ म। अत नाम निक्षेप की अपेक्षा यह सत्य के कुछ निकट है।

यह स्थापना निक्षेप दो प्रकार का होता है–सदभाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। किसी ऐसी वस्तुमें स्थापना करना जिसमें कि उस असली वस्तु की कुछ आकृति आदि रूप स अनुरूपता पाई जाये, सद्भाव स्थापना कहलाती है, जैसे भगवान की आकृति रुप बनाई गई या महात्मा गान्धी की आकृति रूप बनाई गई पत्थर की मूर्ती को भगवान यामहात्मा गाधी वत ही मानने का, तथा उसकी असली भगवान व महात्मा गान्धी वत् ही पूजा व विनय करने का व्यवहार प्रचलित है। आकृति से निरपेक्ष जिस किसी वस्तु में भी जिस किसी वस्तु की कल्पना कर लेना असद्भाव स्थापना है, जैसे शतरज की गोटो में किसी को हाथी और किसी को घोडा कहने का व्यवहार है। तथा अन्य प्रकार से भी बाह्य वस्तु के आश्रय पर इसके अनेको भेद किये जा सकते है, जो निम्न उदाहरणो में दिये गये है।

१. स्थापना निक्षेप सामान्य —

१. स सि।१।५।४५ "काष्टपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना।"

अर्थ —काष्ट कार्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म, और अक्षनिक्षेप आदि मे 'यह वह है' इस प्रकार स्थापित करने को स्थापना कहते है।

२ रा वा।१।५।२।२८ "सोऽयमित्यभिसम्बन्धत्वेन अन्यस्य व्यवस्थापनामात्रं स्थापना। यथा परमैश्वर्यलक्षणो य शचीयतिरिन्द्र', 'सोऽयम्' इत्यन्यवस्तु प्रतिनिधयिमान स्थापना भवति।"

अर्थ —'यह वही है' इस रूप से तदाकार या अतदाकार किसी भी वस्तु मे किसी अन्य वस्तु की स्थापना करना स्थापना निक्षेप है, यथा—इन्द्राकार प्रतिमा मे इन्द्र की स्थापना करके 'परमऐश्वर्य लक्षण वाला शची पति जो इन्द्र है वह यही (प्रतिमा) है, इस प्रकार अन्य वस्तु मे प्रतिनिधीयमान भाव को स्थापना कहते है।

(स सा।१३।आ कलश ८ की टीका) (त.सा.।१।११।११) (प्र सा।त.प्र.।परि.।नय न. १३) (वृ. न. च.।२७३) (गो. क।मू।५३।५३)

२. स्थापना निक्षेप के उत्तर भेद —

१ ध।पृ १।पृ २०।१ "वह स्थापना निक्षेप दो प्रकार का है— सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। इन दोनो मे से—

१ **सद्भाव स्थापना** —जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार को धारण करने वाली वस्तु मे सद्भाव स्थापना समझना चाहिये।

२ असद्भाव स्थापना—तथा जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार से रहित वस्तु में असद्भाव स्थापना जानना चहियें।

(व न च।२७३) (ध ।पु १३ । प ४७।५)

२ ध । पु १३ । प ६ । सू १० "जो वह स्थापना स्पश है वह काष्ठकम, चित्रकम, पोतकम, लेप्यकर्म, लयनकम, शैलकम, गृहकम भित्तिकर्म, दन्तकम, और भेंडकम इनमें, तथा अक्षवराटक एव इनको लेकर इसी प्रकार और भी जो एकत्व के सकल्प द्वारा स्थापना अर्थात् बुद्धि में स्पशरूप से (यहा 'स्पश' का प्रकरण द्वारा अत स्पश पर निक्षेप लागू किये जा रहे हैं) स्थापित किये जाते ह वह सब स्थापना स्पश है। १०।

१, काष्ठकर्म—दो पैर, चार पैर, बिना पर और बहुत पैर वाले प्राणियो की काष्ठ में जो प्रतिमायें बनाई जाती ह उन्हें काष्ठकम कहते ह।

२ चित्रकर्म—जब य हो चार प्रकार की प्रतिमायें भित्ति (दीवार) वस्त्र, और स्तम्भ आदि पर रागवत अर्थात वर्ण विशेषो के द्वारा चित्रित की जाती ह तब उन्हें चित्र कम कहते हैं।

३ पोतकर्म—घोडा, हाथी, मनुष्य, स्त्री, वृक और बाघ आदि की वस्त्र विशेष में उकेरी गई प्रतिमाओ को पोतकम कहते हैं।

४ लेप्यकर्म—मिट्टी खडिया और बालू आदि के लेप से जो प्रतिमाए बनाई जाती ह उन्हें लेप्यकम कहते हैं।

५ लयनकर्म—शिला स्वरूप पवतो से अभिन्न जो प्रतिमायें बनाई जाती ह उन्हें लयन कम कहते ह।

६. **शैलकर्म**—पृथक पड़ी हुई शिलाओ मे जो प्रतिमाये वनाई जाती है, उन्हे शैल कर्म कहते है ।

७ **गृह कर्म**—गोपुरो के शिखरो से अभिन्न ईंट और पत्थर आदि के द्वारा जो प्रतिमाये चिनी जाती है उन्हे गृह कर्म कहते है ।

८ **भित्ति कर्म**—भित्ति से अभिन्न तृणों से जो प्रतिमाये वनाई जाती है उन्हे भित्ति कर्म कहते है ।

६ **दन्तकर्म**—हाथी के दांत मे जो प्रतिमाये उत्कीर्ण की जाती है उन्हे दन्तकर्म कहते है ।

१० **भेंड कर्म**—से घडी हुई प्रतिमाओ को भेड कर्म कहते है ।

(घ ।पु ।६ 'मे भेड भुप्रसिद्ध है' ऐसा कहकर छोड़ दिया है । अत: भेड के भाव के अर्थ भासता नही ।)

११. **अन्य भी**—आदि शब्द से कासा, तावा, चादी और सुवर्ण आदि द्वारा साचे मे ढाली गई प्रतिमाए भी ग्रहण करनी चाहिये । इस प्रकार सद्भाव स्थापना के आधार का कथन हुआ ।

१२ **असद्भाव स्थापना के भेद**—द्यूतकर्म की स्थापना मे जो अय पराजय के निमित्त भूत छोटी कौड़िया और पाँसे होते है उन्हे **अक्ष** कहते है, और इनके अतिरिक्त कौड़ियो को **वराटक** कहते । है इस प्रकार इन दोनो पदो के द्वारा असद्भाव स्थापना का विपय दिखलाया है ।

(ध । पु ६। पृ २४६। ५)

६. द्रव्य निक्षेप

वर्तमान मे तो अमुक गुण किसी मे दिखाई न दे पर पहले कभी वह गुण उसमे था अवश्य या भविष्यत मे वह गुण उसमे प्रगट होने वाला है अवश्य, ऐसी स्थिति वाले किसी व्यक्ति

को वर्तमान मे ही उस गुण वाला कह देना द्रव्य निक्षेप है, जैसे पहले कोई डाक्टर था और अब डाक्टरी का काम छोडकर कपडे की दुकान करता है, तो भी बराबर हम उसे डाक्टर साहब ही कहते रहते है, या कोई लडका अभी डाक्टर बना तो नही है पर आगे बन जाएगा क्योकि वह डाक्टरी पढ रहा है, तब भी उस लडके को हम कदाचित डाक्टर साहब कह देते है ।

स्थापना निक्षेप और द्रव्य निक्षेप दोनो में ही वर्तमान की अपेक्षा गुणो का अभाव है परन्तु फिर भी इन दोनो मे महान् अन्तर है। स्थापना निक्षेप में तो न वह गुण पहिले कभी थे और न आगे कभी उत्पन्न होने की सम्भावना है पर द्रव्य निक्षेप में यद्यपि उस गुण का वर्तमान में अभाव है पर भूत या भविष्यत में उसकी सम्भावना अवश्य है। स्थापना निक्षेप तो उसी जाति के पदार्थों में भी किया जा सकता है, और भिन्न जाति के पदार्थ में भी । जैसे रामलीला म रामचन्द्रजी की स्थापना किसी चेतन लड़के में की जाती है और उन्ही की स्थापना मन्दिर म रखी अचेतन प्रतिमाओ में भी की जाती है। परन्तु द्रव्य निक्षेप में उस जाति के पदार्थ में ही नाम का आरोप किया जाता है, जैसे डाक्टर किसी चेतन मनुष्य को ही कह सकते है किसी मनुष्य की प्रतिमा को नही। अत स्थापना की अपेक्षा द्रव्य निक्षेप सत्य के अधिक निकट है ।

द्रव्य निक्षेप के अनेक भेद प्रभेद हो जाते है, और इसलिए यह विषय कुछ कठिन सा प्रतीत होता है । परन्तु यदि उपरोक्त लक्षण पर दृष्टि स्थिर रखी जाए तो इसके समझने में कोई कठिनाई न पड़ेगी। लोक में मुख्यत दो जाति के पदार्थ है—एक चेतन और दूसरा जड़ । जड़ पदार्थ भी दो प्रकार के है—एक चेतना के साथ रहने वाला शरीर और दूसरा अन्य दृष्ट पदार्थ। वास्तव में तो यह सब दृष्ट पदार्थ भी कभी पहले किसी जीव के शरीर अवश्य रह चुके है, जैसे कि

यह स्तम्भ पृथिवी कायिक जीव का मृत शरीर है और यह चौकी वनस्पति कायिक का । जीव के साथ रहने वाला शरीर भी दो प्रकार का है—एक अदृष्ट कार्माण शरीर और दूसरा यह दृष्ट औदारिक शरीर । चेतन पदार्थ को जीव कहते है सो तो ज्ञानात्मक है । औदारिक शरीर को शरीर कहते है । कार्माण शरीर को कर्म कहते है । अन्य सव दृष्ट पदार्थो को नो कर्म कहते है ।

भले ही जड क्यों न हो, परन्तु कर्म नो कर्म, व शरीर तीनो ही जीव के साथ मिल कर या तो पहले कभी रह चुके है या आगे रहेंगे, इसलिए इनमे भी उपचार से जीव के गुणों का आरोप किया जाना सम्भव है । अत: जीव, शरीर, कर्म, नो कर्म यह चारो ही द्रव्य निक्षेप के विषय वन सकते है ।

इसी कारण द्रव्य निक्षेप के मूल मे दो भेद हो जाते हैं—आगम व नो आगम । आगम का अर्थ जीव है, क्योकि उसमे आगम या शास्त्र का ज्ञान प्रकट होना सम्भव है । नो आगम जड़ पदार्थ को कहते है भले ही साक्षात ज्ञान स्वरूप न हो पर ज्ञानवान जीव का साथी अवश्य है । 'नो' का अर्थ 'किञ्चित' होता है । 'नो आगम' का अर्थ है किञ्चित 'शास्त्र ज्ञान रूप' ज्ञाता का सो शरीर है ।

आगम द्रव्य निक्षेप का विषय वह जीव है जो किसी शास्त्र विशेष को जानता तो अवश्य है पर वर्तमान मे उसका उपयोग नही कर रहा है, हा भूत व भविष्यत काल मे उसका उपयोग अवश्य करता था या करेगा । ऐसे उस ज्ञाता को कदाचित उस शास्त्र का ज्ञाता कहा जाने का व्यवहार है जैसे—समायिक सम्बन्धी सर्व प्रक्रियाओ का जानकार भले ही वर्तमान मे समायिक न कर रहा हो, फिर भी सामायिक शास्त्र का ज्ञाता कहा जाता है । ऐसा कहना आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है, क्योकि आगम का अर्थ जीव है, ऐसा हम वता चुके है ।

उसी जीव का शरीर भी उपचार से सामायिक का ज्ञाता कहा जा सकता है। सो वह नो आगम-द्रव्य निक्षेप का विषय है। या यो कहिये कि वतमान उपयोग रहित आगम के ज्ञाता जीव को ज्ञाता' कहना तो आगम द्रव्य-निक्षेप है और उसके शरीर को ज्ञाता कहना नो आगम-द्रव्य निक्षप है। आगम या नो आगम तो इसलिय है कि जीव या जीव का शरीर है, और द्रव्य निक्षेप इसलिये है कि वतमान में उपयोग रहित है, पर भूत व भविष्यत में उसकी सम्भावना अवश्य है।

आगम द्रव्य निक्षेप क उपयोग की सम्भावना की अपेक्षा, तीन भेद हो जाते ह–भूत, वतमान व भावि। पहिले कभी उपयोग कर चुका है उस जीव को वतमान मे 'ज्ञाता कहना भूत आगम द्रव्य निक्षेप है। वतमान म साक्षात् रूप से तो उपयोग नही है परन्तु करने की तैयारी कर रहा है, उस जीव को वनमान में ज्ञाता कहना वतमान आगम द्रव्य निक्षेप है। इसी प्रकार जो भविष्यत काल में उपयोग करेगा ऐसे जीव को वत मान में 'ज्ञाता' कहना भावि आगम-द्रव्य-निक्षेप है।

नो आगम द्रव्य निक्षेप क मूल में तीन भेद किये जा सकते ह– ज्ञायक शरीर, भव्य व तद्व्यतिरिक्त। वत मान अनुपयुक्त ज्ञाता क भूत वत मान व भावि शरीरो को 'ज्ञाता' कहना ज्ञायक शरीर नो आगम है। वत मान में तो ज्ञाता नही परन्तु आगे ज्ञाता होने वाला है ऐसे भावि ज्ञाता के वत मान शरीर को ज्ञाता कहना भव्य नो आगम है। भावि ज्ञायक शरीर-नो आगम और भव्य नो आगम में इतना अन्तर है कि पहिले में तो जीव वर्तमान में ज्ञाता है, परन्तु उसका शरीर भावि है और दूसरे में वह जीव भविष्यत काल में ज्ञाता होगा अर्थात जीव तो भावि ज्ञाता है और उसका शरीर वतमान है। तीसरा भेद तद्व्यतिरिक्त है, अर्थात ज्ञाता जीव व उसके शरीर से अतिरिक्त

जो कुछ भी अन्य पदार्थ उस वर्तमान ज्ञाता के स्वामित्व मे पड़े है उन सबको 'ज्ञाता' कहना तद्व्यतिरिक्त नो-आगम-द्रव्य-निक्षेप है । वे पदार्थ कर्म व नो कर्म के भेद से दो प्रकार के हो जाते है । ज्ञानावरणादि कर्मों को 'कर्म' कहते है और धन आदि बाह्य पदार्थों को 'नो कर्म' कहते है ।

वर्तमान ज्ञाता के तीनो कालो के शरीरो की अपेक्षा, ज्ञायक शरीर नो आगम के तीन भेद हो जाते है—भूत, वर्तमान व भावि । वर्तमान मे उपयोग रहित ऐसे ज्ञाता जीव का भूत कालीन शरीर कदाचित 'ज्ञाता' कहा जा सकता है जैसे मारीच के शरीर को भगवान वीर कहना । यह भूत-ज्ञायक-शरीर नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है । और इसी प्रकार उसी ज्ञाता के वर्तमान शरीर को 'ज्ञाता' कहना वर्तमान-ज्ञायक-शरीर-नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का और उसी के भावि शरीर को 'ज्ञाता' कहना भावि-ज्ञायक-शरीर-नो आगम-द्रव्य-निक्षेप का विषय है । वर्तमान मे उपयुक्त न होने के कारण यह द्रव्य निक्षेप है, शरीर का ग्रहण होने के कारण नो आगम है, वर्तमान वाले ज्ञाता के शरीरो का ग्रहण होने से ज्ञायक शरीर है । इसलिये इसका नाम 'ज्ञायक शरीर नो आगमद्रव्य निक्षेप' कहना युक्त है ।

ज्ञायक के तीनो कालों सम्बन्धी शरीरो मे से भूत कालीन शरीर भी तीन प्रकार का होता है—च्युत, च्यावित, व त्यक्त । आयु पूर्ण हो जाने पर छूटे हुए शरीर को च्युत कहते है । आत्म हत्या द्वारा या किन्ही रोग आदि बाह्य कारणों से छुडाये गए शरीर को च्यावित कहते है । और समाधि मरण द्वारा छोडे गये शरीर को त्यक्त कहते है । ये तीनों ही शरीर मृत हो जाने के कारण भूत कालीन है । इन मे से भी अन्तिम जो त्यक्त शरीर है वह तीन प्रकार का है—भक्त प्रत्याख्यान समाधि द्वारा छोड़ा हुआ, इंगिनी समाधि द्वारा छोड़ा हुआ और प्रायोपगमन समाधि द्वारा छोड़ा गया ।

आहार को धीरे धीरे कम करते हुए शरीर का कृश करके, वीतराग भाव से शरीर के त्याग ने को समाधि कहते ह। आहार कम करने की अपेक्षा तीनो ही समाधियो में कोई अतर नही है। अन्तर केवल वाह्य सेवा व वैयावृत्ति में है। मृत्यु आने से पहिले समाधि गत उस शरीर की स्वय भी सेवा कर लेता है और दूसरे से भी करा लेता है, वह भक्त प्रत्याख्यान समाधि है। दूसरे से सेवा नही कराता पर स्वय कर लेता है व इगिनी समाधि है। न दूसरे स सेवा कराता ह और न स्वय ही करता है। काष्ठ वत एक करवट पर पड रहता है, और इसी अवस्था में शरीर को त्याग देता ह, वह प्रायोपगमन समाधि है। इन तीनो में मे प्रथम जो भक्त प्रत्याख्यान समाधि है, वह तीन प्रकार है–उत्तम, मध्यम व जघन्य। १२ वर्ष तक धीरे धीरे आहार कम करते रहकर शरीर को छोडना उत्तम है। अन्तिम समय आ जाने पर केवल अतमुहूर्त मात्र के लिये आहार छोडकर शरीर का त्याग करना जघन्य है। और मध्य गत हीनाधिक काल पयन्त यथा शक्ति आहार कम करते हुए शरीर को छोडना माध्यम है। उस उस प्रकार से छोडे गए शरीर को 'ज्ञाता' कहना उस उस नाम वाला भूत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप है।

जसा कि पहिल वताया गया है, शरीर क अतिरिक्त भी कुछ जड पदाथ लोक में है, जो न जीव है और न जीव क शरीर, इन से अतिरिक्त ही कुछ ह, इसलिये वे तद्वयतिरिक्त कहलाते है। इसमें दो जाति के पदाथ गभित ह–कम व ना कम। ज्ञानावरणादि कर्मो का नाम 'कम' है आर सव दृष्ट जड पदाथ नो-कम' ह।

कर्मों को ज्ञाता कहना कम तद्वयातिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप है और नो कर्मो को अर्थात धन मकान आदि को ज्ञाता कहना ना कम तद्वयातिरिक्त नो-आगम द्रव्य निक्षेप है। नो कम भी दो प्रकार का होता है–लौकिक व लोकोत्तर। रागादि के पोषक पदाथ लौकिक

नो कर्म है, या यो कहिए कि ससार के लौकिक व्यापारो मे काम आने वाले धन आदिक पदार्थ लौकिक है, और मोक्षमार्ग के लोकोत्तर व्यापार मे काम आने वाले चैत्यालय आदि पदार्थ लोकोत्तर है। यह दोनो ही तीन तीन प्रकार है—सचित्त अचित्त और मिश्र। जीवित शरीर को सचित कहते है। निर्जीव पदार्थ को अचित्त कहते है। सचित्त और अचित्त के समूह को मिश्र कहते है।

ये तीनो ही जाति के पदार्थ लौकिक व लोकोत्तर दोनो ही दिशाओ मे यथा योग्य रूप से काम आते है। पिता पुत्र आदि या कुटुम्बी जनो के शरीर लौकिक सचित्त नो कर्म है। धन मकानादि लौकिक अचित्त नो कर्म ह। तथा कुटुम्ब सहित धनादि से भरा हुआ घर लौकिक मिश्र नो कर्म है। क्योकि यह तीनों ही जाति के पदार्थ राग पोपक है, और लौकिक व्यापार मे ही काम आते है, इसलिए इनको ज्ञाता कहना उस उस जाति का लौकिक नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेप है।

आचार्य व साधु आदि के शरीर लोकोत्तर सचित्त नोकर्म है शास्त्र चैत्यालय आदि लोकोत्तर अचित्त नोकर्म है, तथा शास्त्र पढाते हुए गुरु या साधुओं सहित मन्दिर लोकोत्तर मिश्र नोकर्म है। क्योकि ये तीनो ही जाति के पदार्थ वीतरागता के पोषक है, तथा मोक्ष सम्बन्धी व्यापार मे काम आते है, इसलिए इनको ज्ञाता कहना लोकोत्तर नो कर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेप है।

यहा यह शंका हो सकती है कि जीव को ज्ञाता कहना तो कदाचित ठीक भी है, क्योकि ज्ञान उसका गुण है, परन्तु शरीरो या धन आदि पदार्थो को ज्ञाता कहना तो बिल्कुल युक्त नही है। सो ऐसी आशका योग्य नही, क्योकि किसी व्यक्ति के चित्र को भी 'यह अमुक व्यक्ति है' ऐसा कहने का व्यवहार देखा जाता है, अथवा रिक्शा वाले को बुलानेके लिये 'ओ रिक्शा' इस प्रकार बुलाने का व्यवहार भी देखा

जाता है। गुण-गुणी सम्बन्ध, पर्याय पर्याय सम्बन्ध अथवा निमित्त नैमित्तिक व स्वामित्व सम्बन्ध, इन सब प्रकार के सम्बन्धों रूप द्वैत अद्वैत देखना द्रव्यार्थिक नय का कामहै। अत इस दृष्टि में शरीरो आदि को भी 'ज्ञाता' कह देना विरोध को प्राप्त नही होता। साराश यह कि जीव को, या उसके शरीर को, या उसक ज्ञानावरणादि कर्मों को, या उसक धन कुटुम्बादि को, उस जीव सामान्य के साथ कोई न कोई सम्बन्ध होने के कारण उसी 'जीव रूप या उस की किस पर्याय रूप कह देना द्रव्य निक्षेप है। क्योकि द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

अब द्रव्य निक्षेप सामान्य व विशेष के लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के अर्थ निम्न उद्धरण देदिये।

१ द्रव्य निक्षेप सामान्य —

१ स सि।१।५।४६ "गुणैगु णान्वा द्रुतगत गुणर्द्राप्यते गुणाद्राव्यतीनि व द्रव्यम्।"

अर्थ —जो गुणो को प्राप्त हुआ था अथवा जो गुणो को प्राप्त होगा उसे द्रव्य कहते ह।

२ रा वा।१।५।३४।२८ "अनागतपरिणामविशेष प्रतिगृहीताभिमुख द्रव्यम्। अयद्भाविपरिणामप्राप्ति प्रति योग्यतामादधान तद् द्रव्यमित्युच्यते। अ अथवा अतद्भाववाद्रव्यायित्युच्यते। यथेन्द्रायमानीत काष्ठमिन्द्रप्रतिमापर्यायप्राप्ति प्रत्यभिमुख 'इन्द्र' इत्युच्यते।"

अर्थ —अनागत परिणाम विशेष को ग्रहण करने के अभिमुख द्रव्य होता है। अर्थात आगामी पर्याय की योग्यता वाले उस पदाथ को द्रव्य कहते ह जो उस समय उस पर्याय के

अभिमुख हो। जैसे इन्द्र प्रतिमा के लिए लाये गये काष्ठ को भी इन्द्र कहना।

३. ध पु.१।पृ.२०।२३ "आगे होने वाली पर्याय को ग्रहण करने के सम्मुख हुए द्रव्य को (उस पर्याय की अपेक्षा) द्रव्य निक्षेप कहते है। अथवा वर्तमान पर्याय की विवक्षा रहित द्रव्य को द्रव्य निक्षेप कहते है। वह आगम व नोआगम के भेद से दो प्रकार का है।"

(स.सा.।१३।आ.कलश८कोटीका) (त मा.।१।१२।११) (प्र सा।त प्र.। परि०।नयन.१२) (वृ.न.च।२७४)

२, आगम द्रव्य निक्षेप —

१. ध।पु १।पृ२०।२७ "आगम, सिद्धात और प्रवचन ये शब्द एकार्थ वाची है।****मगल प्राभृत अर्थात मंगल विषयक शास्त्र को जानने वाला किन्तु वर्तमान मे उस के उपयोग से रहित जीव को (अर्थात चेतन द्रव्य को) आगम द्रव्य मंगल कहते है।"

(इस के तीन भेद किये जा सकते हैं—भूत वर्तमान व भावि क्योकि वह जीव भूतकाल मे उपयोग वाला हो चुका है, अथवा वर्तमान मे कुछ उपयोग वाला और कुछ अनुपयोग वाला है तथा भविष्यत काल मे उपयोग वाला हो जायेगा।

(स सि.।१।५।४८) (रा०व.।१।५।६।२९) (श्ल वा.।पु २।पृ.२६७) (गो क मू.।५४।५३) (वृ न च.।२७४)

३, नोआगम द्रव्य निक्षेप सामान्य —

१ ध.।पु १।पृ.२०।२७ "आगम से भिन्न पदार्थ को नोआगम कहते है।***नोआगम द्रव्य मगल तीन प्रकार का है--ज्ञायक शरीर, भव्य व तद्व्यतिरिक्त।"

४ ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप —

१ ध ।पू १।प २१।२२ "ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य मगल भी तीन प्रकार का समझना चाहिये । मगल विषयक शास्त्र का अथवा केवल ज्ञानादि रूप मगल पर्याय का (वर्तमान में) आधार होने से भावि शरीर, वर्तमान शरीर, और अतीत शरीर, इस प्रकार ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप के तीन भेद हो जाते है ।"

क्रमश–२ ध ।पू १।प २२।२६ "उन में अतीत शरीर के तीन भेद है—च्युत च्यावित व त्यक्त ।

च्युत –कदलीघात मरण के विना कर्म के उदय से झडने वाले आयुकर्म के क्षय से पके हुए फल के समान अपने आप पतित शरीर को च्युत शरीर कहते है ।

च्यावित –कदलीघात के द्वारा आयु के छिन्न हो जाने से छूटे हुए शरीर को च्यावित शरीर कहते है ।

त्यक्त –त्यक्त शरीर तीन प्रकार का होता है–प्रायोपगमन विधान से छोडा गया, इगिनी विधान से छोडा गया और भक्त प्रत्याख्यान विधान स छोडा गया । इस प्रकार इन निमित्तो से त्यक्त शरीर के तीन भेद हो जाते है ।"

क्रमश—३ ।पू १।प २३।१५ "प्रायोपगमन—अपने और पर के उपकार की अपेक्षा रहित समाधि-मरण को प्रायोपगमन विधान कहते है ।"

इगिनी —जिस सयास में अपने द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा रहती है, किन्तु दूसरे के द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा सर्वथा नही रहती उसे इगिनी समाधि कहते है ।

भक्त प्रत्याख्यान –जिस सन्यास में अपने और दूसरे (दोनों) के द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा रहती है उसे भक्त प्रत्याख्यान सन्यास कहते है ।"

(स मि.।१।५।४६) रा. वा ।१।५।७।२६) (गो क.।मू ५६-६१)

५. भव्य नो आगम द्रव्य निक्षेप—

१ ध ।पु.१।पृ २६।१६ "जो जीव भविष्यत काल मे मगल शास्त्र का जानने वाला होगा अथवा मगल पर्याय से परिणत होगा उसे (अर्थात उसके वर्तमान शरीर को मंगल कहना या ज्ञाता कहना) भव्य नो आगम द्रव्य निक्षेप कहते है ।"

(स. सि ।१।५।५०) (रा. वा ।१।५।७।२६) (गो. क,।मृ ।६२)

६. तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप—

१ धपु। १।पृ २६।२५ "कर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल और नो कर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल के भेद से तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मंगल दो प्रकार का है ।

कर्म तद्व्यतिरिक्त—उनमे जीव के प्रदेशों से वन्धे हुए तीर्थ कर नाम कर्म को कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मंगल कहते है, क्योकि वह भी मगल पने का सहकारी कारण है।

नोकर्म तद्व्यतिरिक्त—नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य मंगल दो प्रकार का है–एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर ।

उन दोनों मे से **लौकिक मंगल** सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है । इन में श्वेत सरसो, जल से भरा हुआ कलश, वन्दनमाला, छत्र, श्वेतवर्ण, और दर्पण आदि अचित्त द्रव्य मंगल है । और बाल कन्या तथा उत्तम जाति का घोड़ा आदि सचित्त मंगल है ।

अलकार सहित कन्या आदि मिश्र मगल समझने चाहिये । यहा पर अलकार अचित्त और कन्या सचित्त होन के कारण अलकार सहित कन्या को मिश्र मगल कहा है ।

लोकोत्तर मंगल—भी सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है । अरहत आदि का अनादि और अनन्तस्वरूप जीव-द्रव्य सचित लोकोत्तार नो आगम तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मगल है । यहा पर केवल ज्ञानादि मगल पर्याय युक्त अरहत आदिक का ग्रहण नही करना चाहिये, किन्तु उनके सामान्य जीव द्रव्य का ही ग्रहण करना चाहिये, क्योकि वतमान पर्याय सहित द्रव्य का भाव निक्षेप में अन्तर्भाव होता है । कृत्रिम और अकृत्रिम चत्यालयादि अचित लोकोत्तर नोआगम तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मगल है । उन चैत्यालयो में स्थित प्रतिमाओ का इस निक्षेप में ग्रहण नही करना चाहिये, क्योकि उनका स्थापना निक्षेप में अन्तर्भाव होता है । उक्त दोनो प्रकार के सचित्त और अचित्त मगल को मिश्रमगल कहते है ।"
(गा क ।मू व जी प्र । ६३ ७१)

७ भाव निक्षेप

द्रव्य निक्षेप का कथन हो चुका अब भाव निक्षेप का स्वरूप कहते है । वही ज्ञाता जीव यदि वतमान में उसके उपयोग से भी महित हो जाए तो वही जीव भाव निक्षेप का विषय बन जाता है, क्योकि साक्षात काय रूप मे परिणत द्रव्य को भाव कहते है । इस में कोई भी उपचार नही है । जैसा काम करता है वैसा नाम लेदेत है, जसे रोगी की परीक्षा करते समय ही डाक्टर को डाक्टर कहना, या शिकार खेलते हुए ही किसी व्यक्ति को शिकारी कहना, अन्य कुछ काम करते हुए को नही । द्रव्य निक्षेप में उस उस व्यक्ति में काय करने की योग्यता मात्र या सम्भावना मात्र को देख कर ही उस उस का वह वह नाम रख देना सहन कर लिया जाता था, भले ही वह काय उस समय न कर रहा हो । परन्तु भाव निक्षेप में तो उस उसका वह नाम देना उसी समय सम्भव है, जब कि वह वह काय कर रहा हो,

अन्य समयो मे नही । इसलिये ऐसा नाम साक्षात रूप से सत्य है । द्रव्य निक्षेप का विषय अनेक पर्यायो का पिण्ड द्रव्य है और इसका विषय केवल एक समय की पर्याय वाला द्रव्य है । इस कारण द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा यह अधिक सूक्ष्म व सत्य है ।

उपपोग की योग्यता केवल जीव मे ही है शरीर मे नही, इसलिये इस निक्षेप मे केवल जीव पदार्थ ही ग्रहण किया जाता है शरीर नही। इसके भी दो भेद है--आगम भाव निक्षेप और नोआगम भाव निक्षेप। वर्तमान मे उस उस विषय सम्बन्धी शास्त्र के उपयोग मे लगा हुआ जीव उस उस विषय सम्बन्धी आगम भाव निक्षेप का विषय है। और शास्त्र की अपेक्षा न कर के उसके अर्थ मे उपयुक्त जीव नोआगम भाव निक्षेप का विषय है । जैसे सामायिक शास्त्र के अध्ययन मे उपयुक्त जीव आगम भाव सामायिक है, और स्वतत्र रूप से सामायिक शास्त्र के अर्थ का विचार करने वाला जीव नोआगम भाव सामायिक है ।

क्योकि साक्षात कार्य परिणत जीव ही इसका विपय है इसलिय यहा कर्म, नोकर्म, व शरीर का ग्रहण नोआगम मे भी नही किया जा सकता कर्म फल का ग्रहण हो सकता है, पर वह भी जीव विपाकी का, पुद्गल विपाकी का नही । क्योकि जीव विपाकी का व्यापार ही जीव में होता है, पुद्गल विपाकी का व्यापार शरीर मे होता है, जिसे उपयोग रूप नही कहा जा सकता ।

नो आगम भाव निक्षेप के दो भेद हो जाते है--उपयुक्त व तत्परिणत । शास्त्र का आश्रय लिये बिना केवल आगम के शब्दार्थ मे उपयुक्त जीव को ज्ञाता कहना उपयुक्त नोआगम भाव निक्षेप है, और स्वय उसरूप परिणत हो गया हो उसको ज्ञाता कहना तत्परिणत नोआगम भाव निक्षेप है । जैसे 'सामायिक इस प्रकार की जाती है' इत्यादि रूप सामायिक सम्बन्धी अर्थ का विचार करने वाला व्यक्ति सामायिक के विषय मे उपयुक्त कहलाता है और सामायिक

करते हुए साम्य भाव मे स्थित व्यक्ति सामायिक रूप से परिणत कहलाता है ।

अब इन्ही लक्षणो की पुष्टि व अभ्यास के लिये कुछ आगम कथित उद्धरण देखिये ।

भाव निक्षेप सामान्य—

१ स सि ।१।५।४६ "वतमान पर्यायोपलक्षित द्रव्य भाव ।"

अर्थ —वतमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते है ।

२ रा वा ।१।५।८।२९ "वतमानतत्पर्यायो पलक्षित द्रव्य भाव ।८।
यथा इन्द्रनामकर्मोदयापादितेन्दन
क्रियापर्यायपरिणत आत्मा भावेन्द्र ।"

अर्थ —वतमान उस द्रव्य पर्याय से विशिष्ट द्रव्य को भाव जीव कहते ह । जैसे इन्द्र नाम कम के उदय से होने वाली इन्दन या ऐश्वय भोग क्रिया से परिणत आत्मा को इन्द्र कहना ।

(स सा।१३। आ कलश ८ की टीका) (प्र सा । त प्र । परि०। नय न० १३) (व न च । २७६) (त सा । १ । १३ । १२) (गा क । मू । ६५)

३ ध।पु १।पृ २९।२० "वतमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते ह । वह आगम भाव मगल और नोआगम भाव मगल के भेद से दो प्रकार का है ।"

२ आगम भाव निक्षेप —

१ ध पु १।पृ २९।२१ "आगम सिद्धान्त को कहते ह । इसलिये जो मगल विषयक शास्त्र का ज्ञाता होते हुए वतमान में

निक्षेपो को छोडकर वर्णन किया गया सिद्धान्त सभव है कि वक्ता व श्रोता दोनो को कुमार्ग मे ले जावे, इसलिये निक्षेपो का कथन अवश्य करना चाहिये । जहा उस उस विपय के सम्बन्ध मे बहुत जानकारी हो वहा पर नियम से वक्ता को सभी मूल व उत्तर निक्षेपो के द्वारा उन विषयों का विचार करना चाहिये । और जहा पर बहुत न जाने तो वहा पर चार मूल निक्षेप अवश्य करने चाहिये अर्थात चार निक्षेपो के द्वारा उस वस्तु का विचार अवश्य करना चाहिये । कहा भी है:—

ध।पु १।पृ ३१ "श्रोता तीन प्रकार के होते है—पहिला अव्युत्पन्न अर्थात वस्तु-स्वरूप से अनभिज्ञ, दूसरा सपूर्ण विवक्षित पदार्थ को जानने वाला, और तीसरा एक देश विवक्षित पदार्थ को जानने वाला । इनमे से पहिला श्रोता अव्युत्पन्न होने के कारण विवक्षित शब्द या पद के अर्थ को कुछ भी नही समझता । दूसरा 'यहा पर इस पद का कौनसा अर्थ अधिकृत है' इस प्रकार विवक्षित पद के अर्थ मे सन्देह करता है अथवा प्रकरण प्राप्त अर्थ को छोड कर दूसरे अर्थ को ग्रहण करके विपरीत समझता है। दूसरी जाति के श्रोता के समान तीसरी जाति का श्रोता भी प्रकृत पद के अर्थ म या तो सन्देह करता है, अथवा विपरीत निश्चय कर लेता है ।

इन मे से यदि अव्युत्पन्न श्रोता पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु की किसी विवजित पर्याय को जानना जाहता है तो उस अव्युत्पन्न श्रोता को प्रकृत विपय की व्युत्पत्ति के द्वारा अप्रकृत विपय का निराकरण करने के लिये निक्षेप का कथन करना चाहिये । यदि वह अव्युत्पन्न श्रोता द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सामान्य रूप से किसी वस्तु का स्वरूप जानना चाहता है, तो भी निक्षेपो के द्वारा प्रकृत पदार्थ का

प्ररूपण करने के लिये सम्पूण निक्षेपो का कथन किया जाता है (अर्थात उस प्ररूपणा में सब ही निक्षेपो को लागू करके दिखाया जाता है,) क्योकि विशेष धम के निणय के विना विधि का निर्णय नहीं हो सकता है । दूसरी और तीसरी जाति के श्रोताओ को यदि सन्देह हो, तो उनके सन्देह को दूर करने के लिये भी सम्पूण निक्षेपो का कथन किया जाता है । और यदि उन्हें विपरीत ज्ञान हो गया हो तो प्रकृत अथात विवक्षित वस्तु के निर्णय के लिये भी सम्पूण निक्षेपो का कथन किया जाता है कहा भी है–

"अवगय णिवारणट्ठ पयदस्स परूवणा णिमित्त च ।
ससय विणासणट्ठ तच्चत्थवधारणट्ठ च ।१५।"

अथ--अप्रकृत विषय के निवारण करने के लिये, प्रकृत विषय के प्ररूपण करने के लिये, सशय का विनाश करने के लिये और तत्वाथ का निश्चय करने के लिये निक्षेपो का कथन करना चाहिये। यह निक्षेपो के प्रयोग का प्रयोजन है ।

६ निक्षेपो का नयो में अतर्भाव

निक्षेपो का पृथक कथन करने पर ऐसा भ्रम हो सकता है कि इन का विषय नयो से पृथक कुछ अन्य ही है । वास्तव में ऐसा नही है । कोई भी विषय लोक में ऐसा नही जो नयो के पेट में न समा जाये । अत निक्षेपो का कोई स्वतन्त्र विषय हो ऐसी बात नही ।

शका –फिर नय व निक्षेप में क्या अतर है ?

उत्तर –इस शका का उत्तर आगम मे निम्न प्रकार दिया है, उस पर से ही शका का निवारण हो जाता है ।

१. ध.।पु.१।श्ल. १२।पृ.१७ "ज्ञान प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास इत्युच्यते। नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थ परिग्रहः ।११।"

अर्थः—अभेद ज्ञान को प्रमाण कहते है। नामादि के द्वारा वस्तु मे भेद करने को न्यास या निक्षेप कहते है। और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है। इस प्रकार युक्ति से अर्थात प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा पदार्थ का ग्रहण अथवा निर्णय करना चाहिये।

(ति प.।१।८३) (व्य।पु ३।श्ल. १५।पृ.१८)

२. वृ न च।१७२ "वस्तु प्रमाणविषय नयविषयोभवति वस्त्वेकाश ।यो द्वाभ्या निर्णीतार्थं मनिक्षेपे भवेद्विषय.।१७२।"

अर्थ —अखण्ड वस्तु प्रमाण का विषय है। नय का विषय वस्तु का एक अश है। जो इन दोनो नय व प्रमाण द्वारा निर्णीत पदार्थ है वही निक्षेप का विषय है।

३ प.।ध।पू०।७३९-७४० "ननु निक्षेपो न नयो न च प्रमाणं न चाशक तस्य । पृथगुद्देश्यत्वादपि पृथगिव लक्ष्य स्वलक्षणादिति चेत् ।७३९। सत्य गुणसापेक्षो सविपक्ष. स च नय. स्वयक्षिपति । य इह गुणाक्षेप स्यादुपचरित. केवलं स निक्षेप ।७४०।"

अर्थ —शका कार कहता है कि निक्षेप न तो नय है तथा न प्रमाण है तथा न प्रमाण या उसका अश है, परन्तु निक्षेप का पृथक् उद्देश होने से अपने लक्षण से वह पृथक ही लक्षित होता है ।७३९।

इस के उत्तर मे कहते है कि ठीक है, परन्तु गुणो की अपेक्षा से उत्पन्न होने वाले तथा विपक्ष की अपेक्षा रखने वाले जो नय है, उन

का जो स्वय क्षेपण करता है अर्थात् 'इस प्रकार का यह' ऐसा केवल उपचरित गुण का आक्षेप करता है वही निक्षेप कहलाता है।

नय व निक्षेप में क्या अन्तर है यह बात प्रकरण न० १ मे स्पष्ट की जा चुकी है। यहा तो केवल इतना कहना इष्ट है कि अर्थ या पदार्थ की अपेक्षा समानता रखने के कारण निक्षेपो को यथा योग्य रूप मे नयो मे गर्भित किया जा सकता है। क्योकि निक्षेपो का काम वस्तु का प्रतिपादन करना मात्र है हेयोपादेयता दर्शाना नही, इस लिये इन का अतर्भाव आगम नयो में ही किया जा सकता है, अध्यात्म नयो में नही। जैसा कि नीचे दर्शाया गया है।

१ नाम निक्षेप—

इस का अतभाव नगम नय अथवा उस के भेद जो सग्रह व व्यवहार इन द्रव्यार्थिक नयो मे होता है। कारण यह है कि नाम निक्षेप का व्यापार किसी पदार्थ का नाम रखना है। वाच्य वाचक रूप द्वैत भाव के बिना वह सम्भव नही है। पर्याय क्षण वर्ती होती है इसलिये उसमे शब्द द्वारा सकेत करना नही बन सकता, क्योकि जिस समय शब्द बोला जायेगा उस समय पर्याय विनष्ट हो चुकी होगी, तब वह शब्द किसी को वाच्य बनायेगा। स्थायी वस्तु का ही कोई नाम रखा जा सकता है अत नाम निक्षेप द्रव्यार्थिक है।

यहा यह शका हो सकती है कि तीना शब्द नय पर्यायार्थिक है। वहा शब्द व्यवहार कैसे सम्भव है। इसका उत्तर यही है कि अर्थगत भेद की वहा प्रधानता नही है शब्द की प्रधानता है। शब्द स्वय पर्याय स्वरूप ही होता है। इस लिये उस को विषय करने वाले शब्द नय पर्यायार्थिक कहे गए ह। इस लिये पर्यायार्थिक नयो द्वारा शब्द व्यवहार होने में कोई विरोध नही।

नाम निक्षेप के शब्द व्यवहार का आश्रय लेकर यदि विचारा जाये तो पर्यायार्थिक ऋजुसूत्र मे भी इसका अन्तर्भाव करने में कोई विरोध नही है। भले ही शब्द बोलते समय सामने उस की वाच्य भूत पर्याय न हो पर शब्द पर से उसका ज्ञान मे ग्रहण हो अवश्य जाता है। या यों कह लीजिये की चिरस्थायी व्यञ्जन पर्यायो को वाच्य बनाने की अपेक्षा यह पर्यायार्थिक नय मे गर्भित किया जा सकता है।

इस प्रकार नाम निक्षेप का द्रव्यार्थिक व पर्यार्थिक दोनो नयो मे कथञ्चित अन्तर्भाव हो जाता है।

२. स्थापना निक्षेप—

स्थापना निक्षेप का केवल द्रव्यार्थिक (नेगम, सग्रह व व्यवहार) मे ही अन्तर्भाव होता है पर्यायार्थिक मे नही। कारण कि यहां तदाकार व अतदाकार स्वरूप से द्रव्य का ही ग्रहण होता है। पर्याय मे द्रव्य की स्थापना नही की जा सकती। दूसरे जिस की स्थापना की जाये उस द्रव्य की, जिस मे स्थापना की जाये उस द्रव्य के साथ एकता का भाव ग्रहण हुए विना स्थापना अपने प्रयोजन की सिद्धि नही कर सकती। दो भिन्न पदार्थो मे 'यह वही है' इस प्रकार कथञ्चित एकता करने के कारण यह व्यवहार नय रूप ही है ऋजुसूत्र नय रूप नही। अतः इसे द्रव्यार्थिक नय का विषय ही समझना चाहिये।

३. द्रव्य निक्षेप—

द्रव्य निक्षेप तो स्पष्ट रूप से द्रव्यर्थिक है ही, क्योकि बिना त्रिकाली द्रव्य को ग्रहण किये भूत वर्तमान व भविष्यत की पर्यायो मे एकता का आरोप नही किया जा सकता। दूसरे जीव तथा शरीर इन दो पदार्थो की अथवा अन्य कर्म व नो कर्मादिको की एकता का

व्यवहार सग्रह व व्यवहार नय का ही विषय है जो द्रव्यार्थिक है। यह दोनो नयें नैगम नय के ही अग ह अत द्रव्य निक्षेप का अ तर्भाव नैगम, सग्रहण व व्यवहार तीनो में किया जा सकता है।

इतना होते हुए भी द्रव्य पर्याय की अपेक्षा यह स्थूल ऋजुसूत्र का भी विषय कहा जा सकता है। द्रव्य पर्याय में भी काल भेद अथवा जीव शरीर भे रूप द्वैत देखा जाता है। इस द्रव्य पर्याय को द्रव्य निक्षेप विषय करता है, इसलिये इसे पर्यायार्थिक कहने मे भी कोई निरोध नही है।

४ भाव निक्षेप—

भाव निक्षेप पयायार्थिक रूप है, क्योकि एक समय की पर्याय से परिणत द्रव्य का ही इस मे ग्रहण होता है, बिल्कल उस प्रकार जिस प्रकार कि एव भूत नय में। अत भाव निक्षेप का अ तर्भाव एवभूत नय में होता है।

फिर भी स्थूल ऋजुसूत्र की विषय भूत स्थूल व्यञ्जन पर्याय से उपलक्षित द्रव्य कथञ्चित द्रव्य स्वीकारा गया है। और भाव निक्षेप उसे विषय करता है। इसलिये इसे द्रव्यार्थिक मानने में भी कोई विरोध नही।

सक्षिप्त रूप से इन चारो का नयो के साथ सम्बन्ध निम्न चाट पर से पढा जा सकता है।

—०○—

नं.	निक्षेप	नय	अन्तर्भाव में हेतु
१.	नाम	द्रव्यार्थिक, नैगम, संग्रह व व्यवहार कथञ्चित पर्यायार्थिक	वाच्यवाचक सम्बन्ध को सार्वकालिक निश्चय के बिना शब्द व्यवहार असम्भव है। नाम या शब्द के बिना पर्याय का कथन नहीं किया जा सकता, अर्थात् द्रव्य पर्याय का वाचक शब्द भी पर्यायार्थिक है।
२.	स्थापना	द्रव्यार्थिक नैगम, संग्रह व व्यवहार	द्रव्य का परिचय देने के कारण, अथवा जिसकी स्थापना की जाये और जिस पदार्थ मे की जाये, ऐसे दोनो पदार्थों मे आधार आधेय भाव रूप द्वैत के कारण।
३.	द्रव्य	द्रव्यार्थिक नैगम, संग्रह व व्यवहार कथञ्चित पर्यायार्थिक	त्रिकाली द्रव्य का आश्रय होने पर ही भूत व भावि को वर्तमान मे निक्षिप्त किया जा सकता है। ऋजु सूत्र के विषय भूत द्रव्य पर्याय को कथञ्चित द्रव्य स्वीकार किया गया है।
४.	भाव	पर्यायार्थिक	वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य को विषय करता है।
		द्रव्यार्थिक	वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को कथञ्चित द्रव्य स्वीकार किया गया है।

समाप्त